अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं नेपाली शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद साह, एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कालेज
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

किताब महल
इलाहाबाद, दिल्ली, पटना, नागपुर

प्रथम संस्करण : 1981

[प्रस्तुत पुस्तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से प्रकाशित]

शाखाएँ : (1) 28 नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2
(2) अशोक राजपथ, पटना
(3) प्लाट नं० 1, मनोज बिल्डिंग, रामदास पेठ, सेन्ट्रल बाजार रोड, नागपुर

मूल्य : साठ रुपये

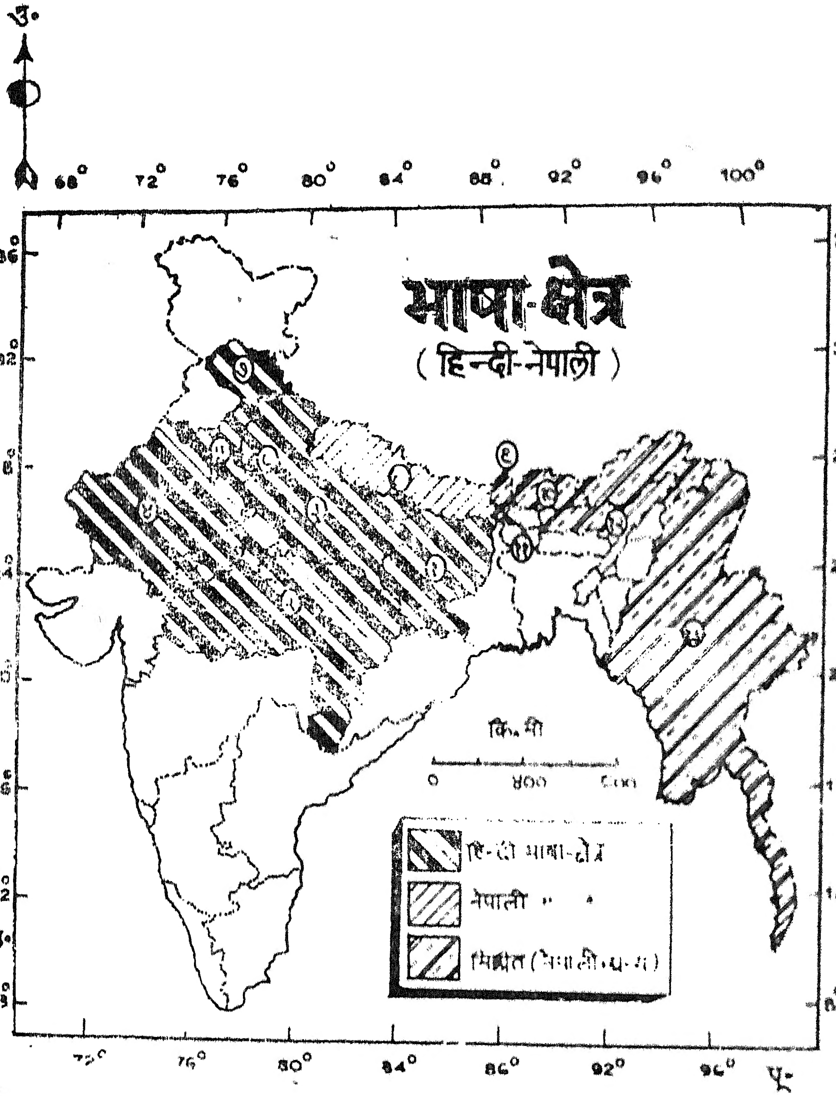
प्रकाशक : किताब महल, 15, थार्नहिल रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक : अनुपम प्रेस, ६ चक, इलाहाबाद।

"परम पूजनीया

माँ

के कर-कमलों में

सादर समर्पित"


भाषा-क्षेत्र
(हिन्दी-नेपाली)
कि. मी
नेपाली
उ.
पू.

मानचित्र में प्रयुक्त संकेत

1. बिहार
2. मध्य प्रदेश
3. उत्तर प्रदेश
4. राजस्थान
5. हरियाणा
6. दिल्ली
7. हिमाचल प्रदेश
8. नेपाल
9. सिक्किम
10. भूटान
11. दार्जिलिंग
12. असम
13. बर्मा

—:o:—

आ भा र

सर्वप्रथम, पूज्य गुरु डॉ० राधा कृष्ण सहाय के प्रति विनम्रतापूर्वक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिनके कुशल निर्देशन में यह शोध-कार्य पूरा हो सका है। वस्तुतः इस विषय की ओर अन्तिम रूप से प्रवृत्त करने का श्रेय इन्हीं को है। जिस सूक्ष्म दृष्टि एवं हृदयस्पर्शी स्नेह से सदा अनुप्राणित करते रहे, वह भुलाने योग्य नहीं है। प्रसिद्ध भाषाविद् डॉ० बाबूराम सक्सेना एवं डॉ० उदय नारायण तिवारी का बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ जिन्होंने अपने महत्त्वपूर्ण परामर्श देकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध को अधिकाधिक प्रामाणिक होने में मदद की।

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, भागलपुर विश्वविद्यालय के अध्यक्ष डॉ० शिवनन्दन प्रसाद के प्रति आभार प्रदर्शन करता हूँ जिन्होंने मेरे शोध संकल्प को आगे बढ़ाया और स्नातकोत्तर पुस्तकालय से पुस्तक अध्ययन की सुविधा प्रदान की। पूज्य गुरु डॉ० शिव शंकर वर्मा और डॉ० शिवनन्दन प्रसाद का विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने समय-समय पर उचित सलाह और प्रेरणा देकर मार्ग निर्देशन किया।

प्रो० बालकृष्ण पोखरेल, प्रो० नरेन्द्र चापागाईं (दोनों, व्याख्याता, मोरंग कालेज, विराटनगर, नेपाल) एवं श्री नीरप्रसाद कोइराला का बहुत-बहुत कृतज्ञ हूँ जिन्होंने नेपाली प्रयोग के सिलसिले में अमूल्य सलाह दी।

डॉ० मदन कुमार एवं डॉ० हसन अहमद ने अरबी-फारसी के शब्दों के सिलसिले में जो सहायता की है, उसे प्रस्तुत लेखक भुला नहीं सकता। प्राचार्य डॉ० एम० क्यू० तौहीद, का भी आभारी हूँ जिन्होंने इसे पूरा करने में सहयोग एवं प्रोत्साहन दिया।

मैं पुस्तकालयाध्यक्ष, भागलपुर विश्वविद्यालय पुस्तकालय, स्नातकोत्तर पुस्तकालय, भागलपुर, मारवाड़ी महाविद्यालय पुस्तकालय, भागलपुर, मोरंग कालेज पुस्तकालय, विराटनगर (नेपाल), जन विकास पुस्तकालय, विराटनगर, नेपाल, भगवती उच्च विद्यालय पुस्तकालय, इनरुवा बाजार (नेपाल), नेशनल लाइब्रेरी, कलकत्ता के प्रति भी आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य मानता हूँ जिन्होंने अपने-अपने पुस्तकालय से पुस्तकों के अध्ययन की सुविधा प्रदान की। इसी सिलसिले में, शान्ति निकेतन, पटना, वाराणसी और दिल्ली के उन अधिकारियों और पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने समय-समय पर पुस्तकें प्रदान कर शोध-कार्य को पूरा करने में मदद की।

किताब महल, इलाहाबाद के व्यवस्थापक एवं कर्मचारियों के सहयोग को लेखक भुला नहीं सकता जिनकी तत्परता के कारण यह ग्रन्थ इतना शीघ्र प्रकाशित हो सका।

अन्त में, धर्मपत्नी सुनीता साह के उस सहयोग को भुलाया नहीं जा सकता जो उसने घर के सारे उत्तरदायित्व को सम्भालकर शोध-कार्य के लिए अवसर प्रदान कर किया।

—सुरेन्द्र प्रसाद साह

पुस्तक

संक्षिप्त रूप	
आ० र० छ	आज रमिता छ
उ० हि० डि०	उर्दू-हिन्दी डिक्शनरी
उ० हि० श०	उर्दू-हिन्दी शब्दकोश
उ० हु० अ०	उज्यालो हुनु अघि
ए० चि०	एक चिहान
क० सं०	कथा संग्रह
काव्य०	काव्य मीमांसा
जा० उ० उ०	जामए उल्लगात उर्दू
दु०	दुर्दमनीय
दो० च०	दोषी चश्मा
न० दा०	नरेन्द्रदाइ
न० स० को० गी०	नयाँ सडकको गीत
निरुक्त०	निरुक्त भाषा टीका
ने० श०	नेपाली शब्दकोश
ने० हि० को०	नेपाली हिन्दी कोश
प्र०	प्रतिशोध
फे० क० भे० हो०	फेरि कहिले भेट होला
ब०	बसाईं
महा०	महाभाष्य
मा० घ०	माइतघर
मु० बा०	मुलुक बाहिर
लं० सा०	लंगडाको साथी
लि० स०	[illegible] सर्वे
लो० स०	लोगाल गर्दैछौ
वाक्य०	वाक्यपदीय
श० क०	शब्द कल्पद्रुम
शि० फू०	शिरीषको फूल
सं० को० सु०	संस्कृत कोश सुधा
सु०	सुम्निमा
सो० र ज०	सोधाईं र जबाफ
C. T. C. D.	Chamber's Twentieth Century Dictionary.
D. N. L.	A Comparative and Etymological Dictionary of the Nepali Language.

N. N. E.	Nepali-Nepali English Dictionary.
P. S. E. D.	The Practical Sanskrit English Dictionary.
S. E. D.	A Sanskrit English Dictionary.

लेखक

इ० ब० रा०	इन्द्र बहादुर राई
के० नु० पो०	केकेम नुकच्यो पोखरेल
ग० प्या०	गणेश प्याकुरेल
गो०	गोठाले
टर्नर	राल्फ लिली टर्नर
पा०	पारिजात
बां०	बांगदेल
बी० पी० को०	बी०पी० कोइराला (विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला)
गु० भा०	गुहिर भाषा
र० वि०	रमेश विकल
नी० ब० क्ष०	नील बहादुर क्षत्री
वि० घि०	विनोद घिताल
वि० प्र० को०	विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला
श० को०	शंकर प्रसाद कोइराला
हृ० चं० प्र०	हृदय चन्द्र प्रधान

अन्य

अं०	अंग्रेजी
अ०	अरबी
अनु०	अनुकरणात्मक
आ० भा० आ०	आधुनिक भारतीय आर्यभाषा
का०	काश्मीरी
तत्स०	तत्सम
तद्०	तद्भव
तु०	तुर्की
दे०	देशी
ने०	नेपाली
नेवा०	नेवारी
प्रत्य०	प्रत्यय
प्रा०	प्राकृत
पृ०	पृष्ठ
फा०	फारसी
बहु०	बहुवचन
रोम०	रोमन

वि०	विदेशी
विशे०	विशेषण
वै०	वैदिक
सं०	संस्कृत
हि०	हिन्दी
पी०	पेज

संकेत-चिह्न

˥	साधारण शब्द-चिह्न
˥˥	शिष्ट शब्द-चिह्न
$\angle$	परस्प से पूर्वरूप का परिवर्तन, ग[illegible] चिह्न
$>$	पूर्वरूप से परस्प का परिवर्तन, [illegible] चिह्न
$\sqrt{}$	धातुवाचक चिह्न
" "	उद्धरण-चिह्न
( )	अनुवाद चिह्न, हिन्दी [illegible] चिह्न
–	अर्थ-चिह्न
+	योग-चिह्न
=	तुलनात्मक या तुलनाबोधक चिह्न
' '	विवेच्य शब्द चिह्न, मूलबोधक चिह्न, [illegible] प्रयोग चिह्न
%	प्रतिशत

अनुक्रमणिका

अध्याय एक

भूमिका

अध्याय दो

अध्याय तीन

निष्कर्षात्मक विवेचन

परिशिष्ट

—:o:—

अध्याय 1

भूमिका

क : 1—यह अध्ययन क्यों ?

प्रस्तुत अध्येता यह महसूस करता है कि अब वह समय आ गया है जब हिन्दी के वैशिष्ट्य और उसकी अर्हताओं का परीक्षण अन्य भाषाओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए। जैसे-जैसे हिन्दी राष्ट्रीय परिधि को लाँघकर विश्व की एक प्रमुख भाषा के रूप में उभरती जा रही है, वैसे-वैसे अन्य भाषाओं के साथ इसके सम्बन्धों और साम्य-वैषम्य के परीक्षण की आवश्यकता भी बढ़ती जा रही है।

इतना नहीं तो कम-से-कम एक ही कुल की अन्य पड़ोसी भाषाओं के साथ इसका तुलनात्मक अध्ययन तो अवश्य ही होना चाहिए। जन्म और परिस्थिति की अनुकूलता के कारण इनमें बहुत अधिक समानता और आदान-प्रदान की संभावना रहती है जिससे अध्ययन को बहुत बल मिलता है। साथ ही, समान तरह की भाषाओं के बीच पार्थक्य की खोज करना अपने में एक महत्त्वपूर्ण काम हो जाता है।

नेपाली हिन्दी की एक पड़ोसी भाषा है। हिन्दी यदि भारत की राष्ट्रभाषा है तो नेपाली भी भारत का एक स्वतंत्र पड़ोसी देश नेपाल की राष्ट्रभाषा और जनभाषा है। इतना ही नहीं, नेपाली उन क्षेत्रों की भी भाषा है जो भारत के अभिन्न अंग हैं। एक ही माँ संस्कृत से उत्पन्न ये दोनों भाषायें भगिनी सदृश भी हैं। इस तरह, हिन्दी और नेपाली का न केवल जन्मजात सम्बन्ध है, वरन् सुदीर्घ सांस्कृतिक सम्बन्ध भी है। इन दोनों भाषाओं को भूगोल नहीं बाँटता, राजनीति बाँटती है। अतएव, नैकट्य सम्बन्ध के बावजूद इनका राजनीतिक महत्त्व है। इसलिए दोनों भाषाओं के आपसी साम्य-वैषम्य और निजी विशिष्टता का परीक्षण किया जाना चाहिए—यह बार-बार महसूस किया गया है।

प्रस्तुत अध्येता का नेपाल से गहरा सम्बन्ध रहा है। तराईवासी होने के कारण नेपाल के बुद्धिजीवियों, [illegible] व्यापारियों से सदा सम्पर्क रहा है। फलस्वरूप, नेपाली भाषा के बोलने-पढ़ने का ज्ञान उसी प्रकार हो गया जिस तरह किसी मातृभाषा का होता है। इसी नये ज्ञान ने हिन्दी के साथ इसके तुलनात्मक विवेचन के लिए भी प्रोत्साहित किया, क्योंकि कई माने में यह समान होकर भी हिन्दी से भिन्न लगी।

इनके आपसी सम्बन्धों का परीक्षण और विश्लेषित करने की प्रेरणा उस विवाद से भी मिली जिसमें कुछ ने नेपाली को हिन्दी की ही एक बोली या उपभाषा कहा तो कुछ ने इसे हिन्दी से एकदम भिन्न भाषा। अपने कथन के समर्थन में यहाँ दो-तीन मत देना अनावश्यक नहीं होगा—

(क) फोर्ट विलियम कालेज के लेफ्टि० जे० ए० ऐटन ने सर्वप्रथम 1820 ई० में अपनी पुस्तक 'ए ग्रामर ऑफ द नेपाली लैंग्वेज' में कहा है, "भाषा-तत्व की दृष्टि से नेपाली भाषा का व्याकरण हिन्दी भाषा से मिलता-जुलता है।"[1]

(ख) जिस खस अपभ्रंश से नेपाली भाषा को विकसित माना जाता है, उसी खस भाषा पर बंगाल एशियाटिक सोसायटी की एक सभा में 9 जनवरी, 1833 ई० को भाषण देते हुए प्रसिद्ध विद्वान् ब्रायन हाजसन ने कहा, "खस भाषा हिन्दी की ही एक अपभ्रष्ट बोली बन गई है।"[2]

(ग) नेपाली भाषा के शिक्षक और 'नेपाली ग्रामर' के लेखक पादरी ए० टर्नबुल ने सन् 1887 ई० में अपनी उक्त पुस्तक में लिखा है, "नेपाली वस्तुतः हिन्दी की एक बोली है, राजपूताना, कुमायूँनी, गढ़वाली की तरह जो गागरी से सुनकोशी नदियों तक बोली जाती है।"[3]

जहाँ इस तरह के मतों ने नेपाली को हिन्दी की ही एक उपभाषा या बोली समझे जाने का भ्रम पैदा किया, वहाँ दूसरी ओर ऐसे भी भाषाशास्त्री हुए जिन्होंने नेपाली को हिन्दी से एकदम भिन्न भाषा बताया—

(1) टर्नबुल के कथन के लगभग 68 वर्ष बाद लंदन विश्वविद्यालय के संस्कृत और नेपाली के प्राध्यापक प्रसिद्ध भाषाशास्त्री सर राल्फ लिले टर्नर ने श्री 5 महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रम शाहदेव के राज्याभिषेक के अवसर पर काठमाडू में वक्तव्य दिया था, "हिन्दी एक भाषा है और नेपाली दूसरी। आप अपनी सुन्दर भाषा को संस्कृतनिष्ठ हिन्दी की धूमिल छाया न बनने दें।"[4]

(2) त्रिभुवन और मदन पुरस्कार-विजेता प्रख्यात नेपाली साहित्यकार श्री पारसमणि प्रधान ने 'हिन्दी बनाम नेपाली' निबन्ध में सन् 1971 ई० में लिखा था, "नेपाली भाषा को हिन्दी के समान कहना ठीक नहीं है। जैसे हिन्दी भाषा उर्दू के समान है, कहना अनुचित है; असमिया भाषा बँगला के समान है, कहना असंगत है, वैसे ही

---

1. "The Nepalese is not very difficult of attainment, as with the exception of a few peculiarities in inflexion and conjugation its general principles of construction bear affinity to all its kindred Hindi dialects both in philological structure and signification of radical words."

2. "The Khas language became a corrupt dialect of Hindi retaining not many palpable traces (except to curious eyes) of primitive barbarism."

3. "Nepali is really a dialect like Kumaoni and Garhwali, and spoken from the Gagari to the Sankhassi river."

4. "Hindi is one language, Nepali is another. Do not let your lovely language become the pale reflection of a Sanskritised Hindi."
–The roots of Nepali—Address delivered at Kathmandu on 14-3 '55.

नेपाली भाषा हिन्दी भाषा के समान है, कहना अपनी अज्ञानता का परिचय देने के समान है।"[1] उन्होंने कुछ उदाहरण देकर बताया कि जिन शब्दों का प्रयोग हिन्दी बड़ी सहजता के साथ करती है, उन्हीं को नेपालीभाषियों के बीच बोले जाने पर अपमानित होने का खतरा भी हो सकता है। फिर, कैसे हिन्दी और नेपाली एक ही भाषा कही जा सकती हैं।

ऐसी स्थिति में यह आवश्यक दीखता है कि दोनों भाषाओं का भाषावैज्ञानिक अध्ययन कर इस तथ्य का पता लगाया जाय कि आखिर वस्तुस्थिति क्या है। केवल ऊपरी ढाँचे को देखकर कोई निष्कर्ष निकालना उचित नहीं दीखता। अतएव, दोनों भाषाओं की गहराई में जाकर इनके शब्द, अर्थ, ध्वनि, पद, वाक्य आदि सभी अंगों का वैज्ञानिक परीक्षण होना चाहिए जिससे एक तथ्यपूर्ण निष्कर्ष निकाला जा सके।

चूँकि इनके सभी अंगों का तुलनात्मक अध्ययन एक ही स्थल पर किया जाना बड़ा ही दुरूह और विशालकाय कार्य है, अतएव प्रस्तुत शोध में मात्र उसके अर्थ पक्ष को ग्रहण किया गया है।

भाषा का मूल उद्देश्य अर्थ-प्रेषण होता है। अतएव, अन्य सभी पक्षों की तुलना में अर्थ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ठहरता है। इसीलिए, प्रस्तुत शोध में अर्थविज्ञान की दृष्टि से ही दोनों भाषाओं के शब्दों को जाँचा परखा गया है।

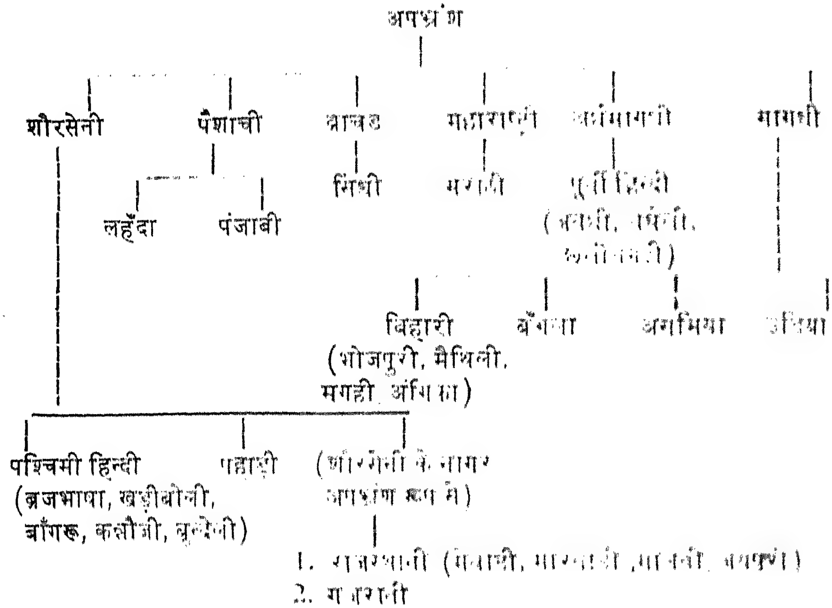
अब तक हिन्दी और नेपाली भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किसी भी पक्ष को लेकर नहीं किया गया है। फलस्वरूप, यह क्षेत्र अब तक एकदम अछूता रह गया है। शोध-विषय के रूप में इस विषय का चयन करने में यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण रहा है।

क : 2—हिन्दी-नेपाली भाषायें

आर्य यूरोपीय की सतम शाखा से आर्यभाषाओं का सम्बन्ध है, इसे प्रायः सभी भाषावैज्ञानिक मानते हैं। सर्वप्रथम जार्ज ग्रियर्सन ने अपनी पुस्तक 'लिंग्विस्टिक सर्वे' के प्रस्तावना खण्ड में यह बताया कि आ० भा० आ० भा० अपभ्रंश से निकली हैं। उनकी इस खोज को व्यापक स्वीकृति मिली और माना गया कि यही अपभ्रंश अनेक रूपों में बँटकर अलहदा होकर आ० भा० आ० भा० का जनक बना। प्रा० भा० आ० भा० संस्कृत क्रमशः प्राकृत, अपभ्रंश होती हुई आ० भा० आ० भा० का स्वरूप ले सकी, यह अब निर्विवाद रूप से माना जाता है।

अपभ्रंश अनेक शृंखलाओं और रूपों में विभक्त होकर विभिन्न तरह की आर्य-भाषाओं को जन्म दे सका। किस आ० भा० आ० भा० का जन्म अपभ्रंश के किस रूप से विकसित हुआ, यह आगे दी गई तालिका से स्पष्ट होगा—

1. किंजल्क, पृ० 55।



उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी एवं पहाड़ी (नेपाली) दोनों का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है। प्रो० बालकृष्ण पोखरेल ने नेपाली भाषा का सम्बन्ध शौरसेनी से जोड़ते हुए लिखा है, "नेपाली शौरसेनी प्राकृत भाषा से उत्पन्न भाषा है।"[1] पर, बाद में वे अपने ही मत को काटते हुए लिखते हैं—"नेपाली किस प्राकृत से उत्पन्न हुई, इसका अभी सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिला है।"[2] इसलिए 'शौरसेनी' से उत्पन्न होने की बात विचाराधीन माननी चाहिए। नेपाली के एक अन्य विद्वान श्री [illegible] रेग्मी ने यह माना है कि कुछ नेपाली और विदेशी विद्वानों ने नेपाली भाषा का सम्बन्ध शौरसेनी के साथ दिखाया है, फिर भी वे उनसे सहमत नहीं हैं।[3] वे नेपाली भाषा को खस अपभ्रंश से जोड़ते हैं और निम्नांकित तालिका प्रस्तुत करते हैं

प्राकृत भाषाएँ	अपभ्रंश भाषाएँ	आ० भा० आ० भाषाएँ
1. मागधी	1— प्राच्य	1—बँगला
		2—उड़िया
	2— मागध	1—असमी
		2—मैथिली
		3—मगही
		4—भोजपुरी

---

1. "नेपाली शौरसेनी प्राकृत भाषाबाट अभिव्यक्त भाषा हो।" नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 11।

2. नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 11।

3. नेपाली भाषा को उत्पत्ति, पृ० 43।

2. अर्धमागधी	मागध	1—अवधी 2—बघेली 3—छत्तीसगढ़ी
3. महाराष्ट्री	महाराष्ट्र	1—मराठी 2—कोंकणी
4. शौरसेनी	1—शौरसेनी	1—राजस्थानी भाषायें
	2—नागर	1—ब्रज 2—बुन्देली 3—कन्नौजी 4—हिन्दुस्तानी
5. पैशाची	1—ब्राचड	1—गुजराती
	2—कैकय	1—लहँदा
	3—टक्क	1—पंजाबी
6. खस	खस	1—पश्चिमी पहाड़ी भाषायें 2—गढ़वाली 3—कुमाऊँनी 4—नेपाली

प्रस्तुत तालिका में 'हिन्दी' को 'हिन्दुस्तानी' कहा गया है और इसका सम्बन्ध नागर अपभ्रंश से जोड़ा गया है, जबकि प्रथम तालिका में पश्चिमी हिन्दी (खड़ीबोली सहित) का सम्बन्ध सीधे शौरसेनी अपभ्रंश से है। विपरीत, राजस्थानी भाषाओं को जहाँ प्रथम तालिका में शौरसेनी के नागर रूप से जोड़ा गया है, वहाँ दूसरी तालिका में सीधे शौरसेनी से। साथ ही, प्रस्तुत तालिका में खस प्राकृत और खस अपभ्रंश कहकर एक नये वर्ग का सृजन किया गया है जिसके अन्तर्गत पहाड़ी भाषाओं और नेपाली आदि को समाविष्ट किया गया है। प्रथम तालिका में सभी पहाड़ी भाषायें शौरसेनी अपभ्रंश से ही विकसित दिखाई गई हैं।

दोनों की तुलनात्मक समीक्षा के बाद दो बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम तो यह कि हिन्दी और नेपाली एक ही माँ संस्कृत की सन्तान हैं, भले ही आगे चलकर एक शौरसेनी अपभ्रंश से और दूसरी खस अपभ्रंश से विकसित हुई हो। दूसरी यह कि संभवतः नेपाली को हिन्दी से एकदम भिन्न भाषा सिद्ध करने के लिए खस अपभ्रंश-जैसे एक नये अपभ्रंश की खोज की गई है और नेपाली को इसी से विकसित माना जाने लगा है। सम्भवतः इस तरह के मत का आधार चटर्जी महोदय का वह कथन है जहाँ उन्होंने पहाड़ी भाषाओं का मूलाधार पैशाची, दरद या खस को माना है। लेकिन, इस बात को चटर्जी महोदय भी स्वीकार करते हैं कि बाद को मध्यकाल में ये राजस्थान की प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओं से बहुत अधिक प्रभावित हो गई थीं।[1]

1. हिन्दी भाषा का इतिहास—डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 53।

प्रसिद्ध नेपाली साहित्यकार पारसमणि प्रधान ने नेपाली का सम्बन्ध खस अपभ्रंश से जोड़ते हुए कहा है—जिस तरह आर्यभाषा से संस्कृत, पालि, शौरसेनी प्राकृत, अपभ्रंश इत्यादि रूप बदलते-बदलते आखिर हिन्दी का रूप ग्रहण किया, उसी तरह नेपाली भाषा की उत्पत्ति का अध्ययन करने से यह मालूम होगा कि खस प्राकृत से बदलते-बदलते खस बोली ने आखिर आधुनिक नेपाली का रूप ग्रहण किया है। खस भाषा राजा पुण्यमल के समय में सन् 1337 ईस्वी के लगभग पश्चिम नेपाल के कर्णाली अंचल में बोली और लिखी जाती थी।[1] हार्नले, ग्रियर्सन, चटर्जी आदि विद्वानों ने अपने-अपने वर्गीकरण में हिन्दी और नेपाली को बहुत ही समीपस्थ भाषा बताया है। हार्नले के अनुसार, पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी क्रमशः पूर्वी गौड़ी और पश्चिमी गौड़ी से सम्बद्ध हैं और नेपाली उत्तरी गौड़ी से। ग्रियर्सन के पहले वर्गीकरण (लि० स० ऑफ इण्डिया में) के अनुसार, पूर्वी हिन्दी मध्य शाखा से और पश्चिमी हिन्दी एवं पहाड़ी समुदाय (नेपाली सहित) आभ्यन्तर शाखा से सम्बद्ध हैं जो द्वितीय वर्गीकरण (इण्डियन एन्टीक्वेरी के अनुसार) में भी लगभग यही रहते हैं। डॉ० चटर्जी ने ('बँगला भाषा की उत्पत्ति और विकास' पुस्तक में) मध्यदेशीय के अन्तर्गत हिन्दी और नेपाली दोनों को समाविष्ट किया है। इस तरह स्थान और उत्पत्ति, दोनों दृष्टि से हिन्दी और नेपाली अत्यन्त ही समीपस्थ भाषायें हैं। बाद में अलग-अलग परिस्थिति, सभ्यता, संस्कृति, भौगोलिक स्थिति एवं संसर्ग के कारण परिवर्तन के अनेक दौर से दोनों को गुजरना पड़ा है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दी और नेपाली का उद्गम एक ही है। इस कारण दोनों के अन्तर्गत साम्य की बहुत अधिक सम्भावना है, फिर भी देश, काल और परिस्थिति के साथ-साथ प्रयोग करने वालों की भिन्न मनःस्थिति के कारण वैषम्य का आ जाना स्वाभाविक है। हर भाषा का अपना एक अलग स्वभाव होता है जिससे प्रभावित होकर उसके अन्दर परिवर्तन की घटनाएँ घटित होती रहती हैं। इसलिए समान लिपि देवनागरी के रहते हुए भी हिन्दी और नेपाली अर्थ, ध्वनि, रूप, पद आदि की दृष्टि कुछ-न-कुछ भिन्न हो गई हैं। दोनों भाषाओं को अपने अलग सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और वैचारिक दौरों से गुजरना पड़ा है जिसमें उनके विकास का मार्ग कहीं प्रशस्त और कहीं संकीर्ण हुआ है।

क : 3—हिन्दी तथा नेपाली भाषाओं की सांस्कृतिक विशेषताएँ और उनका पारस्परिक सम्बन्ध

राजनैतिक दृष्टि से भले ही भारत एवं नेपाल दो अलग-अलग देश रहे हैं, पर भौगोलिक दृष्टि से कोई ऐसा प्राकृतिक व्यवधान नहीं रहा है जिसने दोनों देशों के सांस्कृतिक सूत्र के जुड़ने में बाधा उपस्थित की हो। हिन्दी एवं नेपाली भाषी क्षेत्र एक-दूसरे से सटे हुए ही नहीं, वरन् एक-दूसरे से गुँथे हुए हैं। दोनों देशों के बीच न तो कोई दुर्लभ पर्वत है और न कोई ऐसी विशाल नदी जिससे दोनों क्षेत्र एक-दूसरे से कट जायें। इसके विपरीत नेपाल की उत्तरी सीमा में स्थित हिमाच्छादित धवल हिमालय भारत माता का ज्योतिर्मय किरीट है और उससे निःसृत गंगा, यमुना, ब्रह्मपुत्र आदि नदियाँ भारत माता का कंठहार। सच माने में, दोनों देशों की भौगोलिक सीमा इस तरह क्षीणकाय रही है कि विद्वानों ने नेपाल की प्राकृतिक सुषमा को भारत की अमूल्य निधि के रूप में चित्रित किया है। चाहे प्रभात की स्वर्णिम किरण के स्पर्श से चाँदी मुस्कान वाली हिमालय-

1. किंजल्क, पृ० 55।

चोटी हो अथवा दुग्धसलिला नदियों में फेनाकार उठने वाले मोतियों के हार; चाहे इन्द्रधनुषी पंखों वाली चिड़ियों का कलरव गान हो अथवा पुष्पों और हरीतिमा से भरे विशाल वनों का मूक संगीत—सब दोनों देशों की गौरव-गरिमा का विषय रहा है। डॉ० रामसुभग सिंह ने ठीक ही कहा है, "भारत-नेपाल अनादि काल से ही भूगोल और एक ही सांस्कृतिक धारा के अटूट साझीदार रहे हैं। हिमालय हम दोनों के लिये ही आत्म-साधना का स्थान रहा है। अनन्तकाल से हिमालय की महान् चोटियों ने हम दोनों को आध्यात्मिक शक्ति दी है। इसी हिमालय से वे नदियाँ निकलती हैं जिनसे दोनों देशों की भूमि सस्य-श्यामला बनती है।"[1] यही कारण है कि नेपाल का भारत के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, उतना अन्य किसी देश के साथ नहीं है।[2]

"भौगोलिक दृष्टि से नेपाल से भारत आना-जाना जितना सरल है, उतना तिब्बत या चीन से नहीं। प्रतिवर्ष हजारों भारतीय पशुपतिनाथ के दर्शन करने काठमांडू जाते हैं और हजारों नेपाली काशी, प्रयाग और हरिद्वार की तीर्थयात्रा करने आते हैं। ऐसी दशा में नेपाल का भारत के साथ अन्य देशों की अपेक्षा अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।"[3] भौगोलिक स्थिति की अभिन्नता ने दोनों देशों को इस प्रकार जोड़ दिया है कि "राजनीतिक दृष्टि से नेपाल की सार्वभौम सत्ता सर्वथा पृथक् होने पर भी सांस्कृतिक दृष्टि से वह भरतखण्ड ही कहा जाता है। पूजा-पाठादि कृत्यों के समय नेपाली पुरोहित के मुँह से आज भी नेपाल के लिये 'भरतखण्डे' व्यवहृत होता है।"[4]

भौगोलिक स्थिति की अनुकूलता के बावजूद नेपाली-भाषी क्षेत्र की अपेक्षा हिन्दी-भाषी क्षेत्र बहुत ज्यादा विशाल और व्यापक है। जहाँ नेपाली भाषी क्षेत्रों में पहाड़ों, नदियों, झीलों और घाटियों की अधिकता है और परिणामतः आवागमन के साधनों का अभाव, वहाँ हिन्दी-भाषी क्षेत्र को छिटफुट पहाड़ों एवं एक-दो नदियों को छोड़कर विशाल मैदानी भाग मिला है और आवागमन के साधन अपेक्षया बहुत ही समृद्ध। नेपाली-भाषी क्षेत्र के इस प्राकृतिक व्यवधान ने जहाँ एक ओर भाषा के प्रचार-प्रसार के मार्ग को अवरुद्ध किया, वहाँ दूसरी ओर भाषायी अन्तर्भिन्नता को भी जन्म दिया। हिन्दी भाषा को अनुकूल भौगोलिक परिस्थिति मिलने के कारण फैलने एवं समृद्ध होने में काफी मदद मिली एवं अन्तर्भिन्नता भी कम पैदा हुई। फिर समय-समय पर ऐतिहासिक परिस्थिति एवं राजनीतिक केन्द्र के परिवर्तन के साथ-साथ नेपाल की सीमा भी घटती-बढ़ती रही है।[5] इसकी वजह से कभी तो भारत का भूभाग नेपाल की सीमा के अन्दर समाहित होता रहा है और कभी नेपाल का भूभाग भारत की सीमा के अन्दर। परिणामतः एक-

1. नेपाल-संदेश—1 जनवरी, 1964, पृ० 5।

2. नेपाल—विराज, पृ० 102।

3. नेपाल—विराज, पृ० 102।

4. नेपाली और हिन्दी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय, पृ० 18।

5. "Nepal's geographical frontiers also have changed from time to time with the circumstances of her history and shifts in the centre of political gravity."

—Heroes And Builders of Nepal—Rishikesh Saha, p. 1.

दूसरे प्रदेश की भाषायें अपनी भिन्नता के बावजूद एक-दूसरे पर अमिट छाप छोड़ती रही हैं।

वर्तमान नेपाल उत्तर प्रदेश और बिहार के उत्तर, काली नदी से पूर्व और मेची से पश्चिम में बसा एक रमणीक भूखण्ड है। इसका क्षेत्रफल 54,362 वर्गमील है तथा 1974 ई० की जनगणना के अनुसार 1 करोड़ जनसंख्या है। इसके चारों ओर केवल भूमि है तथा इसके किसी भी भाग से कोई भी बन्दरगाह कम से कम तीन सौ मील दूर है।[1] सामुद्रिक रास्ते के लिये इसे हर हालत में भारत का आश्रित रहना पड़ता है।

धर्म, दर्शन, संस्कृति और भूगोल आदि ने वस्तुतः भारत और नेपाल दो देशों को इस तरह और इतने करीब ला रखा है कि दोनों में भिन्नता प्रतीत नहीं होती।[2] प्रकृति ने ही दोनों को एक-दूसरे से बाँध दिया है। एक की भाषा, संस्कृति एवं सभ्यता का अनिवार्य प्रभाव दूसरे पर पड़ता रहा है। इसलिए नेपाल के महाराजाधिराज महेन्द्र वीर विक्रमशाह देव ने कहा था, "भारत और नेपाल के सम्बन्ध का एकमात्र स्थायी कारण है भौगोलिक समरूपता एवं सांस्कृतिक एकता। भारत और नेपाल की भौगोलिक-सांस्कृतिक एकता ने दोनों देशों के निकट सामाजिक आर्थिक सम्बन्ध में अपना ठोस रूप पा लिया है। यही अकेले दोनों देशों के लम्बे और लगातार मैत्री सम्बन्ध की, जो सीता और बुद्ध-जैसे प्राचीन काल से चला आता है, व्याख्या करता है।"[3]

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भारत और नेपाल, दोनों ने अपने अतीत में अनेक झंझावात झेले हैं, अनेक राजनीतिक उथल पुथल का सामना किया है। कभी देशी राजाओं का राज्य रहा तो कभी विदेशी आक्रमणकारियों का जिसने देश को आक्रान्त ही नहीं किया, वरन् अपना साम्राज्य भी स्थापित किया।

भारत का इतिहास आर्यों के भारत आगमन के बाद का इतिहास है। यह बात अब तक निर्णीत हो चुकी है कि आर्य भारत में पश्चिम से पूरब की ओर बढ़े और आज का हिन्दी-प्रदेश, जिसे मध्यदेश कहा जाता है, आर्यों का मुख्य निवास स्थान बना। मनुस्मृति (2/21), ऐतरेय ब्राह्मण (38/3), वराहमिहिर की बृहत् संहिता (सं० 644) फाहियान (संवत् 457), अलबेरूनी (सं० 1087) आदि के निर्देश से यह माना जाता है कि आधुनिक काल का हिन्दी-प्रदेश आर्यजनों का मध्यदेश कहा गया है।[4] डॉ० धीरेन्द्र वर्मा अपनी पुस्तक ('मध्यदेश', पृ० 10) में हिन्दी-प्रदेश का निर्देश करते हुए कहते हैं कि "आधुनिक काल में मध्यदेश के स्थान पर कोई नवीन नाम प्रचलित नहीं हो सका। आजकल इसे हम साधारणतया 'हिन्दी-प्रदेश' कह सकते हैं। अंग्रेज शासकों ने मध्यदेश अथवा हिन्दी-प्रदेश को धीरे-धीरे जीता था और इसी क्रम से वे इसके अनेक छोटे-बड़े प्रान्त बनाते गये थे जिनके पीछे कोई सांस्कृतिक परंपरा अथवा तर्क नहीं था। ये शासन-

---

1. "Nepal is completely landlocked; the nearest seaport to any where in Nepal is more than three hundred miles away."

2. नेपाली साहित्य का इतिहास—डॉ० दीनानाथ शरण, पृ० 8।

3. Statement of Principles, p. 23.

4. अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० राधाकृष्ण सहाय, पृ० 4।

सम्बन्धी विभाग अभी भी लगभग इसी रूप में चल रहे हैं और निम्नलिखित हैं—बिहार, उत्तरप्रदेश, विन्ध्यप्रदेश, मध्यप्रदेश, मध्यभारत, भूपाल, राजस्थान, अजमेर, दिल्ली, पूर्वी पंजाब और हिमाचल प्रदेश।" डॉ० वर्मा ने ऋग्वेद के 1000 सूक्तों के आधार पर आर्यों के मूल निवास-स्थान को मध्यदेश ठहराया है।

आर्यों के भीतर जीवन के प्रति एक रुझान थी, फिर भी धर्म और दर्शन में उनकी गहरी आस्था थी। उनके लिए पृथ्वी ही स्वर्ग थी, पर जीवन को अधिक सुखी एवं आत्मा को क्लेशरहित रखने के लिये 'यज्ञ' का विधान किया जाता था। साहित्य-अध्ययन के लिये शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष, इन छः वेदांगों की सृष्टि हुई थी। राजवंशों के इतिहास के रूप में महाभारत और आदिकाव्य रामायण इस काल की अन्तिम रचनाएँ थीं।

आर्यों का सामाजिक जीवन अत्यन्त सुखी और सुन्दर था। राजसत्ता स्वयं उन्हीं के हाथों में थी। आर्य 'जन' में संगठित थे और 'जन' की राष्ट्रीय भूमि 'जनपद' कहलाती थी। आर्यों की वह भूमि जहाँ वे मुख्यतया निवास करने लगे थे, वर्तमान हिन्दी-प्रदेश है, जो आर्य-संस्कृति के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

इसके विपरीत, नेपाल का इतिहास लगभग दो हजार वर्ष से कुछ ज्यादा पुराना है।[1] इस बीच अनेक जातियों के अनेक राजाओं ने राज्य किया और उनका विध्वंस हुआ। फिर भी, इतिहास के अनुसार, यहाँ के आदिवासी किरात माने जाते हैं। उनका विस्तृत राज्य था। उन्हें 'महाभारत' में क्षत्रिय माना गया है।[2] यहाँ तक कि रणबहादुर शाह के मंत्री भोटकर्णसिंह को भी किरात देश जीतने की बात वाणीविलास-रचित संस्कृत श्लोक से स्पष्ट होती है। कुछ विद्वान् यह भी मानते हैं कि "नेपाल के आदि निवासी वैदिक आर्यों की सन्तान थे।"[3] श्री बालकृष्ण पोखरेल के अनुसार, "धर्म, संस्कृति, कला और चिन्तन में जब नेपाल को भारत का मुखापेक्षी होकर दक्षिण तरफ मात्र एकटक देखने का रोग लग गया था, उसी समय कर्णाली प्रदेश के खस लोग अपनी आर्यभाषा लेकर पूरब की ओर बढ़ने लगे।"[4]

ऐसा लगता है कि आर्य लोग पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ने के क्रम में हिन्दी-प्रदेश पार करते हुए नेपाल भी गये। "विश्वास किया जाता है कि अजातशत्रु से पराजित होकर लिच्छवि नेपाल की ओर बढ़े। सूर्यवंश भी, जो खसों की एक शाखा है, हिन्दी-प्रदेश पारकर पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ा। खस वंश आर्यों की ही एक शाखा है।"[5] तात्पर्य यह कि नेपाल में आर्यों का आगमन भारत के बाद हुआ और वे भारत के हिन्दी-

1. "Nepal has a history extending over a period of more than two thousand years"—Heroes and Builders of Nepal—Rishikesh Saha, p. 1.

2. [illegible]।

[illegible]।

—सभापर्व अ० 52, श्लोक 13 से 17।

3. नेपाली साहित्यको भूमिका—[illegible], पृ० 2।

4. नेपाली भाषा र साहित्य—बालकृष्ण पोखरेल, पृ० 7।

5. Khas Family Law—Dr. L. D. Joshi, p. 26-27.

प्रदेश होकर नेपाल गये। साथ ही, वे अपनी आर्यभाषा भी साथ लेते गये। श्री काशी प्रसाद श्रीवास्तव नेपाल की अत्यन्त प्राचीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं, "नेपाल वंशावली में सतयुग के उस प्राचीन काल का इतिहास मिलता है, जबकि नेपाल की घाटी का जन्म तक नहीं हुआ था और वह एक बड़ी झील थी। इस वंशावली के प्रारंभ में सतयुग तथा त्रेतायुग का वर्णन है और अनेक आख्यायिकाएँ दी गई हैं जिनमें बहुत-से तीर्थस्थानों आदि के गुण गाये गये हैं। इस बृहत् ग्रन्थ में सत-युग, त्रेता तथा द्वापर युग के नरेशों आदि का वर्णन सहस्रों वर्षों तक बतलाया गया है।"[1]

किन्तु सच पूछा जाय तो नेपाल का प्रामाणिक इतिहास ईसा के लगभग ढाई सौ साल पहले से शुरू होता है जब सम्राट अशोक नेपाल गये थे।[2] इसके प्रमाण में लुम्बिनी के २५० ई० पू० का अशोक-स्तम्भ प्रस्तुत किया जाता है। अशोक के बाद, लगभग सवा पाँच सौ वर्षों तक किरातों के द्वारा शासन किये जाने के बाद सोमवंशीय राजाओं ने राज्यभार सँभाला। पर, इस वंश के अन्तिम राजा भास्कर वर्मा निःसन्तान रहे, अतएव राज्याधिकार लिच्छविवंश के क्षत्रिय भूमिवर्मा के हाथ में चला गया। लिच्छविवंश के इस शासन का प्रारंभ ईसा की पहली शताब्दी में हुआ और लगभग आठ सौ वर्षों तक चलता रहा। गणतंत्रीय प्रणाली का अन्त कर जिस राजतंत्र की नींव लिच्छवियों ने डाली थी, वह थोड़े-बहुत व्यवधान के बावजूद नौवीं शताब्दी के मध्य तक विद्यमान रही। अंशुवर्मन के बाद लगभग पच्चीस वर्षों तक नेपाल तिब्बत और चीन के प्रभाव में रहा।

राजा वृषदेव के समय लिच्छवियों का पराक्रम बहुत बढ़ा हुआ था और इस राजा ने अपनी कन्या कुमारदेवी का विवाह चन्द्रगुप्त से किया था। इसी कुमारदेवी के गर्भ से शक-विजेता महापराक्रमी समुद्रगुप्त का जन्म हुआ था। इसी काल में नेपाल में धर्म, कला एवं संस्कृति का नवीन अभ्युदय हुआ।[3] लिच्छवि राजा शिवदेव के समय में कान्यकुब्ज (भारत) के राजा हर्षवर्द्धन ने नेपाल को अपने राज्य में मिला लेना चाहा, पर उसे सफलता नहीं मिली। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार, उस समय नेपाल में अंशुवर्मन सिंहासनारूढ़ था।[4]

तत्पश्चात्, राजपुत्र वामदेव ने पाटन और कांतिपुर के सरदारों की सहायता से नेपाल को अपने अधिकार में कर लिया और सूर्यवंश की नींव डाली। सूर्यवंश के राजाओं ने कई पीढ़ी तक शासन किया। इसके बाद, कर्णाट देश के पराक्रमी राजा नान्यदेव ने नेपाल को अपने अधिकार में कर लिया और भक्तपुर को अपना राजनगर बनाया। कर्णाटवंश के राजाओं में नान्यदेव के बाद क्रमशः गंगदेव, नरसिंहदेव, शक्तिदेव, रामदेव और हरिदेव हुए। मगर जाति के एक विद्रोही नेता के सहयोग से पाल्पा के राजा मुकुन्द-सेन ने सन् 1098 में हरिदेव को पराजित किया, पर अचानक महामारी में उसकी सेना

1. नेपाल की कहानी—काशी प्रसाद श्रीवास्तव, पृ० 8।
2. History of Nepal—Daniel Wright, p. 111.
3. नेपाली साहित्यको भूमिका—यज्ञराज सत्याल, पृ० 1।
4. नेपाल : अतीत और वर्तमान—शंकर सहाय सक्सेना, पृ० 14।

का विनाश हो गया और बाद में वे भी मर गये। बाद में ठकुरीवंश के राजाओं ने नेपाल पर अधिकार कर लिया और लगभग सवा दो सौ वर्षों तक राज्य करते रहे। मुहम्मद तुगलक के आक्रमण से घबराकर सन् 1334 में अयोध्या के सूर्यवंशी राजा हरिसिंहदेव नेपाल की ओर भागे और वहाँ वैश्य ठकुरीवंश के लड़खड़ाते शासन को देखकर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। बाद में मल्लवंश का शासन फिर शुरू हुआ जो सन् 1768 तक चलता रहा। मल्लवंशीय राजा यक्षमल्ल एक महाप्रतापी राजा हुए। इतिहासकारों का मत है कि इनके समय में नेपाल की सीमा बोधगया तक फैल गई थी।[1] उत्तर में तिब्बत तक इसके राज्य का विस्तार था। कुछ विद्वान् मानते हैं कि यक्षमल्ल के बाद नेपाल तीन भागों में विभक्त हो गया और तीनों पर उनके तीन पुत्रों का अलग-अलग स्वतंत्र शासन चलता रहा।[2]

यह ध्यान देने की बात है कि अब तक नेपाली भाषा की न तो कहीं स्पष्ट चर्चा थी और न इसे राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्वीकार ही किया गया था। आधुनिक काल में आकर नेपाली भाषा की चर्चा संभवतः कसियानो बेलिगत्ती के 'अल्फाबेतम् ब्राह्मानिकम् सेव युनिवर्सिटाटिस्' काशी (रोम, 1771) में पहली बार हुई। इस पुस्तक की भूमिका में जोन्स क्रिस्टोफोरस अमादुत्तियस द्वारा भारत के विभिन्न क्षेत्रों की भाषा और लिपि के नाम लेने के क्रम में नेपाली (नेपालिनसिग्) भी आई है।[3]

सेनवंशीय राजा महादत्त सेन के रणबहादुर शाह द्वारा बंदी बनाये जाने के बाद मुकुन्दसेन के वंशजों का राज्य चला। दिग्विजय सेन के समय में इन्हीं की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। इन्हीं की पुत्री के गर्भ से नरभूपाल शाह का जन्म हुआ जो आगे चल कर 'गोरखा राजा' के नाम से प्रसिद्ध हुए।[5] ये नेपाल-विजय का अधूरा स्वप्न लेकर चल बसे जिसे उनके पुत्र पृथ्वीनारायण शाह ने पूरा किया। श्री टेकबहादुर खत्री का कहना है, "नेपाल ने सन 1769 ई० में आधुनिक युग में प्रवेश किया जब पृथ्वी-नारायण शाह के द्वारा प्रारंभ किया गया राजनीतिक एकीकरण काठमांडू घाटी की विजय के बाद चरम सीमा पर पहुँच गया।" ये एक कुशल योद्धा और राजनीतिज्ञ ही नहीं, वरन् एक सफल कवि भी थे। इन्होंने अंग्रेजों को नेपाल से दूर ही रखा और ईसाई धर्म-प्रचारकों को भी नेपाल से बाहर निकाल दिया।[4] इन्होंने नेपाली भाषा की उन्नति एवं प्रचार में सहयोग दिया। इन्हीं के समय में भानुभक्त जैसा मेधावी कवि पैदा हुआ। इनके काल में नेपाली भाषा का स्वरूप पहली बार निखरता नजर आया। इनके निधन के बाद इनके पुत्र प्रतापशाह सिंहासनारूढ़ हुए। ये भी अपने पिता की तरह ही योग्य थे। इनके बाद रणबहादुर शाह राजा हुए जिन्होंने पिता की दिग्विजय-विजय की अधूरी इच्छा को पूरा किया। इनके काल में तिब्बत और चीन से नेपाल को लड़ना पड़ा जिसमें अन्त में सन्धि हो गई। पृथ्वीनारायण शाह के बाद का काल राजनीतिक दृष्टि से जितनी उथल-पुथल का काल है, भाषा की दृष्टि से उतना ही भव्य है। अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में जिस नेपाली भाषा का स्वर्णिम विहान हुआ था, उसकी कोमल किरणों में क्रमशः प्रखरता और तेज भी दिखाई पड़ने लगा।

1. नेपाल : अतीत और वर्तमान—शंकर सहाय सक्सेना, पृ० 19।
2. Mediaeval Nepal—Dr. R. Regmi, p. 452.
3. नेपाली भाषाको उत्पत्ति—चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी, पृ० 221।
4. नेपाली साहित्य का इतिहास—डॉ० दीनानाथ शरण, पृ० 80।
5. नेपाल : अतीत और वर्तमान—शंकर सहाय सक्सेना, पृ० 41।

इस समय तक अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड कार्नवालिस नेपाल को भी धीरे-धीरे अपने चंगुल में फँसा लेना चाहता था, पर इसमें सफलता नहीं मिल रही थी। आगे चल कर, नेपाल को अंग्रेजों से युद्ध भी करना पड़ा जिसका परिणाम बहुत घातक हुआ। राजाओं एवं मंत्रियों के बीच सत्ता हथियाने के लिये राजनीतिक कुचक्र चलने लगा। रणबहादुर शाह की मृत्यु के बाद मंत्रियों की चलती हो गई और तत्कालीन मंत्री भीमसेन थापा सचमुच शासक बन गये। उस दिन से 1950 ई० तक जबकि महाराज त्रिभुवन ने प्रधान मंत्री के शासन के विरुद्ध विद्रोह किया, नेपाल के महाराजा प्रधान मंत्री के कैदी मात्र थे।[1] राजाओं की स्वतंत्रता धीरे-धीरे 'राणाओं' के द्वारा समाप्त कर दी गई और देश में राणाशाही जम गई। जिस समय मंत्रियों ने राजाओं के हाथ से शासन की बागडोर छीनकर अपने हाथ में लेने का षड्यंत्र किया था, लगभग उसी समय नेपाली भाषा देवनागरी लिपि में छपकर पहले उदाहरण के रूप में दिखाई पड़ी—आयर्टन के 'नेपाली भाषा का व्याकरण' (ग्रामर ऑफ नेपाली लैंग्वेज) में। यह 1820 ई० में कलकत्ता में छपा।[2] इसके एक वर्ष बाद बाइबिल नेपाली भाषा में छपी। नेपाल में अंग्रेज राजदूत ब्राइन हुटन हजसन (1829 ई० से 1831 ई० एवं 1833 से 1843 ई० तक) ने नेपाली भाषा पर सैकड़ों निबन्ध लिखे।

राणा शासकों में जंग बहादुर, चन्द्र शमशेर, भीम शमशेर आदि विख्यात हुए। इन लोगों ने राजाओं को ज्यादा से ज्यादा निस्सहाय एवं शक्तिहीन बनाकर अपना मनमाना शासन किया। श्री ऋषिकेश शाह लिखते हैं "इस तरह लगभग एक शताब्दी से अधिक नेपाल के राजकीय परिवार की शक्ति और प्रतिष्ठा भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद द्वारा समर्थित राणा परिवार के निरंकुश शासन की लम्बी छाया से ढके रहे।"[3] ('Heroes and Builders of Nepal' पुस्तक में)। शासक चाहे राजा का रहा हो या मंत्री का, दोनों का सम्बन्ध भारत-भूमि से रहा है। शाहवंश को कुछ लोग चित्तौड़ से सम्बद्ध मानते हैं और नेपाल आने से पूर्व उसे उसके पूर्वज कुमाऊँनी का हिन्दी क्षेत्र कुमायूँ में बसा दिखाते हैं।[4] उधर राणा लोग भी अपनी वंश परम्परा को सीसोदिया वंशज राणाओं से जोड़ते हैं। कतिपय विद्वान् इन्हें निरे भ्रम मानते हैं जो हिन्दी-प्रदेशीय अपनी पुरानी बस्तियों को छोड़कर नाना स्थलों को पार करते हुए नेपाल जा बसे।[5]

---

1. नेपाल : अतीत और वर्तमान—शंकर सहाय सक्सेना, पृ० 54।

2. नेपाली भाषा देवनागरी लिपिको छापामा सर्वप्रथम उदाहरणको रूपमा भए पनि देखा पर्छ—एटनको नेपाली भाषा के व्याकरण (ग्रामर ऑफ नेपाली लैंग्वेज) मा। यो ई० 1820 मा कलकत्तामा छापियो।

—नेपाली भाषाको उत्पत्ति—चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी, पृ० 222।

3. "For more than a century royal power and prestige in Nepal were eclipsed by the lengthening shadow of the autocracy of the Rana family which was bolstered by British imperialism in India."

4. उदयपुर राज्य का इतिहास—महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, भाग 1, पृ० 87।

5. नेपाली और हिन्दी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डा० [illegible] पाण्डेय, पृ० 31।

जिस समय भारत में अंग्रेजी दासता के खिलाफ स्वातंत्र्य-आन्दोलन चल रहा था, उस समय उससे प्रभावित होकर नेपाल भी राणाशाही के खिलाफ संघर्ष करने लगा था। पर, यह संघर्ष तब तक सफल न हो सका जब तक कि भारत ने स्वतंत्रता की प्राप्ति करके नेपाल की मदद न की। एक तरफ नेपाल के तत्कालीन वास्तविक प्रशासक, अर्थात् राणाओं ने अंग्रेजों की मदद करके 1857 ई० के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन को विफल बना दिया तो दूसरी ओर भारत ने 1950-51 के नेपाल के स्वातंत्र्य-आन्दोलन में सहायक बनकर उसे सफल बना दिया। 8 फरवरी, 1951 को एक संधि द्वारा राणाशाही का अन्त हुआ और त्रिभुवन वीर विक्रम एक शक्तिसम्पन्न महाराजाधिराज हुए। इनके बाद श्रीमहेन्द्रवीर विक्रम एवं श्री वीरेन्द्रवीर विक्रम क्रमशः महाराजाधिराज बने।

भारत में 600 ई० पू० के बाद आर्यों में विघटन शुरू हो चुका। प्रजातंत्र के स्थान पर राजतंत्र अपना आसन जमाने लगा और राजनीतिक सत्ता राजाओं के हाथ में सिमटने लगी। वर्ण-व्यवस्था का जन्म हुआ और प्राचीन द्रविड़ या आर्येतर भी इस समाज के अंग बनने लगे। आर्यों की शाखाएँ इधर-उधर बिखरने के क्रम में नेपाल की ओर भी बढ़ीं। नेपाल में एक नई सभ्यता और संस्कृति के प्रवेश के साथ-साथ नई भाषा का भी प्रवेश हुआ। ओल्डफील्ड का कथन है कि मंजुश्री के समय से ही (गौतम बुद्ध से भी पहले) भारत के मैदानों के लोग नेपाल में बस चुके थे और भारतीय नवीन सिद्धान्तों को नेपाल उपत्यका को दे चुके थे।[1]

मगध सम्राट जरासंध के साम्राज्य-स्थापन की जो कल्पना थी, वह आगे चल कर बिम्बसार और अजातशत्रु के हाथों पूरी हुई। पर, मगध का शासन जब नन्द-वंश के हाथों आया तो सिकन्दर का भारत पर आक्रमण हुआ। महान् कूटनीतिज्ञ चाणक्य की मदद से चन्द्रगुप्त ने नन्दवंश का विनाश किया और एक मौर्य सत्ता की नींव डाली। नेपाल के साथ उस समय भी भारत का सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध था जिसकी वजह से लिच्छविवंशीय राजा वृषभदेव ने अपनी पुत्री का विवाह समुद्रगुप्त से किया था। दोनों ही देशों में राजतंत्रीय शासन-प्रणाली विद्यमान थी। इस बात का स्पष्ट प्रमाण तो नहीं मिलता कि सम्राट अशोक की राज्य-सीमा नेपाल में कहाँ-कहाँ तक थी, पर फिर भी भारत में हुए धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव नेपाल पर अवश्य पड़ा। भगवान् बुद्ध द्वारा चलाये गये बौद्धधर्म का प्रारंभ भारत में हुआ, पर उसका पर्याप्त प्रभाव नेपाल पर भी पड़ा, क्योंकि नेपाल ही उनकी जन्मभूमि थी। जॉन मॉरिस इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नेपाल-उपत्यका की संस्कृति का सीधा-सम्बन्ध सदा से भारत से रहा है। उनके विचारानुसार, काठमाण्डू के नेवारों ने बौद्ध सिद्धान्त सीधे भारत से ग्रहण किये।[2]

सम्राट अशोक स्वयं नेपाल गये थे जिसका प्रमाण लुम्बिनी का अशोक-स्तम्भ है। लेकिन, अशोक के बाद बड़ा साम्राज्य छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट गया और हर्षवर्द्धन को छोड़कर कोई भी राजा एक बड़े साम्राज्य की स्थापना न कर सका। छोटे राज्यों

---

1. "Since the time of Manjushri, colonists also from the plains of Hindustan had settled in Nepal and has thus brought the new doctrines to the valley direct from India."

—Sketches from Nepal—Oldfield, p. 48.

2. A Winter in Nepal—John Moris, p. 95.

के बीच संघर्ष होते रहे जिसके परिणामस्वरूप 740 ई० में पालवंश का उदय हुआ। पालवंश का शासन 1200 ई० तक कायम रहा, पर बाद में तुर्कों का आक्रमण प्रारंभ हो गया और हिन्दुस्तान में एक भिन्न जाति का पदार्पण हुआ। तब तक भारत में प्राचीन आर्य-सभ्यता और संस्कृति में आमूल परिवर्तन हो चुका था। यहाँ कर्मकाण्ड आदि के प्रवेश की वजह से विष्णु और शिव की महत्ता बढ़ी और बौद्ध, जैन जैसे नये धर्मों का आविर्भाव हुआ। इन धार्मिक स्थितियों का आवश्यक प्रभाव नेपाल पर भी पड़ा। सच माने में ऐसे ही समय में भारतीय आर्य बहुत बड़ी संख्या में नेपाल जाकर वहाँ की प्राचीन किरातीय सभ्यता को प्रभावित कर रहे थे।

जब मुसलमानों के आक्रमण से भारत न केवल आक्रान्त हुआ, वरन् 1200 ई० से लेकर 1800 ई० के लगभग तक उसकी दासता में रहा, तब नेपाल एक स्वतंत्र हिन्दू राष्ट्र के रूप में जीवित रहा। आश्चर्य है, इतने पड़ोस में रहकर भी कभी मुसलमान महत्त्वाकांक्षी राजाओं के चरण उसे क्यों न पददलित कर सके। जिस समय भारत में धड़ाधड़ धार्मिक परिवर्तन चल रहा था और हिन्दुओं को राज्य-लोभ, अधिकार-लोभ के साथ-साथ तलवार का भय दिखाकर इस्लाम धर्म कबूल कराया जा रहा था, उस समय नेपाल में इस प्रकार की कोई आँधी नहीं थी। सच माने में, नेपाल कभी भी इस्लाम से प्रताड़ित नहीं हुआ जिसकी वजह से वहाँ हिन्दुत्व बहुत अंशों में कायम रह सका और मुसलमानों की संख्या नगण्य रही। साथ ही, हिन्दी पर अरबी फारसी शब्दों का जो सीधा प्रभाव पड़ा, वह नेपाली पर अपेक्षाकृत कम।

मुसलमानों ने भारत में न केवल एक सल्तनत कायम की, वरन् यहाँ की सभ्यता और संस्कृति को भी ध्वस्त किया। यहाँ के मन्दिरों को तोड़-फोड़कर मस्जिद बनवाया, शिक्षा-केन्द्रों को नहस-नहस कर दिया और सभी जगह इस्लाम का पताका फहराने का भरसक प्रयास किया। राजकाज की भाषा भी फारसी और हिन्दी प्रदेश इनके अत्याचार से बुरी तरह प्रताड़ित हुआ। लोगों के अन्दर वैराग्य का भाव फैलने लगा। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "मुसलमानों के बस जाने से देश में जो नई परिस्थिति उत्पन्न हुई, उसकी दृष्टि से हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों के लिए एक सामान्य भक्तिमार्ग का विकास भी होने लगा।"[1] हिन्दी-प्रदेश के बहुत सारे विद्वान् और स्वाभिमानी लोग भाग-भागकर यत्र-तत्र शरण लेने पहुँचने लगे। इसी क्रम में भारत के बहुत सारे कलाकार और विद्वान् भी ठीक उसी प्रकार नेपाल चले गये जिस तरह कि संकट और अशान्ति की स्थिति में नेपाल के राजा या प्रजा भारत की शरण लेते थे। इतिहास तो यहाँ तक बताता है कि नेपाल पर शासन करने वाले मल्लवंशीय भी मूलतः भारतीय थे। डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय का कथन है, "दूसरी मल्लशाखा नेपाल उपत्यका की है जो 1228 ई० में गयासुद्दीन द्वारा खदेड़े जाने पर सिमरौनगढ़ होती हुई नेपाल उपत्यका में पहुँची।"[2] प्रतापमल्ल के शिलालेख से ज्ञात होता है कि उनके पूर्वज कर्णाटक से नेपाल आये।[3] भारत में लगभग 1000 ई० के आसपास, जबकि राजनीतिक स्थिति

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ० 66।

2. नेपाली और हिन्दी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय, पृ० 25।

3. तस्मात्कर्णाट चूडामणिरिव हरयत् सिंह देवोऽन्ववंशे।
भूपः श्रीयक्षमल्लो नरपतिरतुलो [illegible]।
—(प्रतापमल्ल का शिलालेख)

बहुत ही अस्त-व्यस्त थी, भारतीय आर्यभाषा अपना रूप ले रही थी। देशी राज्यों का आपसी वैमनस्य और मुसलमानों के आगमन से युद्ध के लिए विस्फोटक वातावरण पैदा हो गया था। युद्ध और श्रृंगारिकता के मिले-जुले धूपछाँही वातावरण में हिन्दी ने अपना प्रारंभिक रूप लेना शुरू कर दिया था, यद्यपि 1400 ई० तक अपभ्रंश में भी रचनायें होती रही थीं। पन्द्रहवीं शती तक भारतीय आर्यभाषा आधुनिक काल में पदार्पण कर चुकी थी और आचार्य हेमचन्द्र के पश्चात् तेरहवीं शती के प्रारंभ से आ० भा० आ० भाषाओं के अभ्युदय के समय पंद्रहवीं शती के पूर्व तक का काल संक्रान्तिकाल था जिसमें भारतीय आर्यभाषा धीरे-धीरे अपभ्रंश की स्थिति को छोड़कर आधुनिक काल की विशेषताओं से युक्त होती जा रही थी।[1] इस समय तक भारतीय आर्यभाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य-सृजन होने लगा था। प्राचीन परम्परा की अगली कड़ी के रूप में अथवा इस्लामी आक्रमण के परिणामस्वरूप 14वीं शताब्दी से हिन्दी में भक्तिपूर्ण कविताओं का आरंभ हो गया था। इस युग में लोकभाषा साहित्य के सुन्दर से सुन्दर स्रोत फूटे।[2] कबीर, दादू, मलूकदास, तुलसी, सूर के अलावा अष्टछाप के कविगण उत्कृष्ट साहित्य से हिन्दी का भंडार समृद्ध बना रहे थे। उस समय के अधिकांश काव्य का रूप धार्मिक था और कृष्णवाद या रामवाद का वाहक था।[3] लगभग इसी समय नेपाली भाषा का बहुत ही प्राचीन रूप देखने को मिलता है। सिंजाली के स्थान में खसानी भाषा ने साहित्य-सृजन का उत्तराधिकार प्राप्त किया था, उसके साथ-साथ बुहसरी और मानिकाली में भी साहित्य रचे जाने लगे थे। 1336 ई० का गोल्हण-लिखित शासन-पत्र का अंश, 1337 ई० के पुण्यमल्ल का ताम्रपत्र, 1356 ई० के शिवदेव पण्डित द्वारा लिखा गया जुम्ला का कनकपत्र, 1358 ई० का पृथ्वीमल्ल के ताम्रपत्र का लेखक जंडाशो जोइसि की भाषा, 1376 ई० के अभयमल्ल के ताम्रपत्र के लेखक धर्मराज जोइसि की भाषा एवं 1393 ई० के मेदिनीब्रह्म के ताम्रपत्र के लेखक विष्णुदास आचार्य आदि की भाषा को देखने से स्पष्ट पता चलता है कि उस काल में किस प्रकार नेपाली भाषा धीरे-धीरे अपना रूप ग्रहण कर रही थी। श्री बालकृष्ण पोखरेल ने तत्कालीन भाषाओं की व्यापक समीक्षा करते हुए बताया है कि किस प्रकार आधुनिक (तत्कालीन) नेपाली भाषा से भिन्न होते हुए भी वर्तमान नेपाली के पूर्वरूप की परिचायिका है। आगे वे लिखते हैं कि "चौदहवीं शताब्दी और पन्द्रहवीं शताब्दी के आरम्भ की भाषा में कोई अन्तर नहीं है—ऐसा कहने से भी होगा।"[4] फिर भी यह सही है कि नेपाली जाति की तरह नेपाली भाषा का इतिहास उतना पुराना नहीं है।[5]

1. हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास—डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० 144।

2. भारत का आधुनिक इतिहास—सरकार और दत्त, पृ० 442।

3. उपरिवत्, पृ० 343।

4. चौधौं शताब्दी र पन्ध्रौं शताब्दी को आरम्भ को भाषामा केही अन्तर छैन भनें पनि हुन्छ।—नेपाली भाषा र साहित्य—बालकृष्ण पोखरेल, पृ० 46।

5. नेपाली निबन्धावली — शर्मा और देवकोटा, पृ० 250।

मुसलमानों के शासन-काल के बाद अंग्रेजों, फ्रांसीसियों एवं पोर्तुगीजों ने भारत को अपना उपनिवेश बनाना चाहा। 1498 ई० में पुर्तगालियों ने भारत का पता लगाया। 1601 ई० में डच लोगों ने भारत एवं पूर्वी टापुओं के साथ व्यापार शुरू किया। इसी समय, अंग्रेज भी व्यापार करने आ पहुँचे और 1757 ई० में प्लासी के युद्ध में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को हराकर अपना आधिपत्य जमा लिया। फिर धीरे-धीरे वे हिन्दी-प्रदेश की ओर भी बढ़ने लगे और 1764 ई० के बक्सर के युद्ध से आरंभ होकर 1856 ई० तक के अनवरत संघर्ष के बाद अंग्रेजों ने समस्त हिन्दी-प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। इन राजनीतिक परिवर्तनों के कारण उन्नीसवीं सदी के आरंभ से ही मध्यदेश की भाषा हिन्दी पर भारी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था।[1] सन् 1857 ई० में भारत का पहला स्वातंत्र्य संग्राम (सिपाही विद्रोह) लड़ा गया जिसका केन्द्र हिन्दी-प्रदेश था। नेपाल के राणा जो उस समय वास्तविक शासक थे, अंग्रेजों के सहयोगी एवं सहायक थे। यही वह युग था जब नेपाल में महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण शाह ने समस्त नेपाल को एक सूत्र में गूँथ तो दिया था, पर राजा और मंत्री के बीच सत्ता का षड्यन्त्र तेजी से चल रहा था। इधर हिन्दी प्रदेश स्वतंत्रता के लिये जूझ रहा था और उधर नेपाली साहित्य पहली बार ठीक ढंग से रचा जाने लगा था। 1770 से 1841 ई० तक उदयानन्द अर्ज्याल, इन्दिरस, विद्यारण्य केसरी, वसन्त शर्मा, यदुनाथ पोखर्याल, रघुनाथ भट्ट और पतंजलि गजुर्याल जैसे कवि हो गये थे। इन कवियों के बाद ही भानुभक्त जैसा महान् कवि पैदा हुआ जिसने नेपाली साहित्य को एक नयी दिशा दी। भानुभक्त का जन्म 1814 ई० में एवं मृत्यु 1868 ई० में हुई। रामायण, रामगीता, वधूशिक्षा और प्रश्नोत्तरी जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अलावा बहुत सारी कवितायें 1854 ई० और 1868 ई० के बीच लिखी गयीं।[2] पृथ्वीनारायण शाह ने भी स्वयं उत्कृष्ट कवितायें लिखकर नेपाली की अद्भुत सेवा की। ऋषिकेश शाह का कहना है कि यह भानुभक्त की ही महानता है कि उसने इस सामान्य तथ्य को इतना पहले समझा और नेपाली को जनसाधारण की शिक्षा का एक प्रभावशाली माध्यम बनाने में सफल हुआ।[3] भले ही इतिहास के अन्वेषी नेपाली की जड़ मल्ल राजाओं के काल में देखते हों, फिर भी यह सत्य है कि नेपाली को वर्तमान रूप देने वाले भानुभक्त ही थे।

भारत में अंग्रेजों के सुदृढ़ शासन को उखाड़ फेंकने के लिए गांधीजी सर्वमान्य नेता के रूप में सामने आये और 1918-20 ई० तक भारतीय जनता के बीच बहुत ही लोकप्रिय बन गये। उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का सूत्रपात किया और समूचे देश में स्वाधीनता की लहर दौड़ गई। कहीं-कहीं इसका क्रान्तिकारी रूप भी सामने आया जिसका एक प्रधान केन्द्र बंगाल भी था। इस समय राष्ट्रीय भावनाओं की रचनाओं के साथ-साथ हिन्दी गद्य का भी प्रणयन हुआ। हिन्दी क्षेत्र गांधीजी के इस स्वातन्त्र्य संग्राम से पूर्णतः प्रभावित था और हिन्दी साहित्य की अनेक विधायें अपनी प्रौढ़ता के साथ सामने आ रही थीं। यही वह काल था जब गद्य-पद्य दोनों क्षेत्रों में हिन्दी का वर्तमान

1. हिन्दी भाषा का इतिहास——डॉ० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 82।

2. Heroes and Builders of Nepal—Rishikesh Shah, p. 77.

3. "It was the credit of Bhanubhakta that he realized this simple fact early enough and succeeded in making Nepali an effecting medium of mass education." ——उपरिवत्, पृ० 40।

रूप (खड़ीबोली वाला रूप) निखरकर सामने आ रहा था और राष्ट्रीय पृष्ठभूमि के साहित्य का भंडार समृद्ध हो रहा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आविर्भाव के क्रम में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, रामनरेश त्रिपाठी आदि ने हिन्दी को बहुत ही ऊँचे आसन पर प्रतिष्ठित कर दिया था।

उधर नेपाल में राणाशाही का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ रहा था और राजा की शक्तियाँ क्षीण होती जा रही थीं। नेपाल के लिए यह राजनीतिक अराजकता का काल था, जब सारे शासकों का ध्यान सत्ता की ओर लगा हुआ था। राणाओं के द्वारा न केवल राजा प्रताड़ित थे, वरन् प्रजा भी तबाह थी। राणाओं के आगे राजाओं की एक नहीं चलती थी। शिक्षा का कोई प्रचार नहीं था।[1] इन्हीं परिस्थितियों में नेपाली साहित्य में भक्तिभाव की रचनायें प्रचुर मात्रा में रची जा रही थीं। राजकीय प्रोत्साहन के अभाव में भी नेपाली साहित्य अद्भुत रूप से सृजित हो रहा था। हिन्दी-प्रदेश में जो भक्तिभाव शृंगारिकता के अपावन जल में डुबकी लगाकर तिरोहित हो चुका था और जिसकी जगह राष्ट्रीयता ने ले ली थी, वही भक्तिभाव इस समय नेपाली साहित्य का प्रमुख प्रेरणा-स्रोत बन चुका था। अंग्रेजों से 1814-16 ई० में हुई लड़ाई में नेपाल की हार की निराशा-जन्य परिस्थिति हो या भारतीय भक्तिभाव का प्रभाव अथवा नेपाल की प्राचीन परम्परा का स्वाभाविक विकास—भक्तिभाव इस काल का प्रमुख विषय बनकर सामने आया। नेपाली भक्तकवियों का भारतवर्ष और विशेषतः हिन्दी प्रदेश से बड़ा ही घनिष्ठ सांस्कृतिक सम्बन्ध था। नेपाली के प्रसिद्ध भक्तकवि भानुभक्त आचार्य ने 'बड़ो दुर्लभ जान्नु भारत भूमिको जन्म जनले' कहकर इसी सांस्कृतिक घनिष्ठता का परिचय दिया है। हिन्दी-प्रदेश के बहुत-से सन्त-साधकों ने नेपाल में सांस्कृतिक वातावरण के निर्माण का पथ प्रशस्त किया।[2] फिर भी, हिन्दी-प्रदेश की अपेक्षा वहाँ भक्तिकाव्य बहुत बाद में सृजित हुआ। नेपाली भाषा का पीछे प्रचार-प्रसार में आना भी इस पिछड़ेपन का एक कारण है। विक्रम की उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक नेपाल में जनपदीय बोलियाँ चल रही थीं। काव्यचर्चा या तो संस्कृत में होती थी या फिर हिन्दी में।[3] निष्कर्ष यह कि इस काल में हिन्दी और नेपाली, दोनों अपनी अपनी राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों की पृष्ठभूमि में अपने अपने साहित्य का सृजन कर रही थीं। इस काल में दोनों ही भाषाओं के साहित्य का संवर्धन अपूर्व गति और व्यापकता के साथ हुआ।

भारत के स्वतंत्रता संग्राम ने जहाँ भाव के क्षेत्र में राष्ट्रीयता के स्वर को बुलन्द किया, वहाँ भाषा के क्षेत्र में हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत भी करवाया। इस काल में खड़ीबोली के विकास के साथ-साथ पत्रकारिता का जन्म एक [illegible] घटना है। तब से हिन्दी-क्षेत्र भारत की राजनीति का मुख्य केन्द्र रहा और इसका रूप अनवरत निखरता ही रहा। राणा के शासन-काल में नेपाली को जो राजकीय प्रोत्साहन नहीं प्राप्त हुआ था, वह बाद के महाराजाधिराज त्रिभुवन वीरविक्रम एवं महेन्द्र वीर-विक्रम के काल में प्राप्त हो गया। इस समय तक नेपाली नेपाल की राष्ट्रभाषा के पद पर

1. नेपाली साहित्य का इतिहास — डॉ० दीनानाथ शरण, पृ० 243।

2. उपरिवत्, पृ० 347।

3. नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ० मथुरादत्त पाण्डेय, पृ० 70।

सुशोभित हो चुकी थी। श्री चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी के अनुसार, "नेपाली भाषा के अध्ययन के इतिहास में अनेक कारणवश बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध महत्वपूर्ण युग माना जाता है। इस काल में देश-विदेश में नेपाली पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन और अध्यापन का प्रारम्भ होना, इसकी उन्नति के लिये संस्थाओं को खोलना, स्वदेशी एवं विदेशी विद्वानों के द्वारा भाषा तथा व्याकरणादि का लिखना तथा विभिन्न प्रकार की पुस्तकों का प्रकाशित होना भी नेपाली भाषा के लिये महत्वपूर्ण है।"[1]

हिन्दी और नेपाली, दोनों भाषाओं का क्षेत्र आसपास होने के कारण से हिन्दी ने नेपाली पर पर्याप्त प्रभाव डाला है। भाव और भाषा, दोनों क्षेत्रों में हिन्दी ने नेपाली को वर्तमान रूप में आने में पर्याप्त सहयोग दिया है। डॉ० दीनानाथ शरण का कथन है, "भारत का साहित्य—विशेषतः हिन्दी साहित्य भी नेपाली जनमानस को प्रभावित करता रहा था। आशय यह कि नेपाली साहित्येतिहास में नेपाली में आधुनिकता लाने का श्रेय बहुत कुछ भारतीय परिस्थितियों और विशेषतः हिन्दी साहित्य का है।"[2] इसका एक कारण यह है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास नेपाली साहित्य की अपेक्षा बहुत पुराना है। हिन्दी साहित्य का इतिहास बारह सौ साल से भी अधिक पुराना है, जबकि नेपाली साहित्य का इतिहास मुश्किल से तीन साढ़े तीन सौ साल से अधिक पुराना नहीं है।[3] प्रभाव के दूसरे कारण को बताते हुए श्री बालकृष्ण पोखरेल लिखते हैं कि उसी भाषा का पड़ोस में विस्तार हो सकता है जिसमें अपेक्षाकृत ऊँचा शिल्प, कला, संस्कृति, साहित्य और चिन्तन-शक्ति होती है। निःसन्देह आज भारत इन सभी बातों में नेपाल से आगे है, इसीलिये प्रभाव-ग्रहण द्वारा बहुत सीमा तक नेपाल ने लाभ उठाया है।[4]

भारतीय स्वतंत्रता ने नेपाल को भी राणाशाही से स्वतंत्र होने में सहायता की। स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने ही त्रिभुवन वीरविक्रम शाह की मदद की जिससे वे राजा के अधिकार को वापस पा सके। आज दोनों देश अलग-अलग सार्वभौम सत्ता को स्वीकार करते हुए अपनी भाषा और साहित्य की उन्नति में संलग्न हैं। जहाँ नेपाली सम्पूर्ण राष्ट्र की राष्ट्रभाषा है, वहाँ भारत में हिन्दी के साथ-साथ अंग्रेजी भी सहचरी भाषा के रूप में प्रयुक्त होती है। श्री० पोखरेल के अनुसार, "नेपाली भाषा के बिना वर्तमान नेपाल का जन्म ही सम्भव नहीं था। कदाचित् इसका जन्म हो जाता तो भी आज तक यो एकता कायम नहीं रहती।"[5]

हिन्दी-प्रदेश एवं नेपाल की धार्मिक पृष्ठभूमि लगभग समान है। नेपाल के धार्मिक स्थान भारतीयों के भी तीर्थस्थान हैं एवं भारत के धार्मिक स्थान उनके लिये भी आकर्षण के केन्द्र। भारत में जो भी धार्मिक आन्दोलन हुए, उनके प्रभाव से नेपाल वंचित नहीं रह सका। वर्तमान हिन्दी-प्रदेश के ऋषि-मुनियों का तपस्या स्थल हिमालय रहा है। किरातेश्वर महादेव की महिमा पुराण-प्रथित है। कैलाश, मुक्तिनाथ तथा पशुपतिनाथ की

1. नेपाली भाषाको उत्पत्ति—श्री चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी, पृ० [illegible]।
2. नेपाली साहित्य का इतिहास—डॉ० दीनानाथ शरण, पृ० [illegible]।
3. उपरिवत्।
4. नेपाली भाषा र साहित्य—बालकृष्ण पोखरेल, पृ० 6।
5. नेपाली भाषा र साहित्य—बालकृष्ण पोखरेल, पृ० 7।

यात्रा भारतीय यात्रियों का परम पवित्र कृत्य माना जाता रहा है।[1] नेपाल शैवों का गढ़ है। पशुपतिनाथ के अतिरिक्त कोटेश्वर, मल्लानेश्वर, क्षपीश्वर, गोरक्षेश्वर आदि अनेक शिवलिंग नेपाल में हैं। भैरवों में बागभैरव, कालभैरव, श्वेतभैरव, महाकालभैरव, बटुकभैरव, टीकाभैरव, उन्मत्तेश्वरभैरव तथा आकाशभैरव प्रमुख हैं। अतएव, अनेक भारतीय शैव एवं तान्त्रिक सिद्धिहेतु नेपाल जाते रहे हैं। इसी तरह काशी, गया, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, बद्रीनाथ, हरिद्वार आदि भारतीय तीर्थस्थानों ने नेपालियों को अपनी ओर आकृष्ट किया है। मल्ल महीपों का तो यह वंश-नियम था कि वे मरते समय काशीवास किया करते थे।[2] बहुत सारे नेपाली विद्वान् नालन्दा एवं विक्रमशिला विद्यापीठों में द्वारपण्डित थे। मोतीराम भट्ट जैसे अनेक नेपाली साहित्यकार भारत में ही रहकर नेपाली साहित्य की रचना कर रहे थे। आज भी सैकड़ों नेपाली छात्र भारत में और खासकर बनारस में आकर अध्ययन करते हैं। श्री बालकृष्ण पोखरेल ने नेपाली भाषा पर हिन्दी के प्रभाव का वर्णन करते हुए लिखा है, "जब संवत् 2013 में बनारस के युवक नेपाली विद्यार्थियों ने नेपाली के भविष्य की ओर ध्यान दिया तो उनके होश उड़ गये। उन लोगों ने देखा कि नेपाली भाषा हिन्दी के शब्द, वाक्य एवं उच्चारण पद्धति से धीरे-धीरे बहुत प्रभावित हो गई है।"[3] तात्पर्य यह कि धर्म एवं शिक्षा दोनों ने भारत और नेपाल के बीच एक सुदृढ़ सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। हिन्दी साहित्य एवं भाषा ने नेपाली साहित्य एवं भाषा पर काफी प्रभाव डाला है। दोनों ही भाषाओं की एक लिपि - देवनागरी — ने एक-दूसरे को समझने और निकट आने का बहुत ही अच्छा अवसर प्रदान किया।

इस प्रकार, दोनों देशों के इस अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष को तथ्य के रूप में सामने रख सकते हैं—

भौगोलिक दृष्टि से नेपाल का पर्वतीय इलाका, नदी-नाला, जंगल-पहाड़ ने भाषा-प्रसार का काफी बाधा पहुँचाई, पर हिन्दी प्रदेश ने समतल मैदानी भाग में फैले रहने के कारण भाषायी सम्बन्ध एवं विस्तार को प्रोत्साहित किया। इसी कारण अनेकानेक उपभाषाओं के देश में नेपाली को अपना रूप लेने में काफी लम्बा समय लगा और उसका साहित्य भी बहुत बाद में समृद्ध हुआ, जबकि हिन्दी को अपना रूप लेने में न तो उतना समय लगा और न साहित्य की समृद्धि में ही।

राजनीतिक दृष्टि से नेपाली और हिन्दी को समान झंझावातों को सहना पड़ा है। राजनीतिक उलट-फेर के कारण एवं राजाओं की भाषायी उदासीनता के कारण नेपाली बहुत दिनों तक उपेक्षिता रही, पर हिन्दी मुख्य रूप से राजनीति का केन्द्र-स्थल रही और बाद की राजनीतिक क्रान्तियों द्वारा इसे फलने-फूलने में काफी मदद मिली।

1. नेपाली और हिन्दी भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन—डॉ. मथुरादत्त पाण्डेय, पृ० 19।

2. धर्म एवं संस्कृति—मुरलीधर भट्टराय, पृ० 13।

3. "जब सम्वत् 2013 मा बनारसका जवानी नेपाली विद्यार्थीहरूले नेपाली भाषाको भविष्यतर्फ ध्यान दिए उनीहरूका सातो-पुत्ला उड्यो। उनीहरूले नेपाली भाषा हिन्दीका शब्द, वाक्य एवं उच्चारण पद्धतिबाट अनजान धेरै प्रभावित हुँदैगए को देखे।"
—नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 22।

फिर भी, यह सही है कि राष्ट्रभाषा बन जाने के बाद नेपाली संपूर्ण देश की एकमात्र संचार-भाषा और कार्यालयी भाषा के गौरवमय पद पर आसीन हो गई है, जहाँ हिन्दी को राजनीतिक कारणों से प्रान्तीयता एवं अन्य भाषाभाषी संकटों के दौर से गुजरना पड़ रहा है और इसे वह प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो पा रही है जो नेपाली को प्राप्त है। ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-प्रदेश का निर्माण आर्यों के प्राचीनतम मौलिक तत्त्वों से हुआ, जबकि नेपाल का निर्माण वहाँ की प्राचीन जाति किरात, खस आदि के साथ-साथ भारत से भागे हुए शरणार्थी आर्यों के द्वारा। अतएव, नेपाल अपने प्राचीन मूल निवासी एवं नवागन्तुक आर्यों की मिश्रित संस्कृति से बना है।

धार्मिक दृष्टि से भारत जिन वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध आदि धर्मों का क्रीड़ा-स्थल रहा है, वे धर्म नेपाल की धार्मिक भावना के प्रेरणा-स्रोत रहे। अन्तर केवल यह हुआ कि इस्लाम के आक्रमण ने हिन्दी-प्रदेश को ज्यादा तहस-नहस किया, नेपाल को लगभग नहीं के बराबर। भारत की धार्मिक विचारधारा पर इस्लाम तथा ईसाई—सबने अपना प्रभाव छोड़ा जिससे धर्म के मामले में हिन्दी प्रदेश अनेक धर्मों का संगम-स्थल हो गया, जबकि नेपाल में इतनी धार्मिक विविधता नहीं पाई जाती।

भाषा की दृष्टि से हिन्दी संस्कृत की उत्तराधिकारिणी रही है, पर नेपाली पर हिन्दी के साथ-साथ वहाँ की उपभाषाओं (नेवारी आदि) एवं सीमावर्ती भाषाओं (तिब्बती, भोट-बर्मेली, चीनी आदि) का भी प्रभाव पड़ा। इसका मुख्य कारण यह है कि नेपाली भाषा का प्राचीन रूप इसी प्रकार समाज में बना और विकसित हुआ जिस प्रकार भारत के विभिन्न स्थानों में बोली जाने वाली आर्यभाषाओं का निर्माण और विकास हुआ। मध्यकालीन आर्यभाषा के अन्तिम चरण में होने वाली भाषाओं का सम्मिलित नाम अपभ्रंश था और स्थान के आधार पर मागध, गौर्जर, आवन्त्य, मालव, टक्क, शौरसेन आदि अनेक अपभ्रंश के रूप थे। समाज में प्रचलित उस समय का अपभ्रंश, खस अपभ्रंश है जिससे नेपाली भाषा का निर्माण हुआ।[1]

अन्त में, यह कहा जा सकता है कि नेपाल का सांस्कृतिक वातावरण भारत से अभिन्न रहा है। श्री के० एम० मुंशी का यह मत सही है कि नेपाल राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र राष्ट्र होते हुए भी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक मामलों में भारत का एक अंग है।[2] नेपाल में शिक्षण संस्थाओं के अभाव ने प्रारम्भ से ही वहाँ के निवासियों को भारत में शिक्षा ग्रहण करने के लिए बाध्य किया है। इसके कारण

---

1. "नेपाली भाषाको प्राचीन रूप त्यसरी नै समाजमा बन्यो र मौलायो जसरी भारत का विभिन्न स्थानमा बोलिने आधुनिक आर्यभाषाहरू का निर्माण र विकास भयो। मध्यकालीन आर्यभाषाहरूको अन्तिम चरणतिर भएका भाषाहरूका साझा नाम अपभ्रंश थियो र स्थानका आधारमा मागध, गौर्जर, आवन्त्य, मालव, टक्क, शौरसेन आदि अनेक अपभ्रंशका रूप थिए। समाजमा हुर्केको त्यस बेला को अपभ्रंश खस अपभ्रंश हो, जसबाट नेपाली भाषाको निर्माण भयो।"

नेपाली भाषाको उत्पत्ति—चूडामणि उपाध्याय रेग्मी, पृ० 8।

2. "Though Nepal is politically an independent country in social, religious, cultural and literary matters, it forms with India a single unit."

—के० एम० मुंशी—भानुभक्त को रामायण, सू० वि० ज्ञवालीको भूमिका, पृ० 14।

हिन्दी का नेपाली पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। संस्कृत की ओर नेपालियों की आसक्ति ने भी उन्हें भारत आने के लिए मजबूर किया है। इस तरह एकदम आसपास रहने वाले दोनों क्षेत्रों ने एक-दूसरे की भाषा को प्रभावित किया है। नेपाली शौरसेनी प्राकृत भाषा से पैदा हुई भाषा है, इसलिए इसकी रूपरेखा को शौरसेनी शाखा की हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं की रूपरेखा से मिलना ही चाहिए।[1] जहाँ तक आपसी प्रभाव की बात है, उसका विस्तृत अध्ययन हम अन्य अध्याय में करेंगे जिसका स्पष्ट प्रभाव दोनों भाषाओं के अर्थ-परिवर्तन की विभिन्न दिशाओं में लक्षित किया जा सकेगा। यहाँ इतना ही बता देना काफी है कि दिनांक 2 जुलाई, 1977 को बंगाल विधान सभा में कुछ सदस्यों ने नेपाली को भारत की आठवीं राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत करवाने हेतु केन्द्र पर जोर डालने की जोरदार सिफारिश की। इससे स्पष्ट है कि नेपाली पड़ोसी देश की राष्ट्रभाषा होकर भी भारत से किस तरह जुड़ी हुई है।

ग : 1—अर्थविज्ञान के सिद्धान्त : प्रस्तुत प्रबन्ध में उनका विनियोग

अर्थविज्ञान आधुनिक भाषाविज्ञान की नवीनतम शाखा है। इसका इतिहास अधिक से अधिक एक शताब्दी प्राचीन माना जा सकता है। आधुनिक युग में अर्थ की महत्वपूर्ण भूमिका को देखकर इसके लिए एक स्वतन्त्र इकाई की आवश्यकता महसूस की गई।[2] सर्वप्रथम रेजिग ने 'लैटिन भाषाविज्ञान' पुस्तक में और इसके पश्चात् माइकेल ब्रे आल ने इसे एक स्वतन्त्र इकाई का दर्जा दिया।

अर्थविज्ञान ऐतिहासिक शब्दार्थों एवं शब्दों के अर्थों में परिवर्तनों के इतिहास एवं विकास का व्यवस्थित विवेचन करता है। इसी बात को और स्पष्ट करते हुए लुइस एच० ग्रे ने अपनी पुस्तक 'फाउण्डेशन आफ लेंग्वेज' में कहा है, "अर्थविज्ञान जो भाषा-विज्ञान का द्वितीय प्रमुख मनोवैज्ञानिक पक्ष है, शब्दार्थों की उत्पत्ति, उनके चालू रहने, नाश होने और लुप्त होने और कभी-कभी पुनर्जीवित होने के कारणों के साथ-साथ नये शब्दों के गठन के कारण की खोज का कार्य करता है।"[3] इस तरह कहा जा सकता है कि अर्थविज्ञान भाषाविज्ञान की एक ऐसी नवीनतम शाखा है जो शब्द का एक प्रतीक के रूप में और इसके प्रतीकात्मक मूल्य या अर्थ का अध्ययन करता है।

आधुनिक युग में, शब्द, जो विचाराभिव्यक्ति की लघुतम सार्थक इकाई है, बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाने लगा है। शब्द के बिना किसी भी प्रकार की विचाराभिव्यक्ति, चाहे वह लिखित हो या मौखिक, सामान्यतः संभव नहीं है। शब्द के साथ अर्थ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। यदि यह कहें कि बिना अर्थ के शब्द और बिना शब्द के अर्थ नहीं होते

---

1. नेपाली भाषा र साहित्य—बालकृष्ण पोखरेल, पृ० 11।

2. "The role of meaning is so fundamental to the language system that its study must constitute one of the main divisions."
—The Principles of Semantics—Stephen Ullmann, p. 24.

3. "Semantics, the second of the predominantly psychological aspects of linguistics, deals with the evolution of meanings of words and with the reasons for their survival, decay, disappearance and sometimes revival as well as the causes of creation of new words."
—p. 249.

तो अत्युक्ति नहीं होगी। भाषा और साहित्य का सारा ढाँचा शब्दों के आधार पर खड़ा होता है और शब्दों का आधार उनके अर्थ होते हैं।

इसलिए, शब्द और अर्थ का अध्ययन बहुत आवश्यक प्रतीत होने लगा है। यास्क ने इसी आवश्यकता की ओर निर्देश करते हुए लिखा है, "अर्थविज्ञान से रहित शब्दज्ञान प्रतिभा की व्युत्पत्ति का साधन नहीं है जिस प्रकार अग्नि के अभाव में शुष्क ईंधन अग्नि को प्रज्ज्वलित नहीं कर सकता है, उसी प्रकार अर्थतत्व की उपेक्षा करके समस्त शब्दतत्व का अध्ययन प्रतिभा को कभी भी प्रदीप्त नहीं कर सकता है।"[1] आचार्य पंतजलि ने भी अपने महाभाष्य के प्रथम आह्निक में अर्थविज्ञान की उपयोगिता को लगभग इन्हीं शब्दों में बताया है।

भाषा सदा परिवर्तनशील है।[2] अतएव, भाषा में व्यवहृत शब्द और उनके अर्थों में सदा परिवर्तन होता रहता है। इनके बदलते अर्थों के कारण एवं रूप का समीचीन अध्ययन करने का काम अर्थविज्ञान करता है।

किसी भी भाषा में आवश्यकतानुसार नए शब्दों का भी समावेश किया जाता है। नए शब्दों की उत्पत्ति भाषा की समृद्धि का प्रतीक है। अतएव, जब भी किसी भाषा की समृद्धि के परीक्षण की आवश्यकता होती है, तब उसमें उत्पन्न या आए नए शब्द और अर्थों की भी जाँच-पड़ताल की जाती है। इसके लिए, अर्थविज्ञान का सहारा लेना आवश्यक हो जाता है।

चूँकि किसी खास समय में किसी खास भाषा के अन्तर्गत व्यवहृत शब्द और अर्थ, नए शब्दों की उत्पत्ति और अर्थ-परिवर्तन उसके व्यवहार करने वाले के मानसिक जगत् का परिचय देते हैं, अतएव अर्थविज्ञान के सहारे ऐतिहासिक एवं प्रागैतिहासिक स्थितियों का पता लगाना संभव है।

अर्थविज्ञान का सम्बन्ध न केवल भाषाविज्ञान से है, वरन् यह तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान की भी एक प्रमुख शाखा है। भाषा मनुष्य का दर्पण है—यह बहुत पहले से दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों और भाषावैज्ञानिकों द्वारा स्वीकार किया जा चुका है। अर्थविज्ञान को छोड़कर भाषाशास्त्र की कोई दूसरी शाखा ऐसी नहीं है जो तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान का इस तरह सहारा लेती हो। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ही मनोवैज्ञानिक है। फलस्वरूप, अर्थविज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तर्जगत से जुड़ जाता है।

अर्थविज्ञान के सहारे दो भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है जिससे उन सामान्य नियमों का पता लगे जो भाव, विचार और पदार्थ पर अंकुश रखते और जिससे किसी अर्थ का विकास या संकोच होता है।[3]

1. "यद् गृहितमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते।
अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्॥" —निरुक्त, पृ० 1-18।

2. "No language remains perfectly static in its spoken form and even its written form almost always changes, though usually far more slowly than its spoken type."

—Foundation of Language-- Louis H Gray, p. 13.

3. "The comperative study of languages enables us to observe and cordify the general laws which govern sense development and to understand why meanings become extended or restricted."

—Romance of Words—Professor Weekley, p. 86.

आज यहाँ तक सोचा जाता है कि किसी भी भाषा के शब्दार्थों को देखकर उसके बोलने वाले लोगों की सभ्यता और संस्कृति के स्तर का पता लगाया जा सकता है। अर्थविज्ञान इस खोज में काफी मददगार सिद्ध हो सकता है, क्योंकि रीति-रिवाज या वातावरण में परिवर्तन कभी-कभी अर्थ-सम्बन्धी परिवर्तन को परमावश्यक बना देता है।[1] साथ ही शब्द वस्तु, विचार, तथ्य और अनुभूति को प्रकट करता है। अतएव, नए शब्द का विकास या पुराने अर्थ में परिवर्तन उस परिवर्तन की प्रतिध्वनि है जो लोगों के विचार या अनुभूति के ढंग को प्रभावित करता है।

विचारों का आदान-प्रदान समझदारी पर आश्रित है जो बदले में अर्थ की परंपरागत स्वीकृति पर आधारित है। अतएव, अर्थविज्ञान भाषा का सबसे अधिक स्वीकृत पक्ष है। संभवतः इसी कारण, प्राचीन काल में अर्थविज्ञान व्याकरण का एक महत्वपूर्ण अंश समझा जाता था।

चूँकि अर्थविज्ञान अर्थ का ऐतिहासिक विज्ञान भी है, अतएव यह कोशविज्ञान (लेक्सीकोग्राफी), व्याकरण, ध्वनिविज्ञान, काव्य और साहित्यिक भाषाशास्त्र (स्टाइलिस्टिक्स) के लिए भी उपयोगी है। अर्थविज्ञान अनेक अर्थों या शब्दों के भाव की ऐतिहासिक व्याख्या करता है और कोई शब्दकोश उन्हें बहुधा व्यवस्थित रूप में ही संगृहीत करता है।

इस तरह अर्थविज्ञान का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक माना जाने लगा है। बहुत विलंब के बाद, अर्थविज्ञान ने विशाल निर्मित विचारों के क्षेत्रों में, जिसने बीसवीं शताब्दी के भाषाविज्ञान में क्रान्ति ला दी है, अपना को खुला छोड़ दिया है और इसके पुनर्प्रवेश ने पहले ही कुछ कीमती परिणाम पैदा किए हैं।[2] यह इतना महत्वपूर्ण हो गया है कि एक विद्वान् के अनुसार केवल एक ही व्याकरण है जिसे अर्थविज्ञान कहते हैं।[3]

चूंकि अर्थ भाषाविज्ञान की सबसे कठिन समस्या है, इसीलिए भाषावैज्ञानिकों ने शब्द और अर्थ का सम्बन्ध, अर्थ का स्वरूप, अर्थ की निरपेक्ष या सापेक्ष सत्ता एवं अर्थ की परिवर्तनशीलता जैसे तत्त्वों पर गहराई से विचार किया है।

---

1. "Semantics is, therefore, at the very heart and core not mesely of language but human civilization."

—The Study of Language—Mario Pie, p. 148.

"Not infrequently, evolution of meaning is connected with some development in the history of civilization."

—Foundation af Language—Louis H. Gray, p. 258-59.

"A shift in customs or environment sometimes make a shift in emphasis inevitable." —Linguistic Change—E. H. Sturlevant, p. 88.

2. "After a long delay, it (semantics) has thrown itself open to the great structural ideas which have revolutionized twentieth century linguistics, and this reorientation has already produced some valuable results."

—The Principles of Semantics—Stephen Ullmann, p. 320.

3. "There is only one grammar and it is called Semantics."

—Schuchardt (op. ci., p. 135.)

भर्तृहरि कहते हैं कि शब्द और अर्थ एक ही आत्मा (स्फोट) के दो स्वरूप हैं। दोनों की पृथक्-पृथक् स्थिति नहीं है, अर्थात् शब्द और अर्थ अभिन्न रूप से सम्बद्ध हैं। इनमें कोई वास्तविक भेद नहीं है। जो बाह्य जगत् में भेद ज्ञात होता है, वह तात्त्विक नहीं है।[1] कवि शिरोमणि कालिदास ने भी शब्द और अर्थ के इसी अभिन्न सम्बन्ध को दिखाया है और कहा है कि शब्द और अर्थ के सदृश ही शिव और पार्वती भी अभिन्न हैं।[2] यह सही है कि सभी तरह के भावों या अर्थों की अभिव्यक्ति शब्द के द्वारा होती है, इसलिए दोनों घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। हेलाराज ने (वाक्य 1,1) तथा नागेश ने मंजूषा (पृ० 50) में श्रुतिवचन उद्धृत किया है कि शब्दतत्त्व अत्यन्त सूक्ष्म है, अर्थ-तत्त्व से अभिन्न है, तात्त्विक दृष्टि से उसका अर्थतत्त्व से विभाग नहीं किया जा सकता है, वह एक है, वह सर्वदा सर्वत्र प्रवाहित हो रहा है, वह पवित्र है, नाना रूपों वाला है, वह अन्तरात्मा में प्रविष्ट है, उसको कतिपय आचार्य पृथक् भी मानते हैं।[3] पतंजलि भी शब्द और अर्थ को अभिन्न मानते हैं। वे कहते हैं कि अर्थ शब्द की ही अन्तरंग शक्ति है। अतएव शब्द शब्द से बहिर्भूत है, किन्तु अर्थ अबहिर्भूत अर्थात् अभिन्न है।[4] ऐसा भी विचार अभिव्यक्त किया गया है कि अर्थ के साथ बिना सम्बन्ध के शब्द अर्थहीन होता है, उसमें किसी भी अर्थ को बोध कराने की शक्ति नहीं रहती। सम्बन्ध ही शब्द को अर्थवान् बनाता है, उसमें शक्ति का संचार करता है, सम्बन्ध की शक्ति से ही शब्द इस अर्थमय जगत् का शासन करता है; लोकेच्छा का संकेत पाकर चाहे जिस अर्थ को अपना लेता है, चाहे जिस अर्थ को छोड़ देता है। इसी सम्बन्ध शक्ति के कारण शब्दों में [illegible] अर्थ की ह्रास-वृद्धि होती है। शब्द और अर्थ इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि कोई भी मनुष्य अर्थ को बदल नहीं सकता।[5]

एक ओर शब्द और अर्थ की अभिन्नता प्रतिपादित की गई है तो दूसरी ओर इसके विरोधी मत भी प्रकट किए गए हैं। कहा गया है कि शब्द मात्र अर्थ प्रकट करने के साधन हैं। शब्द में अर्थ प्रकट करने की शक्ति तब आती है जब कोई विचारक उनका प्रयोग करता है जिससे वे किसी का प्रतिनिधित्व करते हैं या यों कहें कि वे किसी अर्थ का बोध कराते हैं।[6] बर्ट्रेन्ड रसेल अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपुल्स ऑफ मैथमेटिक्स' (पृ० 273) में कहते हैं कि शब्द में अर्थ होते हैं, ऐसा समझना तर्कविरुद्ध है। गहराई में

1. "एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ।" —वाक्य० 2,31।

2. "वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।" —रघुवंश 1,1।

3. "सूक्ष्मार्थेनाप्रविभक्त तत्त्वामेकां वाचमभिष्यन्दमानाम्।
उतान्ये विदुरन्यामिव च पूतां नानारूपामात्मनि संनिविष्टाम्॥"

—वाक्य० 1,1।

4. "शब्दश्च शब्दाद्बहिर्भूतः, अर्थो बहिर्भूतः।" —महा० 1,1,66।

5. "It is not strange that men should have seen something inevitable in the meaning of words, for no man can change them."

—Linguistic Change—E. H. Sturtevant, p. 23.

6. "It is only when a thinker makes use of them that they stand for anything or in one sense have 'meaning'."

—The Meaning of Meaning—Ogden & Richards, p. 9.

विचार करने पर यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि जब तक शब्द का प्रयोग न किया जाय तब तक अर्थ का कोई प्रश्न नहीं उठता। अर्थ सदा प्रयोग में आने पर निःसृत होता है। अतएव, शब्द को प्रयोगरहित रूप में देखकर यहाँ तक कहा गया है कि जैसा सभी जानते हैं, शब्द का अपने में कोई अर्थ नहीं होता।[1] इसी को और स्पष्ट करते हुए यह भी कहा गया है कि शब्द अर्थ नहीं रखते, वरन् मनुष्य अर्थ रखते हैं।[2] इसे इस तरह भी कहा जा सकता है कि वह मनुष्य होता है जो निश्चित करता है कि क्या कहा गया है, न कि शब्द।[3] शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं होता, अपितु उसका अर्थ केवल प्रतीकात्मक या स्वीकृत होता है। इसलिए, निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शब्द का अर्थ से सम्बन्ध प्रयोगाश्रित है, न कि स्वतन्त्र।

शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को बताने वाले विभिन्न मतों को ध्यान में रखकर इसे चार भागों में बाँटा जा सकता है[4]— (क) उत्पत्तिवाद, (ख) अभिव्यक्तिवाद, (ग) ज्ञप्तिवाद, और (घ) प्रतीकवाद।

(क) **उत्पत्तिवाद**—प्राचीन मत यह है कि शब्द अर्थ से उत्पन्न होता है। इसके बारे में ऋग्वेद में यह उल्लेख मिलता है कि विद्वानों ने मन के द्वारा वाणी को बनाया।[5] यहाँ मन से अभिप्राय मानसिक विचार या धारणा से है जो व्यक्तियों के मन में अर्थ-रूप में विद्यमान रहती है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति शब्दों का उच्चारण करता है।

(ख) **अभिव्यक्तिवाद**—इस उत्पत्तिवाद के विरुद्ध महाभाष्यकार पतंजलि ने अपने दूसरे मत का प्रतिपादन किया है और लिखा है, "शब्द वह है जो कान से सुना जाता है, बुद्धि से ग्रहण किया जाता है, आकाश जिसका स्थान है और जो प्रयोग से अभिज्वलित (अभिव्यक्त) होता है।"[6]

(ग) **ज्ञप्तिवाद**—शब्द और अर्थ के बारे में तीसरा मत यह मिलता है कि शब्द अर्थ की ज्ञप्ति करता है। वाजसनेयी प्रातिशाख्य में लिखा है कि जिससे अर्थ का गमन या ज्ञान होता है, उसे पद कहते हैं।[7] यहाँ पद का अभिप्राय शब्द ही है, क्योंकि विभक्ति-युक्त शब्द ही तो पद होता है। शब्द और अर्थ में ज्ञापक-ज्ञाप्य सम्बन्ध होता है, क्योंकि शब्द ज्ञापक और अर्थ ज्ञाप्य होता है।

---

1. "Words, as everyone knows mean nothing by themselves."
—The Meaning of Meaning—Ogden & Richards, p. 9.

2. "Words don't mean, people mean."
—Semantics and Common Sense.—Louis B. Salomon, p. 2.

3. "It is the man determines what is said, not the words."
—Semantics and Common Sense—L. B. Salomon, p. 12.

4. भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा—डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना, पृ० १५१-५२।

5. "यत्र धीरामनसा वाचमक्रत।" —ऋग्वेद १०-७१-२।

6. "श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः।"
—महाभाष्य, १-१-२।

7. "पद्यते गम्यते ज्ञायते अनेनार्थ इतिपदम्।"—वाजसनेयी प्रातिशाख्य टीका।

(घ) प्रतीकवाद—शब्द और अर्थ के बारे में चौथा मत यह मिलता है कि प्रायः शब्द उस वस्तु के अर्थ का प्रतीक होता है जो हमारे मन में होता है। हम लौकिक व्यवहार की दृष्टि से कुछ वस्तुओं के लिए कुछ शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं और ये शब्द उन वस्तुओं का बोध कराने के लिए प्रतीक के रूप में व्यवहृत होने लगते हैं। भर्तृहरि ने कहा है कि जब शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तब उनके सम्बन्ध की प्रतीति तीन रूपों में होती है—एक तो ज्ञान (भाव) के रूप में, दूसरे उनके द्वारा अभिप्रेत बाह्य पदार्थ (वस्तु) के रूप में, और तीसरे शब्द के रूप में।[1]

शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को ठीक से जानने के लिए अर्थ की परिभाषा को जानना परमावश्यक है। भर्तृहरि अर्थ का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि जिस शब्द के उच्चारण से जिस अर्थ की प्रतीति होती है, वह उसका अर्थ है।[2] लगभग इसी परिभाषा को दुहराते हुए जयंत कहते हैं कि कोई मानते हैं कि यह इस पद का अर्थ है, अर्थात् सांकेतिक है; जिस शब्द से जिस अर्थ का संकेत किया जाता है, वह उसका अर्थ है।[3] कात्यायन और पतंजलि ने अर्थ की परिभाषा देते हुए लिखा है कि समस्त शब्द स्व-स्व अर्थबोधन के लिए होते हैं, जिस-जिस अर्थबोध के लिए शब्द का प्रयोग होता है, वही उसका अर्थ है।[4] कैयट और नागेश ने भी कात्यायन और पतंजलि के परिभाषानुसार ही अर्थ को परिभाषित किया है। वे कहते हैं कि समस्त शब्द जिस प्रवृत्ति निमित्त से, अर्थात् जिस वाच्यार्थ के बोध के लिए प्रयोग को प्राप्त होते हैं, वही प्रवृत्ति निमित्त रूप अर्थ (वाच्यार्थ) उन शब्दों का अर्थ है। इस तरह प्राचीन भारतीय आचार्यों के अनुसार, शब्द ही अर्थज्ञान का कारण है और शब्द में निहित विचार ही उसका अर्थ है। एम० गोम्पर्ज ने कथन और उसमें वर्णित तथ्य के बीच के सम्बन्ध को अर्थ कहा है।[5] बर्ट्रेन्ड रसल की दृष्टि में अर्थ भावनीय सत्ताओं में स्थित एक बोधनीय शक्ति है। इसी तरह कोणका का विचार है कि अर्थ हमारे ऐन्द्रिय सत्य को नए रूप में परिवर्तित कर देता है। इस तरह इन परिभाषाओं में अर्थ को तथ्य-आश्रित माना गया है, शब्दाश्रित नहीं। आग्डेन और रिचर्ड्स ने अपनी पुस्तक "मीनिंग ऑफ मीनिंग" में आधुनिक विद्वानों द्वारा बताए हुए अर्थ के सोलह लक्षणों का निरूपण किया है।[6]

1. "ज्ञानं प्रयोक्तुर्बाह्योऽर्थः स्वरूपं च प्रतीयते।
शब्दैरुच्चरितैस्तेषां सम्बन्धः समवस्थितः॥"
2. "यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यदर्थस्य लक्षणम्॥" —वाक्य० 2,330।
3. "अयमस्य पदस्यार्थ इति केचित् सतेन वा।
योऽर्थः प्रतीयते यस्मात् स तस्यार्थ इति स्मृतिः॥" —न्याय मंजरी, पृ० 299।
4. "सर्वे भावाः स्वेन भावेन भवन्ति स तेषां भावः॥" —महा० 5,1/119।

5. 'The relation subsisting between the statement and the fact expressed is called 'meaning'."

6. आग्डेन और रिचर्ड्स ने अर्थ के ये सोलह लक्षण बताये हैं—
अ—(क) तात्विक भाग अर्थ है।
(ख) अन्य वस्तुओं के साथ एक अनुपम अनिर्वचनीय सम्बन्ध अर्थ है।

आज के विचारक नाम और भाव के परस्पर सम्बन्ध को अर्थ की संज्ञा देते हैं।[1] इसी को दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जो सांकेतिक है, वही अर्थ है।[2]

आ—(ग) शब्दकोश में एक शब्द के साथ जोड़े गये अन्य शब्द अर्थ हैं।

(घ) शब्द का लक्ष्य अर्थ है।

(ङ) सारांश अर्थ है।

(च) वस्तुरूप में निरूपित क्रियात्मकता अर्थ है।

(छ) अ—अभिमत तथ्य अर्थ है; आ—संकल्प अर्थ है।

(ज) शास्त्रीय प्रक्रिया में निर्दिष्ट भाव अर्थ है।

(झ) हमारे भावी अनुभवों से सिद्ध किसी वस्तु के क्रियात्मक परिणाम अर्थ हैं।

(ञ) किसी वक्तव्य में वाच्य या लक्ष्य रूप में निहित विचारात्मक परिणाम अर्थ हैं।

(ट) किसी वस्तु के द्वारा उद्बोधित मनोभाव अर्थ है।

इ—(ठ) किसी निर्धारित सम्बन्ध के द्वारा किसी संकेत से वस्तुतः सम्बद्ध पदार्थ अर्थ है।

(ड) अ—किसी प्रेरणा के स्मरणबोधक परिणाम अर्थ हैं। सम्प्राप्त सम्बन्ध अर्थ है। आ—कोई अन्य घटना जिससे किसी अन्य घटना के स्मरण-बोधक परिणाम सम्बद्ध हैं, अर्थ है। इ—किसी संकेत का अभिमत पदार्थ अर्थ है। ई—जिस अर्थ को कोई बात अभिव्यक्त करती है, वह अर्थ है। (संकेतों के विषय में)।

(ढ) संकेतों के प्रयोक्ता को जिसका निर्देश करना चाहिए, वह अर्थ है।

(ण) संकेतों के प्रयोक्ता का जो स्वयं अभिमत भाव है, वह अर्थ है।

(त) अ—व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस अर्थ को समझता है, वह अर्थ है। आ—व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस अर्थ को अपने हृदय में भावना करता है, वह अर्थ है। इ—व्यक्ति संकेत के द्वारा जिस भाव को वक्ता का अभिप्रेत भाव समझता है, वह अर्थ है।

1. "Meaning will therefore be defined, for the purpose of this book as a reciprocal relationship between the names and the sense, which enables the one to call up the other."

—Words and their Use—Stephen Ullmann, p.33.

2. "That which is suggested is meaning."

—Meaning of Meaning—Ogden and Richards, p. 180.

इसलिए, नाम और भाव के बीच जब भी परिवर्तन आ जाता है, तब अर्थ में परिवर्तन आ जाता है।[1]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय एवं पाश्चात्य विचारकों ने अर्थ को अनेक दृष्टियों से परिभाषित करने का प्रयास किया है। किसी ने इसे थोड़े शब्दों में अभिव्यक्त करके सीमित कर दिया है तो किसी ने इसका दायरा बहुत विशाल बना दिया है। फिर भी, यह सन्तोष की बात है कि किसी की धारणा में न तो भ्रान्ति है और न उलझाव ही। अन्तर मात्र देखने की दृष्टि का है जिसके कारण से सबने अलग-अलग पक्षों को उद्घाटित किया है। फिर भी, सारे मतों के समन्वय से अर्थ का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

शब्द और अर्थ के बीच बोध्य-बोधक सम्बन्ध रहने के बावजूद अर्थ का वास्तविक बोध वाक्य में होता है; स्वतंत्र शब्द के साथ अर्थ की कोई निश्चितता नहीं रहती है, जिससे वे महत्वपूर्ण भी नहीं होते। इसलिए कहा जा सकता है कि भाषा-व्यवस्था में शब्द अकेले नहीं रहते।[2] जब शब्द एकसाथ रख दिये जाते हैं और रूपान्तरित कर दिये जाते हैं, जब उनकी (परिस्थिति या प्रसंग या बल और स्वर के उतार चढ़ाव के द्वारा) व्याख्या कर दी जाती है, तभी हम अधिक सही रूप में उनके अर्थ की व्याख्या कर सकते हैं या समझ सकते हैं।[3] शब्द अकेले किसी विचार या भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति का सामर्थ्य नहीं रखता। कोई भी मनुष्य अपने विचारों की अभिव्यक्ति वाक्य के माध्यम से करता है। अतः शब्द के सही अर्थ का निर्देश वाक्य के अन्दर अन्य शब्दों के सान्निध्य के कारण होता है। इस मात्र शब्दकोश और अर्थविज्ञान की किताबों को छोड़कर भाषक शब्द को स्वतंत्र इकाई के रूप में कभी नहीं अपनाते। भर्तृहरि ने (वाक्य०, 2.316) कहा है कि वाक्य, प्रकरण, अर्थ, औचित्य, देश और काल से शब्दों के अर्थों में भेद हो जाता है। यह भी ध्यातव्य है कि अनेक शब्द अनेकार्थी भी होते हैं और प्रसंग से उनका अर्थ बदलता रहता है। कहा तो यहाँ तक गया है कि कभी एक ही शब्द के दो अर्थ नहीं होते। होता यह है कि एक ही शब्द का विभिन्न वाक्यों, विभिन्न प्रकरणों आदि में कुछ विभिन्नता को लेते हुए प्रयोग किया जाता है जिससे एक शब्द के अर्थों में भेद हो जाता है। निष्कर्ष यह है कि शब्द के अर्थ का वास्तविक निर्धारण प्रसंग ही करता है जिसके लिए वाक्य की आवश्यकता होती है। अतएव अर्थ निरपेक्ष नहीं, सापेक्ष है। आधुनिक और प्राचीन, प्राच्य और पाश्चात्य, प्रायः सभी विद्वान् इस पर एकमत हैं कि अर्थबोध का चरमावयव वाक्य है, शब्द नहीं।

1. "A change in meaning will arise whenever there is some alteration in that basic relationship."

—Words and their Use—Stephen Ullmann, p. 65.

2. "Words do not live in isolation in the language system."

—Words and their Use—Stephen Ullmann, p. 34.

3. "It is when words are put together and 'modified' when they are expounded (by circumstances or the context, or by stress and modulation of the voice), that we can interptet their meaning with much accuracy."

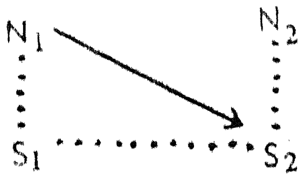
—Words and thier Ways in English Speech —James Bradstreet Greenough and G. L. Kitteradge, p. 034

शब्द का सदा एक ही अर्थ नहीं रहता, उसमें भाषा-विकास के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। किसी शब्द के अर्थ का विस्तार, किसी का संकोच तथा किसी अर्थ की अन्यार्थ में प्रवृत्ति होती है। अर्थ की इसी परिवर्तनशीलता की ओर संकेत करते हुए पतंजलि कहते हैं कि एक शब्द के नाना अर्थ होते हैं।[1] जिस तरह सभ्यता में विकास से, उसमें परिवर्तन से, एक देश की सभ्यता-संस्कृति से, अन्य देश की सभ्यता-संस्कृति के मेल-मिलाप से और समाज तथा जीवन में बड़ी-बड़ी घटना, दुर्घटना, नवजागरण, औद्योगिक क्रान्ति आदि की स्थितियों से समाज और जीवन में विकास या परिवर्तन आता है, वैसे ही भाषा में भी विकास या परिवर्तन होता देखा गया है। इस बात का पहले ही संकेत किया जा चुका है कि नाम और भाव के सम्बन्ध में जब भी परिवर्तन आता है, तब शब्द के अर्थ बदल जाते हैं। फिर भी, तब तक परिवर्तित अर्थ प्रचलित नहीं होते जब तक उन्हें सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल जाती, क्योंकि भाषा सामाजिक स्वीकृति पर आधृत है। किसी शब्द के प्रचलित अर्थ में कोई व्यक्ति जान-बूझ कर अथवा अनजाने नया अर्थ जोड़ता है, और इस नए अर्थ के सम्बन्ध में समाज अथवा एक वर्ग खास में स्वीकृति दे देता है तो ऐसी स्थिति में अर्थ परिवर्तन का रूप सामने आता है।

शब्दार्थों के परीक्षण से यह स्पष्टतः ज्ञात होता है कि शब्द के अर्थ परिवर्तित होते हैं। यह परिवर्तन दो तरह का हो सकता है—पुराने नाम के साथ नया भाव जुड़ सकता है या पुराने भाव के साथ नया नाम आ जा सकता है। इसी के साथ-साथ यह भी संभव है कि पुराने नाम के साथ साथ उसके पुराने भाव और नए भाव और नए भाव के साथ उसके पुराने नाम और नए नाम—दोनों चल सकते हैं। इसको स्टीफेन उलमान ने निम्नांकित आरेख द्वारा दिखाया है[2]—



भाव-साहचर्य में नाम-परिवर्तन



नाम साहचर्य में भाव-परिवर्तन

अर्थ में यह परिवर्तन कई कारणों से आता है। लेकिन, अनेक अवस्थाओं और अनेक रूपों में यह देखा जाता है कि अर्थ-तत्त्व मानव-मन को लेकर चलता है। मानव-मन बड़ा दुर्गम है। ऐसी स्थिति में मन की विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा घटित होने वाले अर्थ-परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई निश्चित कारण, कोई निश्चित नियम निर्धारित करना कठिन होता है। अर्थ-परिवर्तन में मानसिक और सामाजिक, दोनों तत्त्व काम करते हैं। इनके अलावा भी यह अस्वाभाविक इतने कारणों से घटित होता है कि संख्याओं और सीमाओं के माध्यम से इनको निश्चित करना उचित नहीं जान पड़ता। संभवतः

1. "एकस्य शब्दा बह्वर्थाः।" —महा० 1, 2, 45।

2. The Principles of Semantics, p. 176.

इन्हीं कठिनाइयों को ध्यान में रखकर एफ० जी० टकर कहते हैं, "अर्थ-परिवर्तन के नियम अभी तक ढूँढ़े नहीं गए हैं और सम्भवतः वे अनन्वेष्य हैं।"[1]

फिर भी, विद्वानों ने अर्थ-परिवर्तन के सामान्य कारणों को ढूँढ़ने का भरसक प्रयत्न किया है। यास्क के अनुसार, सादृश्य एवं साहचर्य के कारण अर्थ-विकास होता है। पतंजलि ने लक्षणा के द्वारा अर्थ में विकास होना बताया है। भर्तृहरि (वाक्य 2, 316) ने वाक्य, प्रकरण, अर्थ, औचित्य, देश और काल से शब्दों के अर्थों में भेद हो जाने का वर्णन किया है।

इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में एन्टोनी मिलेत नामक फ्रांसीसी भाषाशास्त्री ने बताया कि भाषाशास्त्रीय, ऐतिहासिक एवं सामाजिक—ये तीन प्रधान शक्तियाँ ही इन परिवर्तनों के लिए सामान्यतया उत्तरदायी होती हैं। लेकिन मिलेत का यह विचार अपूर्ण ही माना जाना चाहिए, क्योंकि उपर्युक्त कारणों के अलावा भी अर्थ-परिवर्तन के अन्य कारण हैं। सबसे प्रमुख कारण मनोवैज्ञानिक है जिस ओर मिलेत महोदय ने संकेत नहीं किया है।

अर्थ-परिवर्तन के टकर द्वारा बताए गये कारणों की व्यापक समीक्षा तारापुरवाला ने अपनी पुस्तक 'एलिमेन्ट्स ऑफ दि साइंस ऑफ लैंग्वेज' में की है। इसमें उन्होंने इसके बारह कारण बताए हैं जो महत्त्वपूर्ण हैं। कुछ विद्वानों ने लाक्षणिक प्रयोग, परिवेश का परिवर्तन, नम्रता प्रदर्शन, अशोभनता, व्यंग्य, भावात्मक बल, सामान्य के लिए विशेष का प्रयोग, अज्ञान अथवा भ्रान्ति, शब्दार्थ की अन्तर्निहित अनिश्चितता, व्यक्ति के अनुसार शब्दों के प्रत्यय में भेद, शब्दार्थ के एक अंश की प्रमुखता, गौण अर्थ की प्रमुखता आदि को अर्थ-परिवर्तन का कारण बताया है। फिर भी, इतने पर ही इस की इति नहीं हो जाती। अभी भी अनेक ऐसे परिवर्तन हैं जिनके कारणों का सही निर्देश करना संभव नहीं है। इसका मुख्य कारण है मानव मन की विचित्रता जो मूल रूप में अर्थ-परिवर्तन के पीछे कार्यरत रहती है।

जिस प्रकार अर्थ-परिवर्तन के सभी कारणों का ठीक-ठीक निर्देशन नहीं किया जा सकता, उसी तरह इसका दिशा-निर्देश और वर्गीकरण भी एकदम ठीक-ठीक नहीं किया जा सकता। फिर भी इस दिशा में यथासंभव प्रयास किए गए हैं। पहले ही मिलेत द्वारा किये गये—भाषाशास्त्रीय, ऐतिहासिक और सामाजिक—वर्गीकरण का निर्देश किया जा चुका है। उनके पश्चात् पी० एल० स्पर्बर का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आता है जिस पर फ्रॉयड के विचारों का प्रभाव है। स्पर्बर ने अपने उपमानों के मूल में निहित मनोवैज्ञानिक परिवेश का विवेचन किया है, लेकिन इसका यह मत भी अपूर्ण है। उलमान स्पर्बर की सीमाओं का निर्देश करता हुआ कहता है कि स्पर्बर तथा फ्रॉयड ने मनुष्य के अपेक्षाकृत अधिक उभरे हुए तथ्यों का सम्बन्ध एक ही दृष्टिकोण से किया है। फ्रॉयड यदि काम-सम्बन्धी वासना पर बल देता है तो स्पर्बर मनुष्य के आवेग पर। पर, अर्थ-विकास का अध्ययन परिणाम और परिवेश दोनों दृष्टियों से होना चाहिये।

---

1. "Laws of meaning change are not yet discovered and are probably undiscoverable."

—Introduction to Natural History of Language—T. G. Tucker, p. 373.

इस संदर्भ में सर्वप्रथम उल्लेखनीय वर्गीकरण मिशेल ब्रेआल का है, जिसे तर्क-संगत या तार्किक वर्गीकरण (लॉजिकल क्लासीफिकेशन) कहा जाता है। अपनी पुस्तक 'एसेडी सेमेन्टीक' में ब्रेआल ने इसका प्रतिपादन किया है। इनके अनुसार, किसी भी अर्थ का या तो विस्तार हो सकता है या पूर्व अर्थ की तुलना में संकोच हो सकता है या अर्थ पूर्णतया बदल सकता है। इसे उन्होंने क्रमशः 1—अर्थ विस्तार (एक्सटेंशन ऑफ मीनिंग), 2—अर्थ-संकोच (कन्ट्राक्शन ऑफ मीनिंग) और 3—अर्थादेश (ट्रान्सफरेन्स ऑफ मीनिंग) की संज्ञा दी है। उनका यह वर्गीकरण केवल अर्थ-परिवर्तनों के बाह्य स्वरूप का विश्लेषण करता है, उनके कारणों की ऐतिहासिक, मानसिक और सामाजिक भूमिका आदि के महत्वपूर्ण पक्ष का विश्लेषण नहीं करता। उलमान ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है, "यह वर्गीकरण अर्थ-परिवर्तनों के बाह्य स्वरूप का वर्गीकरण है, इससे विश्लेषित प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि के विषय में कुछ भी पता नहीं चलता।"[1] फिर भी ये स्वीकारते हैं कि तार्किक वर्गीकरण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी पूर्णता है। इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अर्थ-विकास की तीन श्रेणियों के अलावा कोई चौथी श्रेणी नहीं बनाई जा सकती। यह वर्गीकरण इतना सरल है कि किसी भी परिवर्तन को तुरन्त और आसानी से वर्गीकृत किया जा सकता है।

पर, ब्रेआल के उपर्युक्त वर्गीकरण का आज के भाषावैज्ञानिकों ने सन्तोषजनक नहीं माना है। स्वीडिश विद्वान् एरिक वलैण्डर और प्रो० जी० स्टर्न आदि ने अर्थ-परिवर्तन का मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के अनुसार निरूपण किया। प्रो० जी० स्टर्न ने अपनी पुस्तक 'मीनिंग एण्ड चेंज ऑफ मीनिंग' में अंग्रेजी शब्दों में होने वाले अर्थ-परिवर्तनों को सात भागों और अनेक उपविभागों में बाँटकर विशद विवेचन किया। उनका यह वर्गीकरण अनुभवाश्रित (एम्पीरिकल क्लासीफिकेशन) कहलाता है। सबसे सन्तोष-जनक वर्गीकरण व्यावहारिक वर्गीकरण (फंक्शनल क्लासीफिकेशन) है जिसका प्रति-पादन प्रो० उलमान ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपुल्स ऑफ सीमेन्टिक्स' में किया है। ये दोनों वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के अन्तर्गत ही आते हैं जिसे उलमान ने अपनी पुस्तक 'लैंग्वेज एण्ड स्टाइल' में भी दिया है।

मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण करने वाले विद्वान् यह मानते हैं कि प्राचीन और नवीन अर्थ में एक तरह का सम्बन्ध हमेशा रहता है, चाहे यह सम्बन्ध कितना भी दूर का क्यों न हो। और यह परिवर्तन को निर्दिष्ट करने वाला सम्बन्ध या सम्पर्क ही है जिस पर मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण आधारित रहता है। उलमान ने अर्थ-परिवर्तनों को दो भागों में बाँटा है—

(अ) भाषायी रूढ़िवादिता (अर्थात् शब्दों को ज्यों का त्यों बनाए रखने की प्रवृत्ति) के कारण होने वाले अर्थ परिवर्तन। इसके तीन भेद किए गए हैं—

1. नामों अर्थात् शब्दों का संक्रम
   - (अ) भाव-सादृश्य पर आधारित शब्द-संक्रम
   - (आ) भाव-सान्निध्य पर आधारित शब्द संक्रम
2. भावों का संक्रम
   - (अ) नामों अर्थात् शब्दों के सादृश्य पर आधृत भाव संक्रम

1. Words and thier Use. (Chapter 3)

(आ) नामों अर्थात् शब्दों के साहचर्य पर आधृत भाव-संक्रम

3. मिश्रित अर्थ-परिवर्तन।

उलमान द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण शब्दों के पुराने तथा नए अर्थों के बीच पाए जाने वाले सम्बन्ध पर आधारित है। यह सम्बन्ध दो तरह का हो सकता है। प्रथम, दो शब्दों में किसी भाव के सादृश्य पर आधारित; द्वितीय, दो शब्दों के साहचर्य पर आधारित। पुनः दो शब्दों के भावों में सादृश्य का सम्बन्ध सम्भव है, दो शब्दों में सादृश्य का संबंध सम्भव है, और दो शब्दों के भावों में साहचर्य का सम्बन्ध सम्भव है, दो शब्दों में साहचर्य का सम्बन्ध सम्भव है और अन्त में साहचर्य और सादृश्य का मिश्रित सम्बन्ध भी सम्भव है।

प्रस्तुत मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण एक दृष्टि से जटिल है, क्योंकि इसका आधार मनस्तत्व है। मनस्तत्व का ज्ञान न तो पूर्णता को प्राप्त हो सका है और न इसके बारे में कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है। अभी तक, मनस्तत्व अगम्य और दुर्बोध माना जाता रहा है। अतएव इस मनस्तत्व के आधार पर सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थ विकास की प्रक्रिया में निहित कारणों का विश्लेषण किया जा सकता है, पर यह पूर्णतः मनोवैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। इसे पूर्ण कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण होगा।

अतएव अब तक के प्रस्तुत किए गए वर्गीकरण में सबसे सरल और पूर्ण वर्गीकरण ब्रेआल का तार्किक वर्गीकरण ही है। इसी को ध्यान में रखकर प्रस्तुत प्रबन्ध की शोध-सामग्री का वर्गीकरण तार्किक वर्गीकरण के आधार पर किया गया है। हाँ, प्राचीन और नवीन अर्थों के सम्बन्ध के विश्लेषण के सिलसिले में मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण का भी सहारा लिया गया है। इससे दोनों भाषाओं के शब्दों में घटित होने वाले अर्थ-परिवर्तनों को आसानी से विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सका है और तुलनात्मक अध्ययन द्वारा उनके अर्थ-परिवर्तन की प्रवृत्ति का भी सम्यक् रूप से विवेचन किया जा सका है। फिर भी जैसा कि पहले ही कई बार कहा जा चुका है, अर्थ-विकास की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल है और इसका विभाग निर्धारण करना अत्यन्त ही कठिन। यह कठिनाई यहाँ भी कई बार महसूस की गई है। एक ही शब्द में कई तरह के अर्थ-परिवर्तन भी देखने को मिले हैं, ऐसी स्थिति में किसी एक की प्रमुखता को स्वीकार कर वर्गीकरण किया गया है, अन्य को अप्रमुख मानकर बिना निर्देश के ही छोड़ दिया गया है। इस तरह तार्किक वर्गीकरण के आधार पर ही उपलब्ध सामग्री का तुलनात्मक वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। इस वर्गीकरण के विभिन्न भागों और उपविभागों का सैद्धान्तिक विवेचन भी यथास्थल कर दिया गया है।

ख : 2—अध्ययन की उपयोगिता

बाह्य या आन्तरिक विश्व का ग्रहण हम अनेक प्रकार के रचना-सन्दर्भों में करते हैं, भाषा उनमें से एक और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचना-सन्दर्भ है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इसलिए, क्योंकि अन्य सब रचना-सन्दर्भ कला, धर्म, विज्ञान आदि इस रचना-सन्दर्भ को माध्यम बनाते हैं। इस बात को कुछ कम दार्शनिक भाषा में कहें तो कहा जा सकता है कि भाषा न केवल ऐसा शब्द-शरीर है जो भाव और विचार की अभिव्यक्ति का साधन है, बल्कि यह कि भाषा भाव-विचार का एक आयाम है। इस प्रकार किसी मानव वर्ग की भाषा के अध्ययन का अर्थ है—उस वर्ग के अस्तित्व के अर्थ को समझना।

इसलिए भाषा का अध्ययन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[1] वस्तुतः किसी भी समुदाय या जाति के सांस्कृतिक कलेवर को भाषा के माध्यम से ही परीक्षित और विश्लेषित किया जा सकता है। भाषा का तलस्पर्शी अध्ययन सम्बद्ध जाति या वर्ग के उस मानसिक परिवेश को भी उद्घाटित कर देता है जिसमें वे अपरिहार्य रूप से गुजरे हैं।

भाषा विचारों की अभिव्यक्ति का एक साधन तो है ही, यह विचार को प्रभावित भी करती है।[2] भाषा विचार का बाह्य स्वरूप है और विचार भाषा का मानसिक स्वरूप—ऐसा भी माना जा सकता है। इसलिए आज के विचार-प्रधान युग में भाषा का अध्ययन अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है।

भाषावैज्ञानिकों के सामने संप्रेषणीयता की समस्या सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हो उठी है और भाषा की विवेचना में शब्दों का सर्वोपरि स्थान पाना बहुत स्वाभाविक है, क्योंकि लिखित रूप में ये शब्द ही भाषा के रूप में पढ़े जाते हैं, बोलचाल में ये शब्द ही सुने जाते हैं और कोश में इन शब्दों का ही अस्तित्व दिखलाई पड़ता है। अर्थ की दृष्टि से भाषा की लघुतम इकाई शब्द है, अतएव भाषा के अध्ययन के लिए शब्दों का अध्ययन करना आवश्यक है।

ध्वनि शब्द का शरीर है तो अर्थ उसकी आत्मा। शब्द की सार्थकता इस अर्थ के प्रेषण में है। वस्तुतः अर्थ के प्रेषण के लिए ही भाषा का प्रयोग होता है।

भाषा के दो पक्ष होते हैं—भौतिक या यान्त्रिक और मनोवैज्ञानिक या अयान्त्रिक। इनमें से प्रत्येक के दो उपविभाग होते हैं : ध्वनिविज्ञान और रूपविज्ञान यान्त्रिक पक्ष के एवं वाक्यविज्ञान और अर्थविज्ञान मनोवैज्ञानिक पक्ष के। इनके अलावा एक पाँचवाँ विषय (व्युत्पत्तिशास्त्र) भी है जिसकी प्रकृति मूलतः ऐतिहासिक है।[3] चूँकि अर्थ प्रकृति से मनोवैज्ञानिक विषय है, अतएव इसका अध्ययन और भी गूढ़ हो जाता है।

भर्तृहरि के अनुसार, सृष्टि के मूल में जो मौलिक तत्त्व विद्यमान है, वह है शब्द, उसका विकास अर्थ है। यहाँ तक कहा जाता है कि प्रारम्भ में शब्द ही थे और शब्द ईश्वर के साथ थे, और शब्द ही ईश्वर थे।[4] शब्द की महानता के पीछे जो शक्ति छिपी

1. आलोचना (विशेषांक), वर्ष 17, अंक 2 : [illegible], पृ० 23।

2. "The influence of language upon thought is of the utmost importance."—Meaning of Meaning—C. K. Ogdem & I. A. Richards, p. 243.

3. "Language has two aspects : physical or mechanical and psychological or non-mechanical. Each of these aspect has two sub-divisions—phonology and morphology for the mechanical side, syntax and semantics for the psychological, and in addition to these, there is a fifth subject of investigation, etemology, which is essentially. historical in character."—The Principles of Semantics—Stephen Ullmann, p. 24.

4. "In the beginning was the word, and the word was with God and the word was God."—The Principles of Semantics—Stephen Ullmann, p. 45.

है—वह है अर्थ। अर्थप्रतीति के कारण ही शब्द मूल्यवान् हैं। यह भी कहा जाता है कि अर्थ वाणी अथवा शब्द का पुष्प और फल है।[1] बहुत सारे विद्वानों ने शब्द की अपेक्षा अर्थ को ही प्रधान माना है। दुर्गाचार्य कहते हैं—अर्थ प्रधान है और शब्द गौण।[2] डॉ० शिवनाथ मानते हैं कि भाषा या शब्द का महत्त्व इसी बात को लेकर है कि उससे अर्थ-बोध होता है—यदि भाव-विचार, अर्थात् अर्थ ही न हो तो भाषा अथवा शब्द की आवश्यकता ही क्यों हो ?[3]

शब्द के अर्थ सदा परिवर्तित होते रहते हैं। इस बात का निर्देश अन्यत्र कर दिया गया है कि जब भी नाम और भाव के सम्बन्ध में अन्तर आता है, तब अर्थ भी बदल जाता है। प्रारम्भ में ऐसा परिवर्तन बोलचाल की भाषा में होता है, पर बाद में यह साहित्यिक भाषा में भी स्वीकृत हो जाता है। अतएव कहा जा सकता है कि शब्दार्थों में परिवर्तन की दृष्टि से साहित्यिक भाषा की अपेक्षा बोलचाल की भाषा अधिक गति-शील होती है। भाषा में या शब्दार्थों में होने वाले इन परिवर्तनों की उपेक्षा किसी भी कीमत पर नहीं की जा सकती है, क्योंकि यह उस समाज के मानसिक और वैचारिक परिवर्तन के साथ जुड़ा होता है। फलतः अर्थों के महत्त्व को देखते हुए उनके परिवर्तनों का अध्ययन भाषाविज्ञान की दृष्टि से अत्यन्त ही उपयोगी है। बिना अर्थज्ञान के भाषा-ज्ञान अधूरा ही रहता है।

किसी भी भाषा के वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक अध्ययन से अधिक महत्त्वपूर्ण उसका तुलनात्मक अध्ययन होता है। इसका कारण यह है कि वर्णनात्मक या ऐति-हासिक अध्ययन से मात्र एक भाषा की प्रकृति का पता चलता है, पर तुलनात्मक अध्ययन से कम-से-कम दो भाषाओं की प्रकृति, आपसी साम्य-वैषम्य और अन्तर आदि एवं महत्त्व का पता चलता है। तुलनात्मक अध्ययन ऐसा निकष है जिस पर इन भाषाओं की अपनी अस्मिता, जीवन्तता, प्राणोष्मा, वैशिष्ट्य और साम्य-वैषम्य को परखा जाता है। साथ ही सुदीर्घ संस्कृति के परिवेश में आपसी आदान-प्रदान, ऐतिहासिक सम्बन्ध, परि-स्थितिजन्य अनुकूलता या प्रतिकूलता एवं विकास-दिशाओं का भी आकलन या मापन किया जाता है। इसलिए हिन्दी को भी अन्य भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

हिन्दी भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में दी गई 14 भाषाओं में एक है। इसे अनुच्छेद 343 (1) के अन्तर्गत भारत संघ की 'राजभाषा' स्वीकार किया गया है। इसके बोलने वालों की संख्या भी बहुत बड़ी है। सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में गूँथने के लिए सबसे सक्षम भाषा भी यही है। [illegible] की भाषा के रूप में इसका प्रयोग होने के कारण यह विश्व की दृष्टि में भी बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठी है। पड़ोसी देशों के साथ व्यापारिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए यह बहुत ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अतएव पड़ोसी भाषाओं के साथ इसका तुल-नात्मक अध्ययन न केवल संस्कृति एवं विचार के स्तर पर ही दोनों को जोड़ेगा, वरन् भाषागत दूरी और भाषा-विरोध को भी दूर करेगा। इससे एक भाषाभाषी को दूसरी

1. "अर्थं वाचः पुष्पं फलमाह।"—1.20; "निरुक्तम् लक्ष्मणस्वरूप", पृ० 18।
2. "अर्थो हि प्रधानं तद्गुणभूतः शब्दः।"—निरुक्तम्, 25।
3. अर्थ तत्त्व की भूमिका, पृ० 27।

भाषा सीखने और अनुवाद करने में भी बहुत मदद मिलेगी। पड़ोसी देश के साथ अच्छे सम्बन्ध का निर्वाह करने के लिए, उसके सांस्कृतिक, मानसिक, वैचारिक और साहित्यिक विकास के अध्ययन के लिए उसकी भाषा का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है। यथासम्भव उस भाषा के साथ अपनी भाषा की प्रकृति एवं विकास का मूल्यांकन करना ज्यादा लाभदायक सिद्ध होता है। इस प्रकार का तुलनात्मक अध्ययन दो देशों को और समीप लाएगा और सम्बन्धों को और सुदृढ़ बनाएगा।

जहाँ तक भाषायी सम्बन्ध की बात है—हिन्दी और नेपाली दोनों आधुनिक आर्यभाषायें हैं और दोनों की माँ संस्कृत है। संस्कृत से हिन्दी या नेपाली तक आने में भाषा को परिवर्तन के अनेक दौर से गुजरना पड़ा है। हमारे यहाँ के वैदिक काल के अनेक शब्दों के अर्थ कुछ और होते थे, परवर्ती काल की संस्कृत भाषा में उनके कुछ और अर्थ हुए और आजकल उन दोनों से भिन्न कुछ और ही अर्थों में उनका प्रयोग देखने को मिलता है। ऐसे तत्सम शब्दों के अलावा विपुल परिमाण में तद्भव, देशज और विदेशी शब्द भी दोनों भाषाओं में आ गए हैं जिनके कारण अर्थभिन्नता आ गई है। इसलिए आज की हिन्दी एवं नेपाली में संस्कृत से आने वाले एक ही तत्सम शब्द के न केवल अर्थ परिवर्तित हो गए हैं, वरन् भाषा की प्रकृति भी भिन्न हो गई है। हिन्दी में तत्सम शब्द के अर्थ नेपाली की अपेक्षा कुछ कम बदले हैं, तद्भव शब्दों के अर्थ ज्यादा। शब्दों के प्रयोग में विभेदीकरण के नियम का पालन करना, पर्यायों के व्यवहार में प्रत्येक शब्द की प्रकृति को पहचानना—हिन्दी में ज्यादा होता है, नेपाली में कम। इस तरह दोनों भाषाओं की प्रकृति का सही ज्ञान—दोनों के सम्बन्ध सूत्र को मजबूत बनाने में सहायक होगा।

एक ही परिवार की दो भाषाओं को दो स्वतन्त्र एवं संप्रभुता-सम्पन्न देशों की राष्ट्रभाषा के रूप में देखकर उनके तुलनात्मक अध्ययन का लोभ सहज ही जग जाता है। फिर जैसाकि मैंने अन्यत्र कहा है, दोनों देशों से मेरा जन्मजात सम्बन्ध रहा है, दोनों भाषाओं ने मुझे अभिव्यक्ति का माध्यम दिया है, अतएव दोनों के तुलनात्मक अध्ययन की उत्सुकता स्वाभाविक ही है।

ख : 3—अद्यावधि कृत कार्य : उपलब्धि एवं सीमायें

अर्थविज्ञान भाषाविज्ञान की नवीनतम शाखा है। अतएव, हिन्दी में इससे सम्बद्ध जितने भी काम हुए हैं, वे परिमाण में कम हैं। नेपाली में अभी तक इस तरह का कोई भी स्वतन्त्र काम नहीं हो सका है। नेपाली हिन्दी की तुलना में एक नवविकसित भाषा है, अतएव अभी भाषाविज्ञान के क्षेत्र में बहुत काम करना शेष है। इसकी अलग-अलग इकाई को लेकर काम करने की बात अभी भविष्य के गर्भ में है।

हिन्दी में शब्द और अर्थ पर अनेक काम किए गए हैं। अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बँगला भाषा के शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया गया है। हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत तत्सम शब्दों में हुए अर्थ परिवर्तनों का परीक्षण भी किया गया है। लेकिन, अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और नेपाली शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन न तो हिन्दी में और न ही नेपाली में किया गया है। नेपाली भाषा का अर्थवैज्ञानिक अध्ययन अभी तक एक अछूता विषय रहा है। इस दृष्टि से, प्रस्तुत शोधकार्य अर्थविज्ञान के क्षेत्र में एक मौलिक कार्य माना जाना चाहिए।

अध्ययन की सुविधा के लिए दोनों भाषाओं में अद्यावधि किये गए कार्यों को निम्नांकित कोटियों में रखा जा सकता है—

(1) हिन्दी एवं नेपाली शब्दों से सम्बद्ध कार्य ;
(2) अर्थविज्ञान से सम्बद्ध कार्य—

क—शोधपूर्ण कार्य,
ख—स्वतंत्र कार्य।

1. हिन्दी एवं नेपाली शब्दों से सम्बद्ध कार्य

हिन्दी और नेपाली में पाये जाने वाले समानार्थी या असमानार्थी शब्दों पर आज तक कोई ठोस या महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया जा सका है। हाँ, श्री बालकृष्ण पोखरेल ने 'नेपाली भाषा र साहित्य' पुस्तक में लगभग साठ ऐसे शब्दों को उदाहरण के रूप में अवश्य पेश किया है जो संस्कृत या उर्दू से नेपाली और हिन्दी या नेपाली और हिन्दी की उपभाषाओं में आकर अर्थ-परिवर्तन के शिकार हो गए हैं। फिर भी, यह ध्यान देने की बात है कि उनमें कुछ ही शब्द ऐसे हैं जो इन भाषाओं में एक ही स्रोत से आकर अर्थ की दृष्टि से भिन्न हो गए हैं। अधिकांश उदाहरण ऐसे हैं जो नेपाली भाषा और उसकी उपभाषाओं के लिए एवं हिन्दी की उपभाषाओं के लिए उपयुक्त हैं।

प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक टर्नर ने अपने शब्दकोश 'ए कम्परेटिव एण्ड इटिमालोजिकल डिक्शनरी ऑफ नेपाली लैंग्वेज' में नेपाली शब्दों को आधुनिक भारतीय भाषाओं के परिप्रेक्ष्य में देखा है। इस शब्दकोश में नेपाली शब्दों के अर्थों के साथ-साथ हिन्दी एवं भारत की अन्य भाषाओं में पाए जाने वाले अर्थों का विवेचन भी किया गया है। इस दृष्टि से यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। फिर भी, सभी नेपाली शब्दों के अर्थ के साथ हिन्दी अर्थों को न तो विवेचित किया गया है और न साथ हिन्दी के साथ ही उनकी तुलना की गई है। इस सम्बन्ध में इतना कहा जा सकता है कि प्रस्तुत पुस्तक में नेपाली शब्दों के अर्थों के विवेचन का दायरा बहुत व्यापक है, मात्र हिन्दी को ही ध्यान में रखकर ऐसा कुछ नहीं किया गया है।

श्री चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी ने अपनी पुस्तक 'नेपाली भाषाको उत्पत्ति' में नेपाली भाषा के शब्द-समूह का वर्णन करने के क्रम में मात्र इस बात को स्वीकार है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषा और नेपाली दोनों का जन्म संस्कृत के गर्भ से होने के कारण बहुत सारे शब्द एक ही तरह के हैं, पर उसका कोई उदाहरण नहीं दिया है।

हिन्दी में अब तक कोई भी ऐसी पुस्तक नहीं है जिसमें हिन्दी और नेपाली शब्दों का तुलनात्मक विवेचन हो।

2. अर्थविज्ञान से सम्बद्ध कार्य

(क) शोधपूर्ण कार्य—इस तरह का कोई भी कार्य अब तक नेपाली भाषा में नहीं हुआ है। हिन्दी में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य इस ढंग के अवश्य हुए हैं। इस क्रम में, सबसे

पहले डॉ० हरदेव बाहरी का 'हिन्दी सिमेन्टिक्स'[1] का नाम लिया जा सकता है जो विषय-वस्तु और अध्ययन-विधि की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यद्यपि उन्होंने यह काम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से किया है, फिर भी विवेच्य भाषा हिन्दी ही है। उन्होंने इस पुस्तक में भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों तरह के विद्वानों के अर्थविज्ञान-सम्बन्धी विचारों को ग्रहण किया है। अर्थविज्ञान, ध्वनि एवं अर्थ का सम्बन्ध, अर्थ-परिवर्तन, तद्भव शब्द, पर्यायवाची एवं नानार्थक शब्द, शब्द, वाक्य एवं व्याकरण आदि पर इस पुस्तक में गहराई से विचार किया गया है। विशेषतः, अर्थ-विकास की प्रक्रिया को हिन्दी शब्दार्थों के संदर्भ में बहुत ही विस्तारपूर्वक दिखाया गया है। फिर भी, हिन्दी शब्दों में हुए अर्थ-परिवर्तन का मात्र उदाहरण और वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है, अर्थ-परिवर्तन का विश्लेषण नहीं किया गया है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक डॉ० शिवनाथ की 'अर्थतत्त्व की भूमिका'[2] है जिसमें नाम, रूप, अर्थतत्त्व और भाषाशास्त्र की अन्य शाखाएँ, शब्द और अर्थ, अर्थबोध के साधन, अर्थ-परिवर्तन की प्रक्रिया एवं कारण आदि पर विचार किया गया है। उन्होंने भारतीय एवं पाश्चात्य मतों का तुलनात्मक विवेचन कर अर्थविज्ञान की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। अर्थ-परिवर्तन के उदाहरण के लिए देशी-विदेशी सभी तरह के शब्द प्रयुक्त हुए हैं। अतएव, अर्थविज्ञान के विभिन्न सिद्धान्तों को समझने के लिए यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है। फिर भी, हिन्दी शब्दों के अर्थ-परिवर्तन का विश्लेषण करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है और न ऐसा किया गया है।

इस क्रम में, डॉ० शिवनराम पाल का शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन'[3] का स्थान भी महत्त्वपूर्ण माना जाना चाहिए। इस पुस्तक में अर्थ-विज्ञान एवं अर्थ-परिवर्तन के कारणों की व्यापक समीक्षा की गई है। अब तक की, मात्र उदाहरण देने वाली परिपाटी का परित्याग करके इन्होंने हिन्दी शब्दों में हुए अर्थ-परिवर्तन का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। हिन्दी में प्रयुक्त लगभग तीन सौ संस्कृत शब्दों को लेकर उन्होंने उनके अर्थ-परिवर्तन की विवेचना की है। यास्क, ब्रेआल आदि विद्वानों द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण की समीक्षा करते हुए उन्होंने स्टीफन उलमान के सैद्धांतिक वर्गीकरण को ही स्वीकार किया है और उसी के आधार पर शब्दार्थों की विवेचना की है, लेकिन वर्गीकरण बड़ा स्थूल और कहीं-कहीं उलझाने वाला बन गया है। फिर भी, संस्कृत प्रयोगों के संदर्भ में हिन्दी तत्सम शब्दों में हुए अर्थ-परिवर्तन को दिखाने वाली यह एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। तुलनात्मक अर्थविज्ञान की यह एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है—सिद्धान्त और अध्ययन-विधि—दोनों दृष्टियों से। इतना होते हुए भी इसकी यह सीमा है कि हिन्दी या संस्कृत दोनों में से किसी भी भाषा की अर्थप्रवृत्ति का निर्देश इसमें नहीं मिलता।

---

1. 1945 ई० में इलाहाबाद विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत डी० लिट्० का शोध-प्रबन्ध तथा अशोक प्रकाशन, दिल्ली से 1962 ई० में प्रकाशित।

2. संवत् 2018 वि० में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित।

3. 1957 ई० में आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्राप्त पी-एच०डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध तथा प्राची प्रकाशन, मेरठ द्वारा सन् 1964 ई० में प्रकाशित।

अर्थविज्ञान की दृष्टि से दो भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन के क्षेत्र में डॉ० राधाकृष्ण सहाय का शोध-प्रबन्ध 'अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी और बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन'[1] एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इस पुस्तक में इन्होंने अर्थ-विज्ञान-सम्बन्धी भारतीय एवं पाश्चात्य मतों की व्यापक समीक्षा की है और डॉ० केशवराम पाल की अध्ययन-विधि से हटकर एक नई अध्ययन-विधि की शुरुआत की है। इन्होंने समान स्रोत से आये 613 भिन्नार्थक शब्दों को लेकर हिन्दी और बँगला में पाये जाने वाले शब्दों का न केवल अर्थ-वैभिन्न्य दर्शाया है, वरन् संभावित कारणों का विवेचन-विश्लेषण भी किया है। ब्रेआल द्वारा प्रस्तुत तार्किक वर्गीकरण की पूर्णता एवं उत्कृष्टता को स्वीकारते हुए इसी के आधार पर प्रयुक्त शब्दों का वर्गीकरण और यथास्थान उनका सैद्धान्तिक विवेचन भी किया गया है। प्रबन्ध के अन्तिम अंश में सम्पूर्ण परीक्षण और विवेचन के आधार पर एक निष्कर्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस तरह, प्रस्तुत प्रबन्ध वैज्ञानिक अध्ययन विधि और समन्वित सैद्धान्तिक विवेचन के कारण एक उत्कृष्ट कृति है। तुलनात्मक अर्थवैज्ञानिक अध्ययन के क्षेत्र में इसे महत्त्वपूर्ण एवं मानक शोध-प्रबन्ध माना जाना चाहिये।

(ख) स्वतंत्र कार्य—स्वतन्त्र रूप से हिन्दी अर्थविज्ञान पर साधारणतया अच्छा काम ही हुआ है। इस संदर्भ में सबसे पहले बाबू श्यामसुन्दर दास की पुस्तक 'भाषाविज्ञान'[2] का नाम लिया जा सकता है जिसमें उन्होंने हिन्दी एवं अन्य भाषाओं के शब्दों का उदाहरण देकर अर्थ-परिवर्तन के कारणों एवं दिशाओं को दिखाने का स्तुत्य प्रयास किया है।

डॉ० बाबूराम सक्सेना ने अर्थविज्ञान-सम्बन्धी दो पुस्तकें—'सामान्य भाषा-विज्ञान'[3] एवं 'अर्थविज्ञान'[4] लिखकर इस क्षेत्र में अच्छा योगदान किया है। 'सामान्य भाषाविज्ञान' में 'अर्थविचार' शीर्षक देकर अर्थ-विकास के कारणों पर विस्तार से विचार किया गया है। शब्द-समूह एवं उसके प्रयोग पर भी अच्छा प्रकाश डाला गया है। हिन्दी, संस्कृत एवं अरबी-फारसी शब्दों का उदाहरण देकर अर्थ-विकास को समझाया गया है जिससे विवेचित विषय सुग्राह्य हो गया है। अपनी दूसरी पुस्तक 'अर्थविज्ञान' में भारतीय एवं विदेशी विद्वानों के मतों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने निजी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है और इसी क्रम में अर्थ-परिवर्तन के अनेक उदाहरण हिन्दी से दिए गए हैं।

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा की पुस्तक 'भाषाविज्ञान की भूमिका'[5] भी अर्थ-विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले परिवर्तन की समीक्षा प्रस्तुत करती है। इसमें उन्होंने अर्थ-विकास के कारण एवं दिशाओं की स्पष्ट व्याख्या की है, साथ ही अर्थ-परिवर्तन के उदाहरण भी दिए हैं।

---

1. भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध और हिन्दुस्तानी एकाडेमी, इलाहाबाद द्वारा सन् 1974 ई० में प्रकाशित।

2. इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग द्वारा सं० 199[illegible] में प्रकाशित।

3. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा सं० 2010 में प्रकाशित।

4. पटना विश्वविद्यालय की संस्था में 1947 ई० में 'रामदीन रीडरशिप व्याख्यानमाला' के अन्तर्गत दिए गए आठ व्याख्यानों का संग्रह तथा पटना विश्वविद्यालय द्वारा 1951 ई० में प्रकाशित।

5. राधाकृष्ण प्रकाशन द्वारा 1966 में प्रकाशित।

श्री रामचन्द्र वर्मा ने शब्द और अर्थ पर विचार करते हुए 'शब्द और अर्थ'[1] एवं 'शब्दार्थ-दर्शन'[2] नामक दो पुस्तकें लिखीं। 'शब्द और अर्थ' में इन्होंने अर्थ की महत्ता पर विचार किया है और हिन्दी के कुछ शब्दों के अर्थों में पाये जाने वाले सूक्ष्म भेद को दर्शाया है। 'शब्दार्थ-दर्शन' में इन्होंने शब्दों के स्वरूप एवं अर्थ-परिवर्तन के कारणों का सुन्दर विवेचन किया है।

कपिलदेव द्विवेदी आचार्य द्वारा लिखित 'अर्थविज्ञान और व्याकरण-दर्शन'[3] अर्थविज्ञान के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमें इन्होंने प्राचीन भारतीय आचार्यों के शब्द और अर्थसम्बन्धी विचारों को बहुत कुशलतापूर्वक वर्णित किया है। प्राचीन भारतीय साहित्य में शब्द और अर्थ को कितना महत्त्वपूर्ण समझा जाता था और इनका विवेचन किस सूक्ष्मता और मौलिकता के साथ किया गया है—इसको समझने के लिए यह पुस्तक बहुत ही उपयोगी है। संस्कृत साहित्य के शब्द, अर्थ, पद, वाक्यसम्बन्धी विचारों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का यह श्लाघ्य प्रयास है।

'शब्दों का जीवन'[4] और 'शब्दों का अध्ययन'[5] डॉ० भोलानाथ तिवारी के दो ऐसे प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनमें शब्द और अर्थसम्बन्धी विचारों की व्यापक अभिव्यक्ति की गई है। इनके अलावा 'भाषाविज्ञान'[6] और 'भाषाविज्ञान कोश'[7] में भी इन्होंने अर्थ-परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं का विवेचन सोदाहरण किया है।

डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का विवेचन अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा'[8] में किया है। उन्होंने इस पुस्तक में, प्राचीन भारतीय मतों को ध्यान में रखकर शब्दार्थ-सम्बन्धी विचारधारा को कई कोटियों में बाँटा है।

इसी तरह डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल की पुस्तक 'भाषाविज्ञान और हिन्दी'[9] में एवं प० अनारायण की पुस्तक 'आधुनिक भाषाविज्ञान'[10] में अर्थ-परिवर्तन के कारण एवं दिशाओं का संक्षिप्त वर्णन मिलता है।

नेपाली में इस क्षेत्र में थोड़ा-बहुत स्वतंत्र कार्य हुए हैं।

प्रो० रामराज पन्त ने 'नेपाली भाषाविज्ञान'[11] पुस्तक में अर्थ-परिवर्तन का कहीं-कहीं उदाहरण प्रस्तुत किया है।

---

1. शब्दलोक प्रकाशन, बनारस—2 द्वारा सं० 2022 में प्रकाशित।
2. रचना प्रकाशन, इलाहाबाद—1 द्वारा सन् 1968 ई० में प्रकाशित।
3. हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तरप्रदेश, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।
4. राजकमल प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
5. शब्दकार, दिल्ली—6 द्वारा सन् 1969 में प्रकाशित।
6. किताब महल, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।
7. ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी द्वारा सं० 2020 में प्रकाशित।
8. मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली द्वारा प्रकाशित।
9. भारतीय विद्याभवन, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।
10. ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना—4 द्वारा प्रकाशित।
11. काठमांडू में 1959 ई० में प्रकाशित।

प्रो० बालकृष्ण पोखरेल ने 'नेपाली भाषाको कथा'[1] में कहीं-कहीं नेपाली शब्दों में होने वाले अर्थ-परिवर्तन को दर्शाया है। इन्होंने अपनी दूसरी पुस्तक 'नेपाली भाषा र साहित्य'[2] के 'शब्दार्थ तत्त्व' नामक अध्याय में शब्द और अर्थ पर विचार किया है और संस्कृत, नेपाली, हिन्दी तथा हिन्दी की उपभाषाओं से उदाहरण दिया है।

श्री चूड़ामणि बन्धु ने अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान'[3] के अध्याय १० (भाषामा परिवर्तन) के 'अर्थमा परिवर्तन' उप-अध्याय में ब्रेआल के अनुसार अर्थविकास, अर्थसंकोच एवं अर्थादेश का वर्णन किया है। इस क्रम में हिन्दी और नेपाली में समान रूप से आने वाले शब्दों को, जिनमें अर्थ-परिवर्तन हुआ है, उदाहरण के रूप में पेश किया गया है। फिर भी, ऐसे शब्दों की संख्या कम है और जो भी शब्द आए हैं, वे अधिकांशतः डॉ० भोलानाथ तिवारी के 'भाषाविज्ञान' में दिए गए उदाहरण से साम्य रखते हैं। 'अर्थविज्ञान' अध्याय में भी इन्होंने कुछ सम्बन्धवाचक, ग्राम्य प्रयोग में आने वाले और पर्यायवाची शब्दों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है, लेकिन यहाँ अर्थ-परिवर्तन की दिशाएँ नहीं दिखाई गई हैं।

इस तरह, हिन्दी में अर्थविज्ञान के क्षेत्र में कुछ महत्त्वपूर्ण काम हुए हैं, पर नेपाली में अभी इस तरह के काम का अभाव प्रतीत होता है। यदि एक-दो फुटकर निबन्धों को छोड़ दें तो कहना होगा कि अभी नेपाली में भाषाविज्ञान के सैद्धान्तिक विवेचन का काम भी अधूरा है। जो भी थोड़ा-बहुत काम भाषाविज्ञान के क्षेत्र में (अर्थविज्ञान के क्षेत्र में अलग इकाई के रूप में नहीं) हुआ है, उस पर भी हिन्दी का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है।

[: 4— अध्ययन-विधि

स्तुत अध्ययन

प्रस्तुत अध्ययन हिन्दी एवं नेपाली भाषाओं के शब्दों में हुए अर्थ-परिवर्तन की प्रवृत्ति को उद्घाटित करने की दिशा में एक प्रयास है। दोनों भाषाओं के अर्थ-परिवर्तन की प्रवृत्ति को समझने के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ा है और अन्ततः निष्कर्ष निकाला गया है।

इस तरह का एक महत्त्वपूर्ण काम हिन्दी और बँगला शब्दों को लेकर डॉ० रामनारायण सहाय ने किया है। इसलिए, हमारे सामने अध्ययन के लिए एक बना-बनाया कार्यपद्धति (मेथॉडॉलॉजी) थी, जिसका हमने उपयोग किया है। संस्कृत शब्दों में हुए अर्थ-परिवर्तन को डॉ० केशवराम पाल ने उलमान के मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर परखा-परखा है। डॉ० सहाय का वर्गीकरण ब्रेआल के तार्किक वर्गीकरण पर आधारित है। इन दोनों में मुझे ब्रेआल का वर्गीकरण ही पूर्ण और व्यावहारिक जान पड़ा, जिससे मैंने डॉ० सहाय की पद्धति का ही अनुसरण किया। हाँ, जहाँ आवश्यक जान पड़ा, मैंने डॉ० पाल के वर्गीकरण का भी सहारा लिया है।

1. जगदम्बा प्रकाशन, ललितपुर द्वारा सं० 2019 में प्रकाशित।

2. रत्न पुस्तक भण्डार, काठमांडू द्वारा सं० 2021 में प्रकाशित।

3. नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, कमलादी, काठमांडू द्वारा सं० 2030 प्रकाशित।

डॉ० सहाय का विवेच्य विषय हिन्दी और बंगला है जिस वजह से हमारा और उनका कार्यक्षेत्र सर्वथा भिन्न हो गया है। न केवल विवेच्य शब्द, वरन् निष्कर्ष भी स्वभावतया भिन्न हो गए हैं। हाँ, पहले की कृति होने के कारण उनकी कार्यपद्धति (मेथॉडोलॉजी) मददगार हो सकती थी, और मैंने उसका पूरा-पूरा लाभ उठाया है। प्रस्तुत शोध का ढाँचा लगभग वही है जो डॉ० सहाय के प्रबन्ध का है। फिर भी, जहाँ आवश्यक समझा गया है, उसमें पर्याप्त परिवर्तन लाया गया है। प्रथम अध्याय के बहुत सारे उप-अध्यायों को अनावश्यक समझकर छोड़ दिया गया है, अनावश्यक इसलिए कि या तो ये सारी बातें कई पुस्तकों में उपलब्ध हैं और इस क्षेत्र में सिवा पुनरुक्ति के हम कोई नई बात नहीं कह सकते थे या उन्हें प्रस्तुत अध्ययन से सीधा सम्बद्ध नहीं समझा गया। कई स्थलों पर वर्गीकरण में भी उलट-फेर किया गया है। डॉ० सहाय ने अर्थ-विस्तार के अन्तर्गत 'साहचर्य' को दिखाया है, पर उन्होंने इसका कोई वर्गीकरण नहीं किया। मैंने इसे 'भाव-साहचर्य' और रूप-साहचर्य' दो कोटियों में बाँट दिया है। इसी तरह उन्होंने 'सादृश्य' का कोई विभाजन नहीं किया, पर मैंने इसे भी कई भागों में बाँट दिया है। अर्थादेश के अन्तर्गत आने वाले 'अर्थोपकर्ष' को उन्होंने मात्र 'संसर्ग' और 'अलंकार' में बाँटा है, पर मैंने अर्थापकर्ष की तरह ही इसे भी संसर्ग, संस्कृति, अलंकार और विशिष्टीकरण---चार भागों में विभाजित किया है। इस प्रकार, मूलतः ब्रेआल के वर्गीकरण को उन्होंने भी अपनाया है और मैंने भी उसी आधार पर प्रस्तुत अध्ययन को निष्कर्ष तक पहुँचाया है।

तुलनात्मक अध्ययन का आधार और सीमा-निर्धारण

हिन्दी और नेपाली---दोनों भाषाओं का अपना-अपना शब्द समूह है और वे परिमाण में विशाल हैं। दोनों में पर्याप्त मात्रा में तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी शब्द प्रयुक्त होते हैं जो बहुत अंश में एक-दूसरे से भिन्न हैं। मूलतः दोनों भाषाओं का जन्म एक ही माँ संस्कृत के गर्भ से हुआ है इस कारण बहुत सारे समान तत्सम शब्द दोनों में आ गए हैं, जो एक होकर भी अर्थ की दृष्टि से एक नहीं हैं। एक भाषा के शब्द जब दूसरी भाषा में जाते हैं तब उनके उच्चारण और रूप ही नहीं बदलते, कभी-कभी उनके अर्थ भी बदल जाते हैं। यही बात दूसरी भाषा (विदेशी भाषा से) से आए शब्दों के साथ भी होती है। [illegible] एन० ने लिखते हैं, "अन्यान्य भाषाओं के शब्द जब हमारी भाषा में आते हैं तब वे हमारे नियमों, प्रवृत्तियों आदि से नियन्त्रित और शासित होते हैं जिससे अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है।"[1]

तत्सम शब्दों की तुलना में तद्भव शब्दों में अर्थ-परिवर्तन की ज्यादा संभावना रहती है, क्योंकि शब्द का रूप बदल जाने के कारण समय का अन्तराल पाकर नवीन परिस्थितियों के बीच अर्थ का बदल जाना स्वाभाविक है। चूँकि देशज शब्द भिन्न धरती की उपज होते हैं, अतएव उनमें अर्थभिन्नता का न होना ही अस्वाभाविक है।

अतएव, इन विभिन्नताओं और शब्द के विपुल भण्डार को देखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में मात्र उन्हीं शब्दों को सम्मिलित किया गया है जो अर्थविज्ञान और तुलनात्मक

1. "We must also observe that when a word is borrowed by another Language, it may come to diverge widely in meaning from its earlier sense." —Foundation of Language, p. 243.

अध्ययन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ठहरे हैं। मतलब यह कि वे शब्द ही जिनका मूल एक है, पर प्रयोग द्वारा जिनके अर्थ भिन्न-भिन्न पाए गए हैं, प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत विवेचित हुए हैं।

ऐसे बहुत सारे शब्द किसी भी भाषा में पाए जा सकते हैं जो दूसरी भाषा के शब्द से मिलते-जुलते हों। गहराई से छानबीन करने पर पता लगता है कि उनका रूप-साम्य मात्र संयोगवश हो गया है, वे एक ही मूल से उद्भूत या विकसित नहीं है। इस तरह के शब्दों का महत्त्व, भले ही ध्वनिविज्ञान के लिए हो, अर्थ-विज्ञान के लिए ये महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। दो सौ से ऊपर शब्द हिन्दी और नेपाली में इसी कोटि के पाये गए हैं, लेकिन मूल भिन्नता के कारण उन्हें प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया गया है।

अनेकार्थी शब्दों को भी प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया जा सका है, क्योंकि उनके अर्थों में एक तरह की अस्पष्टता और अनिश्चितता रहती है। एक ही शब्द के अनेक अर्थों के बीच विभाजकरेखा खींचना कठिन होता है।

लगभग यही स्थिति पर्यायवाची शब्दों की भी है। इन शब्दों के अर्थों में इतना सूक्ष्म भेद रहता है कि उनमें पर्याप्त अन्तर खोजना कठिन होता है। ऐसे शब्दों का अर्थ-भेद सामान्यतः अप्रधान रहता है और अर्थगत दूरी बहुत कम। फिर भी, दोनों भाषाओं में पाये जाने वाले कुछ पर्यायवाची शब्द भी प्रस्तुत अध्ययन में ग्रहण किए गये हैं—मात्र दोनों भाषाओं में शब्दों की गतिविधि और दोनों भाषाओं की अर्थगत दूरी निर्धारित करने के लिए।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्द निर्माण-प्रक्रिया में है और नेपाली में अभी यह ठीक से शुरू नहीं हुआ है। अतएव, ऐसे शब्दों को प्रस्तुत अध्ययन में सम्मिलित करना उचित नहीं समझा गया।

शब्दों के प्रयोग को देखते हुए किसी भी भाषा के शब्द-समूह को दो भागों में बाँटा जा सकता है—शिष्ट और साधारण। शिष्ट और साधारण शब्दों का वास्तविक अन्तर व्युत्पत्ति पर नहीं, वरन् प्रयोग पर निर्भर करता है। इससे कोई अन्तर नहीं आता कि कैसे और कहाँ किसी शब्द की उत्पत्ति हुई—यदि वह साधारण लोगों के द्वारा सामान्यतया व्यवहृत होता है और उसे 'बड़ा शब्द' के रूप में नहीं समझा जाता है तो वह साधारण शब्द है।[1] तात्पर्य यह कि साधारण शब्द वह है जिसका व्यवहार लोग दैनिक जीवन में, हाट-बाजार में, दोस्त-मित्रों में करते हैं।

इसके विपरीत, दूसरे वर्ग में ऐसे शिष्ट शब्द आते हैं जिनका व्यवहार दैनिक जीवन में या बातचीत में अपवाद रूप में ही होता है। प्रायः सभी शिक्षित व्यक्ति ऐसे शब्दों के अर्थ भलीभाँति जानते हैं, फिर भी उनका उपयोग दैनिक जीवन में नहीं करते।

---

1. "The true distinction between a 'learned' and a 'popular' word depends not upon etymology but upon usage. It makes no difference how or when a word originated : it is popular if it is in common use among plain speakers and is not felt by them as a 'big word,
—Words and their Ways in English Speech—J. B. Greenough, p. 29.

ऐसे शब्द पुस्तकों के अन्दर, विद्वानों के भाषणों में और किसी विशिष्ट शिक्षित लोगों के वाद-विवाद के मध्य देखे और सुने जा सकते हैं।

ये दोनों तरह के शब्द—भाषाशास्त्रीय दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि तुलनात्मक दृष्टि से शब्दों के प्रायोगिक पक्ष को स्पष्ट करने में इनसे काफी मदद मिलती है। अतएव, प्रस्तुत अध्ययन में विवेच्य शब्दों को इन दो कोटियों में विभाजित किया गया है जिनके संकेत-चिह्न की सूचना प्रारम्भ में दे दी गई है।

इस तरह, प्रस्तुत अध्ययन में लगभग सभी तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सममूलीय भिन्नार्थक शब्दों को समेटने का प्रयास किया गया है। उनके सैद्धान्तिक विवेचन के साथ-साथ प्रायोगिक पक्ष को भी सम्मिलित किया गया है जिससे विवेचन ज्यादा-से-ज्यादा पूर्ण हो।

तुलनात्मक अध्ययन के साधन

जिन शब्दों का प्रस्तुत प्रबन्ध में उपयोग किया गया है, उनके तुलनात्मक अध्ययन के लिए मुख्य दो साधन अपनाए गए हैं—(1) कोश, और (2) साहित्य। कोश के सहारे शब्दों की व्युत्पत्ति, ध्वनि और अर्थ का निर्धारण किया गया है और साहित्य के सहारे अर्थ-विकास की प्रामाणिकता दिखाई गई है।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है, अर्थ-परिवर्तन का रूप पहले बोलचाल की भाषा में उभरता है, बाद में यह साहित्य में भी स्वीकृत हो जाता है। इसलिए, परिवर्तित अर्थ की प्रामाणिकता को दिखाने के लिए साहित्य या लोक-व्यवहार का सहारा लेना आवश्यक है। जहाँ कहीं साहित्य में विवेच्य शब्द को ढूँढ़ने में कठिनाई हुई है, ऐसे स्थल पर अर्थ-विकास की प्रामाणिकता के लिए लोक-व्यवहार का सहारा लिया गया है। प्रयास किया गया है कि मुहावरे, लोकोक्ति और लोक-प्रचलन में खूब चलने वाले वाक्य ही उदाहरण के रूप में दिए जायें।

शब्द-चुनाव की विधि

हिन्दी अर्थ को ध्यान में रखकर, निम्नांकित कोशों के आधार पर दोनों भाषाओं के ऐसे शब्दों का चुनाव किया गया है जो सममूलीय पर भिन्नार्थक हैं—

(अ) संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सप्तम संस्करण, सं० 2028 वि०।

(आ) नेपाली-इंगलिश डिक्शनरी—भाग्यलक्ष्मी प्रकाशन, कालिम्पोंग, 1971 ई०।

(इ) संक्षिप्त नेपाली-हिन्दी कोश—जगदम्बा प्रकाशन, श्रीदरबार, ललितपुर, सं० 2019 वि०।

(ई) नेपाली शब्दकोश—रायल नेपाल एकाडमी, काठमांडू, नेपाल।

फिर नेपाली में पाये जाने वाले हिन्दी से भिन्न अर्थ की परीक्षा नीचे दिए कोशों के आधार पर की गई है—

(क) ए कम्परेटिव एण्ड एटिमॉलोजिकल डिक्शनरी आफ नेपाली लैंग्वेज—सं० आर० एल० टर्नर, लंदन, 1931 ई०।

(ख) बृहत् नेपाली शब्दकोश----नेपाली साहित्य भंडार, विराटनगर, नेपाल।

व्युत्पत्ति-निर्णय विधि

चुने गए शब्दों की व्युत्पत्ति एवं उनके मौलिक अर्थनिर्णय के लिए मुख्यतः निम्नांकित कोशों को आधार रूप में ग्रहण किया गया है----

(अ) संस्कृत कोश सुधा----पं० श्यामसुन्दर शर्मा 'काव्यतीर्थ', सुबोध ग्रन्थमाला कार्यालय, राँची, बिहार।

(आ) संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी----वी० एस० आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 1963 ई०।

(इ) द प्रैक्टिकल संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी----वी० एस० आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पटना, वाराणसी।

(ई) ए संस्कृत-इंगलिश डिक्शनरी----सर मोनियर मोनियर विलियम, आक्सफोर्ड, 1965 ई०।

(उ) शब्द-कल्पद्रुम----राधाकान्त देव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, 1961 ई०।

(ऊ) उर्दू-हिन्दी डिक्शनरी----अलीगढ़, अंजुमन-ए-तारक्की-ए-उर्दू (हिन्द), 1955 ई०।

(ए) ए कम्परेटिव पर्शियन-इंगलिश डिक्शनरी----एफ० स्टेनगास, दो भाग, लंदन, 1930 ई०।

(ऐ) लोगात गश्वी----मौलवी अब्दुल अजीज, मतवा मजीदी, कानपुर, 1929 ई०।

(ओ) जामए उल्लगात----मौलवी मुहम्मद रफी, रामनारायण रामदयाल अग्रवाल, इलाहाबाद, 1951 ई०।

(औ) उर्दू-हिन्दी शब्दकोश----मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1959 ई०।

(अं) बृहत् हिन्दी कोश----ज्ञानमंडल लिमिटेड, बनारस--1, सं० 2013 वि०।

(अः) हिन्दी शब्दसागर----श्यामसुन्दर दास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 1926।

(ऋ) चैम्बर्स ट्वेन्टिएथ सेन्चुरी डिक्शनरी----थोमस डेविडसन, एम० ए० एण्ड आर; चैम्बर्स लिमिटेड, लंदन एण्ड एडिनबर्ग, 1929।

नेपाली में पाए जाने वाले अर्थ की प्रामाणिकता

नेपाली शब्दों के अर्थ की प्रामाणिकता के लिए स्वतंत्र रूप से, उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के नेपाली मानक गद्य-साहित्य से प्रमाण रूप में प्रयोगों को यथासाध्य इकट्ठा किया गया है। इसमें विशेष ध्यान उपन्यास और कथा-साहित्य पर रखा गया है, क्योंकि प्रसंग और कथानक के आग्रह पर शब्द अनायास अपने प्रचलित अर्थ में व्यवहृत हो जाते हैं। कोश एवं साहित्य के अलावा आवश्यकतानुसार कथ्य प्रयोगों को भी उपस्थित किया गया है।

कुछ ऐसे अर्थ जिनका प्रयोग साहित्य में नहीं पाया जा सका, उनके लिए कोश और निजी प्रयोग अर्थात् नेपाली कथ्य प्रयोग को ही प्रामाणिक मान लिया गया है।

हिन्दी का अध्येता होने के कारण हिन्दी प्रयोगों के लिए साहित्य का सहारा न लेकर मात्र कोश और अपनी निर्णय-बुद्धि को ही प्रामाणिक माना गया है।

शब्दों पर टिप्पणी

टिप्पणी के अन्तर्गत हर शब्द की व्युत्पत्ति का निर्देश कर दिया गया है, पर इस सिलसिले में कहीं-कहीं कठिनाइयाँ भी आई हैं। कहीं-कहीं अधिक कोशकारों के मत के आधार पर और कहीं-कहीं अर्थविकास को देखते हुए स्वविवेक के आधार पर व्युत्पत्ति का निर्धारण कर लिया गया है और जहाँ उचित समझा गया है, वहाँ एक से अधिक संभावित व्युत्पत्ति का निर्देश कर दिया गया है।

दूसरी कठिनाई कुछ विदेशी शब्दों को लेकर महसूस की गई है जिनके मूल निर्धारण में हिन्दी और नेपाली कोशकारों में पर्याप्त अन्तर दीखता है। यहाँ भी, कोशों के मतों को देखते हुए स्वविवेक से काम लिया गया है।

अर्थ-परिवर्तन की विवेचना करने के पहले प्रत्येक विवेच्य शब्द के साथ बड़े कोष्ठक में व्युत्पत्तिमूलक शब्दभेद (तत्सम, तद्भव, देशज या विदेशी) का निर्देश कर दिया गया है। संपूर्ण विवेच्य शब्द-समूह को दो वर्गों—शिष्ट और साधारण शब्द में बाँटा गया है और उनका संकेत संकेत चिह्नों के प्रयोग कर दिया गया है। संज्ञा, सर्वनाम आदि शब्दभेद का स्पष्ट संकेत कहीं नहीं किया गया है, क्योंकि यह वर्गीकरण इतना स्थूल और सरल है कि इसे आसानी से समझ लिया जा सकता है। फिर भी, निष्कर्ष और सांख्यिक विवरण में इसका निर्देश किया गया है।

प्रत्येक शब्द के अर्थ-परिवर्तन का निर्धारण व्युत्पत्तिमूलक अर्थ के आधार पर किया गया है। अन्त में, अर्थ में परिवर्तन लाने वाले संभावित कारण या कारणों की व्यापक खोज की गई है। सामाजिक, राजनैतिक, भौगोलिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक या भाषावैज्ञानिक—जो भी प्रत्यक्ष या परोक्ष कारण रहा हो, उसका तार्किक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इसमें कठिनाई का सामना करना पड़ा है, क्योंकि बीच की खोई हुई कड़ियों को ढूँढ निकालना और अर्थ परिवर्तन को ठीक-ठीक निरूपित करना बहुत ही कठिन काम है। फिर भी, यथासंभव सही और तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत की गई है। अन्त में, अर्थ-परिवर्तन की दिशा का निर्देश कर दिया गया है।

वर्गीकरण

प्रत्येक विवेच्य शब्द की टिप्पणी के अन्त में, उसमें होने वाले अर्थ-विकास का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। जैसा पहले कहा जा चुका है, यह वर्गीकरण मुख्यतया ब्रेआल के तार्किक वर्गीकरण पर आधारित है।

प्रत्येक वर्गीकरण के प्रारंभ में अर्थविज्ञान के मान्य सिद्धान्तों का संक्षिप्त परिचय दे दिया गया है। बाद में, सम्पूर्ण विवेच्य शब्द-समूह को नेपाली में हुए अर्थ-विकास के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। अतएव, नेपाली में हुए अर्थ-विकास का अलग से निर्देश नहीं किया गया है। हाँ, नेपाली के जिन शब्दों में अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ

है, उसका निर्देश टिप्पणी के अन्तर्गत कर दिया गया है। सबके अन्त में, हिन्दी भाषा में हुए अर्थ-विकास का निर्देश किया गया है। जिन शब्दों का हिन्दी में अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है—उनको टिप्पणी के अन्त में बिना कोई निर्देश दिये यों ही छोड़ दिया गया है। जहाँ एक से अधिक प्रकार के अर्थ-परिवर्तन एक ही भाषा के शब्द में दिखाई पड़े हैं, वहाँ मुख्य परिवर्तन को ही स्वीकार किया गया है।

अर्थ-प्रवृत्ति का निर्देशन

निष्कर्ष निकालने के लिए दोनों भाषाओं की अर्थ-प्रवृत्ति का निर्धारण आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक प्रकार के अर्थ-परिवर्तन के अन्त में सांख्यिक विवरण प्रस्तुत किया गया है तथा सबके अन्त में पूर्ण सांख्यिक विवरण देकर कतिपय निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। सांख्यिक विवरण के क्रम में निम्नांकित दृष्टि-बिन्दुओं का ध्यान रखा गया है—

(अ) अर्थ-विकास के प्रकार की दृष्टि से, अर्थात् अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच या अर्थादेश।

(आ) शब्दभेद की दृष्टि से, अर्थात् संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय आदि।

(इ) शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से, अर्थात् तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी।

(ई) शब्द-प्रयोग की दृष्टि से, अर्थात् शिष्ट और साधारण शब्द।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्द (कुल 579) के सहारे उपर्युक्त दृष्टियों से दोनों भाषाओं में घटित अर्थ-परिवर्तन के संभावित कारणों की खोज का प्रयास किया गया है और अन्त में दोनों भाषाओं की अर्थ-प्रवृत्ति की विवेचना करके प्रस्तुत अध्ययन को निष्कर्षात्मक अन्त तक पहुँचाया गया है। इसी निष्कर्ष के अन्तर्गत व्यापक रूप से उपर्युक्त सारे दृष्टि-बिन्दुओं के आधार पर दोनों भाषाओं की समीक्षा की गई है और इनके आपसी साम्य-वैषम्य को दिखाते हुए वर्तमान अर्थ-प्रवृत्ति का निर्देश किया गया है। यहाँ दोनों भाषाओं की वर्तमान स्थिति को स्पष्ट करने के साथ-साथ यथासंभव भावी दिशा-निर्देश करना भी विवेचना का उद्देश्य रहा है।

अध्याय 2

शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन

अ : अर्थ-विस्तार

जब शब्दों का अर्थ किसी विशिष्ट अर्थ से हटकर सामान्य हो जाता है तो उसे अर्थ-विस्तार कहते हैं। प्रारंभ में कुछ शब्दों का प्रयोग सीमित अर्थ में होता है, पर बाद में धीरे-धीरे उनका प्रयोग विस्तृत अर्थों में होने लगता है, इसे ही अर्थ-विस्तार कहते हैं। श्री श्यामसुन्दर दास अर्थ-विस्तार की प्रक्रिया पर विचार करते हुए लिखते हैं, "उपाधियों और कुछ गुणों के आधार पर ही नाम रखे जाते हैं, पीछे उन नामों का रूढ़ और संकुचित अर्थ सामने रह जाता है और यौगिक अर्थ भूल जाता है। ऐसी स्थिति में वह नाम आवश्यकता पड़ने पर विशेष से सामान्य की ओर बढ़ने लगता है।"[1]

कभी-कभी, शब्द इतने सामान्य हो जाते हैं कि वे सामान्य में से किसी विशेष वस्तु का फर्क करना छोड़ देते है।[2] हरदेव बाहरी मानते हैं कि एक दृष्टि से व्यक्तिवाचक संज्ञा को छोड़कर सभी शब्द सामान्य होते हैं। यह विशिष्ट या संकुचित किसी ज्यादा व्यापक पद की तुलना में होता है।[3] इसलिए, यह मानना अयुक्तिसंगत नहीं होगा कि अर्थ-विस्तार मूलतः तुलनात्मक दृष्टिकोण पर आधारित है। कम व्याप्ति की तुलना में अधिक व्याप्ति होने पर या विशिष्ट की तुलना में सामान्य हो जाने पर अर्थ-विस्तार कहलाने लगता है।

प्रत्येक भाषा में एक विशेष शब्द-समूह होता है जिसका अर्थ स्थिर या स्पष्ट नहीं हुआ करता है।[4] ज्यों-ज्यों भाषा का विकास होता है, वे शब्द भी सामान्यतया विस्तृत अर्थों का बोध कराने लगते हैं। एक समय ऐसा भी आता है कि उनका विशिष्ट अर्थ लुप्त हो जाता है और सामान्य अर्थ में ही प्रचलित हो जाता है। भर्तृहरि ने लिखा है कि

1. भाषाविज्ञान, पृ० 206।

2. "The words become so very general that it ceases to distinguish anything in particular from everything else." J. B. Greenough & G.L. Kitteredge Words and their Ways in Englisn Speech, p 241.

3. "In a sense, every word other than the name of an individual is general. It is specialized or restricted in comparison with the more general term. '—Hindi Semantics, p. 213.

4. डॉ० राधाकृष्ण सहाय--अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 77।

समानता के आधार पर ही अर्थ-विस्तार होता है।[1] यास्क ने (निरुक्त 2,20) लिखा है कि साहचर्य के कारण एक शब्द का अन्य अर्थ में प्रयोग होता है। पुनः यास्क मानते हैं कि सादृश्य अर्थ-विस्तार का मूल कारण है।[2] हरदेव बाहरी के अनुसार भी साहचर्य और सादृश्य अर्थ-विस्तार का कारण है।[3]

भर्तृहरि ने कहा है—कहीं पर अर्थ का गुण-प्रधान भाव विवक्षित नहीं रहता है; कहीं पर अर्थ का सान्निध्य ज्ञान में कारण नहीं होता; कहीं पर जो शब्द के द्वारा संगृहीत नहीं है, उसका ज्ञान होता है और कहीं पर प्रधान अर्थ ही अन्य अर्थ का बोध कराता है। इनमें द्वितीय और चतुर्थ अर्थ-विस्तार का निर्देश करते हैं— (१) शब्द के अर्थ के एक अंश की अविवक्षा द्वारा शब्द के अर्थ का विस्तार करना, (२) अपने अर्थ का बोध कराते हुए अन्य सम्बद्ध अर्थ का भी बोध कराना।[4] पतञ्जलि का कथन है कि अर्थ-विस्तार विशेष की अविवक्षा और सामान्य की विवक्षा से होता है।[5]

इस तरह, शब्दों में अर्थ-विस्तार की प्रवृत्ति है, इसे सभी स्वीकार करते हैं। पर, इसके साथ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भाषा ज्यों-ज्यों सबल होती जाती है, उसमें अर्थ-विस्तार की अपेक्षा अर्थ-संकोच ज्यादा घटित होते हैं। अर्थ-विस्तार कभी-कभी ही घटित होता है—ऐसा कई विचारकों का मत है।[6] भाषा ज्यों-ज्यों विकसित होती है, वह सूक्ष्म एवं विशिष्ट अर्थों को द्योतित करती है। अतएव, जिस भाषा में अर्थ-विस्तार बहुत अधिक घटित होते हैं, उसे उन्नत भाषा नहीं माना जा सकता।

इसके साथ हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि एक ही शब्द में कभी अर्थ-विस्तार और कभी अर्थ-संकोच—दोनों घटित हो सकता है। जैसे, जी० सी० स्वाट का मत है, "हम इतना कह सकते हैं कि कुछ शब्दों के अर्थ में विस्तार हो जाता है, कुछ के अर्थ में संकोच हो जाता है और कुछ के अर्थ सर्वथा भिन्न हो जाते हैं और कभी-कभी हम शब्दों के इन सम्बन्धों का पता भी लगा सकते हैं जो अर्थों में परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं। परन्तु, हम ऐसे मूल सिद्धान्तों की स्थापना नहीं कर सकते जो यह अर्थ निर्धारित करते हों कि अमुक प्रकार के शब्दों के अर्थों में संकोच की अपेक्षा विस्तार ही अवश्य होगा अथवा विस्तार की अपेक्षा संकोच ही अवश्य होगा।"[7] इसलिए, किसी शब्द के अर्थ में

1. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य—अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृ० 106।
2. डॉ० शिवनाथ—अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 201।
3. "Several words are extended in meaning by association."
—Hindi Semantics, p. 171.
"Analogy is a great factor in the generalization of meaning."
—वही, पृ० 177।
4. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य—अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृ० 106।
5. "असरूपाणां युवस्थविरस्त्रीपुंसां विशेषस्याविवक्षितत्वात् सामान्यस्य विवक्षितत्वम्। विशेषस्याविवक्षितत्वात् सामान्यस्य च विवक्षितत्वात् सरूपाणामेकशेष इत्येकशेषः सिद्धम्।"
—महाभाष्य, 1.2.64।
6. "Widening, it is true, appears to be comparatively rare."
—H. Bahri—Hindi Semantics, p. 213.
7. Introduction to the Natural History of Language, p. 373.

विस्तार या संकोच क्या होगा, कहना कठिन तो है ही, साथ ही दोनों नहीं होगा, यह भी बताना कठिन है। मानव-मन के अनुरूप ही अर्थ बदलता है। मानव-मन स्वयं बड़ा विचित्र है, अतएव कब वह सीमित से विस्तृत और विस्तृत से सीमित क्षेत्र की ओर प्रवृत्त हो जायगा, बताना मुश्किल है। अतएव, अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच, कब क्या घटित हो जायगा, यह भी बताना कठिन है। अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच दोनों इस तरह घनिष्ट रूप से सम्बद्ध हैं कि दोनों को अलग करना कठिन है, क्योंकि किसी भाषा में कठिनाई से ही ऐसा कोई शब्द मिलेगा जिसमें दोनों तरह के परिणाम न दिखाई पड़ें।[1] फिर भी, जिस दृष्टि से अर्थ-विस्तार को परिभाषित किया गया है, उस दृष्टि से शब्दों में अर्थ-विस्तार घटित होते हैं, भले ही, इसका कोई सामान्य नियम न हो या यह अर्थ-संकोच की तुलना में कम घटित हो। प्रस्तुत प्रबन्ध में भी अर्थ-विस्तार के बहुत सारे उदाहरण दिये गये हैं जिनमें यह बात सिद्ध होती है कि न तो यह अर्थादेश का दूसरा रूप है और न अर्थ-संकोच से कम मात्रा में घटित होता है।

अ : क—अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ : अर्थ-विस्तार

सी० के० आग्डेन और आई० ए० रिचर्ड्स का कहना है कि शब्द का कोई अर्थ नहीं होता।[2] तात्पर्य यह कि शब्दों के अर्थ में एक अनिश्चितता या अस्पष्टता पायी जाती है। प्रत्येक भाषा में ऐसे कुछ शब्द अवश्य पाये जाते हैं जिनका अर्थ अस्पष्ट हुआ करता है। ऐसे शब्दों का प्रयोग अनेक वस्तुओं, अनेक भावों के लिए समान रूप से किया जा सकता है। जे० बी० ग्रीनफ और जी० एल० कीट्रेज ने अंग्रेजी भाषा में प्रयुक्त होने वाले ऐसे कुछ शब्दों को उद्धृत करते हुए बताया है कि उनका अपना अर्थ तो थोड़ा या कुछ नहीं होता है, पर वे किसी भी चीज के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं।[3] ऐसी स्थिति में प्रयोगातिशय के कारण शब्द का अर्थ विस्तृत से विस्तृततर होता चलता है और अनेक नए भावों को अभिव्यक्त करने लगता है।

कच्चा (तद्० । सं० कच्चरः — हि० I, ने० I)

संस्कृत 'कच्चरः' शब्द से ही हिन्दी एवं नेपाली 'कच्चा' शब्द का विकास हुआ जान पड़ता है। वैसे, श्री बालचन्द्र शर्मा ने 'नेपाली शब्दकोष' में 'कषाय' शब्द को इसका मूल माना है, पर शब्द-विकास की प्रक्रिया पर ध्यान देने से 'कषाय' की अपेक्षा 'कच्चरः' से ही प्रस्तुत शब्द का विकसित होना अधिक तर्कसम्मत लगता है। अर्थ की दृष्टि से

1. "Generalization and specialization of words are so closely associated that they can hardly be treated separarely for there is scarcely a word in the language, which does not show the result of both processes."—J. B. Greenough & G. L. Kitteredge—Words and their Ways in English Speech, p. 241.

2. "Words, as everyone knows, 'mean' nothing by themselves." —C.K. Opden & I.A. Richards—The Meaning of Meaning, p. 161.

3. "...every language has its special stock of words that mean little or nothing, but may stand for almost anything."

—Words and Their Ways in English Speech, p. 235.

विचार करने पर भी यही विकासक्रम ज्यादा जँचता है। 'कषाय' का संस्कृत अर्थ 'कसैला' या 'कड़ुआ' होता है जो 'कच्चे फल' के संदर्भ में तो ठीक विकास लगता है, पर जहाँ इसका अर्थ 'अकुशल' या 'कमजोर' होता है, वहाँ 'कषाय' से इसका ठीक संबंध नहीं बैठता।

'कच्चर:' का संस्कृत अर्थ होता है—मैला, खराब, दुष्ट। सं० को० मृ० पृ० 75।

हिन्दी में 'कच्चा' शब्द 'जो पका नहीं', 'जो पुष्ट न हो', 'कमजोर' अथवा 'जो आँच पर न पका हो', 'अपटु' आदि अर्थों में व्यवहृत होता है। संस्कृत 'खराब' अर्थ से ही संभवतः 'जो पका न हो' या 'जो पुष्ट न हो' जैसा हिन्दी अर्थ गृहीत हुआ है, क्योंकि जो फल या मिट्टी का बर्त्तन पका हुआ या पुष्ट नहीं होता, खराब माना जाता है। इसी तरह 'खराब' भाव से ही 'कमजोर' या 'अपटु' जैसे हिन्दी अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि इन अर्थों में 'हीनता' का भाव सामान्य रूप से निहित है। कमजोर पदार्थों को और अपटु आदमी को खराब मानने का एक सामान्य सिद्धान्त है। यथा, "इस क्षेत्र में वह बहुत कच्चा (अपटु) है।"

विपरीत, नेपाली में यद्यपि हिन्दी का 'जो पका नहीं', 'अकुशल' और 'अपटु' जैसा अर्थ सुरक्षित है, फिर भी एक नया अर्थ 'खराब' भी प्रचलित है। एन० एन० ई०पी०-190। आश्चर्य है कि कुछ नेपाली कोशकारों ने 'खराब' अर्थ पर [illegible] नहीं ध्यान दिया है, जबकि प्रचलन की दृष्टि से यह अर्थ आम है। संभव है कि यह एक नया विकसित अर्थ हो। अन्य अर्थ का विकास संस्कृत 'खराब' अर्थ से ही उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार हिन्दी में। यथा, "पानदोकानको सानो रेडियोमा रुचाएको गीत नआएर, कच्चा, रेडियो, भनेर झगडा निकालेछ।" (पान दुकान के छोटे रेडियो में [illegible] हुआ गीत न बजा, जिससे खराब रेडियो कहकर उसने झगड़ा पैदा कर दिया।)

स्पष्ट है कि 'नेपाली' का 'खराब' अर्थ संस्कृतवत् ही है, जबकि हिन्दी में 'कच्चा' का अर्थ खराब नहीं होता। हिन्दी ने संस्कृत के इस अर्थ को छोड़ दिया है। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि 'कच्चा' का मूल संस्कृत 'कच्चर:' को ही मानना ज्यादा तर्कसम्मत है, न कि सं० 'कषाय' को। —(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

चटका (तद्० । सं० चटुल > हि० I, ने० II)

संस्कृत 'चटुल' का अर्थ है—चंचल, मनोहर। सं० को० मृ० पृ० 117।

हिन्दी 'चटका' का प्रयोग 'फुरती' के अर्थ में होता है। स्पष्ट है कि संस्कृत 'चंचल' अर्थ के प्रभाव से यह अर्थ विकसित हुआ है, क्योंकि यह आम धारणा है कि जो आदमी चंचल होता है, उसमें फुरती भी ज्यादा होती है। यथा, "जिस तरह चटके से उठ कर वह चला गया, इससे लगता है कि कोई आवश्यक काम है।"

विपरीत, नेपाली में 'चटका' का अर्थ होता है—चटकदार, कड़ा। ने० हि० को० पृ० 73। संस्कृत 'मनोहर' अर्थ से नेपाली का 'चटकदार' अर्थ आया है, क्योंकि चटकदार चीजें साधारणतया मनोहर होती हैं। नेपाली का 'कड़ा' अर्थ भी संस्कृत 'मनोहर' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि कभी-कभी मनोहरता रूप में ही नहीं, सामर्थ्य में भी निहित होती है। संभव है कि कोई आदमी रंग में काला कलूटा हो, लेकिन शारीरिक शक्ति के कारण बनावट में सुन्दर दीखता हो। उसके अन्दर का बल उसके कड़ेपन या मजबूती का द्योतक है जिससे 'कड़ा' अर्थ का भाव आ गया हो।

था, "मैले तिम्रो कार्यालयमा एउटा चटका मैच देखें।" (मैंने तुम्हारे कार्यालय में एक टकदार कुर्सी देखी।)

न्द (तद्० । सं० 'छन्दस्' > हि॰ ॥, ने० ॥)

संस्कृत 'छन्दस्' का अर्थ है—पद्य, वेद, अभिलाषा, उद्देश्य। सं०को०सु०पृ० 123।

हिन्दी छन्द का अर्थ है—वेदों के वाक्यों का वह भेद जो अक्षरों की गणना के नुसार किया जाता है, वेद, पद्यबंध, वर्ण या मात्रा की गणना के अनुसार पद या वाक्य खने की व्यवस्था, अभिलाषा, गाँठ, जाल, कपट, चाल, रंगढंग, अभिप्राय, आदि। इनमें जाल' या 'कपट', 'चाल' या 'रंगढंग' और 'गाँठ' हिन्दी के नए विकसित अर्थ हैं। अन्य र्थ संस्कृत 'पद्य', 'वेद' और 'अभिलाषा' अर्थ से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित हैं। कि छन्दों की रचना में मात्राओं का एक खास क्रम हुआ करता है, संभवतः इसी चाल' या 'रंगढंग' अर्थ आया है। कभी-कभी मात्रा की गणना ठीक करने के लिए शब्दों ो तोड़ने-मरोड़ने का 'जाल' या 'कपट' भी किया जाता है जिससे इन अर्थों का विकास आ है। संस्कृत 'अभिलाषा' अर्थ से हिन्दी 'गाँठ' अर्थ विकसित हुआ लगता है, क्योंकि भी-कभी अभिलाषा गाँठ की तरह मन में बैठ जाती है। यथा:, "इतने छन्द-बन्ध (जाल) ी क्या जरूरत थी, यह काम यों ही हो सकता था।" अथवा "उसने ऐसा छन्द फैलाया जाल फैलाया) कि काम मिनटों में हो गया।"

विपरीत, नेपाली में 'छन्द' का अर्थ है—बनावट, ढाँचा, वृत्त, पद्य, इच्छा। न-एन-ई-पी-596। इनमें 'वृत्त', 'पद्य' और 'इच्छा' अर्थ तो हिन्दी में भी प्रचलित जो संस्कृत 'पद्य' और 'अभिलाषा' अर्थ से सीधे ग्रहण किये गये हैं, पर 'बनावट' या ढाँचा' अर्थ एकदम नया है। ऐसा लगता है कि वर्ण या मात्राओं के सहारे पद्य की नावट में फर्क आने के कारण 'बनावट' या 'ढाँचा' अर्थ आया है। यह स्पष्ट बात है कि पद्य की बनावट भिन्न-भिन्न होती है और इसमें मात्राओं का बड़ा हाथ है। मात्राओं के सहारे पद्य की रचना-प्रक्रिया के कारण ही यह अर्थ आया दीखता है। यथा, "तर र्भाग्यवश स्वेटर जति-जति तयार भयो, उति-उति त्यसको रूप बिग्रदै गयो र बनि- [illegible] पट्ट छन्न नपरेको भयो।" (लेकिन दुर्भाग्यवश स्वेटर ज्यों-ज्यों तैयार हुआ, त्यों- त्यों उसका रूप बिगड़ता गया और बनने पर एकदम इच्छा न होने लायक (पसन्द न होने लायक) हो गया।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 88। "यस्तो छन्दलाई म सन्द गर्दिनँ।" (ऐसी बनावट को मैं पसन्द नहीं करता।), "जुन पवित्र स्नेहको बन्धनले जिन्दगीलाई छन्दमय पारेको थियो त्यो के त्यसो भंग हुने भएत?" (जिस पवित्र नेह के बन्धन ने जिन्दगी को पद्यमय बनाया था, वह क्या ऐसे ही भंग हो गया तो?) ा० घ०। बा० पृ० 55। "बजाउमा शक्तिशाली छन्द छ।" (बाजे में शक्तिशाली पद्य ।) आ० र० छ०। ड० व० रा०, पृ० 174। —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

जीवन्त (तत्स० । सं०>हि० ॥, ने० ॥)

संस्कृत 'जीवन्त' का अर्थ है—सजीव। सं० को० सु० पृ० 128।

हिन्दी 'जीवन्त' का अर्थ संस्कृतवत् ही 'सजीव' या 'जीता-जागता' होना है। था, "गरीबी में भी मनुष्यता मरती नहीं, इसका जीवन्त उदाहरण कोई भी भारतीय

है।" विपरीत, नेपाली में 'जीवन्त' का अर्थ 'जीवित' के साथ-साथ 'दीर्घायु' भी होता है। एन-एन-ई-पी-661। 'जीवित' अर्थ तो संस्कृत 'सजीव' अर्थ से ही प्रभावित है, क्योंकि जो सजीव है वही 'जीवित' है। 'दीर्घायु' अर्थ पर भी 'सजीव' अर्थ का प्रभाव है पर परोक्ष रूप से। 'सजीव' पदार्थों में लम्बी अवधि तक जिन्दा रहने की कामना होती है (कम से कम मनुष्य में तो होती ही है), सम्भवतः इसी भाव से यह अर्थ आया है। यह तो स्पष्ट है कि 'सजीव' और 'दीर्घायु'—दोनों में जिन्दा रहने का भाव है। फर्क इतना ही है कि संस्कृत 'सजीव' में मात्र जिन्दा अर्थ का भाव है और नेपाली 'दीर्घायु' में ज्यादा दिन जिन्दा रहने का भाव। यथा, "कामना लाउराखेको लोटे सुन सिवाय धनिकता को कुने प्रदर्शन बूढाबूढीले जीवन्त गरेनन्।" (कान में पहने हुए लिपटा सोने के सिवा धन का कोई प्रदर्शन बूढ़ा-बूढ़ी ने सजीव नहीं किया।) आ० र० [illegible]। उ० च० रा० पृ० ९। "सँपले उसको जीवन्त हुनेकोलागि आशीष दियो।" (सभी ने उसके दीर्घायु होने का आशीष दिया।)

झलझल (दे०। हि० II ने० I)

'झलझल' हिन्दी और नेपाली दोनों में एक देशी शब्द है। सं० 'झल्लिका' का विकास 'झलक' के रूप में हुआ और इसी 'झलक' के साथ 'झलक' के मिलन से 'झलझल' शब्द का विकास हुआ है। संस्कृत 'झल्लिका' का अर्थ होता है—सुगन्धित वस्तुओं का लेप, प्रकाश, चमक-दमक। एस-ई-डी-पी-225।

हिन्दी 'झलझल' का अर्थ है—चमक, दमक, रह-रहकर निकलने वाली आभा के साथ। स्पष्ट है कि संस्कृत 'प्रकाश' और 'चमक-दमक' अर्थों से ही इन अर्थों को ग्रहण किया गया है। हिन्दी 'झलक' का जो अर्थ है, लगभग वही अर्थ हिन्दी 'झलझल' में भी सुरक्षित है। यथा, "बिजली की रोशनी और रेशमी [illegible] से वह [illegible] झलझल कर रही है।"

नेपाली 'झलझल' का अर्थ होता है—दिमाग में धीरे-धीरे पुनः स्मरण होना, चमक। एन-एन-ई-पी-684। जहाँ तक 'चमक' अर्थ का प्रश्न है, यह हिन्दी की तरह ही है और उसी तरह संस्कृत से गृहीत भी, पर भूली हुई बात या घटना भी दिमाग में धीरे-धीरे आकर एक नयी रोशनी भर देती है, चेहरे पर एक चमक आ जाती है। घटना का पुनर्स्मरण भी दिमाग में घटना या दृश्य का झलकना कहा जाता है। सम्भवतः ~~त~~ इसी भाव के कारण 'दिमाग में धीरे-धीरे पुनः स्मरण होना' अर्थ नेपाली ने ग्रहण किया है। यथा, "त्यस दिनको काण्डको सम्झना अहिले पनि मलाई झलझली छ।" (उस दिन के काण्ड की याद अभी भी मुझे धीरे-धीरे स्मरण हो आती है।) न० [illegible]। [illegible] पृ० 35। "तिमि हाँसेको बोलेको हेर्दा कान्छी म [illegible] झलझली सम्झन्छु।" (तुम्हें हँसने और बोलते हुए देखकर बच्ची, मैं तो तुम्हारी बहन को देखता हूँ...जैसा पुनर्स्मरण हो जाता है।) मु० बा०। बा० पृ० 56। उपर्युक्त उदाहरणों में आये 'झलझली' शब्द नेपाली 'झलझल' से ही निर्मित है।

दिक्क (वि०। अ० दिक़ > हि० दिक > हि० दिक्क I, ने० I)

अरबी 'दिक़' का अर्थ होता है—यक्ष्मा, दुखित, तंग, परेशान। अ०श०को० पृ० 268।

हिन्दी 'दिक्क' का अर्थ अरबी की तरह ही—परेशान, तंग, हलकान, अस्वस्थ, 'जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो' होता है। इनमें अन्तिम अर्थ 'जिसे बहुत कष्ट पहुँ-

चाया गया हो' अ० अर्थ से थोड़ा हटा हुआ है, पर इस पर अ० 'दुखित' या 'परेशान' अर्थ का स्पष्ट प्रभाव है, क्योंकि जिसे कष्ट पहुँचाया जाता है, वह दुखित या परेशान हो ही जाता है। यथा, "मुझे ज्यादा दिक्क न करो, नहीं तो मार बैठूंगा।"

विपरीत, नेपाली 'दिक्क' का अर्थ हि० और अ० की तरह 'हैरानी' तो है, पर 'याद', 'चिन्ता' और 'पीर' जैसे नये अर्थ भी विकसित हो गये हैं। एन-एन-ई-पी-859। 'पीर' अर्थ अ० 'दुखित' अर्थ से स्पष्टतया प्रभावित है, अन्तर मात्र इतना हुआ है कि जहाँ 'दुखित' विशेषण है, वहाँ 'पीर' संज्ञा। 'चिन्ता' और 'याद' अर्थ भी अ० 'दुखित' से ही विकसित अर्थ हैं, क्योंकि 'चिन्ता' और किसी की 'याद' दोनों दुःखदायिनी होती हैं। यथा, "सोमदत्त, आज रातभरी मलाई दिक्क लागिरह्यो तिमी रिसायो भनेर।" (सोमदत्त ! आज रातभर मुझे चिन्ता लगी रही कि कहीं तुम नाराज तो नहीं हो गये।) सु०। वि० प्र० को० पृ० 23। "रविलाई दिक्क लाग्यो ।" (रवि को हैरानी हुई।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 145। "एम० के० लाई चाहि दिक्क लागि सकेको छ।" (एम० के० को चिन्ता लग गई है।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 114।

—(हि० अर्थ-बिस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

द्वन्द्व (तत्स०। सं० : हि० ıı, ने० ıı)

संस्कृत 'द्वन्द्व' का अर्थ होता है—जोड़ा, झगड़ा। सं० को० सु०-पृ० 148।

हिन्दी 'द्वन्द्व' का अर्थ होता है—'जोड़ा', नर-मादा का जोड़ा, गुप्त बात, दो आदमियों की लड़ाई, कलह। इनमें सारे अर्थ लगभग सं० की तरह ही हैं, मात्र 'गुप्त बात' एक नया अर्थ आ गया है। लगता है कि कभी-कभी झगड़े का कारण कोई गुप्त बात भी होती है, शायद इसी से ऐसा अर्थ आ गया है। यथा, "तुम्हारे छिपाने से द्वन्द्व (गुप्त बात) छिपेगा नहीं।" इसके अलावा, सं० 'जोड़ा' अर्थ हि० में 'नर-मादा' का जोड़ा और सं० 'झगड़ा' अर्थ 'दो आदमियों की लड़ाई' अर्थ में विकसित हो गया है।

विपरीत, ने० 'द्वन्द्व' का अर्थ होता है—संघर्ष। साथ ही 'जोड़ा' और 'कलह' अर्थ भी प्रचलित हैं, पर हिन्दी की तरह 'गुप्त बात' या 'रहस्य' अर्थ ने० में नहीं है। एन-एन-ई-पी-888। यद्यपि आम तौर पर 'झगड़ा' और 'संघर्ष' को समानार्थी माना जाता है, पर ये समानार्थी हैं नहीं। 'झगड़ा' की तुलना में 'संघर्ष' का दायरा अधिक विशाल है। लोगों के मन में भी भावों का संघर्ष होता है, पर भावों का झगड़ा नहीं होता। इस तरह समझा जा सकता है कि झगड़ा जहाँ अधिकतर बाह्य या मूर्त्त है, वहाँ संघर्ष आन्तरिक और अमूर्त्त भी। लेकिन नेपाली का 'संघर्ष' अर्थ सं० 'झगड़ा' अर्थ से ही विकसित है, क्योंकि दोनों में लगभग एक ही भाव है। यथा, "एउटा नांगी स्वास्नीमान्छेको शरीरसंग रातभरि द्वन्द्व गरेर बस्छु।" (एक नंगी औरत के शरीर के साथ रात भर संघर्ष करके या जूझकर रहता हूँ।) शि० फू० पा० पृ० 52।

(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

निकासी (तद्०। सं० निष्कासः : हि० ı, ने० ı)

सं० 'निष्कास' का अर्थ होता है—निकलना, निर्गत करना, गायब होना, मबेरा एस-ई-डी-पी-298।

हिन्दी 'निकासी' का अर्थ होता है—निकालने की क्रिया या भाव, प्रस्थान, वह धन जो सरकारी कर आदि देने के बाद बच रहे, लाभ, बिक्री के लिए माल की लदाई, बिक्री, चुङ्गी। इन अर्थों पर सं० 'निर्गत करना' अर्थ का प्रभाव स्पष्ट है। 'लाभ' में भी पूँजी के निकलने का भाव है, तथा 'बिक्री' और चुङ्गी में माल के निकलने का भाव। यथा, "सारे सामान की निकासी हो गई। इस व्यापार में मात्र पाँच सौ रुपये की निकासी (लाभ) हुई। बिना निकासी (चुङ्गी) दिये सामान नहीं ले जाया जा सकता।"

विपरीत, ने० में 'निकासी' का अर्थ होता है—मंजूरी का आदेश, निर्यात, बाहर भेजना। एन-एन-ई-पी-983। हिन्दी की तुलना में ये सारे अर्थ नये हैं। इनमें 'निर्यात या 'बाहर भेजना' अर्थ पर तो सं० 'निर्गत करना' अर्थ का प्रभाव स्पष्ट है। 'मंजूरी का आदेश' अर्थ पर सं० 'निर्गत करना' अर्थ का प्रभाव है, क्योंकि प्रायः सभी देशों में सामान को बाहर भेजने के पहले इसकी स्वीकृति लेनी पड़ती है। यथा, "यस्ता ठाउं-ठाउंमा पंचाइसमा जाने खर्दारहरूको निकास-प्रकास दिने मुलिमाउ खर्दार।" (इस तरह जगह-जगह पंचायत में जाने वाले खर्दार (नायक सुब्बा की तरह एक अफसर) लोगों की मंजूरी का आदेश देने वाले दुःखदायी खर्दार।) उ०हु०अ०। वि०थि०-पृ० 110। "मलाई निकासी पुर्जी मिलेको छैन।" (मुझे मंजूरी के आदेश का पत्र नहीं मिला है।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

प्रशस्त (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

संस्कृत 'प्रशस्त' का अर्थ होता है—बड़ाई किया हुआ, श्रेष्ठ, फैला हुआ, प्रशंसनीय, प्रसन्न। एस-ई-डी-पी-370।

हिन्दी 'प्रशस्त' का अर्थ होता है—प्रशंसनीय, सुन्दर, श्रेष्ठ, भव्य, विस्तीर्ण, लम्बा, चौड़ा। इनमें 'सुन्दर' और 'भव्य' अर्थ क्रमशः सं० 'प्रशंसनीय' और 'फैला हुआ' अर्थों से विकसित हुए हैं, क्योंकि प्रशंसनीय वस्तु या व्यक्ति अवश्य ही सुन्दर होता है और भव्यता में फैलाव भी होता ही है। यथा, "तुम्हारी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए उन्होंने सब कुछ त्याग दिया।" "वहाँ एक प्रशस्त (भव्य) आयोजन है।"

विपरीत, नेपाली में 'प्रशस्त' का अर्थ 'प्रशंसनीय' या 'सुन्दर' नहीं होता, वरन् 'ढेर', 'अधिक', 'पूरा' और 'विस्तृत' होता है। संस्कृत 'फैला हुआ' अर्थ से ही ये सारे अर्थ विकसित हुए हैं, क्योंकि जो चीज जितनी फैली होती है, वह उतनी ही अधिक होती है। हिन्दी में यह शब्द 'अधिक', 'ढेर' या 'पूरा' अर्थ में व्यवहृत नहीं होता। यथा, "म प्रशस्त बूढो भइसकें, मलाई प्रेम र स्वास्नीमांछे संग के चासो, के स्वार्थ ?" (मैं बहुत बूढ़ा हो गया, मुझे प्रेम और औरतों से क्या वास्ता, क्या स्वार्थ ?) शि० फू०। पा० पृ० 16। "...त्यतिनै उनलाई प्रशस्त थियो।" (उतना ही उनके लिए पूरा था।) आ० र० छ०। इ०ब०रा० पृ० 159। "एक जना नेताबाट मैले प्रशस्त खर्च पाएको छु।" (एक नेता आदमी से मैं पूरा खर्च पा चुका हूँ।) सो०र०ज०। के० नु० पा० पृ० 71।

(हि० अर्थ-विस्तार—अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

भारा (तद्। सं० भार>हि० I, ने० II)

सं० 'भारः' का अर्थ होता है—बोझ, झोंका, मिहनत, उत्तरदायित्व, बाहुल्य। सं०को०सु० पृ० 252।

हि० 'भारा' जिसका प्रयोग मुख्यत: ग्राम्य भाषा में होता है, का अर्थ होता है—बोझिल, भारी, कठिन, विशाल, अधिक, दूभर, प्रबल। ये सारे अर्थ संस्कृत 'बोझ' और 'बाहुल्य' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि बोझ लेकर चलना दूभर होता है, बोझ भारी होता है और उसमें अधिकता का भाव होता है। 'प्रबल' अर्थ पर 'बाहुल्य' अर्थ का प्रभाव है, क्योंकि प्रबल व्यक्ति में शक्ति का बाहुल्य होता है।

विपरीत, ने० में 'भारा' का अर्थ है—उत्तरदायित्व या अभिभार, उपकार का ऋण। कहीं-कहीं 'भारी' अर्थ भी प्रचलित है। एन-एन-ई-पी-1259; ने० हि० को० पृ० 221। सं० 'उत्तरदायित्व' और 'बोझ' अर्थ से ये अर्थ ग्रहण किये गये हैं, यह स्पष्ट है। यथा, "सकिन्छ, केही धन्दा न मान्नुस, पुर्‍याउने मेरो भारा भयो।" (सकेगा, कोई चिन्ता न करो, पूरा करना मेरा उत्तरदायित्व हुआ।) क०सं०। गो० पृ० 42। 'काम भयोभने मुखियाको पसीनाको भारा म तिर्छु।' (काम हो जाने पर मुखिया (एक पदाधिकारी) के पसीना का ऋण मैं भरूँगा।) उ०हु०अ०। वि०धि० पृ० 87।

(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

महि (तत्स०। सं० > हि० ⅠⅠ ने० ⅠⅠ)

संस्कृत 'महि' का अर्थ है—महत्त्व, पृथ्वी। सं० को० सु० पृ० 285।

हि० 'महि' का अर्थ भी संस्कृत की तरह ही 'पृथ्वी' होता है। हि० ने सं० के 'महत्व' अर्थ का परित्याग कर दिया है। यथा, "कर्ण के समान दानी संपूर्ण महि में दूसरा नहीं हुआ।"

विपरीत, ने० 'महि' का प्रयोग महिमा, वैज्ञानिक ज्ञान, विज्ञान की शक्ति, महत्ता अर्थों में होता है। साथ ही, 'पृथ्वी' अर्थ भी चलता है। एन-एन-ई-पी-1329। ने०श० पृ० 828। 'पृथ्वी' अर्थ तो सं० का ही है, अन्य ने० अर्थ सं० 'महत्त्व' अर्थ से विकसित हुए हैं। आज के युग में 'वैज्ञानिक ज्ञान' या 'विज्ञान की शक्ति' महत्त्वपूर्ण चीज है, संभवत: इसी भाव से ये अर्थ आये हैं। 'महत्त्व' अर्थ से "वैज्ञानिक ज्ञान या शक्ति' अर्थ का विकसित हो जाना सचमुच एक मजेदार बात है। यथा, 'आजको युगमा विज्ञानको महिको कारणले गर्दा नै मानवले समय र दूरत्वमा विजय प्राप्त गरेको हो।" (आज के युग में विज्ञान की शक्ति से मनुष्य ने समय और दूरी पर विजय प्राप्त की है।)

याम (तत्स०। सं० > हि ⅠⅠ, ने० ⅠⅠ)

सं० 'याम' का अर्थ होता है—संयम, प्रहर, तीन घंटे की अवधि। सं० को० सु० पृ० 303।

हि० 'याम' का अर्थ है—तीन घंटे का समय, एक प्रकार के देवगण, समय। इनमें 'तीन घंटे का समय' अर्थ तो संस्कृतवत् ही है और इसी से 'समय' अर्थ का विकास हो गया है। एक नया अर्थ 'एक प्रकार के देवगण' भी आया है जो संभवत: सं० 'संयम' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि देवगण संयमी होते हैं। यथा "वहाँ आठों याम (तीन घंटे का समय) कलह होता रहता है।", "वह विष्णु और याम की पूजा करता है।"

विपरीत ने० 'याम' का अर्थ है—समय, प्रहर, मौसम, सवारी। ने०श० पृ० 864। इनमें 'समय' और 'प्रहर' अर्थ तो संस्कृत के ही हैं, 'मौसम' और 'सवारी'

जैसे नए अर्थ भी आ गये हैं। 'मौसम' अर्थ पर भी सं० 'प्रहर' अर्थ का ही प्रभाव है, क्योंकि दोनों समयवाची शब्द हैं। 'सवारी' अर्थ भी सं० 'प्रहर' अर्थ से निकला जान पड़ता है, क्योंकि बहुत सारी सवारियाँ समय के अनुसार चलती हैं, फिर भी ऐसा अर्थ-विकास अद्भुत है। यथा, "गर्मीको याम बड़ो अल्छी लाग्दो हुन्छ।" (गर्मी का मौसम बहुत आलस्य लगानेवाला होता है।) सु०। वि०प्र०को० पृ० 21। "तथापि सुयोग-वीर के हो भन्ने कुरा अरु सबैको चरित्र-चित्रण गरिसकेपछि लड़ाईको यामको फ्लाश-ब्याकमा, पारिजात अन्त्यमा गर्छे।" (तो भी सुयोग वीर कौन है—यह सबका चरित्र-चित्रण करने के बाद लड़ाई के समय के फ्लैशबैक में, पारिजात अन्त में दिखाती है।) शि० फू०। पा० पृ० ट।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य 'समय' अर्थ में)

राग (तत्स०। सं० > हि० ा, ने० ा)

सं० "रागः' का अर्थ है—लालिमा, वर्ण, रंग, प्रेम, कामप्रवृत्ति, खुशी, गुस्सा, दुःख, ईर्ष्या, राजा, चन्द्रमा, संगीत का सुर। सं०को०मु० पृ० 312।

हि० 'राग' का अर्थ है—प्रिय या अभिमत वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा, कष्ट, ईर्ष्या, प्रेम, अंग में लगाने का सुगन्धित लेप, रंग विशेषतः लाल रंग आदि। इनमें 'अभिमत' या 'प्रिय वस्तु को प्राप्त करने की अभिलाषा' अर्थ नया है जो सं० अर्थ 'कामप्रवृत्ति' से विकसित हुआ है, क्योंकि कामप्रवृत्ति में अभिलाषा या कामना होती ही है। 'अंग में लगाने का सुगन्धित लेप' अर्थ सम्भवतः सं० 'रंग' अर्थ से आया है, क्योंकि इस लेप के प्रभाव से शरीर के रंग में भी अन्तर आ जाता है अथवा यह भी संभव है कि यह सं० 'खुशी' से विकसित अर्थ हो, क्योंकि सुगन्धित लेप के लगाने से प्रसन्नता होती है। यथा, "उसके प्रति ऐसा राग पैदा हो गया है कि उसके बिना क्षण भर भी चैन नहीं। उसका रागयुक्त (लेपयुक्त) शरीर गमगमा रहा था।"

विपरीत, ने० 'राग' का अर्थ है—चन्द्रमा, आनन्द। साथ ही 'प्रेम' अर्थ भी प्रचलित है। ने०श० पृ० 880। कहीं-कहीं तेज गन्ध के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया जाता है। ने०हि०को० पृ० 245। इनमें प्रारम्भ के तीन अर्थ तो संस्कृतवत् ही हैं, मात्र 'तेज गन्ध' अर्थ नया आया है। ऐसा लगता है कि जिस तरह सं० 'खुशी' अर्थ से हिन्दी 'सुगन्धित लेप' अर्थ का विकास हुआ है, उसी तरह ने० 'तेज गन्ध' अर्थ का भी। खुशी में लोग तेज गन्धयुक्त पदार्थों को अपनाते हैं या ऐसे पदार्थों के प्रयोग से खुशी होती है, शायद इसीलिए यह अर्थ आया है। यथा, "आकाशको रागको छटा मनको आकर्षित गर्छ।" (आकाश के चन्द्रमा की छटा मन को आकर्षित करती है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार—[illegible])

विघ्न (तत्स०। सं० > हि० ा, ने० ा)

सं० 'विघ्न' का अर्थ होता है—बाधा, रुकावट, अड़चन। सं०को०मु० पृ० 376।

हि० 'विघ्न' का अर्थ सं० की तरह ही—अड़चन या बाधा होता है, यथा, "शुभ कार्य में विघ्न होता ही है।"

विपरीत, ने० 'विघ्न' का एक अर्थ बाधा तो है, पर एक नया अर्थ 'विरोध' भी विकसित हो गया है। ने०श० पृ० 955। 'बाधा' और 'विरोध' में सूक्ष्म अन्तर है। बाधायें अनायास भी आ सकती हैं, पर विरोध सदा सायास होता है। बाधा के पीछे सजीव और निर्जीव दोनों पदार्थ हो सकते हैं, पर विरोध सदा सजीव (विशेषकर व्यक्ति) ही करता है। फिर भी, इसमें सन्देह नहीं कि मूलतः दोनों के कष्टपूर्ण होने के भाव के कारण विरोध भी 'बाधा' अर्थ से ही विकसित हुआ है। यथा, "जीवनको यत्ो विघ्नको को दोषी ?" (जीवन के इतने विरोध का कौन दोषी ?) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 79।

मोड़ना (तद्‌० सं०\ मुद्>हि० I, ने० I)

इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। इतना तो प्रायः सभी विद्वान् मानते हैं कि यह संस्कृत से विकसित एक तद्भव शब्द है। सं०श०सा० के अनुसार, इसका मूल सं० का 'संमुरण' है, लेकिन टर्नर महोदय इसे सं० 'मोटनम्' से विकसित शब्द मानते हैं। डॉ० बाबूराम सक्सेना भी इसे सं० √मुद् धातु से विकसित शब्द मानते हैं।

सं० मोटनम् का अर्थ होता है—कुचलना, दबाना, छिद्र करना, तोड़ना। एस-ई-डी-पी—449। इसी 'मोटनम्' से हि० 'मोड़ना' और नेपाली 'मोर्नु' क्रिया का विकसित होना ज्यादा तर्कसंगत लगता है।

हि० मोड़ना का अर्थ होता है—फेरना, लौटाना, किसी फैली हुई सतह का कुछ अंश समेटकर एक तह के ऊपर दूसरी तह करना, धार भुथरी करना, कुंठित करना। हि० के इन सभी अर्थों पर सं० 'दबाना' या 'तोड़ना' अर्थ का स्पष्ट प्रभाव है। तह करने में दबाने का भाव है और यही दबाने का भाव कुंठित करना और भुथरी करना अर्थ में भी है। यथा, "उसने नदी की धारा मोड़ दी।", "सारे कागजों को मोड़ डालो।"

विपरीत, ने० 'मोर्नु' का अर्थ है—ढाँकना, परत चढ़ाना, धातु की परत चढ़ाना, झुकाना, फैली हुई वस्तु को समेटना। डी-एन-एल (टर्नर) पृ० 521। नेपाली में हिन्दी का फेरना या लौटाना अर्थ नहीं है और ढाँकना तथा धातु की परत चढ़ाना जैसा नया अर्थ भी आ गया है। इन अर्थों पर सं० 'दबाना' या 'कुचलना' अर्थ का सीधा प्रभाव है, यह स्पष्ट है। यथा, "सुनलाई मोरेर त्यहाँ राख।" (सोने की परत चढ़ाकर वहाँ रखो।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

म्लान (तत्स० । सं० >हि० II, ने० II)

सं० म्लान' का अर्थ होता है—उदास, क्लान्त, मलिन, मुरझाया हुआ, थकावट, दुर्बल, गन्दा, अस्पष्ट। एस-ई-डी-पी—490।

हि० 'म्लान' का अर्थ संस्कृतवत् ही—मलिन, कुम्हलाया हुआ, दुर्बल, मैला है। यथा, "उसके म्लान (मुरझाया हुआ) चेहरे को देखकर लगा जैसे वह बहुत चिन्तित हो।"

विपरीत, ने० 'मलिन्' का अर्थ है—धुँधला, दुःखद, उदास। डी० एन० एल० (टर्नर) पृ० 491। सं० के 'मलिन' और 'क्लान्त' अर्थ को नेपाली ने 'धुँधला', 'दुःखद' और 'उदास' अर्थ में ग्रहण किया है। इन अर्थों में लगभग 'क्लान्ति' का एक ही भाव है, लेकिन चूँकि यह भाव अमूर्त है, अतएव अर्थों में थोड़ी भिन्नता आ गई है। यहाँ यह भी

ध्यान रखना चाहिए कि चूँकि कोई भी भाव स्पष्ट नहीं होता, अतएव उसे सीमाबद्ध नहीं किया जा सकता। यथा, "बाहिरको झरी र कुहरीमण्डलले घरभित्र म्लान अन्धकार छाएको थियो।" (बाहर की वर्षा और धुआँ के कारण घर के अन्दर धुँधला या उदास अन्धकार व्याप्त था।) मा० घ०। लैं० बा० पृ० 20।

श्रेय (तत्स०। सं०>हि० ।।, ने० ।।)

संस्कृत 'श्रेय' का अर्थ होता है—अच्छी हालत, भलाई, सौभाग्य, मोक्ष, बल्कि, बढ़कर, सुन्दर, दूसरे से बढ़िया, सर्वोत्कृष्ट, कल्याणकारी, शुभ, भाग्यशाली। सं० को० सु० पृ० 486।

हि० 'श्रेय' का अर्थ है—अधिक अच्छा, बेहतर, श्रेष्ठ, मंगलदायक, अच्छापन, कल्याण, धर्म, पुण्य, सदाचार। हिन्दी के ये अर्थ सं० अर्थों से स्पष्टतया प्रभावित हैं। भलाई से पुण्य होता है और यह एक मानवीय धर्म है। अतएव सं० भलाई से इन दोनों अर्थों का विकास हुआ है। शुभ कर्म मंगलदायक होते हैं, अतएव 'शुभ' से 'मंगलदायक' अर्थ आया है। 'सदाचार' सदा सर्वोत्कृष्ट माना जाता है, अतएव 'सदाचार' सं० सर्वोत्कृष्ट अर्थ से आया है। यथा, "मनुष्य का श्रेय (अच्छापन) है एक-दूसरे के प्रति प्रेम-भाव रखना।"

विपरीत, ने० 'श्रेय' का अर्थ होता है—शुभ, मंगल, यश, सुफल, सुख। एन-एन-ई-पी-1625। इनमें 'यश', 'सुफल' और 'सुख' नए अर्थ हैं जो क्रमशः सं० 'भलाई', 'शुभ' और 'अच्छी हालत' अर्थों से विकसित हुए हैं। भलाई करने से यश मिलता है, शुभ कार्यों का फल अच्छा होता है और अच्छी हालत में सुख की प्राप्ति होती है—इन्हीं भावों से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "दिलिपको सम्झना जब आउँथ्यो ता मनमनै सोच्दथिन्-विवाह गर्नुनै श्रेय छ, इत्यादि।" (दिलीप की याद जब आती थी तो मन ही मन सोचती थी—विवाह करना ही शुभ है, इत्यादि।) फ० क० मे० यु० था० पृ० 137।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्ति)

अ : ख—अवच्छेदात्मक अर्थलोप : अर्थ-विस्तार

कुछ शब्दों के अर्थ पदार्थ की विशेष प्रकृति अथवा गुण पर आधारित होते हैं। कभी-कभी परिस्थिति या प्रसंग के अनुसार ये शब्द उस विशिष्ट गुण या प्रकृतिबोधक तत्त्वों से विमुक्त हो जाते हैं और इनके अर्थ का विस्तार हो जाता है।

गल (तत्स०। सं०>हि० ।, ने० ।।)

सं० 'गल' का अर्थ होता है—गला। सं० को० सु० पृ० 109।

हि० 'गल' का अर्थ सं० के समान ही 'गला' या 'कंठ' होता है। यथा, "इसका गल बड़ा सुन्दर है।" साहित्यिक हिन्दी में 'गल' के बदले 'गला' शब्द प्रचलित है, लेकिन ग्राम्य भाषाओं में 'गल' शब्द का भी प्रयोग चलता है। वैसे इसी 'गल' से बने दो ऐसे शब्द हैं जो साहित्यिक हिन्दी में भी खूब प्रचलित हैं। ये शब्द हैं—'गलबाँही' और 'गलथना'। 'गलबाँही' का अर्थ है—गले में बाँह डालना और 'गलथना' का अर्थ है—गले में धक्का मारना।

विपरीत, ने० में इसका अर्थ होता है---अव्वल (खेत), रंभा-सा बोझ उभाड़ने वाला औजार। ने० हि० को० पृ० 60। 'अव्वल' अर्थ संभवतः 'अच्छा गला' या 'अव्वल गला' के प्रयोग के कारण आया होगा, क्योंकि जिसका स्वर मीठा होता है, उसके लिए कहा जाता है कि उसका गला बड़ा अच्छा (अव्वल) है। संभव है बाद में 'गला' अर्थ लुप्त हो गया हो और मात्र अव्वल अर्थ रह गया हो। फिर, धीरे-धीरे उत्तम श्रेणी के खेत के लिए इसका प्रयोग होने लगा हो। दूसरा अर्थ 'बोझ उभाड़ने वाला औआर' है जो संभवतः गले की आकृति के साम्य के आधार पर आया हो। यथा, "तिमीसंग पांच विग्हा गल जग्गा छ।" (तुम्हारे पास पाँच बीघा उत्तम या अव्वल जमीन है।)

थर (तद्० । सं० स्थलं > हि० I, ने० I)

सं० 'स्थलं' का अर्थ है---अधित्यका, कड़ी जमीन, सूखी जमीन, जगह, मिट्टी, चौरस छत, हालत, विषय, किनारा आदि। सं०को० सु०पृ० 584। एस-ई-डी-पी-621।

हि० 'थर' जिसका विकास सं० 'स्थलं' से हुआ है, का प्रयोग इन अर्थों में होता है---स्थान, सूखी जमीन, रेगिस्तान, बाघ की माँद। इनमें अन्तिम दो अर्थ नए हैं, शेष सं० के समान ही हैं। 'रेगिस्तान' अर्थ सं० 'सूखी जमीन' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि रेगिस्तान भी सूखा ही होता है। दूसरा अर्थ 'बाघ की माँद' सं० 'अधित्यका' अथ से आया लगता है, क्योंकि ऐसे स्थान पर ही बाघ की माँद पाई जाती है या यह भी संभव है कि यह सं० 'जगह' अर्थ से आया हो, क्योंकि माँद भी तो रहने की जगह ही है। भारत में एक थार की मरुभूमि है, लगता है इसका नाम 'थार' इसलिए पड़ा कि यह एक मरु-भूमि है। मूलतः यह 'थर' रहा होगा जो कालक्रम से 'थार' हो गया होगा। बाद में यह मरुभूमि का अधिकरण न रहकर संज्ञा बन गया और अलग से मरुभूमि शब्द जुट गया, जैसा कि विन्ध्याचल। पहाड़ के साथ हुआ है। 'विन्ध्याचल' का अचल (पहाड़) विन्ध्य के साथ जुड़कर समानार्थी हो गया है। यथा, "उस थर में किसी जीव का नामोनिशान नहीं है।"

विपरीत, नेपाली 'थर' का अर्थ है---प्रकार, उपनाम। ने० हि० को० पृ० 140। ऐसा लगता है कि स्थानभेद से उपनाम में भेद होने के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा और इसी भेद के कारण 'प्रकार' अर्थ आया होगा। इस तरह मूलतः ये अर्थ सं० 'स्थान' अर्थ से निकले हैं। यथा, "राई मेरो जात थर मेरो चामलिङ......।" (मेरी जाति राई और मेरा उपनाम चामलिङ...(है)। आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 65।

स्थान-विशेष के नाम पर उपनाम रखने की परम्परा प्रायः अब भी प्रचलित है। यथा, "रामवृक्ष बेनीपुरी, बेढब बनारसी आदि। सम्भव है, बाद में स्थान का भाव तिरोहित हो गया हो और मात्र 'उपनाम' ही रह गया हो।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

थरो (तद्० । सं० स्थली > हि० I, ने० I)

सं० 'स्थली' का अर्थ---अधित्यका, जमीन, मिट्टी, जगह होता है। सं० को० सु० पृ० 584।

हि० 'थरी' का प्रयोग 'शेरों आदि की माँद' और 'गुफा' अर्थ में होता है। ये दोनों अर्थ सं० 'जगह' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि 'माँद' भी रहने की जगह है (भले ही वह शेरों या ऐसे ही जानवरों की ही हो।) 'गुफा' भी पहाड़ के भीतर की जगह है

जिसमें जानवर या कभी-कभी संन्यासी लोग रहते हैं। यथा, "इस पर्वत में अनेकानेक थरियाँ हैं।"

विपरीत, ने० 'थरी' का अर्थ होता है—प्रकार, गाँव के मुखिया से निचले पद का (अधिकारी)। ने० हि० को० पृ० 130। इनमें 'प्रकार' अर्थ संभवतः जगह-जगह में भेद होने के भाव के कारण सं० 'जगह' अर्थ से आया होगा और दूसरा अर्थ इस विभेदक नीति के कारण। पदाधिकारियों के पदों में स्तर-भिन्नता का भाव रखने वाला यह अर्थ ने० 'प्रकार' अर्थ के विकसित हो जाने के बाद उसी से निकला मालूम पड़ता है। यथा, "थरी-थरीका मान्छीले नानाथलीका कुरा गरे।" (तरह-तरह के लोगों ने अनेक तरह की बातें कीं।) मु० बा०। बा० पृ० 157। "तिनमा शोभायमान भैरहेका छन् अनेक थरी पुतली।" (उसमें शोभायमान हो रही हैं अनेक प्रकार की तितलियाँ।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 9।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

रेख (तद्० । सं० रेखा > हि० ।, ने० ।)

सं० 'रेखा' का अर्थ है—लकीर, पंक्ति, छन्द, डाँना, एक छोटा भाग, संतुष्टि, पूर्णता। एस-इ-डी-पी-472।

हि० 'रेख' का अर्थ है—लकीर, चिह्न, गिनती, नई निकलती हुई मूँछ। इनमें 'चिह्न' अर्थ संभवतः इस भाव के कारण आया होगा कि लोग लकीर खींचकर पुस्तक की पंक्तियों को चिह्नित करते हैं। इसी तरह 'नई निकलती हुई मूँछ' भी एक लकीर के सदृश मालूम पड़ती है, अतएव रूप-साम्य के कारण इस अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। 'गिनती' अर्थ भी सं० 'लकीर' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में लकीर खींचकर बच्चों को गिनती सिखाई जाती है। यथा, "उसके चेहरे पर मूँछ की रेख दिखाई पड़ने लगी है।" इसी 'रेख' से हिन्दी में 'रेखांकित करना' क्रिया का निर्माण हुआ है जिसका अर्थ चिह्नित करना होता है।

विपरीत, ने० 'रेख' का अर्थ है—निगरानी, हक। ने० श० पृ० 802। ऐसा लगता है कि 'देखरेख' जिसका अर्थ 'निगरानी' होता है, का 'देख' बाद में लुप्त हो गया और मात्र 'रेख' का अर्थ ही 'निगरानी' हो गया। 'हक' अर्थ संभवतः सं० 'एक छोटा भाग' अर्थ से आया होगा, क्योंकि 'हक' में भी 'हिस्सा' या 'भाग' का भाव निहित है। यथा, "म तिम्रो रेखमा बाली छोड़ेर घर जान्छु।" (मैं तुम्हारी निगरानी में फसल छोड़ कर घर जाता हूँ।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

रोगन (वि० । फा० रोग़न > हि० ।।, ने० ।।)

फा० 'रोग़न' का अर्थ है—तेल, स्निग्धता, चिकनाई, घी। उ० हि० कि० पृ० 276।

हि० 'रोगन' का अर्थ होता है—तेल, चिकनाई, पालिश, वारनिश। इनमें शुरू के दो अर्थ फारसीवत् हैं। 'पालिश' और 'वारनिश' अर्थ संभवतः फा० 'तेल' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि ये तेल की तरह ही होते हैं या संभव है कि ये फा० 'चिकनाई' अर्थ से

आये हों, क्योंकि 'पालिश' या वारनिश' प्रयोग से चिकनाई आती है। यथा, "उसने किवाड़ों को रोगन से चमका दिया।"

विपरीत, ने० में 'रोगन' का अर्थ 'पालिश' और 'तेल' के अतिरिक्त एक नया अर्थ 'रंग' भी विकसित हो गया है। एन-एन-ई-पी-1440। ऐसा लगता है कि फा० अर्थ 'चिकनाई' के प्रभाव से यह अर्थ आया होगा, क्योंकि अनेक तरह के रंगों के प्रयोग के कारण कई पदार्थों में 'चिकनाई' आ जाती है या बढ़ जाती है। वैसे, 'रंग-रोगन' का प्रयोग 'पालिश' अर्थ में चलता है। ऐसा लगता है कि बाद में 'रंग' शब्द लुप्त हो गया और मात्र 'रोगन' शब्द ही 'रंग' का बोध कराने लगा। यथा, "तर जानकीको आफ्नो शरीरको रोगन का विषयमा उत्ति नैराश्यपूर्ण विचार थिएन।" (लेकिन जानकी को अपने शरीर के रंग के विषय में उतना नैराश्यपूर्ण विचार नहीं था।) दो० च०। वि० प्र०को०पृ० 87। "गोरो, पहेलो रोगन, ज्यादे पातलो छाला नसाहरूको जाल देखिने..." (गोरा पीला रंग, ज्यादा पतला चमड़ा, नसों का जाल दीखनेवाले...।) न० सं० को० गी०। रं० वि० पृ० 88।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

अ : ग—विशेष (अपर) से सामान्य (पर)

जो शब्द प्रारम्भ में किसी समुदाय या वर्ग के किसी एक अंग विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं, वही कभी-कभी बाद में उस सम्पूर्ण समुदाय या वर्ग का प्रतिनिधित्व करने लगते हैं।[1] ऐसे शब्द इस तरह सामान्य हो जाते हैं कि सम्पूर्ण में से अंश को अलग करना छोड़ देते हैं।[2]

तात्पर्य यह कि जब शब्द अंश को छोड़ संपूर्ण को (from species to genus), विशिष्ट भाग या टुकड़ा को छोड़कर सामान्य रूप से पूरे वर्ग का बोध कराये तो माना जाता है कि अर्थ विशेष से सामान्य की ओर चला है।

चाट (तद्० । सं० √ चट् > हि० । चाट ; ने० ।)

टर्नर 'चाट' शब्द को अनुमानतः चक्षति (>सं० चक्षणम्, प्रा० चक्कखइ—स्वाद) का विकसित रूप मानते हैं जिससे 'चखना' क्रियापद बन सकता है, परन्तु ध्वनि की दृष्टि से हिन्दी 'चाट' तक पहुँचना कठिन लगता है। नागरी प्रचारिणी सभा इस शब्द को अनुकरणात्मक मानती है (पृ० 308)। ज्ञानेन्द्र मोहन दास तथा हरिचरण बंद्योपाध्याय सं० √ चट् धातु से विकसित मानते हैं। (दे० ज्ञा०; ह०)। बालचन्द्र शर्मा इसे संस्कृत का तत्सम शब्द मानते हैं।

1. "Instead of designating one category only the word may come to designate the whole class." —H Bahri—Hindi Semantics, p. 216.

2. "The word becomes so very general that it ceases to distinguish anything in particular from everything else."—J. B. Greenough & G. L. Kitteredge -Words and their Ways in English Speech, p. 241

सं० √चट् धातु का अर्थ होता है—तोड़ना, गिरना, अलग। एम-ई-डी-पृ-201।

हि० 'चाट' का अर्थ होता है—चटपटी चीजों को चाटने या खाने की प्रबल इच्छा, कड़ी इच्छा, लत, चाह। इनमें पहला अर्थ संभवतः सं० 'तोड़ना' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि खाने के क्रम में चीजों को दाँतों से तोड़कर टुकड़े में विभक्त किया जाता है। बाद में, 'खाने की इच्छा' अर्थ से 'कड़ी इच्छा' और इससे 'लत' या 'चाह' अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है। यथा, ' उसे तली हुई चीज खाने की चाट (लत) लग गई है।''

विपरीत, ने० 'चाट' का अर्थ हि० की तरह 'कड़ी इच्छा' या 'लत' नहीं है, वरन् मात्र 'इच्छा' या 'रुचि' ही इसका अर्थ हो गया है। ने० हि० को० पृ० 77। हि० में 'इच्छा' के साथ प्रबलता या कड़ापन का जो भाव जुड़ा हुआ है, वह नेपाली में नहीं है। इसमें इस तरह के अर्थ आने का संभवतः वही कारण है जो हिन्दी में 'प्रबल इच्छा' का है। संभव है, बहुत पहले इसका व्यवहार खाने या किसी चीज को तोड़ने की इच्छा के अर्थ में होता हो। वैसे भी, मनुष्य के अन्दर विध्वंसात्मक प्रवृत्ति प्रबल रहा करती है। यथा, ''यस वर्ष आप खाने चाट मनैमा रह्यो।'' (इस वर्ष आम खाने की इच्छा मन में ही रह गई।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष (अपर) से सामान्य (पर)

चुक (तद्० । सं० चुक्रः > हि० ।, ने० ।)

सं० 'चुक्रः' का अर्थ है—अम्लवेत, इमली, खटाई। सं० को० मू० पृ० 122। इसी 'चुक्रः' से हि० और ने० 'चुक' का विकास हुआ है।

सं० 'चुक्रः' से विकसित होने वाले हि० 'चुक' का अर्थ होता है—नींबू, इमली, अनार आदि फलों के रस को गाढ़ा करके बनाया हुआ एक अत्यन्त खट्टा पदार्थ, एक प्रकार का खट्टा साग। स्पष्ट ही है कि खट्टापन जैसे सामान्य गुण के कारण हि० के ये सारे अर्थ सं० से ही विकसित हैं। यथा, ''उसे भोजन में चुक खाने की आदत है।''

विपरीत, ने० 'चुक' का लगभग वही अर्थ है जो हिन्दी में प्रचलित है, पर अन्तर यह है कि जहाँ हि० में एक विशेष प्रकार की खटाई को चुक कहते हैं, वहाँ ने० में सभी 'खट्टे पदार्थ' को।

साथ-साथ ने० में यह शब्द 'भयानक' के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है। सं० में 'चुक्रः' का एक अर्थ 'खटाई' है जो सामान्य रूप से सभी खट्टे पदार्थ को बोधित करती है। सम्भवतः ने० का यह अर्थ सं० 'खटाई' से विकसित हुआ होगा। यथा, ''सित्तिमा पाए त एक पाथी चुक पनि खान्थ्यिस।'' (मुफ्त में मिलने पर एक पाथी (एक नाप विशेष) खट्टा पदार्थ भी खा सकता था।) (उ० हु० अ०। वि० थि० पृ० 159।

ऐसा लगता है कि खट्टा पदार्थ खाने में अरुचिकर होने के कारण असहज रूप में ग्रहण किया गया होगा और बाद में 'भयानक' जैसा भाव विकसित हो गया होगा। ने० में भयानकता या इसी प्रकार का भाव भी 'चुक' के साथ जुड़ गया है। यथा, ''बाहिर चुक जस्तो अंधकार बाहेक केही देखिँदैनथ्यो---'' (बाहर भयानक जैसा अंधकार के सिवा कुछ नहीं दिखाई पड़ता था...।) ने० सा०। बाँ० पृ० 19।

--(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य (पर) से विशेष (अपर)

चूँ (दे० । अनु० हि० I, ने० I)

'चूँ' हि० और ने० दोनों में अनुकरणात्मक शब्द है। चिड़ियों के बोलने से 'चूँ-चूँ' ध्वनि निकलती है, इसीलिए हि० 'चूँ' का अर्थ है—छोटी चिड़ियों के बोलने का शब्द या 'चूँ' शब्द। स्पष्ट ही है कि चिड़िया की बोली के अनुकरण पर ही हि० के ये दोनों अर्थ ग्रहण किये गये हैं। यथा, "प्रातःकालीन बेला में चूँ-चूँ की आवाज से वातावरण मुखरित हो जाता है।"

विपरीत, ने० 'चूँ' का अर्थ मात्र 'छोटी चिड़िया की बोली' अर्थ न होकर सामान्य रूप से 'उच्चारण' या 'बोल' होता है। ने० हि० को० पृ० 81। ऐसा लगता है कि चिड़ियों की 'चूँ-चूँ' ध्वनि के उच्चारण के आधार पर ने० में सामान्य रूप से 'उच्चारण' या 'बोल' अर्थ ग्रहण कर लिया गया होगा। यथा, "तिम्रो यो चूँ-चूँ राम्रो लाग्दैन।" (तुम्हारा यह बोलना अच्छा नहीं लगता है।)

जवान (वि० । फा० —हि० I, ने० I)

फा० 'जवान' का अर्थ होता है—युवक, सैनिक, जिह्वा, भाषा, प्रण। उ० हि० कि० पृ० 144, 252।

हि० 'जवान' का अर्थ होता है—युवा, वीर, सिपाही, वीर पुरुष। हि० ने 'वीर' और 'वीर पुरुष' जैसे दो नए अर्थों को ग्रहण किया है। सिपाही जो दुश्मनों से लड़ते हैं, आमतौर से 'वीर' या 'वीर पुरुष' माने जाते हैं। संभवतः इसी भाव के कारण हिन्दी ने फा० सैनिक अर्थ से इन अर्थों को ग्रहण किया है। यथा, "अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए जवान (वीर या वीर पुरुष) सदा अपना उत्सर्ग करने को तैयार रहते हैं।"

विपरीत, ने० में 'जवान' का अर्थ 'युवा' या 'वीर' न होकर मात्र 'व्यक्ति' होता है। ने० में इस शब्द का अर्थ विशेष से सामान्य हुआ प्रतीत होता है। युवक या सैनिक भी व्यक्ति ही होते हैं। संभवतः यही सामान्य भाव ने० में गृहीत हुआ है। यथा, "जवान भर्खर, 25 वर्ष पुगेको छ —धनबहादुर बस्नेत।" (व्यक्ति अभी 25 वर्ष का हुआ है—धनबहादुर बस्नेत।) बं० । नी० व० श्री० पृ० 2। "—बड़े-बड़े बुद्धिमान र चलाक,मानिसहरूलाई पनि रामनाउदरना कुराले पक्ति अदद पार्न सक्थे, त्यस्ता जवानले लतमायाजस्ती यस अनिभज्ञोलाई प्रभावित पार्न आइतबारे चाहिए न।" (बड़े-बड़े बुद्धिमान और चालाक मनुष्यों को भी रामनाउदर बात करके मस्त कर सकता था, वैसे व्यक्ति से लतमाया जैसी सहज निभानिनी को प्रभावित होने में किसी रविवार की जरूरत नहीं।) ए० चि० । हृ० ना० प्र० पृ० 102।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

थाल (तद्० । सं० स्थाली हि० I, ने० I)

सं० 'स्थाली' का अर्थ होता है—मिट्टी की तश्तरी, हँड़िया। सं० को० सु० पृ० 580। सं० 'स्थाली' से हि० 'थाली' बनी और 'थाली' से 'थाल' शब्द का विकास हुआ।

हि० 'थाल' का अर्थ होता है—बड़ी थाली। स्पष्ट ही है कि सं० 'मिट्टी की तश्तरी' अर्थ से हिन्दी 'बड़ी थाली' अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों मूलतः एक

ही तरह की चीज हैं। सं० के अर्थ की 'मिट्टी' लुप्त हो गई होगी और हि० में किसी धातु या पदार्थ से निर्मित तश्तरीनुमा चीज को थाली कहा जाने लगा होगा। बाद में 'बड़ी थाली' के लिए 'थाल' शब्द का प्रयोग चल पड़ा होगा। यथा, "उसने अनेक तरह की खाद्य-सामग्री से थाल सजाया।"

विपरीत, ने० 'थाल' का अर्थ 'बड़ी थाली' न होकर सामान्य 'थाली' हो गया है। एन-एन-ई-पी-822। सं० अर्थ 'मिट्टी की तश्तरी' का मिट्टी तत्त्व लुप्त हो गया होगा और आकृति-साम्य के कारण किसी अन्य पदार्थ से निर्मित तश्तरीनुमा चीज को 'थाल' कहा जाने लगा होगा। संभवतः इसी तरह ने० के इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "डाक्टर गोदत्तप्रसाद को थालमा भात पनि सकिने लागिसकेको थियो...।" (डॉक्टर गोदत्तप्रसाद की थाली में भात भी समाप्त होने लगा था।) ग० सि०। हृ० च० प्र० पृ० 155। "...कहिले ठूलो चाँदीको थाल भएर देखा पर्छ।" (...कभी बड़ी चाँदी की थाली होकर दिखाई पड़ता है।) मा० च०। बा० पृ० 44। "...थालमा औंलाहरूले भात खेलाइरहे..." (...थाली में अँगुलियाँ भात से खेलती रहीं।) आ० र० मि०। इ० ब० रा० पृ० 147।

—(हि० अवधेश . अभीलक्ष्य)

थोक (तद्० । सं० स्तोक > हि० I, ने० I)

हिन्दी तथा नेपाली के कोशकार 'थोक' शब्द का विकास सं० 'स्तोक' से मानते हैं। (सं० बं०, सं० हि०।)

संस्कृत में 'स्तोक' शब्द का प्रयोग थोड़ा, अल्प, अर्थ में मिलता है, किन्तु उसके थोड़ेपन का विकास सीमित अखण्डता के रूप में हुआ जान पड़ता है। सं० में 'स्तोक' शब्द का प्रयोग किसी पदार्थ की जिस मात्रा के लिए होता है, वह अपने आप में अखण्ड हुआ करती है। यथा, "स्तोकं पयः।" यहाँ किसी पात्र में एकत्र किया हुआ दूध स्वल्पता संकेतित करता है, किन्तु साथ ही साथ पूर्णता का भाव भी संबद्ध है। सं० में यद्यपि 'स्तोक' शब्द के साथ स्वल्पता पर ही बल दिया जाता था, तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि परवर्ती भाषाओं में स्वल्पता का भाव छूट गया और अखण्डता, पूर्णता का भाव बढ़ गया।

हि० 'थोक' का अर्थ होता है—ढेर, समुदाय, समूह। स्पष्ट है कि सं० अर्थ के अन्दर व्याप्त पूर्णता या अखण्डता का भाव इन अर्थों में विकसित हो गया है। यथा, "वहाँ इस तरह की थोक की थोक (ढेर) वस्तुएँ बिक रही हैं।" या "वह थोक (समूह) विक्रेता है।"

हि० के इस अर्थ से भिन्न ने० 'थोक' का अर्थ हो गया है—चीज या वस्तु। एन-एन-ई-पी- 829। संस्कृत अर्थ मात्रावाचक था, किन्तु ने० अर्थ वस्तु का बोध कराने लगा। ऐसा संभवतः इसलिए हुआ होगा कि मात्रा (थोड़ी या कम) किसी न किसी वस्तु की होती है। बाद में, मात्रा का भाव छूट गया और यह शब्द वस्तुवाचक बन गया। यथा, "चोखो यौवनले रविलाई चंचल र अधीर बनाएको होला तर यहाँ अजस्र संवेगले उसको हृदयमा बगेर रविलाई सब थोक देखि चंचल र शुद्ध पनि राख्दछ।" (सुन्दर यौवन ने रवि को चंचल और अधीर बनाया होगा, लेकिन यहाँ अजस्र वेग से

उसके हृदय में बहकर रवि को सभी चीजों से उच्च और शुद्ध भी रखता है।) आ० र० छ०। उ०ब० रा० पृ० 55। "धनीहरून जो मोटरमा हावा खाइ हिंड्छन, जो होटलतरि मीठो-मीठो खाने थोक खाइ हिंड्छन......।" (धनीलोग जो मोटर में हवा खाते हुए घूमते हैं, जो होटल में मीठी-मीठी खाद्य-वस्तु खाकर घूमते हैं.....।) ल० सा०। बा० पृ० 11। "तर अरू सब थोक खूब असल छ।" (लेकिन और सब वस्तु खूब अच्छी है।)न० दा०। वि० प्र० का० पृ० 93।

निराला (तद्० । सं० निरालय>हि० I, ने० II)

सं० 'निरालय' का प्रयोग 'एकान्त स्थान' के अर्थ में होता है । सं० को० सु० पृ० 162।

हिन्दी 'निराला' का अर्थ होता है—एकान्त स्थान, विलक्षण, अजीब, अनूठा, अपूर्व, अद्वितीय, बहुत बढ़िया, निर्जन। इन सारे अर्थों का विकास सं० 'एकान्त स्थान' अर्थ से ही हुआ जान पड़ता है, क्योंकि हि० के इन सारे अर्थों में 'अन्य से भिन्न' या 'एक' या 'अकेला' का भाव है और 'एकान्त स्थान' में भी इसी तरह का भाव है। अन्य स्थान की तुलना में भिन्न एक ऐसा स्थान जो शान्तिपूर्ण या निर्जन होने की वजह से अन्य स्थान से भिन्न है, 'एकान्त' स्थान कहलाता है। विलक्षण, अजीब, अनूठा, अपूर्व, अद्वितीय, बहुत बढ़िया—इन सारे अर्थों में 'अन्य से भिन्न' का भाव है। 'निर्जन' अर्थ पर तो सं० 'एकान्त स्थान' का सीधा प्रभाव है। यथा, "ऐसा निराला (अनूठा) आदमी तो मैंने कहीं देखा नहीं।"

विपरीत, ने० 'निराला' का हिन्दी की तरह इतना अधिक अर्थ नहीं होता। फिर भी, ने० में सं० के अर्थ का विस्तार हो गया है। जहाँ सं० में इसका अर्थ मात्र 'एकान्त स्थान' है, वहाँ ने० में स्थान का भाव समाप्त होकर मात्र 'एकान्त' या 'निर्जन' हो गया है। एन-एन-ई-पी-954। स्पष्ट ही है कि सं० 'एकान्त स्थान' अर्थ का स्थान-वाची भाव समाप्त होकर ने० का ऐसा अर्थ आया है। यथा, "महाकवि देवकोटाको कलम एक निराला ठाउँमा मात्र चल्दथ्यो।" (महाकवि देवकोटा की कलम मात्र एक एकान्त स्थान में चलती थी।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

पख (तद्० । सं० पक्ष>हि० I, ने० I)

सं० 'पक्ष' का अर्थ होता है—पख (15 दिन का शुक्ल पक्ष या 15 दिन का कृष्ण पक्ष), पाँख, कोख, दल, समूह। सं० को० सु० पृ० 168।

हि० 'पख' का अर्थ होता है—ऊपर से व्यर्थ बढ़ाई हुई बात, अड़ंगा, झगड़ा, बखेड़ा, दोष। ऐसा लगता है कि सं० 'दल' या 'समूह' से हि० के इन अर्थों का विकास हुआ होगा, क्योंकि जब लोग आपसी मतभेद या अन्य किसी कारण से दल या समूह में बँट जाते हैं, तब छोटी बात भी बेकार तूल पकड़ लेती है, बात-बात पर अड़ंगा लगता है और फिर एक-दूसरे का दोष निकाला जाता है और अन्ततः बखेड़ा या झगड़ा में उसका अन्त होता है। इस तरह ये सारे अर्थ जो संघर्ष या मतभेदसूचक हैं, मूलतः दलगत

प्रवृत्ति के ही दोष हैं, अतएव सं० 'दल' या 'समूह' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ते हैं। यथा, "बात सुलझने ही वाली थी कि नई पख पैदा हो गई।"

विपरीत, ने० 'पख' का अर्थ होता है—वक्त में, ओर। ने० श० पृ० 593। इनमें 'वक्त में' अर्थ पर सं० 'कृष्ण पक्ष या शुक्ल पक्ष' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि ने० और सं० के ये दोनों अर्थ मूलतः समय से सम्बन्धित हैं। 'ओर' अर्थ सं० 'दल' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि ओर में भी 'दल' की तरह ही 'किसी तरफ' होने का भाव है। 'तुम किस ओर हो' का मतलब ही होता है कि तुम किस दल में हो। यथा, "बिहानीपख टाढामा देखिने पूर्वतिरका ती नीला पहाडहरूबाट झरेका—सूर्य का लामा-लामा किरण को छाप अहिलेसम्म परेक थिएन।" (सुबह के समय में, नजदीक में दीखने वाले पूर्व ओर के उन नीले पहाड़ों से झरने वाली—सूर्य की लम्बी-लम्बी किरण का छाप अब तक नहीं पड़ा था।) लं० सा० । बां० पृ० 1। "चोरयो भने त्यसलाई पखन गर्ने थाहछ।" (चोरी करने वाले का पक्ष नहीं लेने या तरफदारी नहीं करने का पता है।) क० सं० । गो० पृ० 19। "बाबुसाहबले गराएको मेल मेलजोल पश्चिम आकाशजस्तो एकछिनकालागि मात्र रंग-चंगी भएर झल्कियो।" (बाबुसाहब के द्वारा कराया गया मेलजोल संध्याकालीन पश्चिमाकाश के समान मात्र एक क्षण के लिए रंगीन होकर चमक गया।) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 28।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

पीना (तद्० । सं० पिण्याक > हि० I, ने० I)

सं० 'पिण्याक' का अर्थ होता है—तिल या सरसों की खली, शिलाजीत, शिलारस, केशर। सं० को० सु० पृ० 184।

हि० 'पीना' जो सं० 'पिण्याक' से विकसित है, का अर्थ होता है—निःसार खाद्य, खली। चूँकि तेल निकाल लेने के बाद जो निःसार पदार्थ बचता है, उसी को खली कहते हैं, अतएव सं० खली अर्थ से ही हि० के इन दोनों अर्थों का विकास हुआ लगता है। यथा, "कोई भी आदमी पीना (निःसार खाद्य) खाकर स्वस्थ नहीं रह सकता।"

विपरीत, ने० 'पीना' का अर्थ होता है—खली। एन-एन-ई-डी-1050। स्पष्ट यह ही है कि संस्कृत 'खली' अर्थ को ही ने० ने भी ग्रहण किया है, पर अन्तर यह आ गया है कि जहाँ सं० में मात्र 'तिल' या 'सरसों की खली' को पीना कहते हैं, वहाँ ने० में किसी भी खली को। यथा, "काठको डुंडमा खेसारी, पीना, माड र नुन मुछेको परालको सांदी खाइरहेका थिए...।" (लकड़ी की नाद में खेसारी, खली, माँड़ और नमक मिलाई हुई पुआल की सानी खा रहा था...।) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 7। "काल्हाखेर आमाले भन्नुभोभोलि पीना भिजाइदिन्छु, कपाल राम्ररी धुनु।" (कल्हानी माँ ने कहा—कल खली भिगो दूँगी, सिर अच्छी तरह धोना।) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 35। —[हि० अर्थ-विस्तार : विशेष (अपर) से सामान्य (पर)]

बेर (तद्० । सं० वार > हि० I, ने० II)

सं० 'वारः' का अर्थ होता है—दफा, दिन, निश्चित काल, ढक्कन, रुकावट, राशि, तीर। सं० को० सु० पृ० 364।

सं० 'बार:' से विकसित होने वाले हि० 'बेर' का अर्थ होता है—बार, दफा, विलंब। इनमें 'बार' अर्थ तो संस्कृत का ही है और 'विलम्ब' अर्थ संभवत: सं० 'निश्चित काल' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि निश्चित काल के बीतने पर ही विलम्ब माना जाता है। इस तरह ये दोनों अर्थ एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। यथा, "सारे सामानों को तीन बेर (दफा) में पहुँचा दो।"

विपरीत, ने० 'बेर' का अर्थ 'देर' और 'समय'—दोनों होता है। एन-एन-ई-पी-1215। 'देर' अर्थ का विकास लगभग उसी तरह हुआ होगा जिस तरह हिन्दी 'विलम्ब' अर्थ का। 'समय' अर्थ सं० 'दिन' या 'निश्चित काल' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि ये भी समयवाची हैं। ने० में 'बेर' का व्यवहार अधिकतर 'समय' अर्थ में ही होता पाया जाता है, लेकिन हि० में यह अर्थ प्रचलित नहीं है। यथा, "एकचोटि च्वाक्क दिन कति बेर लाग्छ र ?" (एक बार चुम्बन देने में कितना समय लगेगा जी ?) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 82। "...केहि बेर पछि..." (कुछ समय बाद)। क० सं०। गो० पृ० 38। "हामीलाई यो बुझ्न बेर लागेन" (हम लोगों को यह समझने में देर नहीं लगी या समय नहीं लगा।) भ० दा०। वि० प्र० को० पृ० 21।

स्पष्ट है कि० सं० अर्थ 'निश्चित काल' की निश्चितता समाप्त होकर ने० में मात्र 'काल' या 'समय' अर्थ हो गया है। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

विदग्ध (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'विदग्ध' का अर्थ होता है—चतुर, ज्ञानी, बुरी तरह जला हुआ, पचा हुआ (भोजन), हजम, विनष्ट, सड़ा हुआ, नहीं पचा हुआ। सं० को० सु० पृ० 384।

हि० 'विदग्ध' का अर्थ होता है—रसिक पुरुष, पंडित, विद्वान्, चतुर। इनमें 'रसिक पुरुष' को छोड़कर अन्य अर्थ संस्कृत के ही हैं। ज्ञानी पुरुष काव्यरसिक होते हैं, सम्भवत: इसी भाव से सं० 'ज्ञानी' अर्थ से हि० 'रसिक पुरुष' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "प्रस्तुत शृंगार वर्णन विदग्धों के (रसिक पुरुषों के) हृदय को रस से सराबोर कर देता है।"

विपरीत, ने० 'विदग्ध' का अर्थ है—जला हुआ, पचा हुआ। एन-एन-ई-पी-1537। सं० 'बुरी तरह जला हुआ' अर्थ ने० में मात्र 'जला हुआ' और 'पचा हुआ' (भोजन) अर्थ सामान्य रूप में 'पचा हुआ' हो गया लगता है। इस तरह ने० में सं० अर्थ का विस्तार हो गया है। यथा, "रणबहादुर को विदग्ध शरीर प्रहरीको हेरचाहमा छ।" (रणबहादुर की जली हुई देह पुलिस की निगरानी में है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

विप्र (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'विप्र' का अर्थ होता है—ब्राह्मण, विद्वान् व्यक्ति, पीपल या शिरीष का पेड़। सं० को० सु० पृ० 394।

हि० 'विप्र' का मात्र 'ब्राह्मण' या 'पुरोहित' अर्थ ही होता है। 'ब्राह्मण' ही पुरोहित का काम करते हैं, संभवत: इसलिए सं० 'ब्राह्मण' अर्थ से ही 'पुरोहित' अर्थ आया होगा। यथा, "वहाँ चार विप्र पूजा करवा रहे हैं।"

विपरीत, ने० 'विप्र' का एक अर्थ 'ब्राह्मण' तो है, पर इसके अलावा 'मेधावी पुरुष', 'शुभकर्त्ता', 'पीपल' या 'शिरीष का पेड़' अर्थ भी होता है। ने० श पृ० 964। इनमें 'मेधावी पुरुष' सं० विद्वान् पुरुष अर्थ से आया लगता है, क्योंकि विद्वान् व्यक्ति अवश्य मेधावी होते हैं। इसी तरह, चूँकि 'ब्राह्मण' शुभ कार्यों (यज्ञ, पूजादि) को कराते हैं, अतएव सं० 'ब्राह्मण' अर्थ से ही ने० 'शुभकर्त्ता' अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है। अन्य अर्थ तो संस्कृत की ही तरह हैं। यह ध्यान रखने की बात है कि सभी ब्राह्मण शुभ कर्मों में लीन नहीं होते, अतएव सबको शुभकर्त्ता नहीं कहा जा सकता, पर ने० में सं० ब्राह्मण अर्थ से ही शुभकर्त्ता अर्थ का विकास हो गया है जिससे अर्थ-विस्तार हुआ है। यथा "बांगदेलजी जस्ता विप्रको लागि मात्र यो सजिलो काम हो।" (बांगदेव जी के समान मेधावी पुरुषों के लिए ही यह आसान काम है।)

विस्तार (तत्स०। सं० > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'विस्तार:' का अर्थ होता है—फैलाव, वृद्धि, पूरा बयान, वृक्ष का व्यास, झाड़ी, डाली। सं० को० सु० पृ० 419।

हि० 'विस्तार' का अर्थ है—फैलाव, लम्बे या चौड़े होने का भाव। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'फैलाव' से सीधे ग्रहण किये गये हैं। यथा, "चारों ओर जल का विस्तार देखकर मन भयभीत हो उठा।"

विपरीत, ने० 'विस्तार' का अर्थ है—फैलावट, बयान, वर्णन और शाखा। एन-एन-ई-पी-1563। ये सारे अर्थ सं० से ही स्पष्टत: गृहीत हुए हैं। यथा, 'समीपमै पखिरहेको वनले विस्तार-विस्तार त्यो स्थललाई आफ्नो मातृअंकमा पुन: समेटेर लोप गरि दियो।" (समीप में ही स्थित वन ने फैलकर उस जगह को अपने मातृअंक में फिर से लेकर लुप्त कर दिया।) गु०। बी० पी० को० पृ० 3। "कुराअलिकति बटारेपछि फेरि विस्तार-विस्तार धर्मप्रसादले भने।" (बात को थोड़ा व्यर्थ घुमाकर फिर वर्णन करते हुए धर्मप्रसाद ने कहा...) आ० र० छ०। ए० ब० रा० पृ० 17।

श्लोक (तत्स०। सं० > हि० ।।, ने० ।।)

संस्कृत 'श्लोक:' का अर्थ होता है—संस्कृत का पद्य, आवाज, प्रशंसा। सं० को० सु० पृ० 488।

हि० 'श्लोक' का अर्थ है—संस्कृत का पद्य, प्रशंसा, कीर्ति, पुकार, आवाज, शब्द। हि० 'पुकार' और 'शब्द' अर्थ सं० 'आवाज' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि इन दोनों में आवाज विद्यमान रहती है। 'पुकार' में आवाज जरा जोरदार हो जाती है और जब तक आवाज फूटेगी नहीं तब तक शब्द स्पष्ट नहीं होगा। फिर भी, हिन्दी में श्लोक प्रमुखत: संस्कृत के पद्य के लिए ही व्यवहृत होता है। यथा, "वह श्लोक-पाठ कर रहा है।" अथवा "उसके मुँह से निकले श्लोक (शब्द) इतने अस्पष्ट थे कि कोई समझ नहीं सका।"

विपरीत, ने० 'श्लोक' का अर्थ 'पद्य, पद्य में लिखी रचना' होता है। एन-एन-ई-पी-1626। सं० अर्थ 'संस्कृत का पद्य' ही नेपाली में सामान्य रूप से 'पद्य' का बोध कराने लगा—ऐसा प्रतीत होता है। यथा, "एउटा श्लोक रचेर सुनाऊन।" (एक पद्य की रचना करके सुनाओ न।)

स्पष्ट ही है कि संस्कृत में जो श्लोक मात्र 'संस्कृत का पद्य' अर्थ का बोध कराता था, वही श्लोक नेपाली में किसी भी भाषा में रची गई पद्यबद्ध रचना का बोध कराने लगा ।

अ : घ—विभेदीकरण : अर्थ-विस्तार

धात्वर्थ के अनुसार अथवा किसी ऐतिहासिक कारण से जो शब्द एक बार पर्याय रहते हैं या देखने में पर्यायवाची मालूम होते हैं, वे ही शब्द जिस व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों में आने लगते हैं, उसको कहते हैं भेदीकरण ।[1]

किसी भी भाषा में जब एक ही तरह के या पर्यायवाची अनेक शब्द प्रचलित हो जाते हैं तो उनमें भेद कर लिया जाता है जिससे अर्थ का विस्तार होता है ।

जीवित भाषा में एक वस्तु या कार्य के लिए ठीक एक ही अर्थ रखने वाले दो शब्द नहीं रह सकते । भाषा यह व्यर्थ का बोझ स्वीकार नहीं करती । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक तत्सम शब्द के साथ उसके तद्भव या अर्द्धतद्भव शब्द का भी प्रचलन हो जाता है । ऐसी दशा में दो बातों में से कोई एक घटित होती है—या तो दोनों में से कोई एक लुप्त हो जाता है या फिर किसी एक का अर्थ कुछ भिन्न हो जाता है ।[2]

गत (तत्स० । सं० — हि० ।, नें० ।)

सं० 'गत' का अर्थ है—बीता हुआ, मृत, प्राप्त, गया हुआ । सं० को० सु० पृ० 107 ।

हिन्दी 'गत' का अर्थ—बीता हुआ, मरा हुआ, शून्य, अवस्था, दशा, रूप, रंग, वेश, सुगति, दुर्गति, बाजों की कुछ ध्वनियों का क्रमबद्ध मिलान—होता है। इनमें 'शून्य' अर्थ सं० 'मृत' से आया लगता है, क्योंकि मृत हो जाने में शरीर आत्मा से शून्य हो जाता है। 'अवस्था' या 'दशा' अर्थ सं० 'प्राप्त' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि जो जिस स्थिति को प्राप्त करता है, वही उसकी 'अवस्था' होती है । हि० 'रूप', 'रंग' और 'वेश' अर्थ सं० 'प्राप्त' अर्थ से ग्रहण किये गये लगते हैं, क्योंकि इनमें किसी आकृति या रंग की प्राप्ति का भाव है। इसी तरह, 'सुगति' या 'दुर्गति' अर्थ 'अवस्था' की तरह ही 'प्राप्त' अर्थ से ग्रहण किया गया लगता है । 'बाजों की ध्वनियों का क्रमबद्ध मिलान' भी सं० 'प्राप्त' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि इसमें भी एक समरूपता प्राप्त करने का भाव है। यथा, "इस हारमोनियम की गत ठीक नहीं है । उसकी गत (दुर्गति) आज देखते बनती थी ।" हस्तगत (हाथ में प्राप्त), शब्दगत (शब्द में प्राप्त) जैसा प्रयोग भी हिन्दी में चलता है ।

विपरीत, नें० 'गत' का अर्थ है—निराशापूर्ण, बेकार, शून्य, अच्छी हालत में नहीं होना । एन-एन-ई-पी-380 । इनमें 'निराशापूर्ण' और 'बेकार' अर्थ हिन्दी में

1. श्यामसुन्दर दास—भाषाविज्ञान, पृ० 192 ।
2. डॉ० भोलानाथ तिवारी—भाषाविज्ञान कोश, पृ० 49-50 ।

प्रचलित नहीं हैं। अन्य अर्थ हिन्दी में भी प्रचलित हैं और उनका विकास भी संभवतः हिन्दी की तरह ही हुआ होगा। 'निराशापूर्ण' और 'बेकार'—दोनों अर्थ सं० 'मृत' या 'बीता हुआ' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। मृत व्यक्ति भी निराश कर जाता है और बीता हुआ (समय) भी। मृत व्यक्ति बेकार की चीज बन जाता है और बीता हुआ (समय, घटना या बात) भी। संभव है, इसी भाव से इन अर्थों का विकास हुआ हो। यथा, "तर उ किन बोल्छ। के सरोकार उसलाई, आफ्नो गतलाले त असै गै उसै गै।" (लेकिन वह क्यों बोलता है, उसको क्या मतलब, अपनी नैराश्यपूर्ण स्थिति के कारण ऐसे-वैसे गया।) न० सं० को गी०। र० वि० पृ० 7। "हे ईश्वर ! मेरो कुन गत हुने हो नि अब।" (हे ईश्वर ! मेरी क्या बुरी अवस्था होनी है अब।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 54।

घांटी (तद्० । सं० घंटिका > हि० I, ने० I)

इस शब्द का विकास श्री बालचन्द्र शर्मा सं० 'घाटा' से मानते हैं एवं सं० हि० श० सा० सं० 'घंटिका' से। डॉ० बाबूराम सक्सेना भी इसे सं० 'घंटिका' से ही विकसित मानते हैं।

सं० 'घंटिका' का अर्थ होता है—घंटी या छोटा घंटा। सं० का० सू० पृ० 115।

हि० 'घांटी' का अर्थ है—गले के अन्दर की घंटी, कौआ, गला। इनमें 'गले के अन्दर की घंटी' या 'कौआ' अर्थ सं० 'घंटी' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि इनमें आकृति-साम्य है। 'गला' अर्थ बाद में सामीप्य-सम्बन्ध के कारण आया लगता है। यथा, "उसकी घांटी में सूजन हो गया है जिससे कुछ खा-पी नहीं सकता।"

ने० घांटी का अर्थ होता है—गला, कण्ठ। एन-एन-ई-डी-169। हिन्दी में ने० की तरह 'कण्ठ' अर्थ प्रचलित नहीं है। चूंकि 'कण्ठ' और गले से आवाज निकलती है, इसलिए ये अर्थ भी सं० 'घंटी' अर्थ से ही विकसित लगते हैं। सामान्य घंटी और इस घंटी में अन्तर स्थापित कर दिया गया है जिससे इस तरह का विशेषीकरण हुआ है। यथा, "एउटा सिपाहीले घांटीमा गलबन्दी बांधेर आफ्नो देब्रे हात त्यसैमा अड्याएका छ।" (एक सिपाही कण्ठ में गुलबन्द बाँधकर अपना बायाँ हाथ उसी में लटकाये हुए है।) मु० बा। बा० पृ० 36। "बीरे भन्दाभन्दै उसको आवाज काँपेर भिभिन भयो र घांटीमा अड्क्यो।" (बीरे कहते-कहते उसकी आवाज काँपकर भिभिन होती गई और गले में अटक गई।) क० सं०। गी० पृ० 35। "घांटीभित्र बात गर्छ र बिन्थामा झगडा गर्छ।" (गले के अन्दर बात करता है और व्यर्थ में झगड़ा करता है।) आ० र० म० इ० ब० रा० पृ० 77।
—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

झरना (तद्० । सं० क्षरण > हि० I, ने० I)

सं० 'क्षरण' का अर्थ होता है—बहना, गिरना। एस-ई-डी-पी-171।

हि० 'झरना' क्रिया का अर्थ है—ऊँची जगह से सोते का गिरना, किसी चीज से टूटकर गिरना। सं० 'गिरना' अर्थ से हि० के ये दोनों अर्थ विकसित हुए हैं, क्योंकि इन दोनों में गिरने का भाव है। अन्तर यह आया है कि सं० में 'क्षरण' का अर्थ सामान्य रूप से गिरना है, और हिन्दी में झरना का अर्थ ऊँची जगह से सोते का गिरना या

किसी चीज से टूटकर गिरना। इस तरह हिन्दी में अर्थ-संकोच हो गया है—सामान्य से विशेष की ओर। यथा, "वृक्ष से पीले पत्ते झर रहे है।" या "पहाड़ों पर झरते हुए सोते बड़े अच्छे लगते हैं।"

विपरीत, ने० 'झर्नु' क्रिया का एक अर्थ 'उतरना' भी होता है, यद्यपि 'गिरना' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-684। 'गिरने' और 'उतरने'—दोनों में ऊपर से नीचे आने का भाव है, अतएव सं० 'गिरना' अर्थ से ने० 'उतरना' अर्थ विकसित मालूम पड़ता है। यथा, "...नामग्येल हातमा सिगरेटको टिनलिएर सिंढी देखि झरी सडकमा आए।" (...नाग्येल हाथ में सिगरेट की टीन लेकर सीढ़ी से उतर कर नीचे आया।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 176।

—[हि० अर्थ-संकोच : सामान्य (पर) से विशेष (अपर)]

पाहुना (तद्०। सं० प्राघुर्णक: > हि० I, ने० I)

सं० 'प्राघुर्णक:' का अर्थ होता है—मेहमान, आगन्तुक। एस-ई-डी-पी-374।

हि० 'पाहुना' का अर्थ—अतिथि, दामाद, जमाता, मेहमान होता है। इनमें 'दामाद' या 'जमाता' अर्थ नया है जो संभवत: सं० 'मेहमान' अर्थ से विकसित हुआ होगा। 'दामाद' भी मेहमान की तरह ही आदर और सत्कार का पात्र माना जाता है, शायद इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "कल पाहुना (दामाद) लड़की की बिदाई के लिये आयेंगे।"

विपरीत, ने० में 'पाहुना' का अर्थ 'दामाद' नहीं होता। इसमें कोई भी अतिथि या स्वागत करने योग्य इष्ट-मित्र पाहुना कहलाता है। सं० 'मेहमान' का जो भाव है, ने० अतिथि या 'स्वागत करने योग्य इष्ट-मित्र' का भी वही भाव है—शायद इसी वजह से ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। थोड़ा-सा अन्तर इस बात में है कि ने० में 'इष्ट-मित्र' कहकर अर्थ में थोड़ी भिन्नता ला दी गई है। पर यह इतना नगण्य है कि ने० में अर्थ-विकास को घटित होना नहीं दिखाया जा सकता। यथा, "...त्यसदिन देखि मसिनी र महिला भुजेल दुवै दलबहादुर का घरमा पाहुना जस्ता भएर बस्न थाले।" (उस दिन से मसिनी और महिला भुजेल—दोनों दलबहादुर के घर में अतिथि या इष्ट-मित्र सदृश होकर रहने लगे।) मु० बा०। बा० पृ० 62। "प्रजातंत्र...नागरिक...मित्र-राष्ट्र...पाहुना...स्वागत...दिलखोलेर...इत्यादि के के हो।" (प्रजातंत्र....नागरिक... मित्रराष्ट्र...आगन्तुक...स्वागत...दिल खोलकर...इत्यादि क्याक्या है।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 76। इस तरह स्पष्ट है कि 'पाहुना' में हिन्दी में ही अर्थ-विस्तार होता है, नेपाली में नहीं।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

बंधकी (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'बंधकी' का अर्थ होता है—रंडी, बाँझ औरत, हथिनी। सं० को० सु० पृ० 232।

हि० 'बंधकी' का अर्थ है—व्यभिचारिणी, बदचलन औरत, वेश्या। सं० 'रंडी' अर्थ से हिन्दी के ये अर्थ विकसित हुए मालूम पड़ते हैं, क्योंकि रंडियाँ भी व्यभिचारिणी या बदचलन होती हैं। यथा, "भला आदमी बंधकी को देखकर स्वयं कतरा जाते हैं।"

विपरीत, नें० ने सं० का 'वेश्या' और 'बाँझ औरत'—दोनों अर्थों को ग्रहण किया है। नें० श० पृ० 731। हिन्दी ने 'बाँझ औरत' अर्थ को नहीं अपनाया—यह नें० से भिन्नता है। वैसे नें० में कोई नया अर्थ नहीं गृहीत होने के कारण कोई अर्थ-विकास नहीं हुआ है। अर्थ-विस्तार का 'विभेदीकरण' मात्र हिन्दी में घटित होता दिखाई पड़ता है। यथा, "बंधकीलाई प्रसूतिको पीड़ाको के ज्ञान।" (बाँझ औरत को प्रसूति की पीड़ा का क्या ज्ञान ?) —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

बस्ता (वि०। फा०> हि० I, नें० I)

फारसी 'बस्ता' का अर्थ होता है—बद्ध, बँधा हुआ, जमा हुआ, थैला। उ० हि० डि० पृ० ७६।

हि० 'बस्ता' का अर्थ है—कपड़े का चौकोर टुकड़ा जिसमें कागज, बही या पुस्तक आदि बाँधकर रखते हैं। ऐसा लगता है कि फारसी अर्थ 'बँधा हुआ' से हि० का यह अर्थ विकसित हुआ है, क्योंकि इसमें भी किसी बही, पुस्तक आदि के बँधे होने का भाव निहित है। विभेद यह आया है कि किसी चीज के द्वारा कोई भी चीज बँधी हुई रहने पर फा० बस्ता का व्यवहार हो सकता है, पर हि० में चौकोर कपड़े के टुकड़े में बही, पुस्तक आदि ही बँधे रहने पर 'बस्ता' का व्यवहार होता है। यथा, "उसने पुस्तकों का बस्ता उठाया और घर की ओर चल पड़ा।"

विपरीत, नें० में 'बस्ता' का प्रयोग पुस्तक, कागज या बही बाँधने वाला कपड़ा के लिए न होकर 'बोरा' और 'माल-सामान रखने वाला कपड़े का थैला' के लिए होता है। एन-एन-ई-पी-1168। नें० का 'बोरा' अर्थ फा० 'थैला' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि दोनों मूलतः सामान रखने के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। अन्तर यह हो गया है कि थैला छोटा होता है और बोरा बड़ा; थैला कपड़े का होता है और बोरा पाट का। नें० का दूसरा अर्थ 'थैला' फा० अर्थ 'थैला' के समान ही है। यथा, "रात को अन्धकारमा बस्ताको बस्ता......चामल बेपत्ता हुन्थे।" (रात के अन्धकार में बोरा का बोरा......चावल गायब होता था।) आ० र० छ०। द० ब० रा० पृ० 10। "चामलको बस्ता जस्ता......।" (चावल के बोरे के समान) आ० र० छ०। द० ब० रा० पृ० 96।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

मद (तत्स०। सं०> हि० II, नें० II)

सं० 'मद' का अर्थ होता है—नशा, उन्माद, मस्ती, कामलिप्सा, हाथियों के मस्तक से चूने वाला पानी, प्रेम, गर्व, शराब, आध्यात्मिक प्रसन्नता, मधु, कस्तूरी। सं० को० सु० पृ० 269।

हि० 'मद' का अर्थ है—हर्ष, वह गंधयुक्त द्रव्य जो मतवाले हाथियों की कनपटियों से बहता है, वीर्य, कस्तूरी, मद्य, नशा, उन्मत्तता, गर्व, घमंड। इनमें 'हर्ष' और 'वीर्य' अर्थ नए हैं जो संभवतः सं० 'मस्ती' से विकसित हैं। 'मस्ती' में वही रहता है जो वीर्यवान होता है और मस्ती में रहने से खुशी स्वभावतया आ जाती है। संभवतः इसी भाव से ये अर्थ आये हैं। यथा, "आजकल वह नए मद (खुशी) में डूबा हुआ है।"

विपरीत, नें० 'मद' का हिन्दी की तरह इतने अर्थ नहीं होते। नें० में इसका अर्थ है—नशा, मदिरा, घमंड। एन-एन-ई-पी-1299। इनमें 'घमंड' अर्थ नया है जो

संभवत: सं० 'गर्व' अर्थ से आया है। 'गर्व' और 'घमंड' लगभग एक ही हैं, अन्तर मात्र इतना है कि 'गर्व' उचित होता है और 'घमंड' अनुचित। यथा, "यो तिमीले होइन तिम्रो मदले मनिरहेको छौ।" (यह तुम नहीं, तुम्हारा घमंड बोल रहा है।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

लेप (तत्स०। सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'लेप:' का अर्थ होता है—उबटन, कोई वस्तु जिससे मालिश की जाय, भोजन, मालिश करना। सं० को० सु० पृ० 331।

हि० 'लेप' का अर्थ होता है—लेई के समान गाढ़ी गीली वस्तु, गाढ़ी गीली वस्तु की वह तह जो किसी वस्तु के ऊपर फैलाई जाय। हि० के ये सारे अर्थ सं० 'उबटन' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उबटन भी एक तरह की गाढ़ी गीली वस्तु ही है। हि० में इसका सामान्यीकरण करके अर्थभेद कर दिया गया है। यथा, "इस पर चूना और हल्दी का लेप लगाओ, दर्द ठीक हो जायगा।"

विपरीत, ने० 'लेप' का अर्थ है—मलहम, बाम, लिपना या पोतना। एन-एन-ई-पी-1495। ने० के ये अर्थ भी सं० 'उबटन' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि मलहम या बाम भी उबटन की तरह ही गाढ़ा और गीला होता है और इसे भी शरीर पर ही लगाया जाता है। 'लिपना' या 'पोतना' अर्थ संभव है कि 'मालिश करना' अर्थ से विकसित हुआ हो, क्योंकि मालिश करने में भी तेल या अन्य किसी तरल पदार्थ को शरीर पर पोता जाता है और तत्पश्चात् रगड़ा जाता है। यथा, "यो घाउमा लेप लगाउनु पर्छ नत्र निको हुन गाह्रो पर्छ।" (इस घाव में मलहम लगाना होगा, नहीं तो ठीक होने में कठिनाई होगी।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

वाचा (तत्स०। सं० > हि० II, ने० I)

सं० 'वाचा' का अर्थ है—वाणी द्वारा, कहकर, वचन, वाणी, शपथ। सं० को० सु० पृ० 357।

हि० 'वाचा' का अर्थ है—वाणी, वाक्य, वचन, शब्द। इनमें 'वाक्य' और 'शब्द' हि० के नए विकसित अर्थ हैं जो संभवत: सं० 'वचन' या 'वाणी' अर्थ से आये हैं। कोई भी वचन या वाणी वाक्यों या शब्दों के माध्यम से प्रकट की जाती है, संभवत: इसीलिए ऐसा अर्थ-विकास हो गया है। वैसे, हिन्दी में वचन, वाणी, वाक्य और शब्द—पर्याय के रूप में भी प्रयोग में आते हैं जिससे पता चलता है कि इनमें किस तरह भाव-साम्य है। यथा, "ऐसा कठोर वचन मत बोलो" के बदले कोई "ऐसा कठोर वाक्य या शब्द मत बोलो" भी कह सकता है। यथा, "उसके वाचा को सुनकर मन को कष्ट पहुँचा।"

विपरीत, नेपाली में 'वाचा' का मुख्य अर्थ 'प्रतिज्ञा' या 'कबूल' है, वैसे 'वाणी' के अर्थ में भी इसका प्रयोग चलता है। एन-एन-ई-पी-1521। सं० अर्थ 'शपथ' से ही 'प्रतिज्ञा' या 'कबूल' अर्थ का विकास होना जान पड़ता है। 'शपथ' और 'प्रतिज्ञा' या 'कबूल' में बहुत अन्तर नहीं है। इन सबका एक ही भाव है—दृढ़ निश्चय की स्वीकृति देना। मामूली-सा अन्तर यह है कि 'शपथ' में किसी व्यक्ति या ईश्वर का नाम लेकर दृढ़ता की अभिव्यक्ति करनी पड़ती है और 'प्रतिज्ञा' या 'कबूल' में बिना किसी का नाम लिए ही। यथा, "वाचा गर दिलीप! पहले वाचा गर लो!" (प्रतिज्ञा करो दिलीप; पहले प्रतिज्ञा कर लो।) फे० का० भे० हो०। ग्रु० था० पृ० 79।

हिन्दी में 'प्रतिज्ञा' अर्थ में 'वाचा' का प्रयोग नहीं होता है, यह ने० का अपना विकसित अर्थ है। —(हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

संघार (तद्० । सं० संहार>हि० I, ने० I)

सं० 'संहारः' का अर्थ होता है—पास लाना, समेटना, सारः, रुकावट, समूह, प्रवीणता, अंत, विनाश। सं० को० सु० पृ० 514।

हि० 'संघार' का अर्थ है—नष्ट होना, नाश, ध्वंश, समाप्ति, परिहार, बटोरना, गूँथना, समेटकर बाँधना। स्पष्ट है कि शुरू के तीन अर्थों पर सं० 'विनाश' अर्थ का 'परिहार' और 'समाप्ति' अर्थ पर सं० 'अंत' अर्थ का, और शेष अर्थों पर सं० 'समेटना' अर्थ का प्रभाव है। 'गूँथने' में भी समेटना पड़ता है, संभवतः इसलिए सं० 'समेटना' अर्थ से हि० 'गूँथना' क्रिया का विकास हुआ है। यथा, "केवल पाँच ही पाण्डवों के कारण पूरे देश का संघार (नाश) हो गया।"

विपरीत, ने० 'संघार' का अर्थ है—अपव्यय, बरबादी, सत्यानाश, दरवाजा का निचला भाग। एन-एन-ई-पी-1647; 1630। इनमें 'अपव्यय' अर्थ सं० 'विनाश' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि अपव्यय के कारण विनाश सुनिश्चित है। दरवाजे का निचला भाग अर्थ सं० 'रुकावट' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि आने-जाने में दरवाजे का निचला भाग कभी-कभी ठोकर मारकर रुकावट पैदा करता है। शेष अर्थ सं० के अनुरूप ही हैं और हिन्दी से भिन्न भी नहीं है। यथा, "उ बिस्तारै आएर ढोकाको संघारमा बस्थी...।" (वह आहिस्ते से दरवाजे के निचले भाग पर आ बैठी...।) ने० स० को० गी०। र० वि० पृ० 125। "...रानी भान्साकोठाको संघारनेर घोप्टिएर रोईरहेकी रहिछ।" (...रानी रसोईघर के दरवाजे के निचले हिस्से के पास ओंधा पड़कर रो रही है।) गा० भ०। बां० पृ० 23।

सफा (वि० । अ०>हि० I, ने० I)

अरबी 'साफा' का अर्थ होता है—विमलता, सफाई, पवित्रता, साफ, बेलाग। उ० हि० डि० पृ० 376।

हि० 'सफा' का प्रयोग 'साफ, स्वच्छ, पवित्र, चिकना, बराबर' अर्थों में होता है। इनमें 'चिकना' या 'बराबर' अर्थ संभवतः अ० 'बेलाग' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि 'बेलाग' में किसी तरह की 'लाग-लपट' या 'खुरदुरापन' नहीं होने का भाव है और वही भाव 'चिकना' और 'बराबर' में भी है। यथा, "वाह, क्या सफा (चिकना) फर्श बनाया है।"

विपरीत, ने० 'सफा' का उतना अधिक अर्थ नहीं है जितना हिन्दी 'सफा' का। ने० 'सफा' का अर्थ है—साफ, स्वच्छ, निर्मल। एन-एन-ई-पी-1673। ये सारे अर्थ अ० 'विमलता' या 'साफ' अर्थ के पर्याय हैं। लेकिन, इन अर्थों के अलावा एक नया अर्थ भी विकसित हो गया है, वह है 'गोरा रंग'। अ० 'साफ' अर्थ से यह विकसित मालूम पड़ता है। गोरा रंग को आमतौर से साफ रंग मानने का रिवाज है, संभव है इसी भाव के कारण यह अर्थ आया हो। यथा, "एकजनाको अलि सफा र राम्रो थियो।" (एक आदमी का (रंग) जरा गोरा और अच्छा था।) का० सं०। गा० पृ० 1। "वर्ण सफा र स्निग्ध होइन, अनुहारको बनोट पनि बान्की परेको होइन...।" (रंग गोरा और

चमकदार नहीं, चेहरे की बनावट भी सुन्दर नहीं...।) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 3। "आकाश को आधा भाग सफा निलो थियो...।" (आकाश का आधा भाग साफ नीला था...।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 252। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

हंस (तत्स०। सं०>हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'हंस:' का अर्थ होता है—बत्तख जाति का एक पक्षी, आत्मा, ब्रह्म, महादेव, विष्णु, सूर्य, कंदर्प, असाधारण व्यक्ति, घोड़ा, बोझ ढोने वाला बैल या भैंसा, पहाड़, चाँदी। सं०को०सु० पृ० 604।

हि० 'हंस' का अर्थ है—बत्तख के आकार का पक्षी, एक वर्णवृत्त, माया से निर्लिप्त आत्मा, जीवात्मा, सूर्य, ब्रह्म, विष्णु, शिव, प्राणवायु, घोड़ा। इनमें सं० 'आत्मा' से हि० 'माया' से निर्लिप्त 'आत्मा' या 'जीवात्मा' अर्थ का विकास हुआ मालूम पड़ता है, क्योंकि सबमें मूलतः आत्मा का भाव है। हिन्दी में सं० 'आत्मा' को मात्र विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त कर दिया गया है। 'एक वर्णवृत्त' अर्थ संभवतः सं० 'असाधारण व्यक्ति' अर्थ से आया होगा। संभव है कि पहले असाधारण व्यक्ति ही इस छन्द में काव्य की रचना करने में सक्षम होते हों। शेष अर्थ संस्कृत के समान ही हिन्दी में व्यवहृत होते हैं। यथा, "एक दिन तुम्हारे अन्दर का हंस उड़कर चला जायगा।" सन्त कबीरदास ने 'हंस' का 'माया से निर्लिप्त आत्मा' के अर्थ में बहुत स्थानों पर प्रयोग किया है।

विपरीत, ने० 'हंस' का अर्थ होता है—होश, प्राण, जीवनी-शक्ति, हांस (बत्तख जाति का पक्षी)। एन-एन-ई-पी-1803। होश, प्राण और जीवनी-शक्ति जैसे ने० अर्थ सं० 'आत्मा' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि जब तक आत्मा शरीर में रहती है तभी तक कोई होशयुक्त, प्राणयुक्त या जीवनी-शक्तियुक्त रहता है। यथा, "उता पातली बलेलाई देख्नासाथ उसको हँसपनि ठाउं छोड्यो।" (वहाँ बले को देखते ही उसके होश उड़ गये।) न०स०को०गी०।र०वि० पृ०7।

—[हि० अर्थ-संकोच : सामान्य (पर) से विशेष (अपर)]

अ : ङ—भ्रान्त धारणा : अर्थ-विस्तार

किसी भी भाषा में शब्दों की सही जानकारी मात्र कुछ ही विज्ञ जनों को हुआ करती है, शेष लोग यों ही बिना सही अर्थ की जानकारी के शब्दों का प्रयोग करते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि भ्रान्त धारणा के कारण अर्थ का विस्तार हो जाता है।

श्री कपिलदेव द्विवेदी आचार्य बतलाते हैं 'अज्ञान, त्रुटिपूर्ण स्मरण-शक्ति, अस्पष्ट श्रवन, मिथ्या-ज्ञान, अशुद्ध प्रयोग, प्रमाद और आलस्य के कारण शब्दों के अर्थ में अन्तर पड़ जाता है।"[1] यह अन्तर कभी-कभी अर्थ-विस्तार के रूप में भी दिखाई पड़ता है जिसके मूल में भ्रान्त धारणा ही है, चाहे वह अज्ञान, मिथ्या-ज्ञान या त्रुटिपूर्ण स्मरण-शक्ति के कारण ही क्यों न हो। जब शब्द के सही अर्थ का बोध या ज्ञान नहीं

1. अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृ० 125।

होता है तो उसमें अन्तर की संभावना बनी रहती है। विदेशी शब्दों के साथ ऐसी भूल प्रायः हो जा सकती है। शिवनाथ लिखते हैं, "किसी भाषा में जब विदेशी शब्द गृहीत होते हैं, तब वे (विदेशी शब्द) अपने मूल अर्थ का त्याग करते हुए देखे जाते हैं।"[1] यह परिवर्तित अर्थ पहले अर्थ की तुलना में विस्तृत भी होता देखा गया है।

अंजाम (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

'अंजाम' फारसी शब्द है जिसका अर्थ होता है—परिणाम, अन्त, आखिर। उ०हि०डि० पृ० 40।

हि० 'अंजाम' का अर्थ है—परिणाम, समाप्ति, पूर्ति। हि० 'समाप्ति' या 'पूर्ति' अर्थ फा० 'अन्त' अर्थ से विकसित हुआ लगता है। तीनों में 'अन्तिम स्थिति' का सामान्य भाव है। यथा, "जब उसने काम को ऐसा अंजाम (समाप्ति) दिया, सभी आश्चर्यचकित रह गये।"

विपरीत, ने० 'अंजाम' का अर्थ होता है—अंदाज। ने०हि०को० पृ० 1। लोग 'परिणाम' का अंदाज प्रारंभ में ही लगाकर किसी काम की शुरुआत करते हैं, संभवतः इसी भाव के कारण फा० 'परिणाम' अर्थ से ने० 'अंदाज' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "मेरो अंजाम सबै समयमा असल हुन्छ।" (मेरा अंदाज हर समय सही होता है।)

कलम (वि०। अ०>हि० I, ने० I)

अरबी 'कलम' का अर्थ होता है—लेखनी, कातना, वह शाखा जो डाली काट कर लगाते हैं। अ०ता०उ० पृ० 252।

हि० 'कलम' का अर्थ है—लेखनी, पेड़ की डाली दूसरे में लगाना। स्पष्ट ही है कि ये दोनों अर्थ अ० अर्थ के समान ही हैं। अतएव, हि० में किसी प्रकार का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "वह कलम से लिखता है।"

विपरीत, ने० 'कलम' का अर्थ हो गया है—विभाजित रकम। ने०हि०को० पृ० 31। एक डाली को विभाजित करके (काट करके) दूसरी डाली में जोड़ देते हैं, संभवतः इसी विभाजन करने के भाव के कारण अ० 'वह शाखा जो डाली काटकर लगाते हैं' अर्थ से ने० का यह अर्थ आया होगा। अ० में डाली विभाजित होती है और ने० में रकम—यही अन्तर है। यथा, "मैले सबै कलमको भुगतान गरेको हो।" (मैंने सभी तरह की रकमों का भुगतान कर दिया है।)

खजाना (वि०। अ० ख़ज़ान>हि० I, ने० I)

अरबी 'ख़ज़ान' का अर्थ होता है—कोष, निधि, राजकोष, भंडार, धन। उ०हि०डि० पृ० 211।

हि० 'खजाना' का प्रयोग 'धनागार, राजस्व, कर' अर्थों में होता है। इनमें 'राजस्व' या 'कर' अर्थ अ० 'राजकोष' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि राजस्व की वसूली से राजकोष भरता है। प्राचीन समय में राजकोष की आय का मुख्य

1. अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 173।

स्रोत 'राजस्व' ही था। संभव है, इसी वजह से इस नए अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "वह खजाना (राजस्व) वसूल करने गया है।"

विपरीत, ने० 'खजाना' का अर्थ होता है—संग्रह, हथियार, भाड़ा और धनागार। एन-एन-ई-पी-311। इनमें 'धनागार' अर्थ तो अ० 'कोष' के समान ही है, पर 'संग्रह' अर्थ धन का एक जगह (कोष में) संग्रह होने के कारण आया लगता है। संभवतः प्राचीन काल में 'हथियार' भी राजकोष में ही सुरक्षित रखे जाते थे जिससे 'हथियार' अर्थ का विकास हुआ होगा। 'भाड़ा' धनप्राप्ति का साधन है, संभव है इसी भाव के कारण अ० 'धन' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "पुष्पा को नयां क्लासको किताबहरु किनेकै छैन र त्यत्तो खजाना लगेकै छैन।" (पुष्पा के नए वर्ग की किताबें खरीदी नहीं गई हैं, वैसा संग्रह लगा नहीं या हुआ नहीं है।) आ०र०छ०। इ० ब०रा० पृ० 46। "पाएभरिको हाउस-एलाउन्सले त्यहांको खजाना तिर्न पुगेन रे।" (मिलने वाले हाउस-एलाउन्स से वहाँ का भाड़ा देना संभव नहीं होता जी।) आ०र० छ०। इ०ब०रा० पृ० 97। —(हि० अर्थ-विस्तार : भ्रान्त धारणा)

डोल (तद्० । सं० दोलः > हि० ा, ने० ा)

सं० 'दोलः' का अर्थ होता है—झूला या हिंडोला। सं०को०सु० पृ० 146।

हि० 'डोल' का अर्थ है—लोहे का गोल बरतन, हिंडोला, डोली, पालकी, हलचल। इनमें 'लोहे का गोल बरतन, डोली, पालकी' अर्थ सं० 'झूला' से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि कुएँ से पानी भरते समय वह बरतन, कंधे पर ले जाती हुई डोली या पालकी झूले की तरह ही झूलती है। 'झूला' में अस्थिरता होने के कारण 'हलचल' अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि 'हलचल' में भी अस्थिरता का भाव है। यथा, 'वह डोल से पानी भरता है।"

विपरीत, ने० 'डोल' का अर्थ है—नदी किनारे की दो बगल की ऊँची जमीन, बाल्टी। ने०हि०को० पृ० 123। इनमें 'बाल्टी' का अर्थ तो हि० 'लोहे का गोल बरतन' अर्थ की तरह ही है और संभवतः उसी तरह विकसित भी। 'नदी किनारे की दो बगल की ऊँची जमीन' अर्थ संभवतः इसलिए आया है कि झूले में झूलने पर इसके दो छोर भी परस्पर दूर और जमीन से ऊँचे हो जाते हैं। यथा, "मुनरियाले डोलबाट पानी हालिदिन थाली...।" (मुनरिया ने बाल्टी से पानी दे दिया था।) न०दा०।वि० ब०को० पृ० 37। "म डोलमाथि बसेर नदीको धारा हेरि रहेको थिएँ।" (मैं नदी किनारे की ऊँची जमीन पर बैठकर नदी की धारा देख रहा था।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

नाना (तत्स० । सं० > हि० ा ने० ा)

सं० 'नाना' का अर्थ होता है—अनेक जगह, अनेक तरह से, अनेक, विना। एस-ई-डी-पी-284।

सं० नाना' से आये हि० 'नाना' का प्रयोग भी 'अनेक' के अर्थ में ही होता है। यथा, "बगीचे में नाना रंग के फूल मुस्कुरा रहे हैं।"

विपरीत, ने० 'नाना' का एक अर्थ 'अनेक' तो है, साथ ही दूसरा अर्थ 'वस्त्र' भी प्रचलित है। एन-एन-ई-पी-929। 'वस्त्र' अर्थ में प्रयोग विशेषकर बच्चे लोग करते हैं।

ऐसा लगता है कि अनेक जगह में अनेक तरह के वस्त्र प्रचलित होने के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा या वस्त्रों की अनेकता के कारण भी यह अर्थ आ गया हो—यह भी संभव है। यथा, "हिजोब्यान खरीबोटतिर जांदा नि त्यस्तै नाना थरीका कावल गर्छ है।" (कल सुबह अर्जुन वृक्ष की ओर जाते ही उसी प्रकार अनेक तरह मजाक करता है।) उ०हु०अ०।वि०चि० पृ० 50। "आमा, म यो दशैंमा दामी नाना लिन्छु।" (माँ, मैं इस दशहरे में कीमती वस्त्र लूँगा।)

परसों (तद्०। सं० परश्वस्>हि० I, ने० I)

सं० 'परश्वस्' से हिन्दी एवं नेपाली—दोनों में क्रमशः परसों, 'पर्सि' का विकास हुआ है। सं० 'परश्वस्' का अर्थ होता है—अगले दिन के बाद वाला दिन, परसों (आने वाला)। सं०को०सु० पृ० 172।

हि० 'परसों' का अर्थ होता है—'गत दिन के ठीक पहले का दिन' और 'आगामी दिन के बाद का दिन'। इस तरह, सं० 'परश्वस्' जहाँ केवल भविष्यत् काल का बोध कराता है, वहाँ हि० 'परसों' भूत और भविष्य दोनों का। सं० में इसका अर्थ 'अगले दिन के बाद वाला दिन' था, उसी से प्रभावित होकर हिन्दी में 'बीते हुए दिन के ठीक पहले का दिन' अर्थ भी आ गया लगता है। दोनों दिनवाची अर्थ हैं और दोनों अर्थों में एक दिन—एक दिन का फासला का भाव है। यथा, "वह परसों आया था।" "तुम परसों आना।"

विपरीत, ने० में 'पर्सि' का ठीक वही अर्थ है, जो सं० 'परश्वस्' का, यानी 'अगले दिन के बाद वाला दिन।' एन-एन-ई-पी-1015। इस तरह नेपाली 'पर्सि' के अर्थ में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "म पर्सि आउँछु।" (मैं परसों आऊँगा।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : भावना धारणा)

पाटी (तद्०। सं० पट्टिका>हि० I, ने० I)

सं० 'पट्टिका' का अर्थ होता है—पट्टी, तख्ती, अभिलेख, वस्त्र का टुकड़ा, रेशमी वस्त्र का टुकड़ा, बैन्डेज। एस-ई-डी-पी-310।

सं० 'पट्टिका' से विकसित हि० 'पाटी' का अर्थ होता है—तख्ती, पटिया, पाठ, माँग के दोनों ओर कंघी द्वारा बैठाए हुए बाल, चटाई, शिला, खपरैल की नरिया का प्रत्येक आधा भाग। इनमें 'पटिया, बैठाया गया बाल, चटाई, शिला और खपरैल की नरिया का प्रत्येक आधा टुकड़ा' अर्थ संस्कृत पाटी अर्थ से आकृति साम्य के कारण विकसित हुए लगते हैं। 'पाठ' अर्थ संभवतः सं० 'तख्ती' से इसलिए आया है कि प्राचीन काल में 'तख्ती' पर ही पाठ पढ़ाया जाता था। यथा, "छोटे बच्चे पाटी पर ही अध्ययन शुरू करते हैं।"

विपरीत, ने० 'पाटी' का अर्थ 'स्लेट', 'विधि', परिपाटी' के साथ-साथ 'धर्मशाला' भी होता है। एन-एन-ई-पी-1028। ने० हि० को० पृ० 175। ऐसा लगता है कि 'स्लेट' अर्थ सं० 'तख्ती' अर्थ से आया होगा, क्योंकि तख्ती का ही विकसित रूप स्लेट है। चूँकि, तख्ती पर ही पढ़ना सिखाया जाता है, अतएव पढ़ने की विधि से 'विधि' या 'परिपाटी' अर्थ का विकास हुआ लगता है। 'धर्मशाला' किसी की कीर्ति का अभिलेख होता है, शायद इसी भाव के कारण सं० 'अभिलेख' अर्थ से ने० 'धर्मशाला' अर्थ का

विकास हुआ होगा। यथा, "म त उसलाई धैरेजसो पाटीमा, मुंइमा सुतिरहेको देख्ये।" (मैं तो उसे धैर्य से धर्मशाला में, जमीन पर सोते हुए देखता था।) क० सं०। गो० पृ० 67। "...शिवालय, पाटी, धर्मशाला, पेटी इत्यादि बाट गुज्रदै...।" (...शिवालय, धर्मशाला, घर के पास के अँधेरे स्थान इत्यादि से गुजरते हुए...।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 145। "सूबेदार रणे बूढाको जीर्ण पाटी जस्तो शरीर...।" (सूबेदार रणे बूढ़ा का स्लेट के समान पुराना शरीर...।" ने० स० को० गी०। र०वि० पृ० 165।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

बहाल (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

फारसी 'बहाल' का अर्थ है—पूर्ववत्, ज्यों का त्यों, स्वस्थ, प्रसन्न, पुनःनियुक्त। उ० हि० डि० पृ० 66।

हि० 'बहाल' का अर्थ होता है—पूर्ववत् स्थित, ज्यों का त्यों, भला-चंगा, स्वस्थ, प्रसन्न। स्पष्ट ही है कि हिन्दी ने सारे अर्थ फारसी से ही ग्रहण किये हैं। अतएव कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "यहाँ भी पहले का फैसला ही बहाल (ज्यों का त्यों) रहा है।"

विपरीत, ने० 'बहाल' का अर्थ है—नौकरी में प्रविष्ट होना, भाड़ा या किराया। एन-एन-ई-पी-1170। इनमें पहला अर्थ फा० 'पुनःनियुक्त' अर्थ से आया है, क्योंकि दोनों में नौकरी में आने का भाव है। ऐसा लगता है कि बाद में 'नौकरी' अर्थ का आर्थिक पहलू ही ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया जिससे 'भाड़ा' या 'किराया' अर्थ विकसित हुआ होगा। 'भाड़ा' में घर में प्रविष्ट होने का तथा 'नौकरी' में कार्य में प्रविष्ट होने का सामान्य भाव है। यथा, "हाम्रो घरको एउटा कोठामा बहालमा एउटा युवक बस्न थाल्यो।" (हमारे घर की एक कोठरी में भाड़े में एक युवक रहता था।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 80। "त्यो पनि यतातिर बहाललिने चलन भए त्यो झन् राम्रो हुन्थ्यो मेरो निम्ति बुझ्नुभो।" (तो भी यहाँ पर भाड़ा लेने का रिवाज होता तो बहुत अच्छा होता मेरे लिए, समझें।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 68।

बिहान (तद्। सं०>विभातम्, हि० I, ने० II)

सं० 'विभातम्' का अर्थ होता है—सुबह, भोर। सं० को० सु० पृ० 398।

हिन्दी 'बिहान' का अर्थ है—सवेरा, आनेवाला दूसरा दिन, कल। इनमें 'सुबह' अर्थ तो संस्कृत का ही है, 'कल' अर्थ इसी 'सुबह' से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि 'सुबह' हर अगले दिन आती है। यथा, "उससे अब बिहान (कल) भेंट होगी।"

ने० 'बिहान' का एक ही अर्थ 'सुबह' है। एन-एन-ई-पी-1200। इस तरह ने० 'बिहान' के अर्थ में किसी तरह का विकास नहीं हुआ है। यथा, "म बिहान गएको थिएँ।" (मैं सुबह गया था।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 146। "विजयादशमी को बिहान निधारभरि आमाबाबू को टीका थापी सानी खुरुखुरु सुबेदारनीको घरतिर-आई।" (विजयादशमी की सुबह ललाटभर माँ-बाप को चन्दन-रोली आदि लगाकर सानी सीधे सुबेदारनी के घर की ओर आई।) मा० घ०। बां० पृ० 7। "उसैले बिहान को भात पकाउनकोलागि ल्याइदिएको पानी उसको जिउमा खनायो।" (उसने सुबह का भात पकाने के लिए लाकर दिये हुए पानी को उसके शरीर पर गिरा दिया।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 15।

—(हि० अर्थ-विस्तार : भ्रान्त धारणा)

रकम (वि० । अ० > हि० I, ने० II)

अरबी 'रक़म' का अर्थ होता है—लिखना, धन, रुपया, द्रव्य, गिनती, संख्या। उ० हि० डि० पृ० 278।

हि० 'रकम' का अर्थ है—लिखने की क्रिया या भाव, छाप, धन, गहना, चालाक, प्रकार। इनमें 'छाप' अर्थ अ० 'लिखना' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि जिस तरह अक्षर लिखे जाते हैं, उसी तरह अक्षर छापाखाने में छापे भी जाते हैं। 'गहना' अर्थ सं० 'धन' से आया होगा, क्योंकि 'गहना' भी धन माना जाता है। 'चालाक' अर्थ भी सं० 'धन' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है। ऐसा इसलिए कि वही चालाक माना जाता है जो ज्यादा धन बटोर सकता है। 'प्रकार' अर्थ सं० संख्या से विकसित हुआ प्रतीत होता है। 'प्रकार' में संख्या का समावेश अनायास हो जाता है, संभवतः इसी भाव से ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "वहाँ अनेक रकम (प्रकार) की चीजें बिक रही हैं।"

विपरीत, ने० 'रकम' का अर्थ होता है—रिवाज, तहसील, हाजिरी फार्म में लिखाने की छुट्टी विशेष, कर, धन, प्रकार। एन-एन-ई-पी-1393। इनमें 'धन' अर्थ तो संस्कृत का ही है और 'प्रकार' अर्थ 'संख्या' अर्थ से उसी प्रकार विकसित हुआ होगा जिस प्रकार हिन्दी में। 'कर' अर्थ संभवतः 'धन' अर्थ से आया है, क्योंकि 'कर' धन के अनुसार ही लगता है। 'तहसील' अर्थ संभवतः बाद में इसी 'कर' अर्थ से विकसित हुआ होगा। 'तहसील' का अर्थ ही कर वसूलना होता है। अ० 'लिखना' अर्थ से 'लिखने' का भाव होने के कारण हाजिरी फार्म में लिखाने की छुट्टी विशेष' अर्थ से आया लगता है और इस प्रकार का 'रिवाज' होने से संभवतः 'रिवाज' अर्थ आया होगा। यथा, "मलाईं बीस रुपिया रकमका तिर्नु पर्‍यो।' (मुझे बीस रुपये कर के देने पड़े।) "यहाँ को रकम अर्कै हो।" (यहाँ का रिवाज और है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

हिकमत (वि० । अ० > हि० II, ने० II)

अरबी 'हिकमत' का अर्थ होता है—बुद्धि, बोध, अक्ल, विज्ञान, उपाय, तरकीब, आयुर्वेद। उ० हि० डि० पृ० 191।

हिन्दी 'हिकमत' का प्रयोग 'विद्या, तत्त्वज्ञान, कलाकौशल, युक्ति, उपाय, चाल, हकीमी' अर्थों में होता है। इनमें 'विद्या' अर्थ अ० 'बुद्धि' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि बुद्धि से ही विद्या की प्राप्ति होती है। 'कलाकौशल' और 'तत्त्वज्ञान' अर्थ संभवतः अ० 'अक्ल' अर्थ से आये होंगे। 'अक्ल' के ही बल पर कोई 'कलाकौशल' या 'तत्त्व-ज्ञान' प्राप्त करता है। अ० 'तरकीब' अर्थ से हि० में 'चाल' अर्थ संभवतः इस भाव से आया होगा कि तरकीब लगाकर ही नई चाल की योजना बनती है। जैसे 'तरकीब' और 'चाल' में अर्थ का बहुत अन्तर नहीं है। यथा, "उसने ऐसी हिकमत (चाल) लगाई कि सब देखते ही रह गये और वह बाजी मार ले गया।"

विपरीत, ने० 'हिकमत' का अर्थ होता है—हिम्मत, साहस, पराक्रम। एन-एन-ई-पी-1840। ने० के ये सारे अर्थ समानार्थी हैं जो संभवतः अ० 'बुद्धि' अर्थ से विकसित हुए होंगे। ऐसा इसलिए कि बुद्धि रहने से ही साहस या पराक्रम भी रहता है, बुद्धिहीन

के पास साहस भी नहीं होता। यथा, "त्यो समयमा मैले हिकमतले काम लिएको थिएं।" (उस समय मैंने हिम्मत से काम लिया था।) —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

अ : च—साहचर्य : अर्थ-विस्तार

जब कोई शब्द किसी अन्य शब्द के साथ प्रयुक्त किया जाता है तो अर्थ में विस्तार आ जाता है। ब्लूमफील्ड मानते हैं कि भाषा की गठन में प्रायः तभी अर्थ-विस्तार लक्षित किया जाता है जब किसी शब्द के साथ और शब्द उपस्थित रहते हैं।

इस तरह, शब्द जब अन्य शब्दों के साथ प्रयुक्त होते हैं तो उनमें अर्थ-विस्तार हो जाता है। सामासिक शब्दों में इस तरह की बात सहज ही देखी जा सकती है। यास्क ने (निरुक्त 2/20) लिखा है कि साहचर्य के कारण एक शब्द का अन्य अर्थ में प्रयोग होता है। उन्होंने बताया है कि ऋग्वेद में भी इस प्रकार के उदाहरण विद्यमान हैं जिनमें साहचर्य के कारण अर्थ विकसित हुआ है। यह विकास मुख्यतया अर्थ-विस्तार के रूप में देखा जाता है।

मनुष्य के मस्तिष्क में शब्दों के भाव स्वतन्त्र रूप में विद्यमान नहीं रहते हैं, वरन् वे अन्य विभिन्न भावों से भी सम्बद्ध रहते हैं। अवसर पाकर एक भाव के सादृश्य के आधार पर दूसरा भाव भी अर्थ के रूप में प्रचलित हो जाता है। अतएव साहचर्य को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(1) भाव-साहचर्य; (2) शब्द-साहचर्य।

(1) भाव-साहचर्य

अंधाधुंध (दे०। हि० I, ने० I)

यह हिन्दी और नेपाली में दो भिन्न शब्दों (अंधक+धुंध) के योग से निर्मित देशी शब्द है। सं० में 'अंधक' का अर्थ होता है—नेत्रहीन। धुंध शब्द सं० धूम+अंध से बना है जिनका अर्थ क्रमशः 'धुआँ' और 'अंधा बनाना' होता है। सं० को० सु० पृ० 152।

इस तरह इसका शाब्दिक अर्थ—ऐसा अंधकार या धुआँच्छन्न (वातावरण) जहाँ कुछ दिखाई न पड़े—होना चाहिए।

हिन्दी में 'घनघोर अँधेरा' अर्थ में यह प्रचलित भी है। बाद में संभवतः इसी से 'अज्ञानान्धकार' अर्थ में यह प्रचलित हो गया है। जब वैचारिक दृष्टि से कुछ नहीं दिखाई पड़े तो इस अन्धकारमय स्थिति के लिए भी 'बिना सोच-विचार का' या 'अविचार' के अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा होगा—ऐसा अनुमान होता है। फिर घनघोर अंधकार में या अन्धकार की अधिकता में कुछ नहीं दिखाई पड़ता है, संभवतः इसीलिए 'अधिकता' अर्थ भी आ गया होगा। जहाँ 'अविचार' का अंधकार हो, वहाँ अंधेर होगा ही, अतएव 'अंधेर' अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा। यथा, "वहाँ कोई किसी को पूछने वाला नहीं, अंधाधुंध (अंधेर) मची है।" "वह किसी स्वप्नद्रष्टा की काल्प-

निक अंधाधुंध उड़ान नहीं है (बिना सोच-विचार का)।'' ''वहाँ अंधाधुंध (अधिकता) लाठी चल रही है।''

विपरीत, नेपाली में इसका अर्थ 'जोर से' या 'अधिकता से' लिया जाता है। एन-एन-ई-पी-53। 'अधिकता' से अर्थ तो हिन्दी और ने० दोनों में प्रचलित है, पर 'जोर से' अर्थ हिन्दी में प्रचलित नहीं है। यह अर्थ सं० 'अंधकार' अर्थ के भाव से ही आया लगता है, क्योंकि अंधकाराच्छन्न स्थान या परिस्थिति में कोई स्वयं को जोर से (जबर्दस्ती) ही ढकेल सकता है। यथा, ''प्राप्तिदेखि टाढा अनकन्टारमा अंधाधुंध आफूलाई निर्वासित गरिदिएर कसरी बांच्ने...।'' (प्राप्ति से दूर एकान्तता में स्वयं को जोर से निर्वासित कर देने पर किस प्रकार बचा जाय...।) शि० फू० पा० पृ० 47।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

खण्ड (तत्स०। सं > हि० ा, ने० ा)

सं० 'खण्ड' का अर्थ होता है—टुकड़ा, सर्ग, खांड़, एक देश। सं० को० सु० पृ० 105।

हिन्दी 'खण्ड' का अर्थ है—भाग, देश, नौ की संख्या, समीकरण की एक क्रिया, खांड़, चीनी, दिशा, खंडित आदि। इनमें सं० अर्थ से भिन्न नौ की संख्या, समीकरण की एक क्रिया, दिशा और खंडित अर्थ सम्भवत: सं० 'टुकड़ा' अर्थ से विकसित हुए हैं। नौ की संख्या संख्यावाची है और टुकड़े में भी संख्या (भाग होने के कारण) का भाव आ जाता है। समीकरण की जिस क्रिया को खण्ड कहते हैं, उसमें भी पूर्ण को टुकड़े में विभाजित किया जाता है। दिशा (दस दिशाओं के कारण) में भी किसी एक या अनेक के कारण संख्या का भाव है। 'खण्डित' तो स्पष्टत: टुकड़े में विभाजित होने का दूसरा नाम है। 'चीनी' अर्थ सं० 'खांड़' अर्थ से विकसित हुआ मालूम पड़ता है, क्योंकि 'चीनी' खांड़ से ही बनती है। यथा, ''उत्तराखण्ड (दिशा) में एक बहुत बड़ा पर्वत है।''

विपरीत, नेपाली में 'भाग', 'अध्याय', 'अंश' अर्थ के अतिरिक्त 'प्रसंग' या 'अवसर' जैसे नए अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-315। चूंकि 'प्रसंग' किसी सन्दर्भ का एक भाग होता है, सम्भवत: इसीलिए सं० 'टुकड़ा' या 'भाग' अर्थ से इस अर्थ का निकास हुआ होगा। इसी तरह ने० 'अवसर' अर्थ भी सं० 'टुकड़ा' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि किसी बात का एक टुकड़ा आगे की बात के लिए अवसर प्रदान करता है। यथा, ''गौरीको कुरा मैले अरु आगाडि चलाउने खण्ड रहेन।'' (गौरी की बात मुझे और आगे चलाने का प्रसंग नहीं रहा।) ने० दा० वि० प्र० को० पृ० 71। ''अत्याचारसित जुध्न जांदा आफू मरिएला भन्ने कल्पनाले रमाउनसम्म रमाउने मान्छेलाई सुर्तामा पर्नुपर्ने खण्ड आइपर्छ भन्ने कसलाई ज्ञान ?'' (अत्याचार से लड़ते हुए स्वयं मरने की कल्पना से आनन्द की सीमा तक आनन्दित व्यक्ति की याद में पड़ने का अवसर आएगा, इसका किसे ज्ञान था ?) सों र० ज०। के० नु० पो० पृ० 84।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

(2) शब्द-साहचर्य

राजी (वि०। अ० राजी > हि० ा, ने० ा)

अरबी 'राजी' का अर्थ होता है—प्रसन्न, स्वीकृत, रजामंद, सन्तुष्ट, इच्छुक, तत्पर। उ० हि० डि० पृ० 245।

हिन्दी राजी का अर्थ होता है—कही हुई बात को मानने को तैयार, सहमत, नीरोग, खुश, सुखी। इनमें प्रथम दो अर्थ अ० 'रजामंद' के भाव को पूर्णतः ढोते हैं। 'नीरोग' और 'सुखी' अर्थ अ० 'प्रसन्न' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि नीरोग और सुखी व्यक्ति ही प्रसन्न रहता है। हिन्दी में 'राजी' का प्रयोग मुख्य रूप से 'सहमत' अर्थ में ही होता है, वैसे 'राजी' के साथ 'खुशी' को जोड़कर 'प्रसन्न' या 'सुखी' अर्थ भी निकाला जाता है। यथा, "कहो भाई, राजी-खुशी हो न ?"

विपरीत, ने० 'राजी' का अर्थ नीरोग, खुश या सुखी न होकर मात्र मंजूर, सही, सहमत होता है। एन-एन-ई-पी-1419। ने० के ये सारे अर्थ अ० 'रजामंद' के समानार्थी हैं, अतएव नेपाली में किसी तरह का अर्थ-विकास नहीं हुआ है। यथा, "यो विवाहको लागि म आफ्नो आमा-बुवालाई राजी गराउंछ।" (इस विवाह के लिए मैं अपने माता-पिता को सहमत कर लूँगा।) —(हि० अर्थ-विस्तार : शब्द-साहचर्य)

कोड़ना (तद्० । सं० कुट्ट>हि० ।, ने० ।)

सं० 'कुट्ट' धातु का अर्थ होता है—काटना, विभाजन करना, खोदना, छेद करना। एस० ई० डी० पी० 152।

हि० 'कोड़ना' का अर्थ है—खेत की मिट्टी को कुछ गहराई तक खोदकर उलट देना, मोड़ना, खोदना। स्पष्ट ही है कि ये अर्थ सं० 'काटना' और 'खोदना' अर्थ से प्रभावित या सीधे ग्रहण किये गये हैं, क्योंकि मिट्टी को उलटने या खोदने के लिए पहले उसे काटने की जरूरत होती है। यथा, "वह अपनी जमीन कोड़ रहा है।"

विपरीत, ने० 'कोर्नु' का अर्थ होता है—नुकीली वस्तु से धरातल को चिह्नित करना, फाड़ना या खोदना, बाल सँवारना। डी-एन-एल-पी-108 (टर्नर)। इनमें बाल सँवारने या झाड़ने के अर्थ में हि० 'कोड़ना' का प्रयोग नहीं होता है। सं० 'विभाजन करना' अर्थ से सम्भवतः यह अर्थ आया होगा, क्योंकि बाल को झाड़कर उसे दो ओर बिखराकर विभाजित करने की चलन है। टर्नर ने 'कपाल कोर्नु' का प्रयोग 'कंघी करने' के अर्थ में किया है। जिस तरह कुदाली आदि से मिट्टी को उलट-पुलट कर दिया जाता है, वैसे ही कंघी से बालों को भी। सम्भवतः अर्थ-विकास का यह भी कारण रहा हो। यथा, "म कपालकोरेर घर जान्छु।" (मैं बाल सँवार कर घर जाऊँगा।)

यहाँ यह ध्यातव्य है कि 'कपाल' के साथ 'कोर्नु' का प्रयोग होने पर ही 'कंघी करना' या 'बाल सँवारना' अर्थ आया है। अतएव, शब्द-साहचर्य से अर्थ-विस्तार का रूप स्पष्ट है। —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

अ : छ—सादृश्य : अर्थ-विस्तार

सादृश्य अर्थ-विस्तार का महत्त्वपूर्ण कारण है।[1] जब दो पदार्थ एक तरह की आकृति, गुण या क्रिया के होते हैं तब सादृश्य के कारण एक दूसरे के भी अर्थ का बोध

1. "Analogy is a great factor in the generalization of meaning." —H. Bahri—Hindi Semantiss, p. 177.

होने लगता है। यास्क की दृष्टि से विचार करने पर ज्ञात होता है कि अर्थ-विस्तार का मूल कारण होता है सादृश्य।[1] श्री देवेन्द्रनाथ शर्मा लिखते हैं कि कभी-कभी सादृश्य के कारण जब एक अंग का दूसरे पर आरोप किया जाता है, तब भी अर्थ का विस्तार हो जाता है।[2]

पाश्चात्य भाषाशास्त्रियों ने सादृश्य को एक ऐसी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया है जिससे हमारी भाषा की बनावट में काफी फर्क आ जाता है।[3] मनुष्य स्वभाव से ही अनुकरणशील होता है, अतएव दो समान रूप-गुण वाली वस्तुओं में सादृश्य की स्थापना कर अर्थ-विस्तार कर लेना आसान है।

डॉ० केशवराम पाल मानते हैं कि अर्थविज्ञान में अर्थ-परिवर्तनों की इस श्रेणी का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि उपमा तथा उससे सम्बद्ध बहुत-से अलंकार इसी के अन्तर्गत आते हैं और जिनसे शब्दों के अर्थों में परिवर्तन बहुत शीघ्र ही हो जाता है। किसी वस्तु, क्रिया, भाव, गुण आदि के वाचक शब्द द्वारा उसके मूलभाव से मिलते-जुलते अन्य भाव को लक्षित करने की प्रवृत्ति सभी भाषाओं में मुख्य रूप से पायी जाती है।[4]

सादृश्य को निम्न रूप से अनेक कोटियों में विभाजित किया जा सकता है—

1—भौतिक पदार्थों का सादृश्य,

2—भौतिक पदार्थों के गुणों अथवा विशेषताओं का सादृश्य,

3—भौतिक क्रियाओं और अवस्थाओं का सादृश्य।

(1) भौतिक पदार्थों का सादृश्य

आली (तद्० । सं० > हि० II, ने० I)

सं० 'आलि' से हि० एवं ने० 'आली' का विकास हुआ है। सं० 'आलि' का अर्थ होता —सुस्त, ईमानदार, बिच्छू, मधुमक्खी। सं०को०मू० पृ० [illegible]।

हि० में 'आली' का अर्थ है—सखी, भीगी हुई, बड़ा, उच्च, श्रेष्ठ। इनमें 'बड़ा', 'श्रेष्ठ' और 'उच्च' अर्थ सं० 'ईमानदार' अर्थ से विकसित हुआ मालूम पड़ता है क्योंकि ईमानदार व्यक्ति को श्रेष्ठ या उच्च मानने की आम धारणा प्रचलित है। साथ ही, श्रेष्ठता के साथ बड़प्पन का भाव जुड़े होने के कारण 'बड़ा' अर्थ भी आ गया होगा। 'सखी' अर्थ भी सं० 'ईमानदार' अर्थ से ही आया लगता है, क्योंकि कर्तव्य और व्यवहार के प्रति ईमानदार व्यक्ति ही सखा हो सकता है। चूँकि 'आली' हि० म

---

1. डॉ शिवनाथ—अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 201।

2. भाषाविज्ञान की भूमिका—पृ० 207-208।

3. "...a force which prevades all speech as it prevades all the ught and which has caused for reaching changes in the structure of our language."—J. B. Greenough & G. L. Kittredge—Words and their Ways in English Speech, p. 343.

4. हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन, पृ० 41।

स्त्रीलिंग शब्द है, अतएव 'सखा' अर्थ का बोध न कराकर 'सखी' अर्थ का बोध कराता है। 'भींगी हुई' हि० अर्थ सम्भवतः सं० 'सुस्त' अर्थ से आया है, क्योंकि भींग जाने के बाद आदमी सुस्त हो जाता है। स्त्रीलिंगवाची होने के कारण 'आली' का स्त्रीलिङ्ग होना ही है। यथा, "उनकी निराली प्रीति के बारे में क्या कहूँ आली !"

विपरीत, ने० 'आली' का अर्थ 'मेंड़' होता है। एन-एन-ई-पी-122। खेतों को विभाजित करने वाली लम्बी 'मेंड़' का आकार उसी प्रकार का होता है जैसे 'बिच्छू' का। सम्भव है कि आकृति-साम्य के कारण ने० में 'आली' का यह नया अर्थ विकसित हुआ हो। यथा, "आली बनाएर खेतालाहरू धान रोप्न लागेका होलान्।" (मेंड़ बना कर कृषक लोग धान रोपने लगे थे।) मु०बा०। वा० पृ० 125। "...यसरी ने असारको महीनाभरि खेतको आली-आली नाच्छन् तिमी जस्ते हाम्रो किरांतका छोरीहरू...।" (इसी प्रकार आषाढ़ का महीना भर खेत के मेंड़-मेंड़ नाचती हैं, तुम्हारे समान हमारे किरातकी लड़कियाँ...।) शि०फू०। पा० पृ० 51।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

कांटा (तद्। सं० कण्टक>हि० I, ने० I)

सं० 'कण्टक' का अर्थ होता है—काँटा, व्याधि। सं०को०सु० पृ० 77।

हि० में सं० 'काँटा' अर्थ तो सुरक्षित है, साथ ही 'बाधा' और 'दुःख' जैसे नए अर्थ भी प्रचलित हैं। चूँकि काँटा लोगों के चलने के क्रम में बाधा उत्पन्न करता है और उसका गड़ जाना दुःखदायी होता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण ऐसे नए अर्थ आये हैं। यथा, "वह मेरे मार्ग का काँटा (बाधा) है।"

विपरीत, ने० में सं० के इन दोनों अर्थों का लोप हो गया है और इनके स्थान पर संभवतः काँटे की आकृति से साम्य के कारण, 'बालों में लगानेवाला पिन', 'बड़ा तराजू', 'कुएँ से कोई चीज निकालने का अंकुशों का समूह', 'खाने या बुनने का औजार', संकेतक (indicator) जैसे नए अर्थ विकसित हो गये हैं। एन-एन-ई-पी-229। 'बड़ा तराजू' में भी डंडी में काँटे की तरह एक नुकीली चीज होती है जो सही माप को बताती है, उसी से शायद ऐसा अर्थ आया है। यथा, "छिमेकका उनका सहेलीहरू ऊन र कांटा लिएर उनी कहा आउंथे....।" (पड़ोस की उनकी सहेलियाँ ऊन और बुनने का औजार लेकर उनके यहाँ आती थीं....।) दो०च०। वि०प्र०को० पृ० 86। "कोठभित्र जनक रेडियोमा कांटा मिलाउंदे कुनै खबर खोजिरहेका थिए।" (कमरे में जनक रेडियो में संकेतक मिलाकर कोई खबर खोज रहे थे।) आ०र०छ। इ०ब०रा० पृ० 124। इस तरह नेपाली में 'काँटा' का एक अर्थ 'सूई' भी प्रचलित है।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

जुल्फी (वि० फा० जुल्फ>हि० I, ने० I)

फा० 'जुल्फ' का अर्थ होता है—केश, बालों की लट। उ० हि० डि० पृ० 295। इसी 'जुल्फ' से हिन्दी एवं नेपाली 'जुल्फी' का विकास हुआ है।

हि० 'जुल्फी' का अर्थ होता है—सिर के लम्बे बाल जो पीछे की ओर लटकते हैं, पट्टा, कुल्ला। स्पष्ट है कि फारसी 'बालों की लट' अर्थ ने ही हिन्दी के इन अर्थों

को प्रभावित किया है। अन्तर मात्र इतना है कि फारसी की 'लट' किसी ओर लट सकती है और हिन्दी की जुल्फी सिर्फ पीछे की ओर। यथा, "पहले जुल्फी कटवाओ तब भला आदमी लगोगे।"

विपरीत, ने० 'जुल्फी' का अर्थ 'केश' के अलावा 'जलेबी' भी है। ने०हि०श० पृ० 79। केश की लट कभी-कभी गोलाकार होकर जलेबी की आकृति की हो जा है। सम्भवत: इसी आकृति-साम्य के कारण ऐसा अर्थ आया है। यथा, "कस्तो स्वादि जुल्फी छ।" (कैसी स्वादिष्ट जलेबी है।) ——(हि० अर्थ-संकोच : विभेदीकर

ताल (तत्स० I सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तालः' का अर्थ होता है——ताड़, ताली, हथेली, तलवार की मूँठ, बज का समय (संगीत में), एक बाजा, ताला। एस-ई-डी-पी-234।

हि० 'ताल' का अर्थ है——हथेली, ताली, नाचने-गाने में उसके मध्यवर्ती का और क्रिया की परिभाषा, झाँझ, ताड़ का पेड़ आदि। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ हिन्दी सीधे सं० से ग्रहण किये हैं। यथा, "वह ताल ठोककर भिड़ गया।" हिन्दी में 'ताल' अर्थ भी प्रचलित है जो सं० 'हथेली' से आकृति-साम्य के कारण आया लगता है।

विपरीत, ने० 'ताल' का अर्थ होता है——बाहर से दरवाजे के भीतर की अर खोलने का मुड़ा हुआ छड़ विशेष, तालाब, झील, ढंग, दफा, नाच-गान में समय का प माण ठीक रखने का साधन। ने० हि० को० पृ० 134। इनमें 'छड़ विशेष' अर्थ 'ताला' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि उसमें भी एक मुड़ा हुआ छड़-जैसा का टुकड़ा होता है और उसका भी सम्बन्ध दरवाजे से है। ढङ्ग, दफा और नाच-गान समय का परिमाण ठीक रखने का साधन——ये तीनों नेपाली अर्थ सं० 'बजाने समय' अर्थ से प्रभावित लगता है। बाजा बजाते समय, उसे किस ढङ्ग से बजाया ज और कितनी दफा चोट दी जाय——वगैरह का ख्याल रखना पड़ता है, सम्भवत: इ भाव से ऐसा अर्थ आया है। 'तालाब' या 'झील' अर्थ एकदम नया विकसित है जिसका विकास संभवत: सं० 'हथेली' अर्थ से आकृति की समता के कारण हो। यथा, "तालले अग्ल्याएर गएको ढोकापनि उघ्रेंगै थियो।" (मुड़ छड़ खोलने के बाद किवाड़ भी खुला ही था।) ने०सं०को० गो०। र०वि० पृ० 3 "ज्येठी रतेल्नीको छोरी चनमनी माइत आउँदा रगतको तालमा पर्‍यो ... (बड़ी रतेल्नी की बेटी चनमनी पीहर आकर रक्त के तालाब में पड़ गई. उ०हु०अ०। वि०धि० पृ० 11। ——(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्

मोहर (वि० । फा० मुह्र>हि० I ने० II)

फा० 'मुह्र' का अर्थ होता है——मुद्रिका, अँगूठी, ठप्पा, अशरफी, स्वर्णमु अंकक, सील, मोहर। उ०हि०श० पृ० 546।

हि० 'मुहर' का अर्थ है——अक्षर, चिह्न आदि दबाकर अंकित करने का ठप उपर्युक्त वस्तु की छाप जो कागज या कपड़े आदि पर ली गई हो, अशरफी। स्पष्ट कि हिन्दी के ये अर्थ फारसी से आये हैं——ठप्पा और अशरफी मात्र इन्हीं दो फार अर्थों को हिन्दी ने अपनाया है। यथा, "लिफाफे पर भागलपुर की मोहर है।"

विपरीत, नेपाली 'मुहर' का अर्थ 'ठप्पा' तो है ही, साथ ही बैज (Badge), 'पदक' और '50 पैसे का सिक्का' अर्थ भी है। डी-एन-एल-581 (टर्नर)। नेपाली में बैज, पदक और पचास पैसे का सिक्का—ये तीन अर्थ ऐसे हैं जो हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होते। ने० 'बैज' अर्थ पर फारसी 'मुद्रिका' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि पहले समय में राजाओं के प्रतिनिधि प्रमाण के लिए राजा द्वारा प्रदत्त मुद्रिका रखते थे जिस तरह आज 'बैज' राजसेवा का प्रतिनिधित्व करता है। 'पदक' और 50 पैसे का सिक्का' अर्थ पर फारसी 'सील' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि जिस तरह 'सील' की आकृति गोल या चौकोर होती है, उसी तरह पदक की भी आकृति होती है। सम्भवत: इसी आकृति-साम्य के कारण ऐसा अर्थ-विस्तार हुआ है। यथा, "बैनीलाई दे भनेर एक मोहर दिनु हुन्छ।" (बहन के माँगने पर अठन्नी देनी पड़ती है।) क० सं०। गो० म० गो० पृ० 2। "···धनेलाई छ मोहर जरीमाना तोकियो।" (......धनेको छह अठन्नी जुर्माना किया गया।) बं०। ली०ब०क्ष०पृ० 8।

(2) भौतिक पदार्थों के गुणों अथवा विशेषताओं का सादृश्य

कांट (तद्०। सं० कण्ट>हि०, I ने० I)

संस्कृत 'कण्ट' का अर्थ होता है—काँटा, गाँव की सीमा।

हिन्दी 'काँट' का अर्थ—काँटा, रुकावट, विघ्न और दुःख होता है। इनमें 'काँटा' अर्थ तो संस्कृतवत् है और अन्य अर्थ—रुकावट, विघ्न या दुःख, इसी 'काँटा' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि काँटा रास्ते में विघ्न करता है और चुभने पर दुःख देता है। यथा, "मुझे आगे बढ़ना है चाहे रास्ते में जितने भी काँटे मिलें।"

विपरीत, ने० 'कांट' का अर्थ होता है—'ढाँचा', 'बराबरी'। एन-एन-ई-पी-229। ऐसा लगता है कि 'ढाँचा' अर्थ सं० 'गाँव की सीमा' अर्थ से विकसित हुआ है क्योंकि किसी भी गाँव का ढाँचा (बनावट) उसकी सीमाओं पर निर्भर करता है। 'बराबरी' अर्थ भी संभवत: स० गाँव की सीमा अर्थ से ही विकसित है क्योंकि इसमें भी आकृति का भाव है और 'बराबरी' में भी। इस तरह गुणों और विशेषताओं के साम्य के कारण इन अर्थों का विकास हुआ लगता है। यथा, "रोगीको त्यो करुण स्वरमा सांच्चै जडलाई पनि हल्लाउने कांटको वेदना थियो।" (रोगी के उस करुण स्वर में सचमुच जड़ को भी हिला देने के बराबर वेदना थी।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 90। "ती भर्माउने कांटका भावनाहरूलाई धेरैबेर आफ्नो मनमा टिक्न दिदैनथी।" (वह भ्रम में डालने के ढंग की भावनाओं को अधिक समय अपने मन में टिकने नहीं देती थी।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 116। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा।)

कोइली (तद्०। सं० कोकिल:>हि० I, ने० II)

संस्कृत 'कोकिल:' से हिन्दी 'कोयल' का विकास हुआ और इससे 'कोइली' का। ने० 'कोइली' का विकास सीधे सं० 'कोकिल:' से हुआ है, क्योंकि उसमें 'कोयल' शब्द प्रचलित नहीं है। सं० 'कोकिल:' का अर्थ है—कोयल। स० को० सु० पृ० 99।

हिन्दी 'कोइली' का अर्थ होता है—वह कच्चा आम जिसमें काला दाग पड़ गया हो और एक विशेष प्रकार की सुगन्ध आती हो। 'कोयल' के काले रंग और कच्चे आम के काले दाग में रंग की समानता के कारण संभवत: ऐसा अर्थ चल पड़ा है। यथा, "बच्चा कोइली पाकर ही प्रसन्न हो गया।"

विपरीत, ने० में 'कोइली' का वही अर्थ है जो संस्कृत 'कोकिल:' का। ने० में इसका प्रयोग 'कोयल' के लिए ही होता है। ने० हि० को० पृ० 42। इस तरह ने० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, ''कतै खोलाको पानी कलकल बगिरहेको छत कतै कोइलीको कुहु-कुहु आवाज गुंजिरहे कोछ।'' (कहीं झरना का पानी कल-कल करते हुए बह रहा है तो कहीं कोयल की कुहू-कुहू आवाज गूँज रही है। (फें० क० मे० हो०। यु० था० पृ० 9। --(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

छोप (तद्० । सं० सूप:>हि० I, ने० I)

मेरी दृष्टि में 'छोप' का विकास सं० 'सूप:' से हुआ है, सं० क्षेप: से नहीं, जैसा कि कुछ विद्वान् मानते हैं। अर्थ पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है।

सं० 'सूप:' का अर्थ होता है- चटनी, बर्तन, तीर, शुरुआ। सं० को० सु० पृ० 573।

हि 'छोप' का अर्थ होता है—गाढ़ी या गीली वस्तु की मोटी तह, मोटा लेप, लेप चढ़ाने का कार्य, आघात, वार, छिपाव, बचाव। इनमें 'मोटा लेप' या 'गाढ़ी-गीली' वस्तु की मोटी तह अर्थ सं० 'चटनी' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि यह भी गाढ़ी और गीली होती है। 'लेप' चढ़ाने का कार्य 'मोटा लेप' अर्थ से बाद में विकसित हुआ होगा। आघात, वार अर्थ संभवत: सं० 'तीर' अर्थ से आया है, क्योंकि तीर का काम ही आघात या वार करना होता है। इससे बचने के भाव के कारण छिपाव या बचाव अर्थ बाद में विकसित हुआ होगा—ऐसा प्रतीत होता है। यथा, ''इस घाव पर किसी गर्म वस्तु का छोप दो।''

बिपरीत, ने० 'छोप' का अर्थ होता है-- चटनी, तिल पीसकर बुकनी बनाया गया अचार। ने० श० पृ० 354। जो गुण चटनी का है, वही तिल के अचार का भी— संभवत: इसी गुण-साम्य के कारण सं० 'चटनी' अर्थ से इस दूसरे अर्थ का विकास हुआ है। यथा, ''आज का खानेकुराहरुमा सबैभन्दा राम्रो छोप थियो।'' (आज के भोजन में सबसे अच्छा तिल का अचार था।) -- (हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

स्तर (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'स्तर:' का अर्थ होता है—परत, तह। सं० को० पृ० मु 582। हिन्दी 'स्तर' का अर्थ है—तह, परत, थर, सेज, शय्या, भूमि आदि का एक प्रकार का विभाग जो उसकी भिन्न-भिन्न कालों में बनी हुई तहों के आधार पर होती है। इनमें तह, परत, थर अर्थ तो संस्कृतवत् ही हैं और 'शय्या' या 'सेज' अर्थ इसलिए आया होगा कि सेज में भी बिछावन की कई तहें होती हैं। 'भूमि का प्रकार' अर्थ पर भी संस्कृत 'परत' अर्थ का प्रभाव स्पष्ट है, क्योंकि ऐसी भूमि में कई परत होती हैं। यथा, ''इतना पढ़ा-लिखा होकर भी वह निम्न स्तर (तह) की बात करता है।''

विपरीत, ने० 'स्तर' का अर्थ 'तह' और 'सतह' तो है, साथ ही ढेर, ज्यादा, श्रेणी, दर्जा अर्थ भी प्रचलित है। एन-एन-ई-पी-1780। इन सारे नए अर्थों पर संस्कृत 'परत' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि जहाँ चीजों का ढेर होगा या चीजें ज्यादा होंगी, वहाँ निश्चय ही चीजों की कई परतें होंगी। श्रेणी और दर्जा तुलनात्मक भाव रखता है। स्पष्ट ही है कि जब तक कई परत नहीं होंगी, तब तक तुलना नहीं हो सकती

है। ऊँची श्रेणी तभी होगी जब नीची श्रेणी भी होगी, इसी तरह श्रेणी में हर जगह अनेक परत होने का भाव है। यथा, "केही दिन पश्चात् फेरि गएं र बरी आज मोलि संचो हुन्नको स्तरमा उठेको एउटा वाक्यले आघात भएर आएं।" (कुछ दिन के बाद मैं फिर गया और बरी आजकल स्वस्थ नहीं है, अनेक (ढेर सारे) वाक्यों के बीच आये इस वाक्य को सुनकर दुःखी होकर आया।) शि० फू०। पा० पृ० 83।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

(3) भौतिक क्रियाओं और अवस्थाओं का सादृश्य

करुवा (तद्० । सं० करक > हि० I, ने० I)

सं० 'करक:' का अर्थ होता है—करंज वृक्ष, दाड़िम वृक्ष, नारियल, कमण्डल। सं० को० सु० पृ० 81।

हिन्दी में संस्कृत 'करक:' से दो शब्दों का विकास हुआ है—'करवा' और 'करुवा', पर ने० में मात्र 'करुवा' शब्द ही विकसित हुआ है, 'करवा' नहीं। हि० 'करुवा' का अर्थ होता है—'पानी गिराने वाला टोंटीवाला बर्तन।' हि० 'करवा' का भी यही अर्थ होता है। सं 'कमण्डल' अर्थ से हिन्दी के इस अर्थ का विकास हुआ लगता है क्योंकि उससे भी पानी ही गिराया जाता है या दोनों में पानी के होने का भाव है। वैसे, आकृति की दृष्टि से भी दोनों में साम्य है और कार्य की दृष्टि से भी। मुसलमान लोग टोंटीदार बर्तन से पानी लेकर नमाज के पहले वजू करते हैं और संन्यासी लोग कमण्डल से पानी लेकर मुँह-हाथ या देह प्रक्षालन कर देवता का ध्यान करते हैं। संभवतः आकृति और कार्य-साम्य के कारण ही हिन्दी में यह अर्थ आया होगा। यथा, "वह करुवा में पानी लेकर बाहर आया।"

विपरीत, ने० 'करुवा' का एक अर्थ 'पानी गिराने वाला टोंटी वाला बर्तन' तो है, पर दूसरा अर्थ 'हल में फाल लगाने के लिए प्रयुक्त लोहे का औजार' भी है। एन-एन-ई-पी-212। इनमें पहला अर्थ तो संभवतः हिन्दी की तरह ही विकसित हुआ है, लेकिन दूसरा अर्थ सम्भवतः सं० 'कमण्डल' अर्थ से इस भाव के कारण आया होगा कि जिस तरह कमंडल के पकड़ने के लिए अर्द्धवृत्ताकार डण्डी होती है, उसी तरह फाल को पकड़ने के लिए भी यह लोहे का सामान होता है। सम्भवतः इसी आकृति और कार्य-साम्य के कारण यह अर्थ आया होगा। यथा, "गर्मी त के भन्नु, नेपाल मा हिजोको जस्तो गर्मी भएको कहिले थाहाथिएन...पवित्राले भनिन् र करुवा को टुटीबाट पानी खसाल्दै विचार गर्न थाले।" (गर्मी तो क्या कहूँ, नेपाल में कल के समान गर्मी का अनुभव कभी नहीं हुआ था....पवित्रा ने कहा और बधना की टोंटी से पानी गिराते हुए विचार करने लगी।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 44।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

डबल—(वि०। अं० > हि० II, ने० II)

अंग्रेजी 'डबुल' का अर्थ होता है—दोहरा, जोड़े का, दूना, कपटी। बी-डी-ए-एस-पी-244। इसी 'डबुल' को हि० एवं नेपाली ने 'डबल' के रूप में अपनाया है।

हिन्दी 'डबल' का अर्थ है—दोहरा, द्वन्द्व, दूना, बहुत बड़ा या भारी, अंग्रेजी जमाने का पैसा। इनमें प्रारम्भिक तीन अर्थ तो अंग्रेजी के समान ही हैं। 'बहुत बड़ा'

या 'भारी' अर्थ सम्भवतः अं० 'दूना' अर्थ से आया है, क्योंकि कोई भी चीज यदि दूनी हो जाय तो अवश्य भारी हो जायगी। अंग्रेज के समय का पैसा शायद ज्यादा मूल्यवान् था, सम्भवतः इसी वजह से अं० 'दूना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। अंग्रेज के समय में आज की तरह निम्न कोटि की धातु का पैसा नहीं बनता था, उस समय चाँदी या ऐसे ही कीमती द्रव्य का पैसा बनता था जिससे बाद में उसकी कीमत दूनी या उससे भी अधिक हो गई। शायद इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ आया होगा। यथा, "आज जंगल में मैंने बहुत डबल साँप देखा।"

विपरीत, ने० 'डबल' का अर्थ अंग्रेजी की तरह 'दुहरा' और हिन्दी की तरह 'भारी' या 'वजनदार' तो है, पर एक नया अर्थ 'एक रुपये का सिक्का' भी प्रचलित हो गया है। ने० हि० को पृ० 120। इनमें 'वजनदार' अर्थ अं० 'दूना' अर्थ से उसी तरह विकसित हुआ होगा जिस तरह हिन्दी 'भारी' अर्थ। 'एक रुपये का सिक्का' अर्थ सम्भवतः अंग्रेजी राज्य के समय में एक वजनदार या भारी चीज समझी जाती थी। सम्भव है, उसका मूल्य कुछ समय बाद दूना हो गया हो जिससे इस नये अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "अँले नि त विकासकोलागि काम गर्नु पर्न्यो भनेर डबल खेताला दिएकै छौं।" (अब तो विकास के लिए काम करना पड़ता है जिससे दूना मजदूर दिया है।) उ० हु० अ०। वि धि० पृ० 181। "एउटा डबल लिएर म बाजार गएँ।" (एक रुपये का सिक्का लेकर मैं बाजार गया।)

अ : ज—स्थानान्तरण : अर्थ-विस्तार

शब्द के अर्थ कभी देश से काल, एक विचार से दूसरे विचार, अंग से अंगी, एक प्रयोजन से दूसरे प्रयोजन, एक पेशा से दूसरे पेशा आदि तक स्थानान्तरित होकर व्याप कता की ओर प्रवृत्त होते हैं। डॉ० बाहरी ने तथाकथित अर्थ-विस्तार के बहुत सारे उदाहरणों को स्थानान्तरण ही माना है।[1]

अरस्तू का कहना है कि किसी वस्तु का नाम या तो उसका अपना होता है अथवा कहीं दूसरे से स्थानान्तरित होता है।[2] डॉ० राधाकृष्ण सहाय के अनुसार, जब शब्दों के अर्थ पर बलाघात पड़ता है तो साहचर्य या समानता के आधार पर अर्थ एक से दूसरे तक स्थानान्तरित होते हैं।[3] प्रसंग, परिस्थिति एवं समानता के कारण शब्दों के अर्थ में इस तरह का स्थानान्तरण प्रायः होता रहता है जिससे अर्थ में विस्तार हो जाता है।

आड़ (तद्०। सं० अल > हि० ।, ने० ।)

संस्कृत 'अल' से हिन्दी एवं नेपाली 'आड़' का विकास हुआ है। सं० 'अल' का अर्थ होता है—सजाना। सं० को० सु० पृ० 34।

---

1. "Many examples of so-called widening are in reality cases of transference."—H. Bahri—Hindi Semanticsi, p. 214.

2. "The name of anything 'says Aristotle' is either its own name or one transferred to it from something else"

—H. Bahri—Hindi Semantics., p. 219।

3. अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बंगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 993।

हिन्दी में 'आड़' का प्रयोग 'ओट', 'परदा', 'घेरा', 'शरण', 'टेक' और 'आश्रय' अर्थ में होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि सजाने के सिलसिले में बहुत तरह की चीजों को परदों से ढक दिया जाता है, शायद इसी भाव के कारण 'ओट' या 'परदा' अर्थ का विकास हुआ है। इसी तरह 'घेरा' अर्थ भी इसी सजाने के भाव के कारण आया होगा, क्योंकि बहुत सारी चीजों को एक वृत्त में रखकर सजावट का काम पूरा किया जाता है। 'शरण' अर्थ 'ओट' अर्थ से बाद में विकसित हुआ लगता है, क्योंकि जैसे कोई चीज किसी की ओट में पड़ जाने से छिप जाती है, उसी तरह रक्षा के लिए कोई किसी की शरण में जाकर छिप जाता है। 'आश्रय' और 'शरण' का एक भी भाव है, अतएव समान रूप से ही अर्थ-विकास मानना चाहिए। 'ओट' अर्थ से 'टेक' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि जिस तरह 'ओट' में सहारा का भाव है उसी तरह 'टेक' में भी। यथा, "उसके आड़ (शरण या आश्रय) में रहकर वह कब तक बचेगा ?"

विपरीत, नेपाली में हिन्दी की तरह 'आश्रय' अर्थ तो है पर 'आधार' और 'सहारा', ये दो नए अर्थ भी प्रचलित हो गये हैं। ने० हि० को० पृ० 12। आधार ही किसी वस्तु का सहारा होता है, अतएव ये दोनों अर्थ आपस में बहुत भिन्न नहीं हैं। इन दोनों अर्थों का विकास सं० 'सजाना' अर्थ से ही हुआ होगा, क्योंकि सजाने के लिए भी कुछ सामग्रियों को आधार रूप में या सहारे के रूप में लेना पड़ता है। यथा, "तपायको यो तर्कको कुनै आड छैन।" (आपके इस तर्क का कोई आधार नहीं है।) "कसको आड पाए की छ त्यसले ?" (किसका सहारा पाया है उसने ?) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 38। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

उपाधि (तत् । सं० > हि० ІІ, ने० ІІ)

संस्कृत में 'उपाधि' का अर्थ—पदवी, धोखा, भ्रम, उपद्रव होता है। सं० को० सु० पृ० 66।

हिन्दी में 'उपाधि' का अर्थ धोखा या भ्रम का ही समानार्थी 'एक वस्तु से दूसरी वस्तु बताने का छल' और 'कपट' अर्थ प्रचलित है। साथ ही, 'उपद्रव' अर्थ भी प्रचलित है। इन अर्थों के अलावा 'कर्तव्य का विचार' और 'धर्म-चिन्ता' जैसा नवीन अर्थ भी प्रयुक्त होता है। 'खिताब' या 'पदवी' अर्थ तो सं० और हि० दोनों में प्रचलित है। 'कर्त्तव्य का विचार' और 'धर्म-चिन्ता' जैसे अर्थ सं० 'भ्रम' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि भ्रम की स्थिति में ही कर्त्तव्य के विचार की जरूरत होती है और 'धर्म-चिन्ता' लगभग इसी का समानार्थी है। यथा, "ऐसी स्थिति में बहुत सोच-समझ कर हमें उपाधि लेनी है।"

विपरीत, ने० में सं० के सदृश 'उपद्रव' अर्थ तो प्रचलित है, साथ ही एक नया अर्थ 'आकस्मिक दुःख' भी प्रयुक्त होता है। ने० हि० को० पृ० 19। यह नया अर्थ सं० 'उपद्रव' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि उपद्रव के कारण भी आकस्मिक दुःख आ पड़ता है। यथा, "यो जीवनमा उपाधिको अन्त छैन।" (जीवन में आकस्मिक दुःखों का अन्त नहीं है।)

साहित्यिक भाषा में इस अर्थ में 'उपाधि' का प्रयोग भले ही चलता है, पर जन-भाषा में इस तरह का अर्थ लुप्त होता जा रहा है।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

कपाल (तत् । सं० >हि० II, ने० I)

सं० 'कपाल' का अर्थ होता है—खोपड़ी, भिक्षापात्र, समारोह, संग्रह । सं० को० सु० पृ० 79 ।

हि० और ने०—दोनों भाषाओं में 'खोपड़ी' और 'मस्तक' अर्थ समान रूप से प्रचलित हैं, फिर भी दोनों ही भाषाओं में इस शब्द का अर्थ-विस्तार हुआ है।

हिन्दी में—ललाट, भाग्य, खपड़ा, ढक्कन, अण्डे का छिलका—ये नए अर्थ प्रयोग में आने लगे हैं। साथ ही, सं० का 'भिक्षा-पात्र' अर्थ भी हिन्दी में सुरक्षित है। इनमें 'ललाट' अर्थ खोपड़ी का अंग होने के कारण तथा 'भाग्य' अर्थ 'खोपड़ी' से सम्बद्ध होने के कारण आया होगा। ऐसी लोगों की धारणा है कि मनुष्य का भाग्य उसकी खोपड़ी में अंकित रहता है। खपड़ा, ढक्कन और अण्डे का छिलका अर्थ सम्भवतः इसलिए आये हैं कि ये सभी भीतरी भागों की उसी तरह रक्षा करते हैं जिस तरह खोपड़ी भीतर के अंगों और तंतुओं की रक्षा करती है। अतएव ये सारे अर्थ सं० 'खोपड़ी' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ते हैं। यथा, "तुम्हारे कपाल (भाग्य) में यही लिखा था तो कोई क्या करे ?"

विपरीत, नेपाली में 'कपाल' का अर्थ 'बाल' या 'रोआं' भी हो गया है। ने० हि० को० पृ० 29। स्पष्ट ही है कि खोपड़ी पर बाल होने के कारण अंग-अंगी सम्बन्ध के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "कपाल नकोरिकन त सन्तुष्टि मिल्दैनथ्यो।" (बाल सँवारे बिना तो सन्तोष ही नहीं होता था।) क० सं०। गा० पृ० 54। "गाला र लुगामा पनि रगतै-रगत। कपाल छिः छिः परेका।" (गाल और कपड़े में भी रक्त ही रक्त, बाल भी अस्त-व्यस्त हुए से।) क० सं०। गा० पृ० 54। 'सिरमाथि हिफाजत का साथ पालेका लामा-लामा काला कपाल का गुच्छा...।" (सिर पर हिफाजत के साथ पाला हुआ लम्बे-लम्बे काले केश का गुच्छा...।) ने० प्रा०। नि० प्र० को० पृ० 3। —(हि० अर्थादेश : अमूर्तीकरण भाग्य अर्थ में)

कायल (वि०। अ० >हि० I, ने० I)

अरबी 'कायल' का अर्थ होता है—बकवा, निरुत्तर, लाजवाब। उ० हि० को० पृ० 293।

हिन्दी में अरबी से आये 'कायल' का अर्थ होता है जो तर्क-वितर्क से सिद्ध बात को मान ले, कबूल करने वाला। अरबी 'निरुत्तर' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ लगता है; क्योंकि जब तर्क-वितर्क के बाद आदमी निरुत्तर हो जाता है तब समझा जाता है कि उसने वह बात मान ली है या उस तथ्य को कबूल कर लिया है। यथा, "मैं आपके सिद्धान्तों का कायल हूँ।"

विपरीत, ने० में 'कायल' का अर्थ होता है—साबित, स्वीकृत, मंजूर। एन-एन-ई-पी-241। जब किसी बात से कोई निरुत्तर हो जाता है, तभी वह बात साबित या स्वीकृत मानी जाती है। सम्भवतः इसी भाव के कारण अ० 'निरुत्तर' से इन नए अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "डाक्टर गोदत्तप्रसाद का थालमा भात पनि सकनै लागिसकेको थियो, आज यिनलाई कायल नगरी छाड्न हुन्न भन्ने विचार गरी रंजनादेवी फेरि बोल्न सुइरिन्।" (डाक्टर गोदतप्रसाद की थाली में भात भी समाप्त

होने लगा था, आज इन्हें बिना स्वीकार कराये छोड़ना नहीं है, सोचकर रंजनादेवी फिर बोलने के लिए तैयार हुईं ।) ए० चि० । ह्०च० प्र० पृ० 155 । "बैठकमा बसेर सम्झदा सम्झदै कायल भएं म जम्मामा निराधार र तथ्यहीन ।" (बैठक में बैठकर सोचते-सोचते मैंने स्वीकार किया, पूर्ण रूप से निराधार और तथ्यहीन ।) शि० फू० । पा० पृ० 37 ।

—(हि० अर्थ-विस्तार : भ्रान्त धारणा)

क्या (तद्० । सं० किम्>हि० ।, ने० ।)

सं० 'किम्' से हिन्दी एवं नेपाली 'क्या' का विकास है। सं० 'किम्' का अर्थ होता है—कौन, क्या । साथ ही प्रश्न, वितर्क, निषेध, निन्दा अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। सं० को० सु० पृ० 90 ।

हि० में 'क्या' का प्रयोग लगभग उन्हीं अर्थों में होता है जिन अर्थों में सं० 'किम्' का । हिन्दी में क्या एक प्रश्नवाचक सर्वनाम माना जाता है जो प्रस्तुत या अभिप्रेत वस्तु की जिज्ञासा करता है, अर्थात् कौन वस्तु या बात । यथा, "तुम क्या कहना चाहते हो ?" सं०की प्रश्नवाचकता तो हिन्दी में रह गई, पर निन्दा अर्थ में इसका प्रयोग नहीं होता ।

विपरीत, नेपाली में 'क्या' का प्रयोग आश्चर्य, हर्ष, शोक, झुँझलाहट या संभावना के बोध के लिए होता है । ने० हि० को० पृ० 44 । इस तरह सं० या हिन्दी में प्रयुक्त होने वाला प्रश्नवाचक भाव नेपाली में नहीं चलता और हिन्दी सेअलग नए अर्थ विकसित हो गये हैं । नेपाली में इसका प्रयोग मुख्यतः विस्मयादिबोधक के रूप में होता है । सं० वितर्क, निषेध, निन्दा आदि भाव से ही नेपाली के ऐसे अर्थ विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि निषेध, निन्दा या वितर्क के कारण कभी हर्ष, कभी शोक, कभी आश्चर्य और कभी झुँझलाहट होती है । यथा, "कुरो हल्ला नगर्नू भन्याचन् क्या ।" (बात का हल्ला न करें, कहा है, आश्चर्य है ।) उ० हु० अ० । वि० धि० पृ० 50 । "के सपै सरोतरी भए रे क्या सपै ।" (क्या सब सराबोर हो गए—सब ! (आश्चर्य का भाव) । उ० हु० अ० । वि० धि० पृ० 128 । "हाम्रो घरबास खान मात्तै हैन रच क्या !" (खेद है, हमारा घरबास ही खाने के लिए मात्र बचा है !) उ० हु० अ० । वि० धि० पृ 152 ।

खट्टा (तद्० । सं० कटु> हि० ।, ने० ।)

सं० 'कटु' का अर्थ होता है- तीता, तीक्ष्ण, ईर्ष्यालु । सं० को० सु० पृ० 76 ।

हि० 'खट्टा' का अर्थ है— कच्चे आम, इमली आदि के स्वाद का, अम्ल । स्पष्ट है कि तीक्ष्ण स्वाद के कारण सं० 'तीक्ष्ण' से हिन्दी के इन अर्थों का विकास हुआ है । वैसे, 'तीता' का सम्बन्ध भी स्वाद से है और अम्ल का भी, अतएव सं० 'तीता' अर्थ से इनका विकास माना जा सकता है । यथा, "कुछ लोगों को खट्टा पदार्थ बहुत भाता है ।"

विपरीत, ने० में 'खट्टा' का प्रयोग अम्ल के अलावा 'हर्ज' और 'आवश्यकता' अर्थों में भी होता है। 'अभाव' और 'वेगरता' जैसे अर्थ भी कहीं-कहीं दिखाई पड़ते हैं। ने० हि० को० पृ० 46, ने० श० पृ० 179 । ने० के ये अर्थ सं० 'तीक्ष्ण' और 'ईर्ष्यालु' अर्थों से विकसित मालूम पड़ते हैं । ईर्ष्यालुओं के कारण कभी-कभी काम में बाधा उपस्थित हो जाती है और काम का हर्ज होता है । ऐसी स्थिति में लोग अभाव या वेगरता का अनुभव करते हैं । जैसे, खाद्य-पदार्थ में सभी तरह की चीजों के बावजूद यदि कोई तीक्ष्ण स्वाद वाली चटनी या ऐसी ही कोई चीज नहीं रहती तो कुछ लोग उसका अभाव या आवश्यकता

महसूस करते हैं। सम्भव है, इन्हीं भावों के कारण इन नए अर्थों का विकास हुआ हो। हिन्दी में भी 'खटाई में डालना' या 'खटाई में पड़ना' जैसा मुहावरा चलता है जिसका अर्थ हर्ज होना या बेगरता में पड़ना होता है। लेकिन मात्र 'खट्टा' का ऐसा अर्थ हिन्दी में नहीं चलता। यथा, "रुपिया नरहेकोले मेरो धेरै काम खट्टा भयो।" (रुपया नहीं रहने के कारण मेरे बहुत कामों का हर्ज हो गया।)

खल (तत्स०। सं०>हि० I I, ने० I I)

सं० 'खल' का अर्थ होता है—खलिहान, भूमि, नीच, दुष्ट, तलछट। सं० को० सु० पृ० 105।

हि० में 'खल' का अर्थ है—नीच, दुष्ट, सूर्य, तमाल का वृक्ष, धतूरा, पृथ्वी, खरल आदि। इनमें नीच, दुष्ट और पृथ्वी अर्थ तो संस्कृतवत् ही हैं, 'सूर्य' अर्थ तेज गर्मी से पीड़ित करने के कारण सम्भवतः 'दुष्ट' अर्थ से विकसित हुआ है। 'तमाल का वृक्ष' और 'धतूरा' अर्थ सं० 'भूमि' से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि इनका जन्म भूमि से ही होता है। 'खरल' में किसी चीज को कूटा जाता है, अतएव सं० 'दुष्ट' अर्थ में इसका विकास हुआ होगा। यथा, "तेज खलातप से सारी पृथ्वी आक्रान्त थी।" या "आज समाज में, खल अधिक दिखाई पड़ते हैं।"

विपरीत, नेपाली 'खल' का अर्थ—बहस या वाद-विवाद, खरल, दुष्ट, मूर्ख होता है। ने० हि० को० पृ० 48। चूँकि मूर्ख या दुष्ट लोग किसी बात पर अड़ जाते हैं और बहस शुरू कर देते हैं, सम्भवतः इसी भाव से 'बहस' या 'वाद-विवाद' अर्थ का विकास हुआ होगा। 'खरल' अर्थ का विकास हिन्दी की तरह ही जान पड़ता है। सं० 'नीच' या 'दुष्ट' अर्थ में जो हीनता का भाव है, उसी से ने० 'मूर्ख' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। यथा, "सकेतिमीले यस खलमा रङ्ग नदेखाएपछि ने त्यस सडेगलेको हाडले तन्नेरीहरूलाइ यस्तो फत्तर लगाएकी हो।" (शक्ति भर तुमने इस बहस में वीरता न दिखाकर उस सड़ी हुई हड्डी से युवकों पर इस प्रकार अभियोग लगाया है।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 186। "घरभरि खलबल त्यही रूपले चलि रहेथ्यो, भान्छा-बाट खलको आवाजको साथसाथै खानेकुराको बासना आउन्थ्यो।" (घर भर चलबाल उसी रूप से चल रही थी, रसोईघर से बहस की आवाज के साथ-साथ खाने की सामग्री की गन्ध आती थी।) क० सं०। गो० पृ० 37-38।

—(हि० अर्थ-विस्तार : ने० अर्थान्तरण)

गोता (वि०। अरबी>हि० I, ने० I)

अरबी 'गोता' का अर्थ होता है—डुबकी, निमज्जन। उ० हि० शि० पृ० 269।

हि० 'गोता' का अर्थ अ० की तरह ही 'डुब्बी' या 'डूबने की क्रिया' है। यथा, "वह एक गोता मारकर उस पार चला गया।"

विपरीत, ने० गोता का अर्थ होता है—हैरानी, सजा, दुःख, तकलीफ। ने० हि० को० पृ० 65। इनमें 'डुबकी' अर्थ तो अरबीवत् ही है, शेष अर्थों पर इसी 'डुबकी' अर्थ का प्रभाव पड़ता है। यदि कोई डुबकी मारकर गायब हो जाय तो लोगों का कुछ हैरानी होना स्वाभाविक है। डुबकी लगाने वाले को साँस लेने में कठिनाई होने के कारण दुःख होता है। संभव है, प्राचीन काल में किसी को पानी में बार-बार डुबोना एक तरह की

सजा हो जिससे 'सजा' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "के भनु ? भलाई तिम्रो व्यवहारबाट कति गोता लाइको छ।" (क्या कहूँ ? मुझे तुम्हारे व्यवहार से कितना दुःख पहुँचा है।)

गोल (तत्स०। सं०>हि० ा, ने० ा)

सं० 'गोल:' का अर्थ होता है—गोला, वेश्या-पुत्र। सं० को० सु० पृ० 113।

हि० 'गोल' का अर्थ है—जिसका घेरा या परिधि वृत्ताकार हो, गोला, वृत्त, झुंड। ये सभी अर्थ सं० 'गोला' अर्थ से ही प्रभावित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि सब में वृत्ताकार होने का भाव है। 'झुंड' भी बहुत सारे लोग या जीवों के जमा होने के कारण लगभग वृत्ताकार ही हो जाता है।

विपरीत, ने० गोल का प्रयोग—मंडल या वृत्त, कोयला, मोटा और विधवा का व्यभिचार से उत्पन्न पुत्र, जमात—अर्थों में भी पाया जाता है। ने० हि० को० पृ० 66। ने० श० पृ० 269। इनमें 'मंडल' या 'वृत्त' अर्थ सं० 'गोला' से आकृति-साम्य के कारण स्पष्टत: प्रभावित है। 'कोयला' और 'विधवा का व्यभिचार' से उत्पन्न पुत्र—ये दोनों संभवत: सं० 'वेश्या-पुत्र' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि वेश्या-पुत्र जिस तरह उपेक्षणीय होता है, उसी तरह विधवा-पुत्र भी और जिस तरह कोयला काला होता है, उसी तरह वेश्या-पुत्र भी कलंकयुक्त माना जाता है। कलंक के लिए कालिमा का प्रयोग प्राय: होता ही है। 'गोला' में जो मोटापन का भाव है, संभवत: उसी से 'मोटा' अर्थ का विकास हुआ है। 'जमात' अर्थ पर भी 'गोला' अर्थ का प्रभाव लगता है, क्योंकि 'जमात' में भी समूह का भाव है और गोला में भी। यथा, "यसरी सर्कारी कर्मचारीहरूको गोलमा मिसिनको एउटा महत्वपूर्ण कारण छ।" (इस प्रकार सरकारी कर्मचारियों की जमात में मिलने का एक महत्त्वपूर्ण कारण है।) सों० र० ज०। के० नु० पी० पृ० 6। "चौरस्ताको गोल न्यही होला..." (चौराहे का समूह वहीं होगा...) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 86। "अरू आपना सपै गोलका सबै इष्ट-मित्र त्यसै भै हाले।" (और अपने सभी जमात के सभी इष्ट-मित्र उसी तरह हो गये।) उ० हृ० अ०। वि० धि० पृ० 149।

चाल (तद्०। सं० √चल्>हि० ा, ने० ा)

सं० 'चल्' धातु से हिन्दी एवं नेपाली 'चाल' बना है। सं० में 'चल्' का अर्थ होता है—चंचल, वायु, कम्प, गमन। सं० को० सु० पृ० 119; एस-ई-डी-पी-205।

हि० 'चाल' का अर्थ—गति, चलने का ढंग, आचरण, व्यवहार, बनावट, रीति, प्रथा, गमनमुहूर्त्त, ठग, कपट, हलचल, आहट होता है। इनमें गति, चलने का ढंग, गमन-मुहूर्त्त अर्थ सं० 'गमन' अर्थ से स्पष्टत: प्रभावित हैं। आचरण, व्यवहार, रीति, प्रथा और ढंग—इन सब में जीवन में चलने के ढंग का या प्रचलन का भाव है। इससे ऐसा ज्ञात होता है कि ये सारे अर्थ सं० 'गमन' अर्थ से विकसित हुए होंगे। हलचल पर सं० 'चंचल' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि दोनों में अस्थिरता का भाव है। 'कपट' में टेढ़े रास्ते पर गमन किया जाता है और गमन करने में आहट भी होती ही है, अतएव इन दोनों अर्थों पर सं० 'गमन' अर्थ का प्रभाव है। हिन्दी में 'कपट' अर्थ में ही 'चाल' से बना 'चालबाजी' शब्द का प्रयोग होता है। यथा, "जब उसके आने की चाल (आहट) मिली तो वह यहाँ से खिसक गया" या "उसकी चाल (आचरण) ही ऐसी है।"

विपरीत, ने० में गति, चलन और प्रथा के अलावा थाह, होश, चेष्टा आदि अर्थ भी प्रचलित हैं। ने० श० पृ० 310। स्पष्ट है कि गति, चलन और प्रथा अर्थ हिन्दी की तरह ही सं० 'गमन' अर्थ से प्रभावित हैं। थाह, होश और चेष्टा अर्थों का विकास भी सं० गमन अर्थ से ही हुआ लगता है, क्योंकि गमन करने से पदचाप के कारण उसके जाने या आने की थाह लगती है या होश होते हैं। गमन में चलने की चेष्टा का भाव स्पष्ट है। यथा, "चाल पाएर जनकले पिट्यो।" (थाह पाकर जनक ने पीटा।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 24। "पुगे, पछि पुगे।...पुराने चालले वीरमानले उत्तर गयो।" (पहुँचे बाद में पहुँचे।...प्राचीन ढंग से वीरमान ने उत्तर दिया।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 203। "जनकले विस्तारै बुझाउने चाल गर्नै थिए।" (जनक संक्षेप में समझाने की चेष्टा कर रहा था।) आ० र० छ। इ० ब० रा० पृ० 179।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

जनी (तत्स०। सं० > हि० ।, ने० ।)

सं० 'जनी' का अर्थ होता है—उत्पत्ति, स्त्री, माता, बहू। सं० को० सु० पृ० 125।

हि० 'जनी' का अर्थ है—स्त्री, दासी, पुत्री, पैदा की हुई एक गंध द्रव्य। इनमें 'स्त्री' अर्थ संस्कृतवत् है और 'दासी, पुत्री और पैदा की हुई' अर्थ इसी 'स्त्री' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं क्योंकि सब में स्त्री होने का भाव है। 'एक गंध द्रव्य' अर्थ का विकास सं० 'उत्पत्ति' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि उसकी भी उत्पत्ति ही होती है। यथा, "अपनी जनी पर मोह होना स्वाभाविक है।"

विपरीत, नेपाली 'जनी' का अर्थ है—कन्या, माया, प्रेम। ने० श० पृ० 363। कहीं-कहीं इसका प्रयोग 'क्षमा' अर्थ में भी मिलता है। ने० हि० को० पृ० 92। 'कन्या' अर्थ का विकास सं० 'स्त्री' अर्थ से हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में स्त्रीलिंग होने की समानता है। अपनी कन्या के प्रति माया, प्रेम और क्षमा का भाव होता ही है, सम्भवतः इसीलिए इन अर्थों का विकास बाद में हुआ होगा। यथा, "यस्तो अबोध बालकलाई देखेर सबै मानसिका अनुहारमा जनीको भाव झलकन्थ्यो।" (ऐसे अबोध बालक को देखकर सभी आदमियों के चेहरे पर माया का भाव झलकने लगा।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

जिम्मा (वि०। अ० ज़िम्मा > हि० ।, ने० ।)

अरबी 'ज़िम्मा' का अर्थ होता है—संकल्प, प्रतिज्ञा, आधार, सुख, सहारा। उ० हि० डि० पृ० 261।

हि० 'जिम्मा' का अर्थ होता है—किसी काम को करने या कराने का भार ग्रहण करना, सुपुर्दगी, संरक्षा। इनमें प्रथम अर्थ पर 'संकल्प' अर्थ का प्रभाव स्पष्ट है। 'सुपुर्दगी' या 'संरक्षा' अर्थ का विकास अ० 'आधार' या 'सहारा' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि जिसे काम सुपुर्द किया जाता है या जिसकी संरक्षा में किसी को छोड़ा जाता है, वही उसका आधार या सहारा बन जाता है। यथा, "मैंने उसके पालन-पोषण का भार अपने जिम्मे ले लिया है।"

विपरीत, ने० में 'जिम्मा' का अर्थ—जवाबदेही, अभिभार के अलावा देखरेख करना भी है। एन-एन ई-पी-622। इन अर्थों पर अ० 'संकल्प' अर्थ का प्रभाव जान पड़ता है, क्योंकि जवाबदेही, अभिभार और देखरेख—सबमें उसकी रक्षा या काम करने के संकल्प की ध्वनि है। यथा, '''यो काम तिम्रो जिम्मामा छ।'' (यह काम तुम्हारी देखरेख में है।) ''ऋण जति उठ्यो भने नोकसानी छैन। ढाडस दिए सम्शेरले जा दोकानको जिम्मामा बसे का थिए।'' (ऋण जितना उठे उसमें नुकसानी नहीं है। ढाढ़स देकर शमशेर जाकर दूकान की देखरेख में बैठ गया था।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 40।

—(हि० अर्थादेश : सम्बन्ध)

दरबार (वि०। फा० हि० I, ने० II)

फारसी 'दरबार' का अर्थ होता है—राजसभा, न्यायालय, ऋषियों का आश्रम। उ० हि० डि० पृ० 238।

हि० 'दरबार' का अर्थ 'राजसभा राजभवन, महाराज, राजा, दरवाजा' होता है। इनमें राजभवन, महाराज, राजा अर्थ राजा से सम्बन्धित होने के कारण फा० 'राजसभा' से विकसित मालूम पड़ते हैं। राजसभा में प्रवेश हेतु पहले बड़े फाटक वाले दरवाजे से गुजरना पड़ता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण 'राजसभा' से 'दरवाजा' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, ''उसे प्रतिदिन दरबार में हाजिर होना पड़ता था।'' या ''वह दरबार (राजा) का सेवक नियुक्त हुआ है।'' इसी 'दरबार' से बना 'दरबारी' शब्द भी 'राजसभा का' अर्थ में प्रयुक्त होता है। यथा, ''रीतिकाल के प्रायः सभी कवि दरबारी थे।''

विपरीत, ने० 'दरबार' का अर्थ राजमहल और राजसभा तो है, पर एक नया अर्थ—'आदमी ढोने के लिये झूलने वाला कपड़ा' भी हो गया है। ने०हि०को० पृ० 147। एन-एन-ई-पी-844। सम्भवतः राजसभा में असक्त आदमियों को लाने-ले जाने के लिए कुछ इसी तरह का प्रबन्ध हो जिससे इस नये अर्थ का विकास हुआ लगता है। यथा, ''बिरामीको लागि एउटा दरबारको आवश्यकता छ।'' (बीमार के लिए एक झूलने वाले कपड़े की बनी स्ट्रेचर की जरूरत है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अवच्छेदात्मक अर्थलोप)

('सभा' अर्थ का लोप एवं केवल 'राजा' अर्थ का रह जाना।)

धावा (तद्०। सं० धावन>हि० I, ने० II)

सं० 'धावन' का अर्थ होता है—भागना, आक्रमण करना। सं० को० सु० पृ० 151।

हिन्दी 'धावा' का प्रयोग शत्रु से लड़ने के लिए दलबल सहित तैयार होकर जाना, चढ़ाई, जल्दी-जल्दी जाना, अर्थ में होता है। स्पष्ट है कि इनमें प्रथम दो अर्थ सं० 'आक्रमण करना' अर्थ से विकसित हुए हैं और अन्तिम अर्थ सं० 'भागना' अर्थ से। यथा, ''सारे सैनिक धावा के लिए तैयार थे।''

विपरीत, ने० 'धावा' का एक अर्थ 'दौड़-धूप' भी होता है, वैसे इसका प्रयोग 'आक्रमण' और 'तीव्रगति' जैसे अर्थों में भी होता है। एन-एन-ई-पी-902। इनमें

'दौड़-धूप' अर्थ सं० 'भागना' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि भागने में भी दौड़-धूप करनी पड़ती है। यथा, "खेतमा मेहनत र धावा गरेअनुसार, तपस्या गरे-अनुसार सफलता को चिह्नहरू पनि देखापर्न थालिसकेका छन्।" (खेत में मेहनत और दौड़-धूप करने के अनुसार, तपस्या करने के अनुसार सफलता के चिह्न भी दिखाई पड़ने लगे थे।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 333।

निर्भर (तत्स०। सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'निर्भर' का अर्थ होता है—ज्यादा, उग्र, बहुत ज्यादा, मजबूत, गहरा, भरा हुआ, प्रज्ज्वलित, प्रचंड, आश्रित, युक्त, पूर्ण। एस-ई-डी-पी-292। सं० को० सु० पृ० 162।

हि० 'निर्भर' का प्रयोग— अवलम्बित, आश्रित, पूर्ण, भरा हुआ, युक्त, मिला हुआ, खाली अर्थों में होता है। इनमें सारे अर्थ सं० के ही हैं, मात्र अन्तिम अर्थ 'खाली' नया है। ऐसा लगता है कि यह अर्थ निर्भर का संधि विच्छेद (निः+भर) करके ग्रहण किया गया है। यथा, "उस निर्भर तालाब से किसी की प्यास नहीं मिट सकती।"

ने० 'निर्भर' का अर्थ होता है—किसी की आशा या भरोसा में रहना, आश्रित, भरोसा। एन-एन-ई-पी-959। ये सारे अर्थ सं० 'आश्रित' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि जिस पर कोई आश्रित रहता है, उसी से आशा या उसी पर भरोसा करता है कि समय पड़ने पर मदद करेगा। यथा, "चरित्रको आधार र निर्भरता नारीमा छ, त्यसैले नारीले ज्यादै पवित्र हुनुपर्दछ निर्मलहुनुपर्दछ।" (चरित्र का आधार और भरोसा औरत में है, इसीलिए औरत को ज्यादा पवित्र होना पड़ता है, निर्मल होना पड़ता है।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 169।

—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक – खाली अर्थ में)

पक्का (तद्०। सं० पक्व>हि० I, ने० II)

सं० 'पक्व' का अर्थ होता है— पका हुआ, दृढ़, पचा हुआ, जला हुआ, परि-पुष्ट, पूर्ण विकसित, पूर्ण, अनुभवी, तैयार, भूरा (बाल के लिए), निपुण।—एस-ई-डी-पी-307।

हि० 'पक्का' का प्रयोग दृढ़, मजबूत, स्थिर, निश्चित, प्रामाणिक, नपा-तुला अर्थों में होता है। इनमें 'दृढ़, मजबूत, स्थिर और निश्चित' अर्थ सं० 'दृढ़' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि सबमें दृढ़ता का भाव है। 'प्रामाणिक' और 'नपा-तुला', ये दोनों नये अर्थ हैं जो संभवतः सं० 'परिपुष्ट' अर्थ से विकसित हुए हैं। जो प्रामाणिक बात होती है, वह किसी न किसी रूप में पुष्ट हुई होती है और नपा-तुला होना ही किसी वस्तु की पुष्टि है। संभवतः इसी भाव के कारण ये अर्थ आये हैं। यथा, "यह पक्की बात है कि उसके जाने पर वहाँ झगड़ा होगा।"

हिन्दी में शब्दों के साहचर्य पर पक्का का अर्थ बहुत कुछ निर्भर करता है। जैसे—पक्का रंग (स्थिर रंग), पक्की खबर (प्रामाणिक खबर), पक्का मत (निश्चित मत) आदि।

ने० 'पक्का' का अर्थ होता है—कुशल। इसके अलावा 'मजबूत' और 'पूरा' अर्थ भी चलता है। एन-एन-ई-पी-978। ने० 'कुशल' अर्थ पर सं० 'अनुभवी' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि अनुभवी आदमी प्रायः कुशल होते हैं। 'मजबूत' अर्थ सं० 'परिपुष्ट' अर्थ से विकसित हुआ होगा—ऐसा प्रतीत होता है। परिपुष्टता में 'मजबूती' का भाव विद्यमान है जिससे ऐसा अर्थ-विकास संभव लगता है। 'पूरा' अर्थ सं० 'पूर्ण' का ही पर्याय है। यथा, "अरू एक प्रकारको पक्का तौलियामा खत्रा छ ज्यु।" (और एक प्रकार के मजबूत तौलिये में खतरा है जी।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 30। "हाम्रो लाटा हिन्दी सुनेर पक्का सोझै मान्छे हो भन्ने मानी बाकस टाउकोमा चढाउंछ।" (हमारी मूर्खतापूर्ण हिन्दी सुनकर पूरा सीधा आदमी मानकर बक्सा सिर पर चढ़ाता है।) आ०र०छ०। इ०ब०रा०पृ० 42। "यो पक्का लेखक हो।" (वह कुशल लेखक है।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : शब्द-साहचर्य)

पक्की (तद्० । सं० पक्व>पक्का>हि० पक्की II, ने० I)

सं० 'पक्व' का अर्थ होता है—पका हुआ, दृढ़ पचा हुआ, जला हुआ, परिपुष्ट, पूर्ण विकसित, पूर्ण, अनुभवी, तैयार, भूरा (बाल के लिए) विनष्ट। एस-ई-डी-पी-307।

हि० 'पक्की' का अर्थ है—पक्की रसोई, पूरी, कचौरी, मिठाई आदि। सं० 'पका हुआ' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि ये सारी चीजें आग पर पकाकर बनाई जाती हैं। यथा, "कुछ लोग दूसरे के यहाँ केवल पक्की खाते हैं।"

ने० 'पक्की' का अर्थ—मजबूत, पक्का या असल होता है। एन-एन-ई-पी-978। इन अर्थों का विकास सं० 'दृढ़' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि दृढ़ता में भी मजबूती या पक्कापन का भाव है। ने० में 'पक्की' पक्का का स्त्रीलिंग रूप है, पर हि० में 'पक्की' का अर्थ 'पक्का' से सर्वथा भिन्न हो गया है। यथा, "राम र श्याम का बीच पक्की मित्रता छ।" (राम और श्याम के बीच असली दोस्ती है।)

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

पट (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'पट' का अर्थ होता है—वस्त्र, चित्र बनाने का कपड़ा या धातु, पर्दा या घूँघट, छत। एस-ई-डी-पी-309।

हि० 'पट' का अर्थ संस्कृतवत् ही—कपड़ा, पर्दा, धातु या कपड़े का टुकड़ा जिस पर चित्र बना हो या बनाया जाय, छप्पर—होता है। एक नया अर्थ 'कपास' भी चलता है जो सं० 'वस्त्र' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि कपास से ही वस्त्र बनता है। यथा, "पट का उत्पादन मुख्यतः दक्षिणी भारत में होता है।"

विपरीत, ने० 'पट' का अर्थ 'पर्दा' तो होता है, पर सामान्य कपड़ा नहीं होता। इसके अलावा 'मूर्ति' और 'तस्वीर' जैसे नये अर्थ भी विकसित हो गये हैं। एन-एन-ई-पी-986। इनमें 'पर्दा' अर्थ तो संस्कृत का ही है, 'तस्वीर' अर्थ भी इसी 'पर्दा' से विकसित हुआ होगा। पर्दे पर तस्वीर बनाये जाने के कारण ऐसा अर्थ-परिवर्तन हुआ

होगा। 'मूर्ख' अर्थ भी इसी 'पर्दा' अर्थ से इसलिए विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि ऐसी धारणा है कि मूर्खों के दिमाग पर भी अज्ञान का पर्दा पड़ा होता है। यथा, "तिमीजस्तो पटलाई म ज्ञान दिन सक्तिन।" (तुम्हारे जैसे मूर्ख को मैं ज्ञान नहीं दे सकता।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

पत्ता (तद्० । सं० पत्रं > हि० I, ने० I)

सं० 'पत्रं' का अर्थ होता है—पत्ता, पंखुरी, डैना, चिट्ठी। सं०को०गु० पृ० 170।

हि० 'पत्ता' का अर्थ होता है—वृक्ष का पत्र, वर्ण, कान में पहनने का गहना, मोटे कागज का गोल या चौकोर खण्ड। इनमें प्रथम दो अर्थ तो सीधे संस्कृत से ग्रहण किये गये हैं और शेष दो अर्थ इसी 'पत्ता' अर्थ से आकृति-साम्य के आधार पर विकसित हुए लगते हैं। यथा, "उसके कान में सोने का पत्ता शोभ रहा था।"

विपरीत, ने० 'पत्ता' का अर्थ होता है—पता, ठिकाना, चिट्ठी। एन-एन-ई-पी-991। इन अर्थों पर सं० 'चिट्ठी' अर्थ का प्रभाव है, क्योंकि चिट्ठी पर पता या ठिकाना लिखा होता है। 'चिट्ठी' अर्थ तो सीधे सं० का है ही। यथा, "तर नसोधि-जस्तोगरी उनले घरको नोकर चाकरहरूबाट नानीथकुं आएर घण्टौं बसेर गएको खबर पत्ता लगाए।" (लेकिन पूछे न जाने जैसा करके उन्होंने घर के नौकर-चाकर से नानीथकुं के आकर घंटों बैठकर जाने की खबर का पता लगा लिया।) ए० नि०। हृ० च० प्र० पृ० 190। "तर गोरेको पत्ता थिएन।" (लेकिन गोरे का ठिकाना या पता नहीं था।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 114। "नाम र मितिहरूबाट पत्ता लागेको छ।" (नाम और मिति से पता लगा।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 7।
—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

पाजी (वि०। फा > हि० I, ने० I)

फारसी 'पाजी' का अर्थ होता है—खेल, दुष्ट, कमीना, धूर्त, बदमाश। उ०हि० डि० पृ० 93-94।

हि० में फारसी से आये 'पाजी' का अर्थ फारसी की तरह ही 'दुष्ट' और 'लुच्चा' होता है। 'लुच्चा' भी लगभग 'दुष्ट' आदमी को ही कहा जाता है, अतएव हिन्दी में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है।

विपरीत, ने० 'पाजी' का अर्थ—रद्दी और दुष्ट आदमी तथा 'गधे का बच्चा' होता है। एन-एन-ई-पी-1028। ऐसा लगता है कि 'गधे का बच्चा' अर्थ फा० 'दुष्ट' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि दोनों का व्यवहार गाली के रूप में किया जाता है। यथा, "गधे को त कुरै छाडौ न उसको स्वर पाजीको भन्दापनि नराम्रो रहेछ।" (गधे की बात छोड़ो न, उसकी आवाज गधे के बच्चे से भी बुरी होती है।)

पीरा (तद्०। सं० पीड़ा > हि० II, ने० II)

सं० 'पीड़ा' का अर्थ होता है—दुःख, कष्ट। सं० को० गु० पृ० 185।

हि० 'पीर' का अर्थ होता है—पीड़ा, दर्द, दुःख, सहानुभूति, करुणा, दया आदि। इनमें पीड़ा, दुःख और दर्द अर्थ तो सीधे संस्कृत के ही हैं और सहानुभूति, करुणा और दया अर्थ सं० 'पीड़ा' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। जिसको पीड़ा है, उसके प्रति सामान्यतया सहानुभूति, करुणा या दया का व्यवहार किया जाता है। संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "आपके कष्ट के प्रति मुझे पूरी पीर (सहानुभूति) है।"

विपरीत, ने० 'पीर' का अर्थ—चिन्ता, सजा और मन का ताप होता है। एन-एन-ई-पी–1050। ये सारे अर्थ सं० 'कष्ट' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि कष्टपूर्ण स्थिति में चिन्ता स्वयमेव आ जाती है या किसी को कष्ट में देखकर भद्र लोग चिन्ताग्रस्त हो जाते हैं। 'कष्ट' एक तरह की ऐहिक सजा है और 'मन का ताप' अर्थ संभवतः कष्ट का ही पर्यायवाची है। यथा, "कति पीर गर्नु पन्या हाम्रो दीदीलाई मेरो।" (कितनी चिन्ता करनी पड़ी हमारी बहन को मेरी।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 42। "सिगीलाई चुरुट नखाऊ भन्यो भनी पीर लाग्छ बरी?" (तुम सिगरेट न पीयो कहा, क्या इससे कष्ट होता है जी?) शि० फु०। पा० पृ० 34। "कत्तो पीर छ उसलाई यसमा?" (कितनी सजा या कष्ट है उसको इसमें?) सो० र०। के० नु० पो० पृ० 29। —(हि० अर्थ-विस्तार—स्थानान्तरण)

पैयां (तद्० । सं० पाद > हि० I, ने० I)

सं० 'पाद' का अर्थ होता है—पैर, चतुर्थांश, वृक्ष का मूल, पर्वत का मूल, खंभा, पंक्ति। एस-ई-डी-पी–331।

हि० 'पैयां' का अर्थ है पैर। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० से ही ग्रहण किया गया है। 'पैयां' का प्रयोग मुख्यतः ग्राम्य भाषा में होता है। यथा, "तुम्हारी पैयां पड़ूँ, घनश्याम।"

विपरीत, ने० 'पैयां' का अर्थ होता है—पाँव, चक्का, पहिया, घोड़े की एक चाल। ने० हि० को० पृ० 182। एन-एन-ई-पी–1070। इनमें 'पाँव' अर्थ तो सं० का ही है, अन्य अर्थ इसी 'पैर' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। चक्का या पहिया गाड़ियों के लिए पैर के समान ही है, क्योंकि इसी के सहारे कोई गाड़ी चलती है। 'घोड़े की चाल' भी पाँव की गति पर ही निर्भर करती है, अतएव ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "यो गोरुगाड़ी को पैयां बिग्रेको छ।" (इस बैलगाड़ी का पहिया बिगड़ गया है।)

फराक (वि० । फा० फ़राख़ > हि० I, ने० II)

फारसी 'फ़राख़' का अर्थ होता है—विस्तृत, प्रथित, कुशादा। उ० हि० डि० पृ० 426।

हि० 'फराक' का अर्थ है—मैदान, लम्बा-चौड़ा, विस्तृत। इनमें लम्बा-चौड़ा' और 'विस्तृत' अर्थ तो फा० 'विस्तृत' से सीधे ग्रहण किये गये हैं। 'मैदान' अर्थ इसी 'विस्तृत' अर्थ से सम्भवतः इसलिए विकसित हुआ है कि मैदान भी विस्तृत होता है। यथा; "तुम लोग फराक में जाकर खेलो।"

विपरीत, नेपाली 'फराक' का अर्थ 'विस्तृत' तो है, लेकिन हिन्दी की तरह लम्बा-चौड़ा न होकर मात्र 'चौड़ा' होता है। इनके अलावा 'अलग' या 'भिन्न' जैसा नया अर्थ भी विकसित हो गया है। ऐसा लगता है कि विस्तृतता में जो लम्बाई चौड़ाई के होने का भाव है, इनमें नेपाली ने मात्र 'चौड़ाई' को ग्रहण किया है। 'विस्तृत' पदार्थों में एक सिरा दूसरे से काफी अलग भी होता है और कभी-कभी उनमें भिन्नता भी होती है, संभवतः इसी से इस तरह के नये अर्थ आये होंगे। यथा, "उनको छ फुट भन्दा अग्लो जिउ, हेर्दा पनि धक लाग्ने फराक छाती, लामा-लामा जोर नारी भएका हात, लाम्चिलो अनुहार, सर्पै खाइलाग्दा थिए।" (उनका छः फुट से ऊँचा शरीर, देखकर ही डर लगने वाली चौड़ी छाती, लम्बी-लम्बी नाड़ी वाले हाथ, लम्बे आकार का रूप, सब खा जाने वाले जैसे थे।) सो०र०ज०। के०उ०पो० पृ० 38। "अलिकति फराक भएरबस।" (जरा अलग होकर बैठो।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बाड़वाग्नि (तद्० । सं० वाड़वः>हि० I I, ने० I I)

सं० 'वाड़वः' का अर्थ होता है—समुद्र की आग, ब्राह्मण। एस-ई-डी-पी-500।

हि० 'बाड़वाग्नि' का अर्थ है—'समुद्र की आग' जो सीधे संस्कृत से ग्रहण किया गया है। यथा, "बाड़वाग्नि के कारण वहाँ के सारे जलचर मर गये।"

विपरीत, ने० 'वाडवाग्नि' का अर्थ हो गया है—'समुद्र की आग' और 'वन की आग'। एन-एन-ई-पी-1147। हि० में 'वन की आग' अर्थ प्रचलित नहीं है। 'समुद्र की आग' अर्थ हिन्दी की तरह ही सीधे सं० से गृहीत है, पर संभवतः 'आग' की समता के कारण 'वन की आग' अर्थ भी प्रयोग में आ गया। यथा, "आजै त्यो जंगल वाडवाग्निले गर्दा सखाप भयो।" (आज वह जंगल आग से जलकर समाप्त हो गया।)

भर्मन (तद्० । सं० भ्रमणम् > हि० I, ने० I I)

सं० 'भ्रमणम्' का अर्थ है—घूमना, फिरना, भटकना, भूल, सिर में चक्कर आना। सं० को० सु० पृ० 262।

हि० 'भर्मन' का अर्थ है—घूमना, फिरना, आना-जाना, यात्रा, फेरी। इनमें प्रारंभ के दो अर्थ तो सं० 'घूमना-फिरना' जैसे ही हैं, 'यात्रा' या 'फेरी' अर्थ इसी 'घूमना-फिरना' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते है, क्योंकि 'यात्रा' या 'फेरी' में भी घूमना-फिरना पड़ता है। यथा, "आजकल साधु लोग प्रायः भर्मन (यात्रा) में ही रहते हैं।"

विपरीत, ने० 'भर्मन' का अर्थ होता है—भूल, भ्रम, गलती। एन-एन-ई-पी-1247। सं० 'भूल' अर्थ से ये अर्थ स्पष्टतया प्रभावित हैं, क्योंकि 'भ्रम' का मूल भी 'भूल' ही है। यथा, "म भर्मनमा पर्नालि नै यस्तो गरेको हुं, क्षमा पाऊं।" (मैंने भ्रम में पड़कर ही ऐसा किया है, क्षमा की जाय।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

भोग (तत्स० । सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'भोग' का अर्थ होता है—भोजन, स्त्री-पुरुष समागम, सुख-दुःख का अनुभव, देवताओं को समर्पित खाद्य-पदार्थ, रंडी की फीस, साँप का फैला हुआ फन, साँप, कब्जा, अधिकार। सं० को० सु० पृ० 260।

हि० 'भोग' का अर्थ है—सुख-दुःख का अनुभव करना, सुख, विलास, दुःख, स्त्री के साथ मैथुन, धन, पालन, भक्षण, देह, फल, अर्घ्य अर्थ आदि। इनमें अधिकांश अर्थ सं० के ही हैं। 'सुख' और 'दुःख' जैसे नये अर्थ सं० 'सुख-दुःख का अनुभव' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। इनमें 'अनुभव' का परित्याग करके 'सुख' और 'दुःख' को अलग-अलग कर दिया गया है। 'विलास' संभवतः 'सुख' से बाद में विकसित हुआ अर्थ है, क्योंकि 'सुख' और 'विलासिता' का निकट सम्बन्ध है। 'धन' और 'अर्थ' अर्थ संभवतः सं० 'रंडी की फीस' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि फीस के रूप में धन ही दिया जाता है। 'फल' और 'अर्घ्य' अर्थ सं० 'देवताओं को समर्पित खाद्य-पदार्थ' अर्थ से आया लगता है। 'फल' अर्घ्य रूप से चढ़ाया जाता है और 'अर्घ्य' तो पर्याय ही है। यथा, "जब तक लिखा है, ऐसा भोग (दुःख) भोगना ही होगा।"

विपरीत, ने० 'भोग' का हि० की तरह अनेक अर्थ न होकर मात्र एक ही अर्थ होता है—सुख-दुःख का अनुभव करना। एन-एन-ई-पी-1279। ने० का यह अर्थ सीधे सं० से ग्रहण किया गया है। इस तरह नेपाली में किसी तरह का अर्थ-विकास नहीं हुआ है। यथा, "मेरा ग्रामीण कौतुकमय आनन्दर तीव्र पीड़ाको भोग प्रारम्भ भयो त्यसदिग देखि।" (मेरे ग्रामीण कौतुकमय आनन्दर तीव्र पीड़ा को भोग प्रारंभ भयो त्यसदिगदेखि।" (मेरे ग्रामीण कौतुकमय आनन्द और तीव्र पीड़ा के अनुभव का प्रारम्भ हुआ उस दिन से।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 70। "मेरो यहाँको भोग सिद्धियो।" (मेरा यहाँ का सुख-दुःख का अनुभव समाप्त हुआ।) न० दा०, वि० प्र० को० पृ० 94।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मह (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I I)

सं० 'महः' का अर्थ होता है—समारोह, चमक, यज्ञ, बड़प्पन, ताकत, बाहुल्य, पानी, खुशी। सं० को० मु० पृ० 277।

हि० 'मह' जो सं० 'महः' से 'विकसित होकर आया है, का अर्थ होता है—महा, अति, बहुत, श्रेष्ठ, बड़ा। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ इन्हीं दो अर्थों के अलग-अलग पर्यायवाची हैं या भाव को वहन करते हैं। यथा, "वह बुद्धिमान ही नहीं, मह बलशाली है।"

विपरीत, ने० 'मह' का अर्थ होता है—चमक, उत्सव, नैवेद्य। ने० श० पृ० 825। इनमें 'चमक' अर्थ संस्कृत का ही है और 'उत्सव' अर्थ 'समारोह' का समानार्थी। 'नैवेद्य' अर्थ संभवतः सं० 'यज्ञ' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि यज्ञ में 'नैवेद्य' चढ़ाया जाता है। यथा, "आजको महबाट हामीहरूको घेरै प्रसन्नता भो।" (आज के उत्सव से हम लोगों को काफी प्रसन्नता हुई।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

मा (तद्० । सं० माता>हि० I I>ने० I)

सं० 'माता' का अर्थ होता है—माँ 'एस-ई-डी-पी-434। टर्नर सं० 'माता' से ही नेपाली 'मा' का विकास बताते हैं। प्रसिद्ध भाषाविद् श्री बाबूराम सक्सेना हिन्दी 'मा' का विकास सं० 'मातृ' या 'माता' से मानते हैं।

हिन्दी 'मा' का अर्थ होता है—लक्ष्मी, दुर्गा, काली, माता, दीप्ति, प्रकाश। इनमें 'माता' अर्थ तो संस्कृत का ही है, 'लक्ष्मी', 'दुर्गा' और 'काली' अर्थ इसी 'माता' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं। इन देवियों के प्रति माँ की तरह आदर-भाव रहने के कारण ऐसा अर्थ विकसित हुआ होगा। 'दीप्ति' या 'प्रकाश' अर्थ 'लक्ष्मी' या 'दुर्गा' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि देवियाँ अलौकिक दीप्ति से युक्त मानी जाती हैं। यथा, "उसके ऊपर मा (दुर्गा) की कृपा है।"

विपरीत, ने० 'मा' का अर्थ है—माता। ने० श० पृ० 829। हिन्दी की तरह 'मा' के अनेक अर्थ नेपाली में नहीं हैं, वैसे एक और अर्थ 'में' भी होता है। यह 'में' अर्थवाले 'मा' का विकास संभवतः सं० 'मध्य' से हुआ है, सं० 'माता' से नहीं। नेपाली में 'माता' के लिए 'आमा' का व्यवहार मुख्य रूप से होता है, पर संक्षिप्तता और मुख-सुख के कारण 'मा' का भी प्रयोग होता है। इस तरह ने० में 'मा' का कोई अर्थ-विकास नहीं हुआ है। यथा, "तिम्रो माले भनेको हो।" (तुम्हारी मा ने कहा है।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

यति (तत्स०। सं०>हि० ा, ने० ा)

सं० 'यति' का अर्थ होता है—जितना, मुनि, साधु, संन्यासी, रुकावट, छन्द में विश्राम की जगह, विधवा। सं० को० सु० पृ० 300।

हि० 'यति' का अर्थ होता है—संन्यासी, ब्रह्मचारी, छन्द में विश्राम की जगह। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, मात्र 'ब्रह्मचारी' अर्थ थोड़ा भिन्न है। चूँकि संन्यासी लोग प्रायः 'ब्रह्मचारी' होते हैं, अतएव सं० 'संन्यासी' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ लगता है। यथा, "आज एक ऐसे यति आये थे जिन्होंने लड़कपन से ही जंगल में तपस्या शुरू कर दी थी।"

विपरीत, ने० 'यति' का अर्थ होता है—योगी, विराम, इतना, ज्यादा अधिक या ज्यादा कम। ने० श० पृ० 860। इनमें 'योगी' और 'विराम' अर्थ तो सं० के ही हैं और 'इतना' अर्थ सं० 'जितना' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि दोनों परिमाणबोधक हैं। इसी परिमाणबोधकता के कारण सं० 'इतना' अर्थ से ही 'ज्यादा अधिक' या 'ज्यादा कम' अर्थ का विकास हुआ लगता है। यथा, "त्यो स्वर यति क्षीण छ मानो सप्तपाताल भेदेर आएको छ।" (वह आवाज इतनी क्षीण है कि मानो सात पाताल भेदकर आई है।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 91। "स्वभाव को दृष्टि-बाट पनि यति साधुप्रकृति को र सौम्य...।" (स्वभाव की दृष्टि से भी इतना साधु प्रकृति का और सौम्य...।" न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 23। "सानो कोठामा यतिका वर्ष सम्म कैदीभएर बसिरहे को देख्यो।" (छोटी कोठरी में इतने वर्ष तक कैदी होकर रहते हुए देखा।)

योजना (तत्स०। सं०>हि० ाा, ने० ाा)

सं० 'योजना' का अर्थ है—जोड़, मिलाव, रचना, स्कीम, भविष्य में किये जाने वाले काम की पूर्वनिश्चित रूपरेखा, प्रोजेक्ट। सं० को० सु० पृ० 305।

हि० 'योजना' का अर्थ है—नियुक्त करने की क्रिया, नियुक्ति, प्रयोग, व्यवहार, जोड़, मिलान, बनावट, भावी कार्यों की व्यवस्था। इनमें 'नियुक्ति' अर्थ सं० 'जोड़'

अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि नियुक्ति के द्वारा आदमी को किसी काम से जोड़ा जाता है। प्रयोग' अर्थ सं० 'रचना' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि रचना के क्रम में ही विविध प्रयोग किये जाते हैं। 'व्यवहार' अर्थ सं० 'रचना' अर्थ से ही विकसित हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में 'करने' का भाव है। अन्य अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "इस काम के लिये दस व्यक्तियों की योजना (नियुक्ति) की गई है।" इसी 'योजना' शब्द से हिन्दी में 'नियोजनालय' शब्द बना है। 'अभिनियोजन' भी इसी 'योजना' से बना शब्द है जिसका अर्थ 'नियुक्ति' होता है।

विपरीत, ने० 'योजना' का अर्थ है---आयोजना, प्रबन्ध, परिकल्पना, किसी व्यवस्था की रूपरेखा। ने० श० पृ० 867। एन-एन-ई-पी-1392। इनमें 'आयोजना' या 'प्रबन्ध' अर्थ सं० 'रचना' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि किसी भी चीज की रचना करने के लिए बहुत सारी चीजों का प्रबन्ध या आयोजना करनी पड़ती है। 'परिकल्पना' अर्थ सं० 'भविष्य में किये जाने वाले काम की पूर्वनिश्चित रूपरेखा' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि रूपरेखा को निश्चित करने के लिए पहले उसकी परिकल्पना की जाती है। अन्तिम अर्थ संस्कृतवत् ही है। यथा, "आज साँझ पाँच बजेसम्ममा सबै सदस्यहरू भेला हुन सक्ने गरी योजना बनाऊ।" (आज संध्या पाँच बजे तक सभी सदस्यों को जमा करने का प्रबन्ध करो।)

---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

रुख (वि०। फा०>हि० ।, ने० ।।)

फारसी 'रुख' का अर्थ होता है---मुख, चेहरा, पार्श्व, पहलू, दिशा, तरफ। उ० हि० डि० पृ० 270।

हि० 'रुख' का अर्थ है---कपोल, मुँह, आकृति, मन की इच्छा जो मुख की आकृति से प्रकट हो, कृपादृष्टि, ओर, तरफ, सामने। इनमें 'मुँह' अर्थ फारसी का ही है और 'आकृति' अर्थ 'चेहरा' का पर्यायवाची है। 'कपोल' अर्थ फा० 'मुख' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि दोनों में अंग-अंगी भाव है। 'आकृति से प्रकट होने वाली इच्छा' अर्थ फा० 'चेहरा' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि इच्छा की अभिव्यक्ति का माध्यम चेहरा या आकृति ही है। 'कृपादृष्टि' अर्थ फा० 'पार्श्व' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि जिस पर कृपादृष्टि होती है, उसके प्रति सामीप्य का बोध होता है। 'ओर' या 'तरफ' फा० से सीधे गृहीत अर्थ हैं। 'सामने' फा० 'दिशा' अर्थ से आया होगा क्योंकि सामने से भी दिशा का बोध होता है। यथा, "उसका रुख (मन की इच्छा) ठीक नहीं जान पड़ा।"

विपरीत, ने० रुख' का अर्थ होता है---चेष्टा, अनुहार, आकृति। एन-एन-ई-पी-1429। इनमें 'आकृति' अर्थ फारसी के समान ही है और 'अनुहार' का विकास इसी 'आकृति' अर्थ से मालूम पड़ता है, क्योंकि 'अनुहार' और 'आकृति' लगभग समानार्थी हैं। 'चेष्टा' अर्थ का विकास फा० 'दिशा' अर्थ से हुआ लगता है, क्योंकि चेष्टा किसी न किसी दिशा में होती है। हिन्दी में ने० का 'चेष्टा' अर्थ नहीं चलता है। यथा, "तिम्रो यो रुख राम्रो भयेन।" (तुम्हारी यह चेष्टा अच्छी नहीं हुई।)

---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

वाक्पति (तत्स० । सं०>हि० I I, ने० I I)

सं० वाक्पतिः' का अर्थ होता है—वृहस्पति, बोलने में निपुण व्यक्ति। सं० को० सु० पृ० 355।

हि० 'वाक्पति' का अर्थ है—वृहस्पति, ब्रह्मा। इसमें 'ब्रह्मा' अर्थ नया है जो संभवतः सं० 'वृहस्पति' अर्थ से विकसित हुआ होगा। 'वृहस्पति' जिस तरह विद्या और ज्ञान से युक्त माने जाते हैं, उसी तरह ब्रह्मा भी। वैसे, दोनों पूज्य भी हैं। संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "उनकी बात को कोई वाक्पति (ब्रह्मा या वृहस्पति) भी नहीं काट सकता।"

विपरीत, ने० 'वाक्पति' का अर्थ 'वृहस्पति' और 'बात करने में कुशल व्यक्ति' दोनों है। एन-एन-ई-पी-1519। ये दोनों अर्थ सं० के ही हैं, अतएव नेपाली में कोई अर्थ-विकास नहीं हुआ है। यथा, "तिमीजस्ता वाक्पतिलाई हराउन त्यो बांगो कुरा हो।" (तुम्हारे समान बात करने में कुशल व्यक्ति को हराना टेढ़ी बात है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

वाचक (तत्स० । सं०>हि० I I, ने० II)

स० 'वाचक' का अर्थ होता है—जबानी, मौखिक, सूचक, संकेत, पढ़नेवाला। सं० को० सु० पृ० 357।

हि० 'वाचक' का अर्थ है—बतानेवाला, सूचक, संज्ञा, संकेत। ये सारे अर्थ सं० 'सूचक' से या तो सीधे ग्रहण किये गये हैं या इससे विकसित मालूम पड़ते हैं। बताने वाला और सूचक—दोनों समानार्थी हैं और सीधे सं० 'सूचक' से आये हैं। 'संकेत' में भी किसी बात की सूचना का भाव है, अतएव यह भी सं० 'सूचक' से विकसित लगता है। संज्ञा भी किसी वस्तु, भाव या व्यक्ति के नाम का सूचक होती है। यथा, "जिस शब्द से जाति भर का बोध हो, उसे जातिवाचक कहा जाता है।"

विपरीत ने० 'वाचक' का अर्थ होता है—पाठक, बोलनेवाला (वक्ता), पुराण सुनाने वाला पंडित। एन-एन-ई-पी-1521। इनमें 'पाठक' अर्थ तो सं० 'पढ़नेवाला' अर्थ से सीधे ग्रहण किया गया है। 'पुराण सुनानेवाला पंडित' अर्थ भी संभवतः इसी 'पाठक' अर्थ से विकसित हुआ हो, क्योंकि वह पंडित या पुराण पढ़कर ही सुनाता है। 'बोलनेवाला' एकदम नया अर्थ है जो संभवतः सं० 'जबानी' या 'मौखिक' अर्थ से विकसित हुआ हो। जबानी' या मौखिक' का अर्थ ही होता है जो बोल कर कहा जाय। इसी 'बोलने' की समता के कारण संभवतः यह अर्थ (बोलनेवाला) आया हो। यथा, "सप्ताहा लगाउंदा मिठो बोली हुने वाचकको अत्यावश्यक हुन्छ।" (भागवत पुराण की कथा का सप्ताह लगाने में मीठा स्वर वाला पंडित अत्यावश्यक होता है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

वारि (तत्स० । सं०>हि० I I, ने० I I)

सं० 'वारि' का अर्थ होता है—पानी, जटामासी। सं० को० सु० पृ० 365।

हिन्दी 'वारि' का अर्थ सं० की तरह 'जल' है। यथा, "उस सरोवर का वारि सूख गया है।"

विपरीत ने० 'वारि' का एक अर्थ 'जल' तो है, पर इसके अलावा वर्षा, नदी या समुद्र का किनारा तथा 'इस ओर' भी होता है। ने० श० पृ० 947। एन-एन-ई-पी-1525। इनमें 'वर्षा' और 'नदी' या 'समुद्र का किनारा' अर्थ सं० 'पानी' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। चूंकि 'वर्षा' में भी जल ही होता है और 'नदी तथा समुद्र' में भी, इसलिए 'वर्षा' अर्थ अंग-अंगी सम्बन्ध के कारण और 'किनारा' अर्थ 'जल' से सामीप्य-सम्बन्ध के कारण आ गया होगा। 'इस ओर' अर्थ बाद में 'किनारा' वाले भाव के कारण आया होगा, क्योंकि नदी का एक किनारा 'इस ओर' का बोध कराता है और दूसरा किनारा 'दूसरी ओर' का। यथा, "पुलमुनिको रेखामय पानीसम्म औ वारिदेखि पारिसम्म दोहो-याई दोहो-याई हेरेपछि यमुनाले भनिन्...।" (पुल के नीचे लहरयुक्त पानी इस ओर से उस ओर तक दुहरा-दुहरा कर देखने के बाद यमुना बोली...।) आ० र० छ०। ई० ब० रा० पृ० 180। "सूर्यको किरण दिनदिनै मधुरो हुंदै गयो वारि पारिदेखिने पहाड, वन, आकाश, संपूर्ण तुवांलोले ढाक्यो।" (सूर्य की किरण दिनोंदिन मधुर होती गई, इस ओर तथा उस ओर दीखने वाले पहाड़, वन, आकाश सबको बादल-सदृश धूमकण ने ढाँक लिया।) मृ० बा०। बां० पृ० 56।

वेला (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'वेला' का अर्थ होता है---समय, ऋतु, फुरसत, सीमा, बीमारी, वचन, मसूड़ा, भोजन, बिना तकलीफ की मौत, किनारा। सं० को० सु० पृ० 429।

हि० 'वेला' का अर्थ है---समय, दिन और रात का चौबीसवाँ भाग, समुद्र की लहर। इनमें 'समय' अर्थ सं० और हिन्दी में समान है। 'दिन और रात का चौबीसवाँ भाग' अर्थ समयवाची होने के कारण सं० 'समय' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है। चूंकि लहरों का आना-जाना भी समयानुसार होता है, शायद इसी भाव के कारण सं० 'समय' अर्थ से ही हि० 'समुद्र की लहर' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "उसकी नाव वेला के साथ-साथ तेजी से आगे बढ़ने लगी।"

विपरीत, ने० 'वेला' का अर्थ है---अवसर या मौका। वैसे 'समय' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-1570। यह 'अवसर' अर्थ ने० का अपना विकसित अर्थ है जो हिन्दी में प्रचलित नहीं है। 'अवसर' या 'मौका' का अर्थ ही है---उपयुक्त समय। इसलिए यह अर्थ संभवतः सं० 'समय' अर्थ से विकसित हुआ होगा। यथा, "...वेलामा एक मुठी पानी खुवाउने आदमी एउटा पनि भएन।" (मौके पर एक मुट्ठी (अन्न) और पानी खिलाने-पिलाने वाला आदमी एक भी नहीं हुआ।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 161। "उसको दिनभरिको वेला हान्ती भयो।" (उसके दिन भर का (कमाने का) मौका बेकार गया।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 49।

---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

व्यथा (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'व्यथा' का अर्थ होता है---पीड़ा, कष्ट, संताप, क्षोभ, बेचैनी, भय, क्षति, दुर्भाग्य। सं० को० सु० पृ० 440।

हि० 'व्यथा' का अर्थ है---पीड़ा, तकलीफ, दुख। स्पष्ट ही है कि ये सारे अर्थ सं० 'पीड़ा' या 'कष्ट' से सीधे ग्रहण किये गये हैं और आपस में ये समानार्थी हैं। यथा, "उसकी परेशानी को देखकर मुझे कम व्यथा नहीं होती।"

विपरीत, ने० 'व्यथा' का अर्थ होता है—बीमारी। वैसे 'पीड़ा' और 'दु:ख' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-1576। चूँकि बीमारी में पीड़ा होती है या बीमारी पीड़ादायक है, संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'पीड़ा' अर्थ से ने० 'बीमारी' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "कस्तो-कस्तो व्यथा त निको हुन्छ भने तपाई-लाई त भएकै के छ र?" (कैसी-कैसी बीमारी तो अच्छी हो जाती है, आपको हुआ ही क्या है?) ए० चि०। ह० च० प्र० पृ० 2।

शास्त्र (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'शास्त्र' का अर्थ होता है—आदेश, नियम, उपदेश, सलाह, शिक्षण का साधन, विज्ञान, धर्मग्रन्थ। सं० को० सु० पृ० 468।

हि० 'शास्त्र' का अर्थ है—वे धार्मिक ग्रन्थ जो लोगों के हित और अनुशासन के लिये बनाये गये हों, किसी विशिष्ट विषय के सम्बन्ध का वह समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो। ये दोनों अर्थ क्रमशः सं० 'धर्मग्रन्थ' और 'विज्ञान' अर्थ से सीधे ग्रहण किये गये हैं। यहाँ हिन्दी अर्थ मात्र सं० अर्थ की व्याख्या है। यथा, "आधुनिक युग में शास्त्रों पर से लोगों का विश्वास हटता जा रहा है। या वह राज-नीतिशास्त्र का विद्वान् है।"

ने० 'शास्त्र' का अर्थ होता है—ज्ञान का ग्रन्थ, विज्ञान, यथार्थ ज्ञान। एन-एन-ई-पी-1597। इनमें 'ज्ञान का ग्रन्थ' अर्थ संभवतः सं० 'शिक्षण का साधन' अर्थ से विकसित हुआ है। शिक्षण का साधन मूलतः ज्ञान का ग्रन्थ ही होता है—शायद इस अर्थ-विकास का आधार यही है। 'विज्ञान' अर्थ तो सं० का ही है जिससे 'यथार्थ ज्ञान' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि विज्ञान का काम ही यथार्थ ज्ञान देना है। यथा, "ज्ञानकालागि सबै किसिमका शास्त्रहरूको अध्ययन आवश्यक छ।" (ज्ञान के लिए सभी तरह के (ज्ञान के) ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है।)

शैतान (वि०। अ०>हि० I, ने० I)

अरबी 'शैतान' का अर्थ होता है—एक फरिश्ता—जो ईश्वर की अवज्ञा के अपराध में निकाला गया, धूर्त, मक्कार, दुष्टात्मा, बहकाकर कुमार्ग पर चलानेवाला। उ० हि०>पृ० 370।

हि० 'शैतान' का अर्थ है—तमोगुणमयी शक्ति जो मनुष्यों को बहकाकर धर्म-मार्ग से भ्रष्ट करती है। स्पष्ट ही है कि यह अर्थ अ० 'बहकाकर कुमार्ग पर चलाने वाला' अर्थ से सीधा ग्रहण किया गया है। यथा, "उसके कुकर्मों को देखकर लगता है कि उसके अन्दर शैतान का निवास है।"

विपरीत, ने० 'शैतान' का अर्थ होता है—भूत-प्रेत, दुष्टात्मा, पिशाच। ने० श० पृ० 1013। इनमें 'दुष्टात्मा' अर्थ तो अ० का ही है और 'भूत-प्रेत' या 'पिशाच' लोगों को परेशान करता है, अतः वह भी दुष्टात्मा की तरह ही है या दुष्टात्मा ही है। संभवतः इसी भाव के कारण 'दुष्टात्मा' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "कुनैशैतानको छाया परेको हो, त्यसैले यो यस्तो गर्छ।" (किसी प्रेत की छाया पड़ी है, इसीलिए यह ऐसा करता है।)

अ : ञ—अलंकार : अर्थ-विस्तार

आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा मानते हैं कि आलंकारिक प्रयोगों में अर्थ-विस्तार एक साधारण बात होती है।[1] लोग अभिव्यक्ति में स्पष्टता, ध्वन्यात्मकता और भव्यता लाने के लिए अलंकार का प्रयोग करते हैं।[2]

श्री कपिलदेव द्विवेदी आचार्य का मत है कि आलंकारिक एवं व्यंग्य प्रयोगों से शब्दार्थ में विशेष विकास लक्ष्य होता है।[3]

बातचीत या किसी चीज के वर्णन में वक्ता या लेखक यही प्रयास करता है कि वह कम से कम शब्दों में अपने को अधिक से अधिक स्पष्ट कर सके। ऐसा करने के लिए अलंकारों (उपमा, रूपक आदि) का प्रयोग किया जाता है। आरम्भ में तो प्रयोग आलंकरिक रहता है, पर कुछ दिनों के बाद अलंकार का ध्यान किसी को नहीं रहता। उस नवीन अर्थ में शब्द का प्रयोग चल पड़ता है। इस नवीन अर्थ के कारण प्रायः अर्थ-विस्तार ही होता है।

खप्पर (तद्० । सं० खर्पर > हि० I, ने० II)

सं० 'खर्पर' का अर्थ होता है—चोर, धूर्त, खप्पर, खपड़ा, छाता। सं० को० सु० पृ० 105।

हि० में 'खप्पर' का प्रयोग—भिक्षा-पात्र, खोपड़ी, तसले के आकार का कोई पात्र—अर्थ में होता है। इनमें 'खोपड़ी' अर्थ तो संस्कृत का ही है और शेष अर्थ इसी 'खोपड़ी' अर्थ से आकृति-साम्य के कारण विकसित हुए जान पड़ते हैं। संन्यासियों का भिक्षापात्र और तसले के आकार का कोई पात्र—दोनों खोपड़ी की तरह वृत्ताकार होते हैं। यथा, "मैंने आज एक संन्यासी को खप्पर लेकर भीख माँगते हुए देखा।"

विपरीत, नेपाली 'खप्पर' का अर्थ होता है—भाग्य, खोपड़ी। ने० हि० को० पृ० 47। इनमें 'खोपड़ी' अर्थ सं० का ही है और 'भाग्य' अर्थ इसी 'खोपड़ी' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि लोगों में धारणा है कि मनुष्य का भाग्य उसकी खोपड़ी में लिखा होता है। यथा, "म के गरूं, मेरो खप्पर साथदिएन।' (मैं क्या करूँ, मेरे भाग्य ने साथ नहीं दिया।) "कही गरेर दलेको खप्परमा बजाउल्याउँ भने खुलुक्क हुन्छ।" (किसी तरह दल की खोपड़ी के मारने के लिए वह तत्पर होता है।) का० म०। गो० पृ० 75।

चलन (तत्सव। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'चलन' का अर्थ होता है—चलने या थरथराने का भाव। एस-ई-डी-पी- 205।

---

1. भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ० 207।

2. "Figures of speech are used for the sake of vividness, suggestiveness and sometimes clearness."—E. H. Sturtevant—Linguistic Change., p. 90.

3. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, पृ० 127।

हि० 'चलन' का अर्थ है—चलने का भाव, गति, रिवाज, रीति, किसी चीज का व्यवहार, उपयोग, भ्रमण, प्रचार। इनमें 'चलने का भाव', 'गति' और 'भ्रमण' जैसे अर्थ सं० 'चलने का भाव' अर्थ से सीधे गृहीत हुए हैं। रीति-रिवाज उसी को कहते हैं जो समाज या जाति में प्रचलित होता है, यानी इसमें भी चलने का भाव है, अतएव यह अर्थ भी सं० 'चलने का भाव' अर्थ से विकसित हुआ लगता है। 'किसी चीज का व्यवहार' या 'उपयोग' अर्थ भी 'चलने का भाव' अर्थ से ही आया लगता है, क्योंकि व्यवहार में आना ही उसका चलना है। यथा, "हमारे समाज में तिलक लेने का चलन नहीं है।" इसी 'चलन' शब्द में 'प्र' उपसर्ग लगकर 'प्रचलन' शब्द बनाया गया है जिसका भी अर्थ 'रिवाज' ही है।

विपरीत, ने० 'चलन' का अर्थ है—विधि, आदत, ढाँचा। इनके अलावा प्रथा, रीति और व्यवहार अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-518। ये सारे अर्थ सं० 'चलने का भाव' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि 'विधि' में चलने वाली प्रथा या तरीका का भाव है, 'आदत' में अंगीकार कर लिया गया ढंग जो अब भी चल रहा है, का भाव है और 'ढाँचा' में चलने वाले तौर-तरीके का भाव है। यथा, "पुस्तकबाट आफ्नो ध्यान हटाएर नराम्रो मान्दैमान्दै सुबेदारले हप्कारे—'के चलन गर्दैछौ हरि' ?" (पुस्तक से अपना ध्यान हटाकर बुरा मानते हुए सुबेदार ने धमकाया—'क्या व्यवहार कर रहे हो हरि' ?" मा० घ०। बां० पृ० 2। "नेपालमा स्वास्नीमानिसको संख्या बेसी भएकोले बहूपत्नी को चलन चल्न गएको हो।" (नेपाल में औरतों की संख्या अधिक होने के कारण बहुपत्नी की प्रथा चल पड़ी है।) ने० रा०। वि० प० का० पृ० 19। "हाम्रो दार्जिलिगमा यस्तै चलन छ।" (हमारे दार्जिलिंग में ऐसी ही रीति या विधि है।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 142।" —(हि० अर्थ-निर्धारण : अलंकार)

तह (वि०। फा० > हि० I, ने० II)

फारसी 'तह' का अर्थ होता है—नीचे, तल। उ० हि० शि० प० 128।

हि० में 'तह' का प्रयोग—तल, परत और पेंदा के अर्थ में होता है। इनमें 'तल' अर्थ तो फारसी का ही है, शेष अर्थ इसी से विकसित मालूम पड़ता है। 'परत' के कई स्तरों में सबसे नीचे निचली परत होती है जिसमें 'तल' का भाव है और पेंदा तो सबसे नीचे होता ही है। सम्भवतः इसी भाव के कारण इस तरह का अर्थ आया हो। यथा, "रजाई की तहों को उधेड़कर देखो, बीच में शायद खटमल हो।"

विपरीत, ने० 'तह' का अर्थ है—ठीक रास्ते पर आना, योग्य स्थिति। वैसे 'परत' अर्थ में 'तह' का प्रयोग होता है। ने० हि० को० पृ० 132। कोई भी आदमी जब तक हवा में तैरते है या पानी के ऊपर ही हाथ मारता है, समझा जाता है कि वह अभी सही रास्ते पर या उपयुक्त स्थिति में नहीं पहुँच पाया है। इस तरह का आलंकरिक प्रयोग होता होगा कि जब आदमी जमीन पर या सतह पर पाँव रखे तभी उसकी योग्य या उपयुक्त स्थिति मानी जाती होगी। यह तभी सम्भव है जब नीचे उतर कर जमीन पर पाँव टेके, केवल हवा में न उड़े। सम्भव है, इसी भाव के कारण सं० 'नीचे' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ हो। यथा, "जीवन युगको यस्तो तहमा आएर ठप्प लाग्दो रहै छ...।" (युग की ऐसी स्थिति में आकर जीवन शून्य लग रहा है...।) शि०

कू० । पा० पृ० 38 । "मानसिक तह्मा अक्ष अंध्यारो र उज्यालो को जस्तो छ...।" (मानसिक स्थिति में अत्र अन्धकार और प्रकाश के समान लगता है...।) आ० र० छ० । इ० व० रा० पृ० 49 । —(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

थपना (तद्० । सं० स्थापना > हि० ा, ने० ा)

सं० 'स्थापना' का अर्थ होता है—स्थापित करना, खड़ा करना, प्रतिष्ठित करना, सजाना, दृढ़ करना, निश्चय करना । एस-ई-डी-पी-623 ।

हि० 'थपना' का अर्थ—स्थापित करना, बैठना और जमना—होता है । ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, क्योंकि 'प्रतिष्ठित करना' में ही 'बैठना' और 'जमना' दोनों का भाव है । 'स्थापित करना' तो स्पष्टतः सं० का ही अर्थ है । यथा, "मन्दिर में एक देवता की मूर्त्ति थपी गई ।"

विपरीत, ने० थपना का अर्थ—'मात्र नाम के लिए नियुक्ति' और 'स्थापित करना' दोनों है । एन-एन-ई-पी-816 । 'मात्र नाम के लिए की गई नियुक्ति' एक तरह से आलंकारिक ((Ornamental) है जिसमें सं० 'सजाना' का भाव है । संभवतः इसी 'सजाना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि ऐसी नियुक्ति शोभा के लिए ही होती है । यथा, "काम नगर्ने कर्मचारी के थपना मात्र हुन् त ?" (काम नहीं करने वाले कर्मचारी की नौकरी मात्र नाम की ही है नो ?)

धुरा (तद्० । सं० धुर > हि० ा, ने० ा)

सं० 'धुर' का अर्थ होता है—जुआ, धुरी का वह भाग जहाँ पहिया रहता है, भार, उत्तरदायित्व, कर्त्तव्य, उच्चतम जगह, चोटी । एस-ई-डी-पी-273 ।

हि० 'धुरा' का अर्थ है—अक्ष । स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'धुरी का वह भाग जहाँ पहिया रहता है' अर्थ से आया है । यथा, "उसकी गाड़ी का धुरा ही टूट गया ।"

विपरीत, ने० 'धुरा' का अर्थ 'अक्ष' भी है और 'किसी पर अनेक व्यक्तियों का टूट पड़ना' भी । ने० हि० को० पृ० 126 । ऐसा लगता है कि यह नया अर्थ सं० 'भार' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि जिस तरह भार कष्टकर होता है, उसी तरह आक्रमण भी । यथा, "हामी दुई जनाको झगडामा के तिमीहरू धुरा पस्न आएका छौ ?"(हम दोनों व्यक्तियों के झगड़े में क्या तुम लोग टूट पड़ने आये हो ?)

धूम (तत्स० । सं० > हि० ा, ने० ा)

सं० 'धूम.' का अर्थ होता है—धुआँ, कुहासा, बादल, धुआँयुक्त वातावरण, ओकाना, डकारना, उल्का, उल्कापात । एस-ई-डी-पी-310 ।

हि० 'धूम' का प्रयोग—'धुआँ', अजीर्ण या अपच में उठने वाली डकार, धूमकेतु, उल्कापात, शोरगुल, रेलपेल, आन्दोलन, समारोह, ठाटबाट आदि अर्थों में होता है । इनमें प्रारम्भ के चार अर्थ सं० के समान ही हैं । शेष अर्थों पर सं० 'धुआँयुक्त वातावरण' अर्थ का प्रभाव दीख पड़ता है । जिस तरह 'धुआँयुक्त वातावरण में हर चीज अस्पष्ट दीखती है, उसी तरह अस्पष्ट स्थिति शोरगुल, रेलपेल, आन्दोलन, समारोह आदि में भी होती है । यथा, "वहाँ लोगों की धूम (रेलपेल) मची है ।"

विपरीत, ने० 'धूम' का अर्थ है—अति, बहुत ज्यादा, ऊधम, उपद्रव, व्यग्रता। एन-एन-ई-पी-909। इनमें 'अति' या 'बहुत ज्यादा' अर्थ सं० 'डकारना' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि बहुत ज्यादा भोजन कर लेने से ही डकार आती है। शेष अर्थ 'ऊधम, उपद्रव और व्यग्रता' सं० 'धुआँयुक्त वातावरण' अर्थ से स्थिति की अस्पष्टता के कारण विकसित हुआ लगता है। यथा, "त्यहाँ किन मानिसहरूको धूम छ ?" (वहाँ क्यों बहुत ज्यादा लोग हैं ?) —हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

पुतली (तद्० । सं० पुत्रकः>हि० II, ने० II)

सं० 'पुत्रकः' का अर्थ होता है—गुड़िया, छोटा पुत्र, धूर्त, फतिंगा। सं० को० सु० पृ० 187।

हि० 'पुतली' का अर्थ है—गुड़िया, आँख के बीच का काला भाग, कपड़ा बुनने की मशीन। इनमें 'गुड़िया' अर्थ सं० से स्पष्टतः आया है। 'आँख के बीच का काला भाग' अर्थ सं० 'फतिंगा' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि यह फतिंगे की तरह ही छोटा और चंचल होता है। 'कपड़ा बुनने की मशीन' अर्थ पर भी सं० 'फतिंगा' अर्थ का प्रभाव लक्षित होता है, क्योंकि यह मशीन भी कार्यावस्था में फतिंगे की तरह चंचल होती है। यथा, "मेरी पुतली (आँख का काला भाग) में कोई दोष हो गया है जिससे मैं ठीक से देख नहीं पाता।"

विपरीत, ने० 'पुतली' का अर्थ है—एक प्रकार का रंग-बिरंगा उड़ने वाला कीड़ा (तितली), धान में लगने वाला कीड़ा, गुड़िया, आँख का काला भाग। एन-एन-ई-पी-1054। इनमें प्रारम्भ के दोनों अर्थ नए हैं, जो सं० 'फतिंगा' अर्थ से आकृति एवं जाति-साम्य के कारण आए होंगे। शेष अर्थ में 'गुड़िया' अर्थ सं० का ही है और 'आँख का काला भाग' का विकास हिन्दी की तरह ही सं० 'फतिंगा' अर्थ से हुआ होगा। यथा, "सानी चिनिया पुतली जस्ती लाग्दथ्यो के भन्नान् !" (सानी चीनिया गुड़िया की तरह लगती थी—क्या कहूँ !) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 66। "कति पुतली देखा परे कति बिलाए...यसको लेखो थिएन...।" (कितनी तितलियाँ दिखलाई पड़ीं और गायब हुईं...इसका लेखा नहीं था...। सो० र० ज०। के० नु० गो० पृ० 95।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

पुष्कल (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'पुष्कल' का अर्थ होता है—बहुत, पूरा, श्रेष्ठ, चौंसठ मुट्ठियों की एक माप, चार ग्रास की भिक्षा। सं० को० सु० पृ० 188। एम-ई-डी-पी—343।

हि० 'पुष्कल' का प्रयोग—चार ग्रास की भिक्षा, अनाज मापने का एक प्राचीन मान, राम के भाई भरत के दो पुत्रों में से एक, शिव, बहुत, परिपूर्ण, उपस्थित, पवित्र—अर्थों में होता है। इनमें प्रारम्भ के दो अर्थ 'बहुत और परिपूर्ण' अर्थ सं० के ही हैं। राम के भाई भरत के दो पुत्रों में एक एवं शिव—दोनों संज्ञायें हैं, अतएव इनका सम्बन्ध सं० अर्थ से नहीं है। 'उपस्थित' और 'पवित्र' अर्थ क्रमशः सं० बहुत और श्रेष्ठ अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। उपस्थित से ही बहुत का भाव आता है और पवित्र एवं श्रेष्ठ—दोनों अच्छेपन के भाव से युक्त हैं। यथा, "देवताओं के दर्शन से मन पुष्कल (पवित्र) हो जाता है।"

विपरीत, ने० 'पुष्कल' का अर्थ होता है—श्रेष्ठ, सुन्दर, प्रचुर। एन-एन-ई-पी-1059। इनमें 'श्रेष्ठ' और 'प्रचुर' अर्थ सं० के ही हैं, 'सुन्दर' अर्थ नया है। अच्छेपन का बोध कराने के कारण यह अर्थ सं० 'श्रेष्ठ' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है। यथा, "यस्ता पुष्कल मानिसलाई पनि यस्तो कष्ट !" (ऐसे सुन्दर या श्रेष्ठ आदमी को भी इतना कष्ट !)
—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

मात (तद्० । सं० मत्त>हि० I, ने० I)

सं० 'मत्त' का अर्थ होता है—मतवाला, पागल, मदमस्त, गर्व से चूर, खुश। सं० को० सु० पृ० 268।

सं० 'मत्त' से विकसित हि० 'मात' का अर्थ है—मदमस्त, मतवाला। स्पष्ट ही है कि ये दोनों अर्थ स० के ही हैं। यथा, "ऐसा मात आदमी से कोई काम होना सम्भव नहीं है।"

विपरीत, ने० 'मात' का अर्थ है—नशे में माता हुआ, पागलपन, मदिरा, नशीली चीज। एन-एन-ई-पी-1334। ने० श० पृ० 831। इनमें 'नशे में माता हुआ' और 'पागलपन' अर्थ स्पष्टतः सं० 'मतवाला' और 'पागल' अर्थ से प्रभावित हैं। नशे में आदमी मतवाला हो जाता है, इसलिए नशे में माता हुआ आदमी के लिए 'मात' शब्द का प्रयोग होने लगा है। सं० 'मदमस्त' अर्थ के अन्दर 'नशा' विद्यमान है। लगता है, नेपाली ने इसी नशावाले भाव के कारण 'मदिरा' या 'नशीली चीज' अर्थ विकसित कर लिया है। यथा, "मात को संग मासुको प्रबन्ध हुनु पनि आवश्यक छ।" (मदिरा के साथ मांस का प्रबन्ध होना भी आवश्यक है।) "रक्सी खानाले मात लाग्छ।" (मदिरा पीने से पागलपन आ जाता है।)

माध्यमिक (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'माध्यमिक' का अर्थ है—बीच का, बीच-सम्बन्धी, बीच में स्थित। सं० को० सु० पृ० 283।

हि० 'माध्यमिक' का अर्थ है—बौद्धों का एक मत, मध्यदेश। इनमें 'मध्यदेश' में बीच का भाव है, अतएव सं० 'बीच में स्थिति' अर्थ से विकसित हुआ लगता है। 'बौद्धों का एक मत' अर्थ भी सं० 'बीच का' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि इस तरह के मतानुयायी मध्यम मार्ग का ही अनुसरण करते हैं। यथा, "आर्य लोग पश्चिम से बढ़ते-बढ़ते भारत के माध्यमिक प्रदेश में आकर बस गये।"

विपरीत, ने० 'माध्यमिक' का अर्थ होता है—बीच का, मझौला। एन-एन-ई-पी-1336। इनमें 'बीच का' अर्थ तो० सं० का ही है और 'मझौला' अर्थ इसी 'बीच का' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है। 'मझौला' का अर्थ ही होता है—जो ज्यादा न लम्बा हो न छोटा हो—यानी बीच का हो। कहीं-कहीं 'बौद्ध धर्म का एक समुदाय' अर्थ भी देखा जा सकता है। ने० श० पृ० 832। यथा, "आजको युगमा माध्यमिक मनुष्य को अवस्था बडो सोचनीय छ।" (आज के युग में बीच के मनुष्यों की हालत बहुत सोचनीय है।)
—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

मूल (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'मूल' का अर्थ होता है—जड़, निम्नतम भाग, कारण, शुरुआत, आधार, पूँजी, ओल। सं० को० सु० पृ० 292।

हि० 'मूल' का अर्थ है—जड़, कन्द, आरम्भ, आदि कारण, पूँजी, नींव आदि। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के ही हैं। यथा, "वीर और नदी का मूल (आदि कारण) जानना बड़ा कठिन है।"

विपरीत, ने० 'मूल' का अर्थ 'जड़' और कन्द' के अलावा साधन तथा प्रधान (मुख्य) भी होता है। एन-एन-ई-पी-1370। इनमें 'जड़' अर्थ संस्कृतवत् ही है और 'कन्द' भी जड़ ही होता है, अतएव यह भी 'जड़' से ही जुड़ा हुआ है। 'साधन' अर्थ सं० 'आधार' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में माध्यम होने का भाव है। चूँकि 'जड़' वृक्षों का सबसे प्रधान अंग है और उसी पर सारे वृक्ष का अस्तित्व निर्भर करता है, अतएव सं० 'जड़' अर्थ से ही इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "अन्धोलाई ओड्गा-एर सानी मूल सडक मन्दा अलि छेकारो पारेर अगाडि बढ्दथी।" (अन्धे को सहारा देकर सानी मुख्य सड़क से थोड़ा हटकर छोटे रास्ते से आगे बढ़ती जा रही थी।) न०स० को० गी०। र० वि० पृ० 76। "भन्दाभन्दै हामी मूल ढोकामा आइपुग्यौं।" (बोलते-बोलते हम मुख्य दरवाजे पर आ पहुँचे।) शि० फू०। पा० पृ० 4। "धनेको भैंसी खोल्सै-खोल्सा तल मूलबाटोमा झरे छ……।" (धने की भैंस नहर होकर नीचे की मुख्य सड़क पर आई है...।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 8।

साहू (तद्० । सं० साधु>हि० I, ने० I)

सं० 'साधुः' का अर्थ होता है—धर्मात्मा व्यक्ति, मुनि, वणिक सौदागर, महाजन। सं० को० सु० पृ० 550।

हि० 'साहू' का अर्थ है—सज्जन, महाजन, साहूकार। इनमें 'महाजन' और 'साहूकार' समानार्थी हैं और स्पष्टतः सं० 'महाजन' से आये हैं। 'सज्जन' अर्थ सम्भवतः सं० 'धर्मात्मा व्यक्ति' या 'मुनि' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि धर्मात्मा व्यक्ति और मुनि—दोनों सज्जन होते हैं। यथा, "आज दुष्ट और साहू (सज्जन) में फर्क करना कठिन है।"

विपरीत, ने० 'साहू' का अर्थ है—धनी व्यक्ति, व्यापारियों के लिए आदरसूचक शब्द, महाजन। एन-एन-ई-पी-1729। इनमे 'महाजन' अर्थ सं० का ही है और अन्य अर्थ इसी से विकसित मालूम पड़ते हैं। महाजन लोग निश्चित रूप से धनी होते हैं और पैसा अर्जित कर लेने के कारण आदणीय भी। सम्भव है, इसी स्थिति के कारण ये नए अर्थ विकसित हुए हों। यथा, "धनी-धनी साहू महाजन हरूले पनि कति मान गर्दछ।" (धनी-धनी आदमी और महाजन लोग भी कितना आदर करते हैं।) क० सं०। गो० पृ० 2। "आने फेरि पसलेतिर फकेर सोद्धथ्यो—के हो साहू जी ?" (बाद में फिर दूकान की ओर जाकर पूछता था—क्या है सम्माननीय व्यापारी जी !) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 76।

हि० ने 'साहू' का अर्थ महाजन या साहूकार तो ग्रहण किया, लेकिन 'धनी व्यक्ति' अर्थ नहीं ग्रहण किया। धनी व्यक्ति (जो व्यापारी नहीं हो) के लिए भी ने० में 'साहू' का प्रयोग होता है, जबकि हिन्दी में मात्र व्यापार करने वाले के लिए।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

परिशिष्ट

(क) अन्य वर्गों में आए हुए वे शब्द जिनमें हिन्दी भाषा में अर्थ-विस्तार हुआ है—

अ : अर्थ-संकोच के अन्तर्गत आए शब्द

आंग	भ्रान्त
कति	मुखिया
काल	योग
काली	संवरण
कूट	सहवास
केलि	स्थापना
ख्याल	
गति	
जोखना	
टीका	
तनु	
दंगल	
धार	
ध्यान	
नीति	
पट्टी	
पत्र	
पल्ला	
पारिजात	
प्राण	
ब्रत्ती	
बाबा	
बारी	

आ : अर्थादेश के अन्तर्गत आए शब्द

अन्त	चतुर्थी	पौन	सवारी
अन्तर	चाँद	बरु	साख
अवतार		बाजू	सागर
अस्ति	चाला	बानी	सानु
	चोट	बासा	सुस्त
उल्का	जात	भर	स्थिति
ऐंठन	ज्या	भीत	
	झर	मत्ता	
कास	झरी	मल	
कच	ठहर	मलय	
कमान	ठूंग	माया	
कर	ताली	मारना	
कलकल	तुहीन	मोही	
	तोरन	मोहिनी	
किनारा	दम	रसिया	
	दर	राई	
कोठी	दशा	लहना	
		लहर	
कौल	दौरा	लहरी	
खात	नचनी	लागू	
खाल	नल	वली	
खास	नाल	शेष	
खूंटा	पायक	सत	
गम	पारा	सन्न	
गाल	पालि	सर	
गुन	पेटी	सरासर	
घाट	पैठ	सवाई	

(ख) सांख्यिक विवरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों की संख्या 508 के आधार पर हिन्दी एवं नेपाली भाषाओं में घटित अर्थ-विस्तार की स्थिति अग्रलिखित है—

भाषा	कुल शब्द	औसत प्रतिशत
हिन्दी	189	37·2
नेपाली	116	22·8

(1) शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
तत्०	77	44	15·1	8·6
तद्०	79	46	15·5	9·1
देशी	2	3	·4	·6
वि०	31	23	6·2	4·5

0. हिन्दी—अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—तद्०, तत्०, वि०, देशी

0. नेपाली— अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम तद्०, तत्०, वि०, देशी

0. —दोनों भाषाओं में सर्वाधिक तद्भव और फिर तत्सम शब्दों में अर्थ-विस्तार हुआ है, पर ने० की तुलना में हि० के तत्सम और तद्भव शब्दों में लगभग दूना और विदेशी शब्दों में लगभग डेढ़ गुना अर्थ-विस्तार हुआ है। देशी शब्दों से अधिक ने० में ही अर्थ-विस्तार हुआ है।

(2) शब्द-भेद की दृष्टि से—

	संज्ञा	%	क्रिया	%	विशेषण	%	सर्वनाम	%	क्रि०वि०	%	अव्यय	%
हि०	153	30·1	5	1·0	27	5·3	—	—	—	—	4	·8
ने०	87	17·1	4	·8	21	4·1	—	—	1	0·2	3	·6

0. हिन्दी– अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम–संज्ञा, विशेषण, क्रिया, अव्यय।

0. नेपाली– अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम–संज्ञा, विशेषण, क्रिया, अव्यय, क्रिया-विशेषण।

0. —दोनों भाषाओं में सर्वाधिक संज्ञा और विशेषण में अर्थ-विस्तार घटित हुआ है, लेकिन ने० की तुलना में हिन्दी की लगभग दूनी संज्ञा और डेढ़ गुना विशेषण में। क्रिया और अव्यय का क्रम दोनों भाषा में उलट गया है।

(3) प्रयोग की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
साधारण	122	64	24·0	12·6
शिष्ट	67	52	13·2	10·2

0. हिन्दी—अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—साधारण, शिष्ट

0. नेपाली—अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—साधारण, शिष्ट

0 —— नेपाली में शिष्ट और साधारण शब्दों में लगभग बराबर परिमाण में अर्थ-विस्तार हुआ है, पर हिन्दी में शिष्ट शब्दों की तुलना में साधारण शब्दों में लगभग दूना अर्थ-विस्तार हुआ है।

(4) अर्थ-प्रकार : भेदोपभेद की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ	20	17	4·0	3·3
अवच्छेदात्मक अर्थलोप	2	5	0·4	1·0
विशेष (अपर) से				
सामान्य (पर)	8	13	1·6	2·5
विभेदीकरण	34	10	6·7	2·0
भ्रान्त धारणा	6	10	1·2	2·0
साहचर्य	3	4	0·6	0·8
सादृश्य	25	10	4·9	2·0
स्थानान्तरण	72	35	14·1	6·9
अलंकार	19	12	3·7	2·3

0. हिन्दी— अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—स्थानान्तरण, विभेदीकरण, सादृश्य, अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ, अलंकार, विशेष (अपर) से सामान्य (पर), भ्रान्त धारणा, साहचर्य, अवच्छेदात्मक अर्थलोप।

0. नेपाली अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—स्थानान्तरण, अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ, विशेष (अपर) से सामान्य (पर), अलंकार, भ्रान्त धारणा, विभेदीकरण, सादृश्य, अवच्छेदात्मक अर्थलोप, साहचर्य।

0. —हिन्दी और नेपाली—दोनों में सर्वाधिक स्थानान्तरण हुआ है, लेकिन ने० की तुलना में हिन्दी के दूने शब्दों में यह घटित हुआ है। इसके बाद हि० में अर्थ-विस्तार का कारण क्रमश. विभेदीकरण और सादृश्य रहा है, पर ने० में अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ और विशेष (अपर) से सामान्य (पर)।

आ—अर्थ-संकोच

जब शब्दों का अर्थ किसी सामान्य अथवा विस्तृत अर्थ से सिमटकर विशिष्ट हो जाता है, तो उसे अर्थ-संकोच कहते हैं। इसे अंग्रेजी में Specialization, Narrowing Restriction और Contraction of Meaning आदि कहा गया है।

श्री श्यामसुन्दर दास ने अर्थ-संकोच पर विचार व्यक्त करते हुए लिखा है—"प्राय: जब शब्द उत्पन्न होते हैं, उनमें बड़ी शक्ति होती है, उनका अर्थ भी बड़ा सामान्य और व्यापक होता है, पर दुनियाँ के व्यापारों में पड़कर वे संकुचित हो जाते हैं।"[1]

1. भाषाविज्ञान, पृ० 205।

शब्द के अनेकार्थ में एकार्थता की स्थापना अथवा एक अर्थ का निश्चय करने के लिए संकोच आवश्यक होता है।

जब कोई शब्द आपस में किसी तरह मिलने-जुलने वाली अनेक वस्तुओं के लिए या अस्पष्ट या सामान्य तरह के विचारों के लिए समान रूप से व्यवहृत होता है, तब यह किसी क्षण इन वस्तुओं या विचारों में से किसी एक के लिए व्यवहृत होकर विशिष्ट हो सकता है। और यदि यह विशिष्ट प्रयोग भाषा में प्रचलित हो जाता है तो एक नया और विशिष्ट अर्थ उत्पन्न हो जाता है।[1] इसी नए अर्थ की उत्पत्ति को अर्थ-संकोच कहते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि सामान्य से विशिष्ट अर्थ में संकुचित हो जाना तभी अर्थ-संकोच कहलाता है जब उसे सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। केवल एक-दो व्यक्तियों के द्वारा ही ऐसा करने से वह अर्थ-संकोच नहीं कहलाता, क्योंकि अर्थ सदा एक सामाजिक स्वीकृति है। इसीलिए पतंजलि ने बताया है कि शब्दों का अर्थ लोक-प्रसिद्धि के आधार पर संकुचित हो जाता है और उस शब्द का विशेष स्थान पर ही प्रयोग हो सकता है, सर्वत्र नहीं।[2]

किसी भाषा के लिए उन सारे भावों को जिनको कोई वस्तु या पदार्थ हमारे मस्तिष्क में जागृत करते हैं, एक शब्द के माध्यम से अभिव्यक्त करना असम्भव है। इसलिए उन अनेक भावों में से किसी एक को चुनने के लिए भाषा बाध्य है।[3] अर्थ-संकोच की इस स्वाभाविक प्रक्रिया को और स्पष्ट करते हुए डॉ० शिवनाथ लिखते हैं—"जब किसी शब्द का अर्थ विभिन्न प्रसङ्गों में प्रचलित रहता है और कालान्तर में किसी एक अथवा कुछ प्रसङ्गों में व्यवहृत होने लगता है, तब अर्थ-संकोच का स्वरूप सम्मुख आता है।"[4]

यह अर्थ-संकोच कई प्रकार से घटित होता है। पतंजलि और भर्तृहरि का विचार है कि समास से अर्थ-संकोच या अर्थ का विशेषावस्थान हो जाता है। कहीं ये विशेषणों के संयोग से और कहीं लोक-प्रसिद्धि के कारण अर्थ-संकोच मानते हैं।

---

1. "When a word is equally applicable to a number of different subjects which resemble each other in some respects, or to a vague or general category of ideas it may at any moment become specialized by being used to name one of those subjects or to express one of those ideas, And if this particular application gains currency in the language, a new and specialized sense is the result."—J. B. Greenough & G. L. Kitteredge—Words and their Ways in English Speech. p. 248.

2. महाभाष्य, 2, 2, 20।

3. "It will be impossible for language to introduce into the word all the ideas which this entity or object awakens in the mind. Language is, therefore, compelled to choose."—Breal, M. Semantics, p. 172.

4. अर्थतत्व की भूमिका : पृ० 201-202।

नामकरण के मूल में अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति ही काम करती है। कुछ विशेषणों के लुप्त हो जाने से भी बहुधा अर्थ-संकोच होता है।[1] जब भी अर्थ की स्पष्टता दूर होकर साफ या परिभाषित हो जाती है, अर्थ-संकोच स्पष्ट हो जाता है।[2] इस तरह अर्थ-संकोच को घटित होने में अनेकानेक तत्व अपनी भूमिका अदा करते हैं।

भाषा-विकास में अर्थ-संकोच का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि प्रारम्भ में किसी भी भाषा के शब्द सामान्य रहे होंगे। ज्यों-ज्यों भाषा का विकास होता गया, उसमें अर्थ-संकोच होता गया। ब्रील ने तो यहाँ तक कहा है कि राष्ट्र या जाति जितना अधिक विकसित होगी, उसकी भाषा में अर्थ-संकोच के उदाहरण उतने ही अधिक होंगे।

इस तरह अर्थ-संकोच भाषा की एक स्वाभाविक प्रकृति है। अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच—दोनों एक ही शब्द में समय के विभिन्न स्तरों पर घटित हो सकते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में भी अर्थ-संकोच के पर्याप्त उदाहरण हैं। फिर भी, अर्थ-विस्तार और अर्थादेश की तुलना में उनकी संख्या कम है।

आ : क—अवच्छेदक : अर्थ-संकोच

गुणबोधक-विशेषण या क्रिया-विशेषण के संयोग से अर्थ में स्पष्टता आती है। पतंजलि और भर्तृहरि का विचार है कि विशेषणों के संयोग से अर्थ का संकोच हो जाता है और वह शब्द विशेष अर्थ का वाचक हो जाता है।

पहले शब्द सामान्य अर्थ को बताता है, लेकिन जैसे ही उसके साथ किसी विशेषण का प्रयोग करते हैं, उसका अर्थ पहले की अपेक्षा संकुचित हो जाता है। इससे एक लाभ यह होता है कि पहले की अपेक्षा अर्थ में स्पष्टता आ जाती है। विशेषण विशेष्य के अर्थ को एक तरह की निश्चितता प्रदान करता है।

तपनी (तद्० । सं० तपन:>हि० I, ने० I)

सं० 'तपन:' का अर्थ होता है—सूर्य, ताप, अकवन, सूर्यकान्त, मणि। सं० को० सु० पृ० 132।

हि० 'तपनी' का अर्थ—वह स्थान जहाँ बैठकर आग तापते हों, अर्थात् 'अलाव' होता है। लगता है कि सं० 'ताप' अर्थ के प्रभाव से हि० 'अलाव' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि 'अलाव' में भी ताप होता है या ताप के लिए ही अलाव का प्रयोग होता है। यथा, "ठंड है, जरा तपनी इधर ले आओ।"

विपरीत, ने० 'तपनी' का अर्थ होता है—'मन्द ज्वर' और 'हल्की आँच'। ने०हि०को० पृ० 130। ये दोनों अर्थ सं० 'ताप' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं,

---

1. "Specialization frequently results from omission of some adjective or other modifier."—J.B. Greenough & G.L. Kitteredge—Words and their Ways in English Speech, p. 252.

2. "When vagueness of meaning is materialized and defined, restriction is clear."—H. Bahri—Hindi Semantics, p. 203.

क्योंकि दोनों में ताप का भाव है। 'ज्वर' शरीर में अधिक ताप के होने को कहते हैं और 'आँच' में ताप होता ही है। फिर भी सं० का सामान्य ताप ने० में संकुचित होकर 'हल्की आँच' या 'मन्द ज्वर' हो गया है। शरीर के साथ 'तपनी' का प्रयोग होने पर 'मन्द ज्वर' अर्थ का बोध होगा और सामान्य रूप से हल्की आँच का। यथा, "दैहिक तपनीको कारणले म बिदामा छ।" (दैहिक (मन्द) ज्वर के कारण मैं छुट्टी में हूँ।) "तपनीमा खीर राम्रो हुन्छ।" (मन्द आँच में खीर अच्छी होती है।)

—(हि० अर्थादेश: समाहरण)

तले (तद्० । सं० तल>हि० II, ने० I)

सं० 'तल:' का अर्थ होता है—नीचे। एस-ई-डी-पी-232।

हि० 'तले' का अर्थ सं० के समान ही 'नीचे' होता है। यथा, "वह वृक्ष के तले सोया हैं।"

विपरीत, ने० 'तले' का अर्थ है—मंजिल। ने० हि० को० पृ० 132। चूँकि ऐसे मकान में, जिसमें अनेक मंजिल होते हैं, सारे एक-दूसरे के नीचे हुआ करते हैं। सम्भव है कि इसी भाव के कारण सं० 'नीचे' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। लेकिन 'तले' का यह अर्थ-परिवर्तन अकेले में नहीं होता। सामान्यतया जहाँ भी मंजिल का भाव होता है, वहाँ इसके कई स्तर होते हैं, जैसे कोई मकान दोमंजिला तो कोई तीनमंजिला या कोई बावनमंजिला होता है। जहाँ मकान के ऊपर कोई दूसरा मकान नहीं होता, वहाँ मंजिला का प्रयोग ही नहीं होता। इसलिए दुईतला, तीनतला आदि प्रयोगों में दुई, तीन जैसे संख्यावाचक विशेषण के जुटने से अवच्छेदक तत्त्व आ जाता है। वैसे सं० 'तले' का अर्थ सामान्यतः 'नीचे' है और ने० 'तले' का अर्थ केवल 'मकानों के नीचे'—अतएव अर्थ-संकोच स्पष्ट है। यथा "तल्लो तलामा एउटा ग्यारेज बनेको छ...।" (नीचे की मंजिल में एक गैरेज बना है...।) आ०र०क०। इ०ब०रा० पृ० 37।

लोक (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'लोक:' का अर्थ होता है—संसार, भुवन, जन, दृष्टि। सं० को० सु० पृ० 331।

हि० 'लोक' का अर्थ है—स्थान विशेष जिसका बोध प्राणी को हो, संसार, स्थान, निवास-स्थान, प्रदेश, दिशा, लोग, समाज, प्राणी, यश। इनमें प्रथम अर्थ का तात्पर्य 'संसार' से है, अतएव संस्कृतवत् है। 'स्थान, निवास-स्थान, प्रदेश'—ये तीनों अर्थ स्थानवाची हैं और 'संसार' भी स्थानवाची है—अतएव इनका विकास सं० 'संसार' अर्थ से हुआ होगा। फिर भी संसार का अर्थ पूरा विश्व है, लेकिन इन तीनों अर्थों में इसका एक अंश मात्र। अतएव अर्थ-संकोच स्पष्ट है। लोग, समाज, प्राणी—तीनों का सम्बन्ध सं० 'जन' से दीखता है, क्योंकि 'लोग' और 'प्राणी' का अर्थ 'जन' होता है और 'समाज' में 'जन' ही निवास करते हैं। 'दिशा' अर्थ सं० 'दृष्टि' अर्थ से आया होगा, क्योंकि जिसकी जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही दिशा चुनते हैं। हि० में 'लोक' के साथ 'पर' जुटने से 'परलोक' होता है और 'इह' जुटने से 'इहलोक'। तब इनका अर्थ स्वर्ग और पृथ्वी हो जाता है। लगता है इन विशेषणों के योग से अर्थ-परिवर्तन होता है।

ने० 'लोक' का अर्थ है— -जनता, संसार, तीन स्थान (जैसे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल)। एन-एन-ई-पी-1494। ने० में हिन्दी की तरह बहुत सारे अर्थ प्रचलित नहीं हैं और 'तीन स्थान' जैसा अर्थ नया है। सं० 'संसार' अर्थ यहाँ विभिन्न स्थानों का बोध कराने लगा है, क्योंकि संसार में भी स्थान का भाव है। यथा, "व्यवहारबाट हुने लोकको गाल अवगाल पनि उसैमाथि पर्छ।" (व्यवहार से होने वाले पार्थिव यश-अपयश भी उसी पर पड़ता है।) मा०घ०। बां० पृ० ख। —(हि० अर्थ-संकोच : अवच्छेदक)

आ : ख—प्रसारात्मक : अर्थ-संकोच

जब किसी धातु से निर्मित शब्द सीमित अर्थ वाची बन जाता है, तब उसी धातु से फिर नया शब्द गढ़ लिया जाता है। यह नया शब्द धीरे-धीरे फिर संकुचित अर्थ का बोध कराने लगता है और शब्द-निर्माण की यह प्रक्रिया बहुत दिनों तक चलती रहती है। नये निर्मित शब्दों में अर्थ-संकोच की यह प्रवृत्ति सामान्यतया देखी जा सकती है।

उस्ताद (वि०। फा०: हि० I, ने० II)

'उस्ताद' फारसी शब्द है जिसका अर्थ—शिक्षक या गुरु—होता है। अ०ता०उ० पृ० 29।

हिन्दी 'उस्ताद' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—गुरु, शिक्षक, मर्मज्ञ, जानकार, चालाक, छली, होशियार। स्पष्ट है कि 'गुरु' या 'शिक्षक' अर्थ फा० का ही है। चूँकि 'गुरु' विषयों के 'मर्मज्ञ' या 'जानकार' होते हैं, अतएव 'गुरु' से ही इन अर्थों का विकास हुआ होगा। इस तरह हिन्दी में प्रत्येक जानकार 'उस्ताद' हो गया, भले ही वह गुरु या शिक्षक का काम करता हो या नहीं। इस तरह 'उस्ताद' अर्थ का विस्तार हो गया। लेकिन 'चालाक', 'छली' और 'होशियार' अर्थों पर विचार करने के बाद ऐसा लगता है कि 'उस्ताद' का अर्थापकर्ष हो गया है। 'चालाक' या 'होशियार' अर्थ का भाव अच्छाई लिये हुए नहीं है, वरन् आज जैसा प्रयोग होता है, उससे स्पष्टत: अर्थापकर्ष की प्रवृत्ति झलकती है। यथा, "मैं तुम्हें बेवकूफ समझता था, पर तुम तो पूरा उस्ताद निकले।" सम्भव है कि पहले 'गुरु' लोग शिष्यों के साथ चालाकी बरतते हों और उन्हें छलते हों जिससे ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। गुरु द्रोण का किस्सा विख्यात है जिसने चालाकी से एकलव्य का अँगूठा कटवा लिया था और इस तरह उसे छला था। आज प्राय: नवयुवक लोग अपने समवयस्क की पीठ ठोंकते हुए कहते हैं—"कहो उस्ताद, क्या हालचाल है?" यहाँ 'उस्ताद' का अर्थ 'गुरु' नहीं है, वरन् गुरुत्व पर व्यंग्य है। इस तरह अर्थापकर्ष की प्रवृत्ति ही हिन्दी में मुख्य रूप से झलकती है।

विपरीत, ने० 'उस्ताद' का अर्थ होता है—गवैया, निपुण। ने०हि०को० पृ० 20। फा० या हि० में इसका सामान्य अर्थ 'गुरु' है, लेकिन नेपाली में 'गवैया' हो गया है। साधारणतया 'संगीत की शिक्षा' गवैया देते हैं, इसलिए वे गुरु भी हैं और गवैया भी। शायद इसीलिए ने० में मात्र 'संगीत में शिक्षा देने वाला गुरु' अर्थ (गवैया) हो गया है। चूँकि 'गुरु' लोग अपनी विद्या में निपुण होते हैं, सम्भवत: इसलिए 'गुरु' अर्थ से 'निपुण' अर्थ का विकास हुआ है। हिन्दी में गान-विद्या सिखाने वाले को भी उस्ताद कहा जाता है, पर यहाँ यह अर्थ मात्र इसी तक सीमित नहीं है। ने० ने 'गवैया' अर्थ का बोध कराने के लिए नया शब्द तो नहीं गढ़ा, वरन् पहले से आते हुए फा० 'उस्ताद'

के अर्थ को ही संकुचित कर दिया। यथा, "तिम्रो आवाज त मधुर छ, एउटा उस्ताद को जरूरी छ।" (तुम्हारी आवाज तो मधुर है, एक गवैये की जरूरत है।)

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

काल (तत्स०। सं० > हि० I, ने II)

सं० 'काल' का अर्थ होता है—अवसर, समय, यम, कृष्णवर्ण, शिव, कोकिल, लोहा। सं० को० सु० पृ० 88।

हि० 'काल' का अर्थ होता है—समय, अन्तिम समय, नाश का समय, मृत्यु, यमराज, अवसर, महँगी, अकाल और महाकाल। इनमें 'समय' अर्थ तो सं० का ही है और इसी से 'नाश का समय, अन्तिम समय, महँगी और अकाल' जैसे अर्थों का विकास हुआ लगता है। 'नाश का समय' और 'अन्तिम समय' में 'समय' का भाव स्पष्ट है, मात्र समय के प्रकार में भेद कर दिया गया है। अतएव विभेदीकरण का तत्व झलकता है। 'महँगी' और 'अकाल' में भी 'कठिन समय' या 'बुरे समय' का भाव है। अतएव यहाँ भी एक तरह का विभेदीकरण ही है। 'मृत्यु', 'यमराज' और 'महाकाल' सं० 'यम' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि तीनों का सम्बन्ध 'मृत्यु' से है और 'यम' का भी। यथा, "ऐसा लगता है कि उसका काल (नाश का समय) आ गया।"

विपरीत, ने० काल का अर्थ होता है—मृत्यु या यमराज। एन-एन-ई-पी-245। 'यमराज' अर्थ सं० का ही है और चूँकि वे मृत्यु के देवता हैं, अतएव इसी से 'मृत्यु' अर्थ का विकास हो गया है। सं० या हि० की तरह ने० में 'काल' के अनेकानेक अर्थ नहीं होते और ने० ने 'काल' शब्द से ही यमराज के अलावा—'मृत्यु' अर्थ भी विकसित कर लिया है, अतएव प्रसारात्मकता की प्रवृत्ति स्पष्ट है। यथा, "बा त कालले मरेको।" (पिताजी तो मौत से मरे।) क० सं०। गो० पृ० 20। "मरो भने काल आयेको छै न।" (मारने के लिए भी यमराज नहीं आया है।) ना०सं०को०शी०। र०बि० पृ० 5-6। "किन काल आउंदेन नि ऐले मलाई।" (क्यों अब तक मेरी मृत्यु नहीं होती।) उ०हु० अ०। वि०घि० पृ० 169।

—(हि० अर्थादेश : विभेदीकरण)

केलि (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'केलिः' का अर्थ होता है—क्रीड़ा, हँसी। सं० को० सु० पृ० 98।

हिन्दी 'केलि' का अर्थ है—हँसी, क्रीड़ा, रति, दिल-बहलाव, पृथ्वी। इनमें प्रारंभ के दो अर्थ सं० के ही हैं, शेष अर्थ नए हैं। चूँकि 'रति' भी बहुतों के लिए एक क्रीड़ा है और 'क्रीड़ा' में मनबहलाव होता ही है, अतएव 'रति' और 'मनबहलाव' अर्थ सं० 'क्रीड़ा' से विकसित लगते हैं। चूँकि 'क्रीड़ा' पृथ्वी पर ही की जाती है, सम्भवतः इसी भाव के कारण 'पृथ्वी' अर्थ आ गया है। यथा, "वह केलि-क्रीड़ा में लीन है।"

विपरीत, ने० 'केलि' का अर्थ है—खेल, आमोद-प्रमोद, हँसी-खेल। एन-एन-ई-पी-284। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० 'क्रीड़ा' अर्थ से विकसित हैं, क्योंकि 'आमोद-प्रमोद' भी एक तरह की क्रीड़ा ही है। सं० खेल (क्रीड़ा) अर्थ को ने० ने 'हँसी-खेल' करके संकुचित कर लिया है और 'केलि' से 'हँसी-खेल' अर्थ विकसित कर प्रसारात्मक प्रवृत्ति को दर्शाया है। यथा, "कहिले दुगुर्दै बालुवामा पुग्थी र त्यहींबाट केलिकम्पित स्वरले बोलाउंथी—सोमदत्त, आउन, सोम।" (कभी दौड़ती हुई बालू में पहुँचती और

वहीं से हँसी-खेल से उत्तेजित स्वर में बुलाती—सोमदत्त, आओ न सोम !) सु० । बी० पी० को० पृ० 29 । —(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

ख्याल (वि० । अ० > हि० I, ने० I)

अ० 'ख्याल' का अर्थ होता है—कल्पना, मानसिक प्रत्यक्ष, प्रत्यय, ध्यान, चिन्ता, चिन्तन राय, संकल्प, आदर, भ्रम । उ० हि० डि० पृ० 229 ।

हि० 'ख्याल' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—स्मरण, ध्यान, मनोवृत्ति । इनमें 'स्मरण' और 'ध्यान' एक ही अर्थ का बोध कराते हैं और स्पष्टत: अ० 'ध्यान' से आये हैं । 'मनोवृत्ति' अर्थ अ० 'राय' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि जिनकी मनोवृत्ति जैसी होती है, वे वैसी ही राय देते हैं । यथा, "अच्छा, आज जाना कि आपका ख्याल (मनोवृत्ति) ऐसा है ।"

विपरीत, ने० 'ख्याल' का अर्थ है—हँसी-मजाक, खेल, ठट्ठा, विचार, विवेक । एन-एन-ई-पी-365 । इनमें 'हँसी-मजाक', 'खेल' या 'ठट्ठा' अर्थ सम्भवत: अ० 'भ्रम' अर्थ से आये हों, क्योंकि भ्रम में पड़ना हँसी-मजाक का कारण होता है और भ्रम में किसी को डालना एक अच्छा 'खेल' या 'ठट्ठा' होता है । 'विचार' या 'विवेक' अर्थ अ० 'राय' अर्थ से आया होगा, क्योंकि 'राय' और 'विचार' समानार्थी हैं और कोई अपने विवेक के अनुसार ही 'राय' देता है । हाँ, 'भ्रम' का जो विशाल दायरा है, उसे मात्र 'हँसी-मजाक' या 'खेल' में सीमित कर दिया गया है जिससे अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है । 'भ्रम' से मजाक का सृजन होता है और दु:ख का भी । लेकिन ने० ने 'दु:ख' अर्थ को ग्रहण नहीं किया । कहा जाता है कि एक बार दुर्योधन, दु:शासन आदि को स्थल में जल का और जल में स्थल का भ्रम हो गया । यह द्रौपदी के लिए अच्छा मजाक था, एक खेल था, पर इससे दुर्योधनादि को जो दु:ख हुआ, उसी की वजह से बाद में महाभारत का युद्ध हुआ । इस तरह 'भ्रम' का दायरा केवल हँसी तक ही सीमित नहीं है, पर ने० ने 'हँसी-मजाक' या 'ठट्ठा' अर्थ ही ग्रहण किया । 'ख्याल' से ही इन अर्थों का विकास कर लेना प्रमाणजनक है । यथा, "तपाईं माथि भात पकाइ रहनु हुन्थ्यो, अनि के ख्यालठट्ठा गरेको देख्नुहोला ?—शिवनारायण भने ।" (आप ऊपर भात पका रही थीं, फिर किसने हँसी-मजाक करते हुए देखा था ?—शिवनारायण बोला ।) ए०चि० । ह्व० चि० प्र० पृ० 94 । 'आमाले ख्याल-ठट्ठा को भावमा विषादपूर्ण हाँसो हाँसे र भनी—लाल, म मरे के गर्छस ?" '(माँ मजाक के भाव में विषादपूर्ण हँसी हँसी और बोली—लाल, मैं मर जाउँ तो क्या करोगे ?) क० स० । गो० पृ० 4 । "ख्याल ख्यालमा स्याल पल्टाई यसले ।" (मजाक-मजाक में उसने सियार मार दिया ।) सो० र० ज० । के० नु० पो० पृ० 34 ।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

ख्याली (वि० । अ० ख्याल > हि० I, ने० I)

अरबी 'ख्याल' का अर्थ होता है—कल्पना, प्रत्यय, ध्यान, चिन्ता, चिन्तन, राय, संकल्प, आदर, लिहाज, भ्रम । उ० हि० डि० पृ० 229 । इसी 'ख्याल' में 'ई' प्रत्यय जोड़कर हि० एवं ने० 'ख्याली' शब्द बनाया गया है ।

हि० 'ख्याली' का अर्थ होता है—कल्पित, फर्जी । अ० 'कल्पना' से इस अर्थ का विकास हुआ है—यह स्पष्ट है । जिस तरह 'ख्याल' से 'ख्याली' शब्द बना, उसी तरह

'कल्पना' से 'काल्पनिक' अर्थ का विकास हो गया है। श्री श्यामसुन्दर दास लिखते हैं, "मनुष्य अनुकरणप्रिय होता है। यदि उसे शब्द बनाना पड़ता है तो वह किसी एक चलते शब्द के अनुकरण पर नया शब्द गढ़ लेता है।" इसे उन्होंने 'उपमान का नियम' कहा है। ऐसा लगता है कि जिस तरह निज से निजी, अरब से अरबी, नेपाल से नेपाली शब्द बना है, उसी तरह 'ख्याल' से 'ख्याली' शब्द बना लिया गया है। यथा, "तुम्हारा ख्याली महल चन्द दिनों में ढ़ह जायगा।"

विपरीत, ने० 'ख्याली' का अर्थ है—'मजाकिया'। ने०हि०को० पृ० 57। जिस तरह हि० ने 'ख्याल' से 'ख्याली' शब्द बना लिया, उसी तरह ने० ने भी। हि० में 'कल्पना' से 'कल्पित' अर्थ का विकास हुआ और ने० 'मजाक' अर्थ से 'मजाकिया' का। अ० 'भ्रम' अर्थ से ही इसका विकास उसी तरह हुआ होगा जिस तरह 'मजाक' अर्थ का। यथा, "यो कस्तो ख्याली मान्छी छ?" (यह कैसा मजाकिया आदमी है।) स्पष्ट है कि नया प्रत्यय जोड़कर नया शब्द बनाया गया है जो 'भ्रम' के दायरे से सीमित अर्थ का बोधक है। —(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

टंटा (दे०। हि० ा, ने० ा)

'टंटा' शब्द टन-टन ध्वनि से बना एक अनुकरणबोधक शब्द है। किसी धातु की चीज को ठोकर मारने से इस तरह की ध्वनि निकलती है।

हि० 'टंटा' का अर्थ होता है—लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया, आडंबर, खटराग, उपद्रव झगड़ा। 'उपद्रव' और 'झगड़ा' में संघर्ष या मारने का भाव है और 'टन-टन' ध्वनि भी ठोकर मारने से उत्पन्न होती है, सम्भवतः इसी भाव के कारण ये अर्थ आये हैं। लम्बी-चौड़ी प्रक्रिया, आडंबर, खटराग सारे समानार्थी हैं जिनमें व्यर्थ की प्रक्रिया का भाव है। ऐसा लगता है कि बहुत सारे कामों की शुरुआत घंटी की टन-टन ध्वनि से होती है जो अपने में एक व्यर्थ का झमेला या आडम्बर है। बहुत सारे लोग घण्टी बजाकर पूजा करने को भी आडंबर ही मानते हैं। सम्भव है, इसी भाव के कारण इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "अब यह सब टंटा (आडंबर) हटाइये, जल्दी काम समाप्त कीजिये।"

विपरीत, ने० 'टंटा' का अर्थ होता है—व्यर्थ का काम, झमेला। एन-एन-ई-पी-700। हि० अर्थों में जहाँ प्रक्रिया के लम्बे होने या दिखावे का भाव है, वहाँ ने० अर्थ में व्यर्थता का। 'टन-टन' ध्वनि से नए अर्थ का बोध कराने के लिए 'टंटा' शब्द का गढ़ लिया जाना स्पष्टतः प्रसारात्मक प्रवृत्ति है। 'टन-टन' ध्वनि का क्षेत्र व्यापक है, लेकिन 'टंटा' का क्षेत्र सीमित, क्योंकि जहाँ ऐसे कामों की व्यर्थता का भाव होगा, वहीं 'टंटा' का व्यवहार होगा। घण्टी की 'टन-टन' ध्वनि करने के बाद पूजा का या वर्ग का प्रारम्भ करना, बहुतों की नजर में एक व्यर्थ का काम है या झमेला है। सम्भव है, इसी भाव के कारण अर्थ इस प्रकार संकुचित हो गया हो। दूसरी सम्भावना यह भी हो सकती है कि कुछ लोगों की मानसिक शान्ति को 'टन-टन' ध्वनि भंग करती है, इसलिए इसे वे व्यर्थ का काम या झमेला मानते हैं। सम्भव है इस भाव के कारण ही ऐसा अर्थ-विकास हुआ हो। यथा, "कोही खायल थाप्ने टंटा मा थिए।" (कोई जमीन का टुकड़ा हासिल करने के झमेले में था) क० सं०। गों० पृ० 2। —(हि० अर्थ-संकोच : प्रसारात्मक)

ठेकी (तद्०। प्रा० टेक्कर > हि० टेक > हि० ा ने० ा)

प्राकृत 'टेक्कर' से हिन्दी 'टेक' बना है और इसी 'टेक' से हि० 'ठेकी' का विकास

हुआ है। ने० 'ठेकी' का विकास भी इसी 'टेक्कर' से हुआ जान पड़ता है। प्रा० 'टेक्कर' का अर्थ होता है—स्थल। सं० हि० श० पृ० 395।

हि० 'ठेकी' का अर्थ होता है—सहारा, टेक। वह स्थल जिससे सहारा मिले, ठेकी कहलाता है। इससे ऐसा लगता है कि प्रा० 'स्थल' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "वह बिना किसी ठेकी के खड़ा नहीं रह सकता।"

विपरीत, ने० 'ठेकी' का अर्थ होता है—घी, तेल, दूध आदि रखने का लकड़ी का बरतन। ने० हि० को० पृ० 118। जिस बरतन में घी, तेल, दूध आदि रखा जाता है, वही उसका रक्षास्थल हुआ। सम्भवतः इसी भाव के कारण प्रा० 'स्थल' अर्थ से ने० के इस अर्थ का विकास हुआ होगा। चूँकि प्रा० का 'स्थल' अर्थ यहाँ केवल घी, दूध आदि जहाँ (जिस बरतन में) रहता है, उस स्थल का वाची हो गया है, अतएव अर्थ-संकोच स्पष्ट है। यथा, "ठेकीमा एक-दुई मूठी तुर्काउदे गर्दा दुई-चार दिन बिराएर निक्लेको चोखेनले आना-सुकीपैसा होइहाल्छ।" (घी, तेल आदि रखने की लकड़ी के बरतन में एक-दो मुट्ठी भर मलाई रखने से दो-चार दिन बाद निकलने वाले घी से आना-चार आना पैसा हो जाता है।) ब०। ली० ब० क्ष० पृ० 2। —(हि० अर्थादेश : अमूर्तीकरण)

तत्व (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तत्व' का अर्थ होता है—सत्यरूप, निष्कर्ष, ब्रह्मत्व, मन, वस्तु। सं० को० सृ० पृ० 131।

हि० 'तत्व' का प्रयोग—यथार्थता, जगत् का मूलकारण, परमात्मा, सारांश, रहस्य आदि अर्थों में होता है। 'सत्यरूप' को ही दूसरे शब्द में 'यथार्थता' कहते हैं, अतएव दोनों एक ही हैं। जगत् का मूलकारण परमात्मा ही है, अतएव सं० 'ब्रह्मत्व' से इन अर्थों का सीधा सम्बन्ध है। 'सारांश' ही निष्कर्ष रूप में कहा जाता है, अतएव सं० 'निष्कर्ष' से 'सारांश' का विकास हुआ होगा। वैसे, 'सारांश' और 'निष्कर्ष' में कोई तात्विक भेद नहीं है। 'रहस्य' अर्थ सं० 'मन' से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि रहस्य का जन्मदाता और ज्ञाता मन ही होता है। यथा, "अरे तुम क्या समझोगे, इसमें कोई तत्व (रहस्य) है।"

ने० 'तत्व' का अर्थ है—सारवस्तु, पंचमहाभूत। एन-एन-ई-पी-759। सं० 'सत्यरूप' अर्थ से ने० 'सारवस्तु' और 'पंचमहाभूत' अर्थों का विकास हुआ मालूम पड़ता है, क्योंकि 'सारवस्तु' ही किसी पदार्थ का 'सत्यरूप' या असली रूप होता है और शरीर के लिए ये पंचमहाभूत ही सत्यरूप हैं जिनसे इसका निर्माण होता है। 'सत्यरूप' को केवल 'पंचमहाभूत' में सीमित कर देना अर्थ-संकोच है, क्योंकि केवल ये ही सत्यरूपयुक्त नहीं होते। यथा, "यदि एक अर्काको सम्पत्ति या तत्व भइसकेर पनि कुनै किसिमको प्रेम-गर्छभने लोग्नेमान्छे लुटाहा व डाकू ठहरी संसारको सौन्दर्य विनाशगरी सुख शान्तिको हत्या गर्ने अपराधी ठहरिन्छ…।" (यदि कोई दूसरे की सम्पत्ति या सारवस्तु होकर भी किसी तरह का प्रेम करता है तो पुरुष लुटेरा या डाकू बनकर संसार के सौन्दर्य का विनाश करके सुख-शान्ति की हत्या करने का अपराधी ठहरता है…।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 167। —(हि० अर्थ-संकोच : अवच्छेदक)

दंगल (वि०। फा०>हि० I, ने० II)

फा० 'दंगल' का अर्थ होता है—अखाड़ा, भीड़, जमाव। उ० हि०डि०पृ० 253।

हि० 'दंगल' का अर्थ है—अखाड़ा, पहलवानों की कुश्ती जो जोड़ बदकर हो और जिसमें जीतने वाले को इनाम मिले, समूह, प्रतिद्वन्द्विता। इनमें प्रथम और तृतीय अर्थ तो फा० के ही हैं। 'पहलवानों की कुश्ती जो जोड़ बदकर हो और जिसमें जीतने वाले को इनाम मिले'—अर्थ पर फा० 'अखाड़ा' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि ऐसी कुश्ती अखाड़े में ही होती है। अखाड़ा में पहलवान कुश्ती लड़ते हैं और उनमें प्रतिद्वन्द्विता होती है, शायद इसी से फा० 'अखाड़ा' से ही 'प्रतिद्वन्द्विता' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "आज दो नामी पहलवानों का दंगल होने वाला है।"

ने० 'दंगल' का अर्थ है—भीड़, जनसमुदाय। ने० हि० को० पृ० 144। स्पष्ट है कि सं० के कुछ अर्थों का परित्याग करके ने० ने मात्र 'भीड़' अर्थ को ग्रहण किया है और इस तरह अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति को दिखाया है। 'जनसमुदाय' का वास्तविक अर्थ 'भीड़' नहीं होता, क्योंकि भीड़ तो जानवरों की भी हो सकती है। फिर भी, बहुत लोगों के एक जगह एकत्रित होने के कारण फा० 'भीड़' अर्थ से ही इसका विकास हुआ है। सामान्य 'भीड़' को मात्र 'जनसमुदाय' के अर्थ में सीमित कर देने से भी अर्थ संकोच हुआ है। एक ही 'दंगल' शब्द से 'जनसमुदाय' अर्थ भी ग्रहण करना प्रसारात्मक प्रवृत्ति को बताता है। यथा, "त्यहाँ त्यस्तो दंगल छ, कुनै मान्छीलाई खोज्नु सजिलो छैन।" (वहाँ ऐसी भीड़ है कि किसी आदमी को खोजना आसान नहीं है।) — (हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

ध्यान (तत्स०। सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'ध्यान' का अर्थ होता है—चिन्ता, चित्त की स्थिरता, चिन्तन, परिकल्पना, विचार, कठिन चिन्तन, अपार्थिव प्रवृत्ति। सं० को० मृ० पृ० 153। एम-ई-डी-पी-276।

हि० 'ध्यान' का अर्थ है—मानसिक प्रत्यक्ष, अन्तःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, सोच-विचार; चिन्तन, भावना, ख्याल, चित्त, मन, याद। सं० 'चिन्तन' अर्थ के प्रभाव से मानसिक प्रत्यक्ष, अन्तःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव, सोच-विचार, भावना, ख्याल—अर्थ आये लगते हैं, क्योंकि सब में विचार करने या विचार निश्चित करने का भाव है। 'चित्त' या 'मन' सं० 'चित्त की स्थिरता' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में 'चित्त' है। हिन्दी ने 'स्थिरता' के भाव का परित्याग करके मात्र 'चित्त' या 'मन' अर्थ को ग्रहण किया है। यथा, "वह ध्यान लगाये बैठा था।"

विपरीत, ने० 'ध्यान' का मुख्यतः प्रयोग 'याद' अर्थ में होता है; वैसे, तल्लीन होना, एकाग्रचित्त होना—अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-912। इनमें 'याद' अर्थ सं० 'विचार' अर्थ से आया होगा, क्योंकि विचारने के क्रम में ही किसी बात की याद आती है। 'तल्लीन होना', या 'एकाग्रचित्त होना' अर्थ सं० 'चिन्तन' अर्थ से आया होगा, क्योंकि चिन्तन में भी लोग तल्लीन या एकाग्रचित्त हो जाते हैं। सं० के अनेकानेक अर्थों का परित्याग करके ने० ने अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति दिखाई है। साथ ही, 'विचार' के अन्तर्गत भूत, वर्तमान, भविष्य सभी कालों का समावेश होता है, पर ने० ने 'याद' अर्थ विकसित कर लिया है जिसका अधिक सम्बन्ध भूतकाल से है, थोड़ा बहुत वर्तमान काल से, लेकिन भविष्यकाल से इसका जरा भी सम्बन्ध नहीं है। इस तरह यह 'याद' विचार के अर्थ से सीमित अर्थ का बोध कराता है। इसी तरह 'चिन्तन' और 'तल्लीन होना' में भी मौलिक अन्तर यह है कि चिन्तन मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत पार्थिव अपार्थिव सभी तरह की बातें आ जाती हैं लेकिन तल्लीन तो किसी भौतिक काम में भी हुआ जाता

है। सच माने में, 'चिन्तन' में जो अपार्थिवता का भाव है, वह विचारों में तल्लीन रहने के बावजूद 'तल्लीन होना' में नहीं आता। इस तरह, तल्लीन का सम्बन्ध मात्र पार्थिव विचारों या वस्तुओं से होने के कारण इसका क्षेत्र सीमित हो गया है। यथा, "त के पहिले एक चोटि पनि गौरीको ध्यान आएन तिमीलाई ?" (तो क्या पहले एक बार भी गौरी की याद तुम्हें न आई ?) ने० दा०। वि० प्र० को० पृ० 71।

हिन्दी 'ध्यान' का ठीक अर्थ 'याद' न होकर 'याददाश्त' या 'स्मरण' होता है। यथा, "बात ध्यान (स्मरण या याददाश्त) से उतर गई।" ने० ने 'याद' अर्थ को इसी रूप में ग्रहण कर अर्थ-भिन्नता दिखाई है। —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

पोटी (तद्० । सं० पुट > हि० I, ने० I)

सं० 'पुट' का अर्थ होता है—छीमी, तह, परत, अंजुली, दोना, खोल, पलक, घोड़े की टाप, चौखट, जायफल। सं० को० सु० पृ० 186।

हि० 'पोटी' का अर्थ होता है—कलेजा। ऐसा लगता है कि 'कलेजा' और 'अंजुलि' की आकृति समान होने के कारण सं० 'अंजुलि' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "तुम्हें विश्वास नहीं होता, अब मैं कैसे अपनी पोटी निकालकर दिखाऊँ।"

विपरीत, नेपाली 'पोटी' का प्रयोग 'लहसुन या प्याज की गाँठों' के लिये होता है। ने० श० पृ० 668। सं० 'तह' या 'परत' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि लहसुन या प्याज की गाँठों में कई परत होती हैं। वैसे, परतवाली चीजें बहुत हैं पर मात्र 'लहसुन और प्याज की गाँठें' अर्थ लेकर ने० ने अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "पसलगई दुइटा लसुनको पोटी लिएर छिटै आ।" (दूकान जाकर दो लहसुन की गाँठ लेकर जल्दी आओ।) —(हि० अर्थादेश . सादृश्यमूलक)

प्राकृत (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'प्राकृत' का अर्थ होता है—प्रकृति का या तत्सम्बन्धी, स्वाभाविक, मामूली, मूर्ख। सं० 'प्राकृतम्' का अर्थ है—भारत की एक प्राचीन भाषा। सं० को० सु० पृ० 220।

हि० 'प्रकृत' का अर्थ है—प्रकृति से उत्पन्न या प्रकृति-सम्बन्धी, स्वाभाविक, सहज, असंस्कृत, बोलचाल की प्राचीन भाषा। इनमें 'सहज' और 'असंस्कृत' अर्थ नए हैं। ये अर्थ संस्कृत 'प्रकृति-सम्बन्धी' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि प्रकृति में बनावटीपन नहीं है, उसमें सहजता रहती है। प्रकृति सुसंस्कृत होना भी नहीं जानती। शायद, यही कारण है कि जो असहज और सभ्य है, उसे अप्राकृतिक माना जाता है। सभ्यता और बनावटीपन की दौड़ में बहुत आगे बढ़ जाने के बाद प्रकृति की ओर वापस लौटने का भाव आया है। यथा, "उसका प्राकृत रूप (सहज रूप) सबको भाता है।" "आज भी बहुत सारे लोग प्राकृत (असंस्कृत) जीवन जी रहे हैं।"

विपरीत, ने० 'प्राकृत' का एकमात्र अर्थ है—एक तरह की लोकभाषा। एन-एन-ई-पी-1100। अन्य अर्थों का परित्याग करके मात्र एक ही अर्थ को ग्रहण करना अर्थ-संकोच है। यह अर्थ 'भारत की एक प्राचीन भाषा' अर्थ से ग्रहण किया गया है,

क्योंकि वही एक समय बोलचाल की लोकभाषा थी। यथा, "कलेजको पुस्तकालयमा प्राकृतको कुनैपनि रचना छैन।" (कालेज के पुस्तकालय में प्राकृत की कोई भी रचना नहीं है।)

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

प्राण (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'प्राणः' का अर्थ होता है—साँस, जान, हवा, ताकत, बहुत प्यारा व्यक्ति। सं० को० सु० पृ० 221।

हि० 'प्राण' का अर्थ—हवा, जान, जीवन, शरीर की वह वायु जिससे मनुष्य जीवित रहता है, साँस और शक्ति होता है। सं० 'जान' से हि० 'जीवन' अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि जब तक जान है, तभी तक जीवन है। शेष अर्थ संस्कृतवत् ही हैं। यथा, "वहाँ जाने में उसके प्राण (जीवन) को संकट है।"

विपरीत, ने० 'प्राण' का अर्थ 'हवा' नहीं होता, वरन् जीवन, जान, शक्ति और आत्मा होता है। एन-एन-ई-पी-1101। हिन्दी में यह 'आत्मा' अर्थ नहीं है जो सं० 'जान' अर्थ से विकसित लगता है। धारणा है कि आदमी तभी तक जानयुक्त रहता है जब तक आत्मा शरीर में रहती है, आत्माविहीन शरीर निर्जीव हो जाता है। इसी भाव से 'आत्मा' अर्थ आया होगा। 'जान' का क्षेत्र व्यापक है, क्योंकि आत्मायुक्त होकर भी आदमी बेजान माना जा सकता है। तात्पर्य यह कि 'जान' का प्रयोग स्थूल और सूक्ष्म दोनों अर्थों में होता है, पर 'आत्मा' का अर्थ मात्र सूक्ष्म अर्थ में होता है। यथा, "सांझको प्राणले दिशा व्याप्त थियो।" (शाम की आत्मा दिशाओं में व्याप्त थी।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

बरबर (दे०। अनु०>हि०, I, ने० I)

'बरबर' हिन्दी और ने० दोनों का एक अनुकरणबोधक शब्द है। लगातार हल्की लेकिन कर्णकटु ध्वनि से 'बर' का बोध होता है। 'बरबर' इसी ध्वनि के बार-बार होने का भाव प्रकट करता है। किसी के बड़बड़ाने से या लगातार अन्न-फल आदि के गिरने से ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है।

हि० 'बरबर' का प्रयोग—बकबक करने के अर्थ में होता है। स्पष्ट है कि लगातार बड़बड़ाने से ऐसी ध्वनि का बोध होता है जिससे इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा "वह बिना मतलब एक घंटे से बरबर कर रहा है।"

विपरीत, ने० 'बरबर' का प्रयोग 'फल' या अन्न के 'गिरने' के अर्थ में होता है। लगता है, इसी गिरने के भाव के कारण बाद में 'लगातार आँसु गिरने' के अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा। एन-एन-ई-पी-1160। यथा, "बिरामीको आंखाको आंसु गालामा बरबर वर्षन लाग्यो।" (बीमार व्यक्ति की आँख से आँसू गाल पर लगातार बरसने लगे।) क० सं०। गो० पृ० 45। 'बरबर' से बना शब्द 'बर्बरी' का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता है। यथा, "बर्बरी उनका आंखाबाट आंसुका धार बगे।" (लगातार उनकी आँख से आँसू की धारा बहने लगी।) सो० र० ज०। के० नृ० पो० पृ० 202।

'बरबर' ध्वनि किसी भी छोटे पदार्थ के लगातार गिरने से उत्पन्न होती है, पर ने० ने मात्र आँसुओं के गिरने जैसा या फल व अन्न के गिरने जैसा अर्थ ग्रहण कर अर्थ-संकोच कर दिया है।

मैन (तद् । सं० मदन > हि० II, ने० I)

सं० 'मदनः' का अर्थ होता है—कामदेव, वासनाजनित प्रेम, धतूरा, वसन्त ऋतु, एक प्रकार का आलिंगन, मोम, मधुमक्खी, भौंरा । सं० को० सु० पृ० 269 ।

हि० 'मैन' का प्रयोग 'कामदेव' और 'मोम' के अर्थ में होता है । स्पष्ट है कि ये दोनों अर्थ सं० के ही हैं । सं० के अनेक अर्थों का परित्याग करके हिन्दी ने अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति का परिचय दिया है । यथा, "मैन-शर से शिव बिद्ध हो गये ।"

विपरीत ने० 'मैन' का मात्र एक ही अर्थ है—'मोम' । एन-एन-ई-पी-1376 । यह अर्थ भी सं० का ही है, लेकिन सं० के अनेक अर्थों को अस्वीकार कर ने० ने अर्थ-संकोच का परिचय दिया है । यथा, "तिम्रो घरमा मैनको बत्ती जलि रहेको थियो ।" (तुम्हारे घर में मोम की रोशनी प्रज्ज्वलित थी ।)

—(हि० अर्थ-संकोच : प्रसारात्मक)

म्लेच्छ (तत्स० । सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'म्लेच्छः' का अर्थ होता है—गोमांस खानेवाला आदमी, अनार्य, वह जो हिन्दू नहीं है या संस्कृत नहीं जानता है, असभ्य (सामान्य रूप से), विदेशी । सं० को० सु० पृ० 298 । एस-ई-डी-पी-450 ।

हि० 'म्लेच्छ' का अर्थ सं० से भिन्न हो गया है । इसमें इसका अर्थ होता है—मनुष्यों की वे जातियाँ जिनमें धर्म न हो, नीच, पापरत, पापी । जो हिन्दू नहीं है, वह धर्मरहित है—सम्भवतः इसी भाव के कारण हिन्दी ने ऐसा अर्थ ग्रहण किया है । जो धर्म से दूर है, वह नीच और पापी है । इसलिए 'नीच' और 'पापी' जैसे अर्थ आये लगते हैं । भारतवर्ष में मुसलमानों को मुख्य रूप से म्लेच्छ कहा जाता है, क्योंकि वे गोमांस खाते हैं और चूँकि भूतकाल में उन लोगों ने कई बार भारत को रौंदा, यहाँ मारकाट की, मन्दिर गिराये, अतएव उन्हें पापी और नीच समझा जाने लगा । अतएव, हिन्दी के इस अर्थ-विकास के पीछे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि महत्त्वपूर्ण है । यथा, "भारत पर सैकड़ों वर्षों तक म्लेच्छों का शासन रहा ।"

ने० में 'म्लेच्छ' का अर्थ है—विदेशी, असभ्य और जो हिन्दू नहीं है । डी-एन-एल-पृ० 521 (टर्नर) । स्पष्ट है कि नेपाली ने सं० के ही कुछ अर्थों को सीधे ग्रहण किया है । इनमें 'विदेशी' अर्थ के पीछे एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी है । भारत की तरह नेपाल कभी मुसलमानों के द्वारा रौंदा नहीं गया, वहाँ कभी मुसलमानों ने राज्य स्थापित नहीं किया जिस वजह से वे सदा विदेशी बने रह गये । अत्याचार नहीं करने के कारण वे 'पापी' और 'नीच' भी नहीं माने गये । वैसे, नेपाल एक हिन्दू राष्ट्र है जहाँ गोवध अवैध है । अतएव, गोमांस खानेवाला अहिन्दू और विदेशी ही हो सकता है । संस्कृत के अन्य अर्थों का परित्याग करके ने० ने अर्थ-संकोच का स्पष्ट परिचय दिया है । यथा, "नेपालमा पनि धेरै म्लेच्छहरू बास गर्दछन् ।" (नेपाल में भी बहुत विदेशी निवास करते हैं ।)

(—हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

सगर (तत्स० । स०>हि० I, ने० II)

सं० 'सगर' का अर्थ है—विषाक्त, एक सूर्यवंशी राजा । सं० को० मु० पृ० 515 । एस-ई-डी-पी-575 ।

हि० में 'सगर' का अर्थ है मात्र 'सूर्यवंशी राजा जिनके साठ हजार पुत्र थे' । यह अर्थ सं० का ही है—यह स्पष्ट है । यथा, "सगर के सारे पुत्र अभिशाप से जल मरे ।"

ने० 'सगर' का अर्थ है—विषाक्त, एक सूर्यवंशी राजा । एन-एन-ई-पी—1640 । इस तरह ने० ने सं० के दोनों अर्थों को ग्रहण किया है जिससे इसमें किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "सगर भोजन गरेर बाच्न असंभव छ ।" (विषाक्त भोजन करके बचना असंभव है ।)

वैसे, नेपाली 'सगर' का अर्थ 'आकाश' और 'स्वर्ग' भी होता है, पर यह 'सगर' सं० 'स्वर्ग' से विकसित हुआ है, 'सगर' से नहीं । हिन्दी ने सं० के दो अर्थों में से मात्र एक ही अर्थ को ग्रहण करके अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति दिखाई है ।

(—हि० अर्थ-संकोच : परिमाणात्मक)

आ : ग—व्याकरणात्मक : अर्थ-संकोच

शब्द अनेक व्याकरणिक कारणों के कारण सीमित अर्थ के वाची हो जाते हैं । हरदेव बाहरी की धारणा है कि किसी भी पद का अर्थ वाक्य में उसके काम पर निर्भर करता है । शब्द अपना अर्थ कर्तृवाच्य या कर्मवाच्य, पुल्लिंग या स्त्रीलिंग, एकवचन या बहुवचन आदि के रूप में व्यवहृत होने पर बदलता रहता है ।[1] डॉ० शिवनाथ ने माना है कि उपसर्ग और प्रत्यय लगने से अर्थ-परिवर्तन होता है । लिंग-परिवर्तन से भी अर्थ-परिवर्तन होता है । तत्सम शब्द के तद्भव हो जाने के कारण भी अर्थ-परिवर्तन होता है ।[2] यह अर्थ-परिवर्तन मुख्यतया अर्थ-संकोच के रूप में दिखाई पड़ता है ।

इस तरह शब्द-भेदों का विशिष्टीकरण, समास, उपसर्ग, प्रत्यय, वचन, लिंग आदि के कारण अर्थ-संकोच का रूप उभरता है ।

कालरात्रि (तत्० । सं०>हि० II, ने II)

यह सं० का तत्सम शब्द है । सं० में 'कालरात्रि' का अर्थ होता है—प्रलयकाल की रात । सं०को०मु० पृ० 88 ।

हि० में सं० का यह अर्थ अब भी सुरक्षित है । इस अर्थ के अलावा 'अँधेरी या भयावनी रात' अथवा 'दिवाली की रात' अर्थ भी प्रयुक्त होता है । अँधेरी या भयावनी

---

1. "The meaning of a term depends upon its function in the sentence. Words change their signification according to their use as active or passive, as masculine or faminine, as singular or plural and so on."—Hindi Semantics, p. 194.

2. अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 173 ।

रात मन में प्रलय जैसी भयंकरता भर देती है और दिवाली की अमावस्या एक ऐसी ही अँधेरी रात होती है। संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'प्रलयकाल की रात' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "चारों ओर कालरात्रि की भयंकरता एवं नीरवता व्याप्त थी।"

विपरीत, ने० 'कालरात्रि' का अर्थ है—महाष्टमी की रात। ने० हि० को० पृ० 35। ऐसा लगता है कि ने० ने कालरात्रि का 'काल की रात्रि' में विग्रह करके यह अर्थ निकाला है। महाष्टमी की रात्रि को काल अर्थात् यमराज की पूजा की जाती है, संभवतः इसी से उसे यमराज की रात मानकर 'महाष्टमी की रात' अर्थ निकाला गया है। प्रलय भी यमराज की ही कृपा है, अतएव सं० ने 'प्रलय काल की रात' अर्थ लिया है। प्रलयकाल की रात कोई भी हो सकती है, पर ने० ने उसे मात्र 'महाष्टमी की रात' में बदलकर अर्थ-संकोच कर दिया है। चूँकि ऐसा अर्थ सामासिक विग्रह से ग्रहण किया गया है, अतएव ऐसा अर्थ-संकोच व्याकरणात्मक माना जाना चाहिए।

—(हि० अर्थ-विस्तार : भाव-सादृश्य)

जोखना (तद्० । सं० √जुष् > हि० I, ने० I)

सं० 'जुष्' धातु से 'जोखना' शब्द का विकास हुआ है। सं० 'जुष्' का अर्थ होता है—जाँचना, प्रसन्न होना, तृप्त होना, तर्क करना, सेवा करना। एस-ई-डी-पी-222।

हि० 'जोखना' का अर्थ होता है—तौलना, वजन करना, जाँचना। लगता है कि सं० 'जाँचना' अर्थ के प्रभाव से 'तौलना' या 'वजन करना' अर्थ आया है, क्योंकि तौलने में भी किसी वस्तु के वजन की जाँच ही की जाती है। यथा, "वह दिन भर सामान जोखकर लोगों को देता रहा।"

ने० 'जोखना' का अर्थ है—शुभाशुभ विचार, शकुन विचार। ने०हि०को० पृ० 98। शुभाशुभ या शकुन विचार करने के क्रम में ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति की जाँच करनी पड़ती है, संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'जाँचना' से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "यो केटो औषधि उपचारले निको नभएकोले धामीलाई जोखना देखाउनु पर्नेहोला।" (यह लड़का दवाई से ठीक नहीं हुआ तो ओझा से शुभाशुभ विचार कराना होगा।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

सहवास (तत्० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'सहवासः' का अर्थ होता है—एकसाथ रहना, मैथुन। सं० को० सु० पृ० 545।

हि० 'सहवास' का अर्थ है—संग, साथ, मैथुन, संभोग। इनमें 'संग' या 'साथ' अर्थ सं० 'एकसाथ रहना' अर्थ से स्पष्टतया प्रभावित है, क्योंकि दोनों में 'साथ' का भाव है। शेष अर्थ संस्कृतवत् ही हैं। यथा, "बिना सहवास के सन्तान नहीं होती।"

विपरीत, ने० 'सहवास' का अर्थ—'संभोग' या 'संग' नहीं है, वरन् 'साथ-साथ रहना या उठना-बैठना' है। एन-एन-ई-डी-1705। यह अर्थ सं० 'एकसाथ रहना' अर्थ से स्पष्टतः आया लगता है। ने० ने 'सहवास' का विग्रह करके 'सह' का अर्थ 'साथ-

साथ' और 'वास' का अर्थ 'रहना' लिया है। 'मैथुन' अर्थ को ने० ने साफ छोड़ दिया है। यथा, "गाउंमा पनि उसले माता-पिता बाहेक अरु कसैको सहवास पाएको थिएन।" (गाँव में भी उसने माता-पिता के अलावा और किसी के साथ रहा नहीं था।) सु० बी-पी-को-पृ० 26 । "यस सहवास र समागमले अधिको हृदय हरियो भएर आउंछ···।" (इस साथ-साथ रहने और भेंट से पहले का (उदास) हृदय हरा हो जाता है···।) मा०घ०। बा० पृ० ख। "बनारसको नया साथी हरु को सहवासले गाउंलाई बिर्सिदै गएं।" (बनारस के नए साथियों के साथ रहने से गाँव को भूलता गया।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 61। ——(अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य)

आ : घ——सामान्य (पर) से विशेष (अपर) : अर्थ-संकोच

कभी-कभी ऐसे शब्द जो सम्पूर्ण वर्ग या समुदाय का बोध कराते हैं, समय बीतने पर मात्र उस समुदाय या वर्ग के अंग विशेष का अर्थबोध कराने लगते हैं जिससे अर्थ का संकोच हो जाता है। उसी प्रकार लुई० एच० ग्रे का कहना है कि सामान्यतः शब्दों के अर्थ सामान्य तथा अस्पष्ट हुआ करते हैं जो क्रमशः विशिष्ट से विशिष्टतर अर्थ के वाची हो जाते हैं।[1]

इस तरह, किसी भी भाषा में शब्द का अर्थ कभी विशिष्ट से सामान्य हो जाता है और कभी सामान्य से विशिष्ट, लेकिन भाषा ज्यों-ज्यों उन्नत होती है, त्यों-त्यों उसमें सामान्य से विशिष्ट होने की प्रवृत्ति ही अधिक दिखाई पड़ती है।

आंग (तद्०। सं०>हि० ा, ने० ा)

सं० 'अंग' से 'आंग' का विकारा हुआ है। सं० 'अंग' का अर्थ होता है——शरीर, उपाय, मन, 6 की संख्या का वाचक, शरीर का भाग। सं०को०सु० पृ० 13।

हि० 'अंग' का अर्थ 'अंग' ही होता है और 'भाग' या 'हिस्सा' भी। स्पष्ट है कि सं० 'शरीर का भाग' अर्थ से यह अर्थ विकसित हुआ है। अन्तर यह आया है कि जहाँ सं० 'अंग' का अर्थ मात्र 'शरीर का भाग' है, वहाँ हिन्दी 'आँग' का अर्थ किसी भी वस्तु का भाग या हिस्सा हो गया है। यथा, "वह तो मेरे परिवार का ही आंग है।" 'आँग' का प्रयोग मुख्यतः हिन्दी की ग्राम्य भाषाओं में होता है।

विपरीत, ने० 'आंग' का अर्थ है——शरीर, पीठ। एन-एन-ई-पी-99। संस्कृत 'अंग' का अर्थ है——'शरीर का भाग' यानी इससे हाथ-पैर या ऐसे ही शरीर के किसी भी भाग का बोध होता है, पर ने० ने एक अंग विशेष यानी 'पीठ' अर्थ को विकसित कर लिया है। यह अर्थ स्पष्टतः सं० 'शरीर का भाग' अर्थ से आया है। यथा, "उसले देखेर कपिलागाई चंचल हुंदै आंग जुरुंग-जुरुंग पार्दथी···"। (उसने देखा कि कपिला गाय चंचल होकर पीठ को या शरीर को रोमांचित कर रही थी।) सु०। बी० पी० को० पृ० 49। "मैले आंग सुमसुमाउदै भने···।" (मैंने पीठ सहलाते हुए कहा···।)

---

1. "For the most part, the meaning of words, at first general and perhaps vague, tend to become more and more specific."
—Foundations of Language, p. 252.

"आंगमा भाइबैनी बोकी खेल्दै निस्केका शेर्वाशिशुहरुको फोटो खिच्न लागेको छ।" (पीठ पर भाई-बहन को लादकर खेलते हुए निकलकर शेर्वा बच्चों की तस्वीर खींचने लगा है।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 11। "दुलहा पनि उठेर टांगे को ऐनाको अघि, उभिएर आंग तान्न थाले।" (दुलहा भी उठकर टँगे हुए दर्पण के सामने खड़ा होकर शरीर तान रहा था।) दो०च०। वि०प्र०को० पृ० 54।

--(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य)

कन (तद्० । सं० कण > हि० I, ने० I)

सं० 'कण:' का अर्थ होता है--अनाज, छोटा अंश। सं० को० सु० पृ० 77।

हि० 'कन' का अर्थ है--छोटा अंश, टुकड़ा। चूँकि 'छोटा अंश' किसी वस्तु का टुकड़ा होता है, अतएव इसी से 'टुकड़ा' अर्थ का विकास हुआ है। वैसे एक दृष्टि से 'छोटा अंश' और 'टुकड़ा' अर्थ समानार्थी ही हैं। यथा, "बाबूजी, दो-चार कन दे दीजिये। बम-विस्फोट के कारण सारी चीजें कनों में विभक्त हो गईं।"

विपरीत, ने० 'कन' का अर्थ है--गेहूँ की भूसी। ने०हि०को० पृ० 28। ऐसा लगता है कि सं० 'अनाज' अर्थ से 'गेहूँ' अर्थ आया और 'गेहूँ' से सम्बन्धित 'डंठल' अर्थ का विकास बाद में हो गया। सं० 'छोटा टुकड़ा' अर्थ से प्रभावित होकर 'गेहूँ के डंठल का छोटा टुकड़ा' या 'भूसी' अर्थ आ गया। सं० 'छोटा अंश' जहाँ सामान्य रूप से सभी चीजों के टुकड़े का बोध कराता है, वहाँ ने० 'कन' मात्र गेहूँ के डंठल के छोटे टुकड़े (भूसी) को। इस तरह अर्थ सामान्य से विशिष्ट हो गया है। यथा, "यो गायवस्तुको लागि गेहूँको कन माग्न आएकोथियो।" (वह गाय के लिए गेहूँ की भूसी माँगने आया था।)

कर्मी (तद्० । सं० कर्मिन् > हि० II, ने० I)

सं० 'कर्मिन्' का अर्थ है--कार्यतत्पर, कारीगर, कलाकुशल। सं०को०सु० पृ० 83।

हि० 'कर्मी' का अर्थ होता है--कर्म करनेवाला, कर्मठ, मजदूर। कार्य से सम्बन्धित होने के कारण सं० 'कार्यतत्पर' अर्थ से 'कर्म करनेवाला' और 'कर्मठ' अर्थ का विकास हुआ लगता है। सं० 'कारीगर' अर्थ से 'मजदूर' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि कारीगर भी मजदूर की तरह ही दूसरे के यहाँ काम करता है। वैसे, 'कारीगर' का अर्थ है जो किसी कलाविशेष में दक्ष हो, पर 'मजदूर' अर्थ में वह भाव नहीं है। 'मजदूर' कला के बल पर नहीं, मेहनत के बल पर जीता है। इस तरह, हि० अर्थ का अपकर्ष हो गया लगता है। यथा, "किसी कर्मी को लाकर सारी मिट्टी ढुलवा लो।"

विपरीत, ने० 'कर्मी' का अर्थ है--लकड़ी का काम करनेवाला बढ़ई या ईंट-गारे का काम करनेवाला राजमिस्त्री। ने०हि०को० पृ० 31। चूँकि 'बढ़ई' लकड़ी का और 'मिस्त्री' वास्तुकला का कारीगर होता है, अतएव सं० 'कारीगर' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ लगता है। फिर भी, इतना अन्तर तो आ ही गया है कि जहाँ सं० में किसी

भी कला में निपुण व्यक्ति को 'कर्मिन्' कहा जाता है, वहाँ ने० में मात्र काष्ठकला या वास्तुकला में निपुण व्यक्ति को ही कर्मी कहा जाता है। इस तरह, ने० में अर्थ का संकोच हो गया है। यथा, "जहाँ घर बनाये पनि कर्मी र ड्कर्मी को साथ साथै ज्यामी चाहिने हुनाले हर्षनारांले प्रायः आफ्ना दाजु पुननारांसंगे जान पाउंथे।" (जहाँ घर बनाने में बढ़ई और मिस्त्री के साथ-साथ मजदूर की भी जरूरत होती है, इसी कारण हर्ष-नारायण प्रायः अपने भाई पुननारायण के साथ जा पाता था।) ए०चि०। ह०च०प्र० पृ० 63।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

काली (तत्० । सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'काली' का अर्थ होता है—कालिमा, स्याही, पार्वती, सरस्वती, रात। सं० को०सु० पृ० 89।

हि० 'काली' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—चंडी, कालिका, पार्वती, दस महाविद्याओं में पहली महाविद्या। इनमें मात्र अन्तिम अर्थ नया है जो संभवतः 'सरस्वती' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि सरस्वती विद्याओं की अधिष्ठात्री समझी जाती हैं। यथा, "वह काली की सिद्धि के लिए दिन-रात परिश्रमरत है।"

विपरीत, ने० में 'काली' का प्रयोग—चण्डी, जूते का काला पालिश, काली चेहरेवाली औरत—अर्थों में होता है। ने०हि०को० पृ० 35। एन-एन-ई-पी-248। सं० 'कालिमा' अर्थ से 'जूते का काला पालिश' और 'काले चेहरे वाली औरत' अर्थ का विकास हुआ मालूम पड़ता है, क्योंकि इन दोनों में 'कालिमा' का भाव है। सं० 'कालिमा' का प्रयोग सभी तरह के काले पदार्थों के लिए किया जाता है, लेकिन ने० ने मात्र 'काला पालिश' या 'काले रंगवाली औरत' अर्थ ग्रहण करके इसका अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "मेरो जुत्तामा आलिकति काली हालदिनुस।" (मेरे जूते में जरा काली पालिश डाल दीजिये।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

कूट (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'कूट' का प्रयोग इन सारे अर्थों में होता है—दृढ़, मिथ्या, गृह, पर्वत की चोटी, अगस्त्य मुनि, अन्न की राशि, हथौड़ा, दम्भ, माया, सींग, मूर्ख, नगरद्वार, हरिण फाँसने का जाल, गुप्ती, कलसा, क्लिष्ट प्रश्न या रचना। सं०को०सु० पृ० 95।

हि० में 'कूट' का अर्थ है—पहाड़ की ऊँची चोटी, सींग, अनाज की ऊँची और बड़ी राशि, छल, गूढ़ भेद, पहेली, झूठा, छलिया, श्रेष्ठ आदि। इनमें 'सींग' अर्थ संभवतः सं० 'पहाड़ की चोटी' अर्थ के रूप-सादृश्य के कारण आया होगा, क्योंकि दोनों सबसे ऊपर होते हैं और दोनों की आकृति एकसमान होती है। 'छल' या 'छलिया' अर्थ सं० 'माया' अर्थ से आया होगा, क्योंकि 'माया' में छल का भाव निहित है। शेष अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "उसके कूट (छल) से सावधान रहना चाहिए।"

विपरीत, ने० 'कूट' का अर्थ है—रहस्यपूर्ण रचना या पहेली। एन-एन-ई-पी—279। नेपाली में इसका प्रयोग व्यंग्यात्मक भाव को अभिव्यक्त करने के लिए भी होता है। ने० ने सं० 'क्लिष्ट' प्रश्न या 'रचना' अर्थ से इस अर्थ को विकसित किया है—

ऐसा लगता है। चूँकि क्लिष्ट प्रश्न या रचना को समझना कठिन होता है और यही कठिनाई रहस्यपूर्ण रचना या पहेली को समझने में होती है, अतएव ऐसा अर्थ-विकास हुआ लगता है। वैसे मात्र 'रहस्यपूर्ण रचना' या 'पहेली' में अर्थ को सीमित कर देना स्पष्टतः अर्थ-संकोच है। यथा, "…द्वारेले आफ्नो कूटस्वरमा भने—भैंसीले हिजो साबुत दूध दियोत ?" (…द्वारे ने अपने रहस्यपूर्ण स्वर में कहा—भैंस ने कल पहले जितना दूध दिया तो ?) ने०स०को०गी०। र०वि० पृ० 56।

स्पष्ट है कि नेपाली ने सं० के अन्य अर्थों का भी परित्याग किया है और 'क्लिष्ट प्रश्न या रचना' अर्थ को भी 'पहेली' अर्थ करके संकुचित कर दिया है।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

खलक (वि०। अ० 'खल्क़'>हि० I, ने० I)

अरबी 'खल्क़' का अर्थ है—जनसाधारण, संसार के लोग। उ० हि० डि० पृ० 219।

हि० 'खलक' का प्रयोग—'सृष्टि के प्राणी या जीवधारी' और 'दुनियाँ'—अर्थों में होता है। इनमें 'संसार के लोग' अर्थ से 'संसार' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि दोनों में आधाराधेय सम्बन्ध है। यथा, "सम्पूर्ण खलक ही नाशवान है।"

विपरीत, ने० 'खलक' का अर्थ है—परिवार, वंश, सन्तान, बन्धुवर्ग। ने० हि० को० पृ० 48। ये सारे अर्थ सं० 'संसार के लोग' अर्थ से विकसित हैं, क्योंकि इन सारे अर्थों में भी 'लोग' या 'मनुष्य' के होने का समान भाव है। ने० ने सं० के संसार के सामान्य लोग को परिवार, वंश, संतान या बन्धुवर्ग में संकुचित कर दिया है, क्योंकि परिवार में अपेक्षाकृत कम ही लोग होते हैं, वंश भी कुछ ही लोगों के भाव को ढोता है, सन्तान भी अलग-अलग लोगों की अलग-अलग होती है और बन्धुवर्ग भी सबका भिन्न-भिन्न और कुछ ही लोगों का समुदाय होता है। यथा, "ओल्टी चोरचमारे डांग्रा, पल्टी चोर-चमारे डांग्रा भन्ने ए तोम्र्या खलक त।" (उलट-पुलट कर चोर-चमारों को गाली देना तुम्हारा पारिवारिक गुण है तो।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 100। "म आफ्नो खलकको निमित्त यो पनि गर्छु।" (मैं अपनी सन्तान के लिए यह भी करता हूँ।)

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

खाला (तद्०। सं० खल्लः>हि० I, ने० II)

सं० 'खल्लः' से हिन्दी 'खाल' बना है और 'खाल' से 'खाला' शब्द का विकास हुआ है। ने० 'खाला' सं० 'खल्लः' का सीधा विकास है। सं० 'खल्लः' का अर्थ होता है—चमड़ा, गड्हा, मशक, खल, खरल, वस्त्रभेद, चातक पक्षी। सं० को० सु० पृ० 105।

हि० में 'खाला' का अर्थ होता है—नीचा, निम्न। एक अर्थ 'मौसी' भी होता है, पर वह अरबी 'खाला' का प्रभाव है। 'नीचा' अर्थ० सं० 'गड्हा' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि गड्हा नीची भूमि को ही कहते हैं। यथा, "उसने खाला जमीन को ऊँचा करने के लिए मिट्टी भरना शुरू कर दिया है।"

विपरीत, ने० 'खाला' का अर्थ होता है—चमड़े की ऊपरी परत। ने० हि० को० पृ० 51। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'चमड़ा' अर्थ से आया है, फिर भी सं० में जहाँ यह शब्द पूरे चमड़े का वाची है, वहाँ ने० में मात्र चमड़े की ऊपरी परत का। इस तरह ने० में इसका अर्थ-संकोच हो गया है। चूंकि 'वृक्ष की छाल' उसी प्रकार ऊपरी सतह में होती है जिस तरह चमड़े की ऊपरी परत चमड़े में, संभवतः इसीलिए 'वृक्ष की छाल' अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा है। यथा, "यो वृक्षको खाला कस्तो सुन्दर !" (इस वृक्ष की छाल कितनी सुन्दर !) —(हि० अर्थादेश : अमूर्तीकरण)

गोड़ा (तद्० । प्रा० गोड़>हि० I, ने० I)

प्राकृत 'गोड़' से 'गोड़ा' शब्द का विकास हुआ है, लेकिन प्रा० 'गोड़' किस संस्कृत शब्द से विकसित हुआ है—इसका पता नहीं चलता। प्राकृत 'गोड़' का अर्थ है—पैर।

हिन्दी में 'गोड़ा' का अर्थ है—पलंग आदि का पाया, घोड़िया। चूँकि पलंग आदि के पाये ही उनके पैर हैं और उनकी आकृति भी पैर के समान होती है, शायद इसीलिए इस तरह का अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "इस पलंग का एक गोड़ा टूट गया है।"

विपरीत, ने० 'गोड़ा' का अर्थ प्राकृत की तरह ही 'पैर' होता है। इसीलिए ने० अर्थ में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "डरले त्यसका हात गोड़ा काम्न थाले।" (डर से उसके हाथ-पैर काँपने लगे।) मु० बा०। बां० पृ० 79।

हि० ने प्राकृत के सामान्य 'पैर' अर्थ को मात्र 'पलंगादि के पैर' अर्थ में संकुचित कर दिया है, यह स्पष्ट है। —(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

गोरू (तद्० । सं० गो>हि० I, ने० I)

सं० 'गो' का अर्थ है—पशु, बैल, स्वर्ग, किरण, वज्र, जल, चन्द्र, वायु, सूर्य, दृष्टि, वाण, दिशा, माता, वचन, भूमि। सं० को० सु० पृ० 113।

हि० में 'गोरू' का अर्थ है—सींगवाला पशु, गाय-बैल, भैंस आदि पशु। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ संस्कृत 'पशु' अर्थ से आये हैं, लेकिन हिन्दी ने 'सामान्य पशु' अर्थ को संकुचित करके 'सींगवाला पशु' अर्थ कर दिया है। यथा, "गोरुओं से बचकर चलना चाहिए।"

विपरीत, ने० 'गोरू' का अर्थ होता है—'बैल या साँड़।' एन-एन-ई-पी-446। इनमें 'बैल' अर्थ तो संस्कृत का ही है और 'साँड़' अर्थ नया है। वैसे पशु अर्थ के विशाल दायरे की उपेक्षा करके मात्र पशु विशेष 'बैल' अर्थ ग्रहण करना अर्थ-संकोच है। नेपाली में 'बैल' अर्थ में ही इसका मुख्य रूप से प्रयोग होता है। यथा "सडकमा पनि दूधको ढुङ्ग्रो बोकेका ग्वाला र गोरूगाडीहरू हिंडेका बिरलै देखिन्थे।" (सड़क पर भी दूध का बरतन लादे ग्वाले और जानेवाली गाड़ियाँ बिरले दिखाई पड़ती थीं।) मु० बा०। बां० पृ० 63। "......कहिले-कहिले त्यस्से रमाइलो मानेर गोरूको पुच्छर निमोठ्थ्यो।" (कभी-कभी यों ही आनन्द पाने के लिए बैल की पूँछ उमेठ देते थे।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 6।

यदि ने० 'बैल' अर्थ को सं० 'पशु' अर्थ के परिप्रेक्ष्य में देखें तो अर्थ-संकोच दिखाई देगा और यदि सं० 'बैल' अर्थ की तुलना में तो कोई अर्थ-परिवर्तन नजर नहीं आयेगा। —(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

चोली (तत्स० । सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'चोली' का अर्थ है—एक छोटा जैकेट, अँगिया, ब्लाउज, चोली। सं० को० सु० पृ० 123। एस-ई-डी-पी-211।

हि० में 'चोली' का अर्थ है—अँगिया की तरह स्त्रियों का पहरावा। सं० 'चोली' अर्थ ही हिन्दी में प्रचलित है। यथा, "भारतीय स्त्रियों का मुख्य पहिरावा है—साड़ी और चोली।"

ने० चोली का अर्थ हो गया है—छोटी चोली (a small bodice)। एन-एन-ई-पी-578। ने० हि० को० पृ० 83। स्पष्ट है कि सं० 'चोली' अर्थ जो सामान्य चोलियों का प्रतिनिधित्व करता है, ने० में 'छोटी चोली' अर्थ के रूप में आकर संकुचित हो गया है। यथा, "सानी दुलही भएर सिगरिएकी नयां चोली, नयां फरिया, नयां पाटुका...।" (सानी दुलहिन बनकर नयी छोटी चोली, नया घँघरा और कमर में बाँधने का नया कपड़ा पहनकर सजी...।) मा० घ०। बां० पृ० 60।

सं० 'चोली' अर्थ जहाँ छाती और पीठ ढँकने वाला वस्त्र था, ने० में मात्र 'स्तन मात्र बाँधने का एक विशेष प्रकार का छोटा कपड़ा' हो गया है। ने०श० पृ० 330।

छावा (तद्० । सं० शावः > हि० I, ने० I)

सं० 'शावः' का विकास प्राकृत 'छाव' के रूप में हुआ और इससे 'छावा' शब्द का विकास हुआ है। सं० 'शावः' का अर्थ होता है—जानवर का बच्चा। सं० को० सु० पृ० 467।

हि० 'छावा' का अर्थ है—बच्चा, पुत्र, जवान हाथी। अर्थ से स्पष्ट है कि हिन्दी ने सं० 'जानवर का बच्चा' अर्थ का विस्तार करके सामान्य 'बच्चा' अर्थ विकसित कर लिया है। 'पुत्र' भी चूँकि बच्चा होता है, अतएव 'बच्चा' अर्थ से ही 'पुत्र' अर्थ का विकास हुआ होगा। 'जवान हाथी' में जानवर होने का भाव है और 'जानवर का बच्चा' अर्थ भी। संभव है, इसी समानता के कारण 'जवान हाथी' अर्थ आया हो। यथा, "अपने छावे (बच्चे) के प्रति सबको मोह होता है।"

विपरीत, ने० 'छावा' का अर्थ है—हाथी का बच्चा। ने० हि० को० पृ० 87। लगता है कि सं० 'जानवर का बच्चा' अर्थ को संकुचित करके ने० ने 'हाथी का बच्चा' अर्थ विकसित कर लिया है, क्योंकि हाथी भी जानवर ही होता है। यथा, "यो कस्तो राम्रो छावा छ।" (यह कैसा अच्छा हाथी का बच्चा है।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य)

छौंड़ा (तद्० । सं० शावकः > हि० I, ने० I)

सं० 'शावकः' का अर्थ होता है—जानवर का बच्चा। सं० को० सु० पृ० 467।

सं० 'शावक:' से विकसित हि० 'छौंड़ा' का अर्थ होता है—लड़का, बच्चा। सं० 'जानवर का बच्चा' अर्थ हि० में उत्कृष्ट हो गया है और 'जानवर' का भाव समाप्त होकर आदमी का बच्चा या लड़का अर्थ का बोध कराने लगा है। वैसे, दोनों अर्थों में बच्चा का भाव समान है। वैसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हिन्दी में आदमी के बच्चे के लिए इसका प्रयोग तो होता है, लेकिन इसमें एक हीनता का भाव भी रहता है। शायद यह सं० के जानवर वाले भाव का प्रभाव है। यथा, "वह छौंड़ा (बच्चा या लड़का) बहुत बदमाश है।"

विपरीत, ने० 'छौंड़ा' का अर्थ होता है—बिल्ली या चुड़ैल का वाहन। ने० हि० को० पृ० 90। चूँकि बिल्ली ही चुड़ैल का वाहन मानी जाती है, अतएव ये दोनों अर्थ समान ही हैं। ये दोनों अर्थ सं० 'जानवर का बच्चा' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि बिल्ली भी एक जानवर है। सामान्य जानवर अर्थ को न ग्रहण कर मात्र 'बिल्ली' अर्थ को अपनाने के कारण अर्थ-संकोच स्पष्ट है। यथा, "यो कालो विरालो अवश्यनै बोक्सीको छौंड़ाहोला भन्ने विश्वासले गर्दा रामकी बहिनी चौपट्टै डराई।" (यह काली बिल्ली अवश्य ही डायन का वाहन है, ऐसा विश्वास करके राम की बहन एकदम डर गई।)

—(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

जंहान (वि०। फा०>हि० II, ने० II)

फा० 'जहान' का अर्थ होता है—संसार। उ० हि० डि० पृ० 149।

हि० 'जहान' का अर्थ है—संसार, लोक, जगत्। स्पष्ट है कि ये सभी समानार्थी हैं और फा० 'संसार' अर्थ से आये हैं। यथा, "सम्पूर्ण जहान में कोई ऐसा नहीं जो स्वार्थ का परित्याग कर सके।"

विपरीत, ने० 'जहान' का अर्थ होता है—परिवार, पत्नी। ने० हि० को० पृ० 94। स्पष्ट है कि ने० ने सं० के 'संसार' अर्थ को मात्र 'परिवार' और 'पत्नी' अर्थ में संकुचित कर दिया है। चूँकि 'परिवार' या 'पत्नी' भी इसी संसार के जीव हैं, संभवत: इसी भाव के कारण ये अर्थ आये हैं। 'संसार' सम्पूर्ण प्राणियों का बोध कराता है, पर 'परिवार' मात्र कुछ ऐसे प्राणियों का जो आपस में सम्बन्धों की डोर में बँधे होते हैं। इस तरह 'परिवार' का दायरा 'संसार' के दायरे से बहुत छोटा हो जाता है। 'पत्नी' अर्थ में इसका और संकोच हो जाता है, क्योंकि परिवार में तो भाई, बहन, माँ-बाप सभी चलते हैं, पर 'पत्नी' अर्थ में मात्र पत्नी ही। यथा, "हामी जहान थोरै छौं...।" (मैं पत्नी थोड़े ही हूँ...।) शि० फू०। पा० पृ० 4। "अर्काको घरमा, न चिने-को जहानमा गएर म बस्न सक्तिनँ।" (दूसरे के घर में, नहीं जान-पहचानवाले परिवार में जाकर नहीं रह सकता।) मा० घ०। बां० पृ० 48। "...यति दिनसम्म त हामीहरू एउटै घरमा एक जहान जस्तो भएर बस्यों खायों।" (...इतने दिन तक तो हम लोग एक ही घर में एक परिवार की तरह रहे-खाये।) सु० बा०। बां० पृ० 90।

जामा (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

फा० 'जामा' का अर्थ होता है—वस्त्र, कपड़ा, लिबास। उ० हि० डि० पृ० 155।

हि० 'जामा' का अर्थ है—पहनावा, वस्त्र, कपड़ा, चुन्नटदार घेरे का एक तरह का पहरावा। इनमें प्रारम्भ के तीन अर्थ फा० के ही हैं। अन्तिम अर्थ में 'चुन्नटदार घेरे का' कह देने से एक विशिष्ट पहरावा हो जाता है जिससे सामान्य लिबास अर्थ का संकोच हो जाता है। चूँकि दोनों पहरावा ही हैं, अतएव यह अर्थ फा० लिबास अर्थ से ही विकसित है। यथा, "आजकल जामा का प्रचलन बढ़ रहा है।"

विपरीत, ने० 'जामा' का अर्थ होता है—एक तरह का लम्बा पोशाक। एन-एन-ई-पी-650। फा० 'लिबास' से ही ने० के इस अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि दोनों में पोशाक का समान भाव है, फिर भी ने० ने सामान्य 'लिबास' अर्थ को 'एक तरह का लम्बा पोशाक' अर्थ में बदल कर विशिष्ट बना दिया है। नेपाली में चुस्त पायजामा और मिर्जई तरह का एक लम्बा कुरता पहनने का रिवाज है, इसी कुरते को मुख्य रूप से 'जामा' कहा जाता है। यथा, "आज यो नीलो जामा लाएकोले सानीलाई कत्ति सुहाएको छ...।" (आज यह नीला लम्बा पोशाक पहनने से सानी कितनी अच्छी लगती है..।) गा० ध०। बां० पृ० 8। "यमुनाले बबुनीको सानो छोरालाई छोरीको जामा लाइदिए र नचाउन खोज्दै थिइन्।" (यमुना ने बबुनी के छोटे लड़के को लड़की का लम्बा पोशाक ला दिया, और नचाना चाहती थी।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 76। "जामा फुकाल्नलाई उससित कुस्ती लडिरहनुपर्थ्यो...।" (कुरता खोलवाने के लिए उसके साथ कुश्ती करनी पड़ती थी...।) सां० र० ज०। कें० नु० पो० पृ० 23।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

टीका (तत्स०। तद्०—सं० तिलक>हि० I, ने० I)

'टीका' शब्द को हिन्दी और नेपाली में तत्सम और तद्भव —दोनों रूपों में देखा जा सकता है। तद्भव रूप में यह सं० 'तिलक' का विकसित रूप है जिसका अर्थ होता है—तिल का पौधा, चमड़े पर का तिल, माथे पर चन्दन आदि से बनाया गया चिह्न, श्रेष्ठ। एस-ई-डी-पी-235। सं० 'टीका' का अर्थ है—अर्थ, भाषान्तर। सं०को० सु० पृ० 130।

हिन्दी 'टीका' का तत्सम रूप में अर्थ है—किसी पद या ग्रन्थ का अर्थ स्पष्ट करने वाला वाक्य या ग्रन्थ, व्याख्या। तद्भव 'टीका' का अर्थ है—माथे पर चन्दनादि द्वारा बनाया गया चिह्न, विवाह में वर के माथे पर लगाया तिलक, शिरोमणि, राजतिलक, एक जेवर जो माथे पर पहना जाता है, दाग, रोग से बचने के लिए ली गई सूई आदि। इनमें तत्सम 'टीका' का अर्थ सं० के समान ही है। तद्भव 'टीका' के अर्थों में 'राजतिलक' और 'विवाह में वर के माथे पर लगाया गया तिलक' अर्थ सं० 'माथे पर चन्दन आदि से बनाया गया चिह्न' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि इनमें भी चन्दनादि से माथे पर चिह्न अंकित किया जाता है। 'दाग' और 'रोग' से बचने के लिये ली गई सूई अर्थ सम्भवतः 'चमड़े पर का तिल' अर्थ से आये हैं, क्योंकि 'तिल' भी एक तरह के दाग की तरह ही होता है और ऐसी सूई लेने के बाद वहाँ ऐसा ही दाग बन जाता है। 'एक जेवर जो माथे पर पहना जाता है' अर्थ सं० 'माथे पर चन्दन आदि से बनाया गया चिह्न' अर्थ से विकसित जान पड़ता है, क्योंकि दोनों अर्थों का सम्बन्ध मस्तक से है। यथा, "उसकी शादी में अन्य जेवरों के साथ टीका भी दी गई थी जो बहुत सुन्दर थी।" "चेचक फैलने पर टीका ले लेनी चाहिए।"

ने० 'टीका' का अर्थ है—तिलक, व्याख्या, गुण-दोष के सम्बन्ध में प्रकट किया गया मत, विजयादशमी। ने० हि० को० पृ० 111-112। इनमें प्रारम्भ के तीन अर्थ संस्कृतवत् ही हैं, मात्र अन्तिम अर्थ 'विजयादशमी' नया है। चूँकि विजयादशमी में पूज्य व्यक्तियों के माथे पर चन्दनादि से चिह्न अंकित कर अभ्यर्थना करने का रिवाज नेपाल में है, सम्भवतः इसलिए सं० 'माथे पर चन्दन आदि से बनाया गया चिह्न' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ लगता है। सं० 'तिलक' का प्रयोग किसी भी अवसर पर चन्दनादि चिह्नित करने के अर्थ में होता है, पर नेपाली में 'टीका' का विशिष्ट अर्थ है—मात्र विजयादशमी के अवसर पर लगाया गया चन्दनादि। इस तरह अर्थ-संकोच स्पष्ट है। यथा, "टीकाको दिनमा भूईमा···फूलबुट्टाहरू हानिन्थ···।" (विजयादशमी के दिन जमीन पर फूलों का नक्शा बनाती थी···।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 50। "···शरदको घामजस्तै पवित्र मुस्कानले दाजुलाई टीका लगाउँछे।" (···शरद ऋतु की धूप की तरह पवित्र मुस्कान से बड़े भाई को विजयादशमी का चन्दनादि लगाती है।) मा०घ०। बां० पृ० घ।

—(हि० अर्थविस्तार : स्थानान्तरण)

डगर (दे०। डग>हि० I, ने० I)

हिन्दी और नेपाली—दोनों में 'डगर' एक देशी शब्द है। सम्भवतः इसका विकास 'डग' से हुआ है जिसका अर्थ होता है—कदम।

हिन्दी 'डगर' का अर्थ होता है—मार्ग। कदम-कदम चलने से रास्ता बनता है या रास्ता तय होता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण 'रास्ता' अर्थ आया है। यथा, "तुम जिस डगर पर चल रहे हो, वह ठीक नहीं।"

विपरीत, ने० 'डगर' का अर्थ होता है—गौओं के चलने से बना हुआ रास्ता, पगडंडी। ने०हि०को० पृ० 119। नेपाली में भी 'रास्ता' का भाव है, पर इसमें सामान्य रास्ता अर्थ न होकर मात्र 'गौओं के चलने से बना हुआ रास्ता' या 'संकीर्ण रास्ता' (पगडंडी) अर्थ हो गया है जिससे अर्थ-संकोच हो गया है। इन अर्थों का विकास भी हिन्दी की तरह ही हुआ लगता है। यथा, "साँझमा गाईवस्तुहरू डगरबाट गोठतिर लाग्छन्।" (शाम में गायें पगडंडी या गायों के चलने से बने रास्ते से गोशाले की ओर लौटती हैं।)

तगर (तत्स०। सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'तगरः' का अर्थ होता है—नदी किनारे का वृक्ष, फूलवाला विशेष वृक्ष, सफेद पुष्प, टेढ़ा, कुटिल, शठ, झुका हुआ। शब्द कल्पद्रुम—द्वितीय भाग, पृ० 578।

हि० 'तगर' का प्रयोग एक प्रकार के पेड़ के लिए होता है जिसकी लकड़ी बहुत सुगन्धित होती है और ओषधि के काम में आती है। यह अर्थ सं० 'फूलवाला वृक्ष विशेष' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में वृक्ष का सामान्य भाव है और पुष्पयुक्त होने के कारण सुगन्धि का भी भाव है। यथा, "तगर के वृक्ष सभी वन में नहीं होते।"

विपरीत, ने० 'तगर' का अर्थ होता है—एक सफेद पुष्प विशेष। ने०हि०को० पृ० 129। यह सं० 'सफेद पुष्प' से विकसित अर्थ मालूम पड़ता है, क्योंकि दोनों मूलत: पुष्प हैं और सफेद भी। फिर भी ने० अर्थ में 'पुष्प विशेष' के कारण एक खास पुष्प का बोध होता है, लेकिन सं० अर्थ से सभी सफेद पुष्पों का। यथा, "उसको गलामा तगरको माला शोभायमान थियो।" (उसकी गर्दन में (सफेद फूलों) तगर की माला शोभायमान थी।)

तनु (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तनु' का अर्थ होता है—देह, अल्प। सं०को०सु० पृ० 132।

हि० 'तनु' का अर्थ है—दुबला-पतला, थोड़ा, कोमल, सुन्दर, शरीर, चमड़ा, औरत आदि। इनमें 'दुबला-पतला' और 'थोड़ा' अर्थ सं० 'अल्प' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि दोनों में न्यूनता का भाव है। 'कोमल, सुन्दर, शरीर, चमड़ा और औरत'—ये सभी अर्थ सं० 'देह' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि देह भी कोमल और सुन्दर होती है, देह का सौन्दर्य चमड़े के रंगादि पर भी निर्भर करता है और स्त्री भी देहयुक्त होती है। यथा, "कृष्ण के तनु (सुन्दर) रूप पर गोपिकाएँ मोहित थीं।"

विपरीत, ने० 'तनु' का अर्थ है—तना। ने०हि०को० पृ० 130। यह अर्थ सं० 'देह' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि तना ही वृक्ष की देह होती है। ध्यातव्य है कि जहाँ सं० 'देह' सभी जीवधारियों के लिए प्रयुक्त हो सकती है, वहाँ नेपाली ने मात्र वृक्षों की देह (तना) अर्थ विकसित कर अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "त्यो गाछीको तनु कतिमोटा छ।" (उस वृक्ष का तना कितना मोटा है।)

हिन्दी अर्थों को देखकर यद्यपि अर्थ-विस्तार की प्रवृत्ति लक्षित होती है, फिर भी 'चमड़ा' अर्थ में अर्थ-संकोच दीखता है, क्योंकि 'चमड़ा' देह का ही एक भाग होता है।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

थली (तद्०। सं० स्थली>हि० I ने० I)

सं० 'स्थली' का अर्थ है—अधित्यका, जमीन, मिट्टी, जगह। सं० को० सु० पृ० 584।

हि० 'थली' का अर्थ—जगह, जल के नीचे का थल, ठहरने या बैठने की जगह, बालू का मैदान—होता है। इनमें 'जगह' अर्थ सं० का ही है और इसी से 'ठहरने या बैठने की जगह' अर्थ आया लगता है, क्योंकि इसमें भी 'जगह' का भाव है। 'जल के नीचे का थल' अर्थ का विकास सं० 'जमीन' अर्थ से हुआ होगा, क्योंकि जल के नीचे जो जमीन होती है, उसी का बोध इस अर्थ से होता है। 'बालू का मैदान' अर्थ 'जमीन' अर्थ से ही विकसित लगता है, क्योंकि बालू का मैदान भी जमीन का ही एक अंश होता है। यथा, "जब उसने पूरा गोता लगाया, तब उसके पैर थली का स्पर्श कर पाये।"

विपरीत, ने० 'थली' का अर्थ है—ऊँची जगह की समतल भूमि, आबादी के के योग्य जमीन। ने०हि०को० पृ० 140। ये दोनों अर्थ सं० 'जमीन' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि दोनों अर्थों में 'जमीन' का भाव है। नेपाल के पहाड़ी इलाकों में

ऐसी समतल भूमि का अभाव है जहाँ लोग निवास कर सकें और जीविकोपार्जन कर सकें। इसलिए, वहाँ 'थली' का अर्थ ही ऐसी जमीन हो गया है जो आबादी के लायक हो और समतल हो। पहाड़ पर पत्थरों के बीच जितनी ऐसी जगह है, सच माने में उतने ही स्थल को जमीन कहा जा सकता है। सामान्य 'जमीन' अर्थ को मात्र 'ऊँची जगह की समतल जमीन' या 'आबादी के योग्य जमीन' अर्थ में संकुचित कर दिया गया है—यह स्पष्ट है। यथा, "अनेकानेक पहाड़ी जातिहरू थलीमा निवास गर्छन्।" (अनेकानेक पहाड़ी जातियाँ ऊँची जगह की समतल भूमि में निवास करती हैं।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

थात (तद्०। सं० स्थानं > हि० I, ने० II)

सं० 'स्थानं' का अर्थ होता है—आसन, अचलता, जगह, निवास, हालत, चबूतरा, छट्टी आदि। सं०को०सु० पृ० 585। कुछ विद्वान् इसे सं० 'स्थाना' से विकसित मानते हैं, पर मेरी दृष्टि में यह तर्कसंगत नहीं है।

हि० 'थात' का अर्थ होता है—जो बैठा या ठहरा हो, स्थिति। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'अचलता' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि 'बैठे या ठहरे होने' में या 'स्थिति' में अचलता का भाव है। यथा, "यहाँ के थात लोगों में अधिकांश तीर्थयात्री हैं।"

ने० 'थात' का अर्थ है—'रहने की जगह' या 'वास-स्थान'। ने०हि० को० पृ० 141। यह अर्थ सं० 'जगह' अर्थ से विकसित है, क्योंकि इस अर्थ में भी जगह का भाव है। सामान्य 'जगह' अर्थ को मात्र 'रहने की जगह' या 'वास-स्थान' अर्थ में संकुचित कर दिया गया है। वैसे इसका सम्बन्ध सं० 'निवास' अर्थ से भी माना जा सकता है, लेकिन (निवास) में 'स्थान' का भाव नहीं है, मात्र रहने का भाव है। इसलिए इसका सम्बन्ध सं० 'जगह' अर्थ से ही ज्यादा दीखता है। यथा, "के ती रहन्न आफ्नो थान-वास छाड्छन् ?" (क्या उस उद्वेग से अपना वास-स्थान छोड़ते हैं ?) बं०। ली०ब० क्ष० पृ० ख। "युग-युगदाट बसेको थात छाड्नुपर्छ।" (युग-युग से रहे हुए वास-स्थान को छोड़ना पड़ता है।) बं०। ली०ब०क्ष० पृ० 88। "के हाम्रो थात-वास छैन।" (क्या हमारा निवास-स्थान नहीं है ?) उ०हु०अ०। नि०धि० पृ० 101।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

धोती (तद्०। सं० धौत्र > प्रा० धोत्ती > हि० धोती I, ने० I)

'धोती' का विकास सं० श० सा० के अनुसार सं० 'धटी' से, बालचन्द्र शर्मा के अनुसार सं० 'धू' से तथा टर्नर के अनुसार प्रा० 'धोत्ती' से हुआ है। डॉ० बाबूराम सक्सेना इसे सं० 'धौत्र' से विकसित मानते हैं।

सं० 'धौत्र' का अर्थ होता है—शरीर में पहनने का वस्त्र।

हि० 'धोती' का अर्थ संस्कृत के समान ही 'वह कपड़ा जो कटि से लेकर घुटनों के नीचे तक का शरीर (स्त्रियों का प्राय: सर्वांग) ढँकने के लिए कमर में लपेटकर पहना जाता है'—होता है। इस दृष्टि से हिन्दी में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। फिर भी, प्रयोग में ऐसा देखा जाता है कि पुरुषों के द्वारा कमर में पहने जाने वाले कपड़े को ही

लोग मुख्यत: धोती कहते हैं, स्त्रियों के द्वारा प्रयुक्त ऐसे कपड़े के लिए 'साड़ी' शब्द का प्रयोग होता है। यथा, "भारत के पुरुषों का मुख्य पहनावा धोती ही है।

विपरीत, ने० 'धोती' का अर्थ—औरत-मर्द दोनों के पहनने का कपड़ा होता है, साथ ही इसका एक अर्थ 'लँगोटी' भी होता है। एन-एन-ई-पी-912। लँगोटी भी चूँकि कमर में पहनी जाती है, संभवत: इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ आया है। प्रथम अर्थ एकदम संस्कृतवत् है और द्वितीय अर्थ में अर्थ-संकोच दीखता है। सं० में ऐसे सारे वस्त्र जो कमर में बाँधे जाते हों धटी कहलाते हैं, पर ने० ने मात्र 'लँगोटी' अर्थ लेकर अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "दराज खोलेर आसमानी रंगको धोती झिकिन र धोतीलाई चुन्याउंदे मनमनै भनिन्……।" (दराज खोलकर आसमानी रंग की साड़ी निकाली और साड़ी को चुनियाते हुए मन ही मन बोली……। फे० क० भे० हो०। मु० था० पृ० 14। "भोकटेको रुखमा धोती सुकाइरहेको मुजुरालाई मैले पछिबाट देखें।" (बड़े नींबू के आकार के वृक्ष में लँगोटी सुखाते हुए मजदूरों को मैंने पीछे से देखा।) शि० फू०। पा० पृ० 80। "भूईमा राखेर एउटा हातले आफ्नो धोतीलाई पिंडुलामाथि सारेर खुट्टा मच्चाएर हानी।" (पृथ्वी पर रखकर एक हाथ से अपनी कमर में पहने कपड़े को पिंडली तक उठाकर पैर झुलाकर मारा।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 10।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

निगाह् (वि०। फा०' हि० I, ने० I)

फा० 'निगाह' का अर्थ होता है—दृष्टि, नजर, नेत्र, परख, शिनाख्त, तेवर, चितवन, ध्यान, गुमान, कृपा, रक्षा, निरीक्षण, निगरानी। उ० हि० शि० पृ० 448।

हि० 'निगाह' का अर्थ—दृष्टि, नजर, देखने की क्रिया या ढंग, कृपादृष्टि, ध्यान, विचार, पहचान, चौकसी—होता है। ये सारे अर्थ फारसी के ही हैं, अतएव हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "उनकी निगाह (दृष्टि) में यह काम ठीक नहीं हुआ।" "जरा हम पर भी निगाह (कृपादृष्टि) रखियेगा।"

ने० 'निगाह' का अर्थ फारसी की तरह बहुत अधिक नहीं है। ने० में इसका अर्थ होता है—कृपादृष्टि या दया, कृपा, मेहरबानी। एन-एन-ई-पी-941। ये सारे अर्थ समानार्थी हैं और फा० 'कृपा' अर्थ से आये दीखते हैं। अन्य सभी अर्थों का परित्याग करके मात्र 'कृपादृष्टि' अर्थ को ग्रहण करना अर्थ-संकोच का प्रमाण है। सामान्य 'दृष्टि' अर्थ को 'कृपादृष्टि' के रूप में ग्रहण कर ने० ने अर्थ का विशिष्टीकरण कर दिया है। यथा, "हामी गरीबहरू तपाईंको निगाहवाहेक अरू कुनै चारा छैन।" (हम गरीब लोगों को आपकी कृपादृष्टि के सिवा और कोई चारा नहीं है।)

पंजा (वि०। फा०: हि० I, ने० I)

फा० 'पंजा' का अर्थ होता है—प्रहस्त, हाथ का पंजा, पाँच चीजों का समूह। उ० हि० शि० पृ० 105।

हि० 'पंजा' का अर्थ है—हाथ या पैर की पाँचों अँगुलियों का समूह, पंजा लड़ाने की कसरत या बल-परीक्षा, अँगुलियों के सहित हथेली का संपुट, पाँच का समूह,

ताश का वह पत्ता जिसमें पाँच का चिह्न या बूटियाँ हों। इनमें 'पंजा लड़ाने की कसरत या बल-परीक्षा' अर्थ नया है जो फा० 'हाथ का पंजा' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में पंजा का समान भाव है। दूसरा नया अर्थ ताश का पत्ता वाला है जिसका विकास 'पाँच चीजों का समूह' अर्थ से हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में पाँच की संख्या होती है (ताश के ऐसे पंजे में भी पाँच की संख्या या बूटियाँ होती हैं)। यथा, "मात्र पंजा लड़ाने से काम नहीं चलेगा, तुम्हें कुश्ती भी लड़नी होगी।" "चौके पर पंजा चलकर उसने बाजी मार ली।"

विपरीत, ने० 'पंजा' का इतना अर्थ नहीं होता। इसमें मात्र 'पाँच अँगुलियों का समूह' और 'पाँचों अँगुलियों में पहनने का एक किस्म का वस्त्र' अर्थ होते हैं। एन-एन-ई-पी-996। इनमें दूसरा अर्थ हिन्दी में प्रयुक्त नहीं होता और ने० का नया अर्थ है। 'पाँच अँगुलियों का समूह' अर्थ फा० 'हाथ का पंजा' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि फा० अर्थ में भी पाँच अँगुलियों का भाव ही है। ने० का दूसरे अर्थ का सम्बन्ध भी फा० के इसी अर्थ से मालूम होता है, क्योंकि ऐसा वस्त्र (दस्ताना) भी पाँच अँगुलियों में और हाथ में पहना जाता है। फा० 'हाथ का पंजा' अर्थ में हथेली समेत पाँच अँगुलियों का भाव है, लेकिन ने० ने 'हथेली' का परित्याग करके मात्र पाँच अँगुलियों को ग्रहण किया है जिससे इसका अर्थ संकुचित हो गया है।

—(अर्थादेश : लक्षणा)

पटपट (दे०। अनु० पट>हि० I, ने० I)

'पटपट' अनुकरणबोधक शब्द है जिसका विकास 'पट' ध्वनि से हुआ है। किसी हल्की वस्तु के गिरने से 'पट' ध्वनि निकलती है। इसी ध्वनि की अनेक बार आवृत्ति होने से 'पटपट' का बोध होता है।

हि० 'पटपट' का अर्थ होता है—हल्की वस्तु के गिरने से उत्पन्न शब्द की आवृत्ति। स्पष्ट है कि हिन्दी ने ध्वनि के आधार पर ही अर्थ ग्रहण किया है। यथा, "रात्रि की निस्तब्धता में फलों के गिरने की पटपट ध्वनि गूँजती रही।"

विपरीत, ने० 'पटपट' का अर्थ होता है—धमाधम लाठी भाँजना। ने० श० पृ० 599। चूँकि लाठी के प्रहार से भी ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न होती है, अतएव नेपाली ने ऐसा अर्थ ग्रहण किया है। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि जहाँ हि० ने किसी भी हल्की वस्तु के गिरने से उत्पन्न ध्वनि की आवृत्ति अर्थ को ग्रहण किया, वहाँ ने० ने मात्र लाठी के गिरने जैसा अर्थ ग्रहण किया है। इस तरह स्पष्टतः ने० ने अर्थ का संकोच कर दिया है। यथा, "'जावो कुशलाई लिएर तिमीले पटपट लाठी हिर्काउनु ठीक होइन।" (छोटी बात को लेकर तुम्हारा धमाधम लाठी भाँजना ठीक नहीं है।)

पटुका (तद्०। सं० पटः>हि० II, ने० I)

श्री बालचन्द्र शर्मा 'पटुका' का विकास सं० 'पट्टिका' से मानते हैं। सं० हि० श० इसे सं० 'पटिका' से विकसित मानता है। टर्नर और डॉ० बाबूराम सक्सेना इसे सं० 'पटः' से विकसित मानते हैं।

सं० 'पटः' का अर्थ होता है—वस्त्र। सं० को० सु० पृ० 169।

हिन्दी 'पटुका' का अर्थ है---चादर, कमर में बाँधने वाला कपड़ा। ये दोनों अर्थ सं० 'वस्त्र' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि 'चादर' और 'कमर में बाँधने वाला कपड़ा' वस्त्र ही हैं। यथा, "देह पर एक पटुका डाले वह ठंड में घंटों घूमता रहा।"

विपरीत, ने० 'पटुका' का अर्थ है---कमर में बाँधनेवाला कपड़ा, कमरबन्द। ने० हि० को० पृ० 168। चूँकि 'कमर में बाँधनेवाला कपड़ा' भी वस्त्र का एक टुकड़ा होता है, इसलिए इसका विकास सं० 'वस्त्र' अर्थ से हुआ लगता है। ने० ने सामान्य 'वस्त्र' अर्थ को 'कमर में बाँधनेवाला कपड़ा' करके अर्थ संकुचित कर दिया है। हिन्दी 'चादर' अर्थ ने० में प्रचलित नहीं है। यथा, "एउटा हेर्दें, जण्ड मान्छेको पटुकामा खुकुरी घुसारि राखेको थियो।" (एक को देखा, क्रोधी मनुष्य ने कमरबन्द में खुकुरी सँभाल कर रखा था।) क० सं०। गो० पृ० 76। "अंधो हांस्दाहांस्दै धरैधरा भएको मैलो पटुकाको सात गांठा फुकाउँथ्यो।" (अंधा हँसते-हँसते चिथड़ा हुए मैले कमर में बँधे हुए कपड़े की सात गाँठों को खोलता था।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 65।

---(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

पट्टी (तद्० । सं० पट्टिका>हि० I, ने० I)

सं० 'पट्टिका' का अर्थ है---वस्त्र का टुकड़ा, रेशमी वस्त्र का टुकड़ा, तख्ती, पट्टी। एस-ई-डी-पी-310।

हिन्दी 'पट्टी' के अनेक अर्थ होते हैं। वे हैं---तख्ती या पाटी, सबक, उपदेश, बहकावा, धातु, कपड़े या कागज की धज्जी, कपड़े की किनारी, एक प्रकार की मिठाई, हिस्सा आदि। इनमें तख्ती या पाटी अर्थ सं० का ही है। 'सबक' और 'उपदेश' शायद पहले तख्ती पर लिखकर दिये जाते थे जिससे (तख्ती अर्थ से) इन अर्थों का विकास हुआ लगता है। 'बहकावा' अर्थ का सम्बन्ध भी सं० 'तख्ती' अर्थ से ही दीखता है, क्योंकि तख्ती पर कुछ लिखने के लिए देकर बच्चों को बहकावे में डाला जाता है। 'धातु' अर्थ सं० 'तख्ती' अर्थ से संभवतः इसलिए विकसित हुआ होगा कि बाद में तख्ती का काम धातु से लिया जाने लगा होगा। 'कपड़े या कागज की धज्जी' और 'कपड़े की किनारी' अर्थ पर सं० 'वस्त्र का टुकड़ा' अर्थ का प्रभाव दीखता है, क्योंकि इनमें कपड़े का समान भाव है और कागज भी कपड़े की तरह ही पतला और सपाट होता है। 'एक प्रकार की मिठाई' संज्ञा है, अतएव इसका सीधा सम्बन्ध सं० अर्थों से नहीं है, फिर भी छोटे-छोटे टुकड़े में विभाजित होने के कारण इसका सम्बन्ध सं० 'वस्त्र का टुकड़ा' अर्थ से (टुकड़ा का समान भाव होने के कारण) जोड़ा जा सकता है। इसी 'टुकड़ा' भाव के कारण 'हिस्सा' अर्थ आया लगता है। हि० 'पट्टीदार' शब्द जिसका विकास इसी 'पट्टी' शब्द से हुआ है, 'हिस्सेदार' अर्थ में व्यवहृत होता है। यथा, "वह तुम्हें क्या पट्टी (बहकावा) पढ़ा रहा था?"

ने० 'पट्टी' का अर्थ 'घाव बाँधने का कपड़ा', 'बैन्डेज' तक सीमित हो गया है। एन-एन-ई-डी-988। सं० 'वस्त्र का टुकड़ा' अर्थ में सामान्य टुकड़े का भाव है, पर ने० के इस अर्थ में मात्र ऐसे वस्त्र-खण्ड का जो घाव बाँधने के काम में आता है। इस तरह ने० में अर्थ का संकोच हो गया है। स्पष्ट है कि ने० ने हिन्दी के उपर्युक्त सभी अर्थों से

भिन्न अर्थ को ग्रहण किया है। वैसे 'मलहम-पट्टी' के प्रसंग में हिन्दी में भी पट्टी का ऐसा ही अर्थ होता है, पर सामान्यतया वस्त्र-खंड के रूप में ही इसका व्यवहार होता है। हि० में आँख पर भी पट्टी बाँधी जाती है, पर ने० में नहीं। यथा, "उसले आफ्ना सुकिसकेका दुवै पांसुला माथि-माथिसम्म पुग्नेगर फाटिसकेको पट्टी बेह्रेर राख्दथ्यो।" (वह अपने सूखे हुए दोनों पैरों को ऊपर-ऊपर तक के फटे हुए बैन्डेज को अलग कर रखता था।) लं० सा०। बां० पृ० 21।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

पाटा (तद्०। सं० पट्ट > हि० I, ने० II)

सं० 'पट्ट' का अर्थ होता है—लिखने की पट्टी, राजसिंहासन, चादर, ढाल, रेशम, किसी चीज की चिपटी आकृति, कुर्सी, चौराहा, शहर। एस-ई-डी-पी-310।

हि० 'पाटा' का अर्थ है—लकड़ी का पीढ़ा, दो दीवारों के बीच सामान रखने के लिए बनाया गया स्थान। लगता है कि सं० 'किसी चीज की चिपटी आकृति' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है, क्योंकि लकड़ी का पीढ़ा भी चिपटा होता है और दीवार के बीच सामान रखने के लिए बनाया गया स्थान भी। यथा, "वह पाटा पर बैठकर भोजन कर रहा था।"

विपरीत, ने० 'पाटा' का अर्थ होता है—चिपटी चीज की एक ओर का भाग। एन-एन-ई-पी-1028। स्पष्टतः यह अर्थ सं० 'किसी चीज की चिपटी आकृति' अर्थ से विकसित हुआ है, लेकिन अन्तर इतना आ गया है कि ने० ने किसी चीज के केवल एक ओर के भाग का अर्थ ग्रहण किया है, जबकि सं० में 'एक ओर का भाग' वाला भाव नहीं है। यथा, "……ढकढकाएको आवाज हुंदा रविले उठेर दैलोको एक पाटा खोलेर बाहिर हेर्‍यो।" (……ढकढकाने की आवाज होने पर रवि ने उठकर दरवाजे के एक भाग को खोलकर बाहर देखा।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 22।

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

पारिजात (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'पारिजात' का अर्थ होता है—एक देववृक्ष, स्वर्ग के पाँच वृक्षों में एक, सुगन्ध। एस-ई-डी-पी-333।

हि० 'पारिजात' का अर्थ होता है—एक देववृक्ष जो स्वर्ग में इन्द्र के नन्दन-कानन में है, हरसिंगार, कचनार, ऐरावत के कुल का एक हाथी, एक पहाड़, एक मुनि। इनमें प्रथम अर्थ सं० का ही है। 'हरसिंगार' या 'कचनार' अर्थ सं० 'देववृक्ष' अर्थ से ही विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि हरसिंगार का भी वृक्ष होता है। अन्य अर्थ संज्ञावाची हैं, अतएव बाद में आये हैं। यथा, "संध्या समय पारिजात की खुशबू से वातावरण गम-गमा उठा।"

विपरीत, ने० 'पारिजात' का अर्थ है—'एक तरह का सुगन्धित फूल का वृक्ष।' एन-एन-ई-पी-1036। ने० ने सं० के अन्य अर्थों का परित्याग करके 'एक देववृक्ष' अर्थ के 'वृक्ष' भाव को ग्रहण करके इस अर्थ को विकसित किया है। सं० 'देववृक्ष' अर्थ में 'वृक्ष' का जो सामान्य भाव है, उसे सुगन्धित फूलवाला 'वृक्ष' अर्थ में ने० ने संकुचित कर दिया

है। यथा, "पारिजातले गर्दा ने यस मन्दीरको शोभा बढ़ेको हो।" (पारिजात वृक्ष या पुष्प के कारण इस मन्दिर की शोभा बढ़ गई है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

पीढ़ी (तद्० । सं० पीठिका > हि० I ने० I)

सं० 'पीठिका' का अर्थ होता है—बैठने की जगह, बेंच, स्टूल, आधार, पीढ़ा, पुस्तक का विभाग। एस-ई-डी-पी-338।

हि० 'पीढ़ी' का अर्थ होता है—पुश्त, किसी विशेष व्यक्ति अथवा प्राणी का सन्तति-समुदाय, सन्तति, नस्ल, छोटा पीढ़ा। इनमें 'छोटा पीढ़ा' अर्थ सं० 'पीढ़ा' अर्थ से विकसित हुआ है, अन्तर इतना आया है कि हिन्दी ने सामान्य 'पीढ़ा' अर्थ को 'छोटा पीढ़ा' अर्थ में संकुचित कर दिया है। अन्य सारे अर्थ सं० 'आधार' अर्थ से विकसित मालूम होते हैं, क्योंकि सब में एक ही परिवार या वंश के आधार का भाव है। यथा, "रघु रामचन्द्रजी से कई पीढ़ी पूर्व ही पैदा हुए थे।"

विपरीत, ने० 'पीढ़ी' का अर्थ होता है—'घर के दरवाजे का सामनेवाला आँगन।' एन-एन-ई-पी-1047। सं० अर्थ 'बैठने की जगह' से इस अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि ऐसा आँगन भी बैठने के काम में आता है। फिर भी, ने० ने सामान्य 'बैठने की जगह' अर्थ को 'घर के दरवाजे का सामने वाला आँगन' अर्थ में संकुचित कर दिया है। यथा, "कतैबाट केही उत्तर न आएकोले उ अत्यन्त विकल भएर घरको पीढ़ीमा बसेर रुनलागी।" (कहीं से कोई उत्तर न आने पर वह अत्यन्त विकल होकर घर के सामने के आँगन में बैठकर रोने लगी।) मु०। बी० पी० को० पृ० 16।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

पोत (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'पोतः' का अर्थ—बालक, पशु का बच्चा, नाव, जहाज, कपड़ा, घर का स्थान, वृक्ष—होता है। सं० हि० को० पृ० 191।

हि० 'पोत' का अर्थ—पशु-पक्षी आदि का छोटा बच्चा, छोटा पौधा, कपड़े की बुनावट, बड़ी नौका, जहाज—होता है। हि० ने सं० 'बालक' अर्थ को 'पशु-पक्षी आदि का छोटा बच्चा' अर्थ में ग्रहण किया जिससे अर्थ-संकोच हो गया है। वैसे 'पशु का बच्चा' अर्थ सीधे सं० से आया भी माना जा सकता है, लेकिन 'पक्षी आदि का बच्चा' अर्थ का सम्बन्ध इस अर्थ से नहीं बैठता। सं० सामान्य 'नाव' अर्थ को हिन्दी ने 'बड़ी नाव' अर्थ में संकुचित कर दिया है—यह भी स्पष्ट है। 'छोटा पौधा' अर्थ सं० 'बालक' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में लघुता का भाव है। इसी तरह, हिन्दी ने सं० 'कपड़ा' अर्थ से 'कपड़े की बुनावट' अर्थ को विकसित किया लगता है, क्योंकि दोनों में कपड़ा विद्यमान है। यथा, "सामानों से लदा एक पोत (बड़ी नाव) आज भेजा गया।"

विपरीत, ने० 'पोत' का अर्थ है—दस वर्ष का हाथी, नाव, जहाज, कपड़ा, बच्चा। ने० श० पृ० 668। इनमें 'दस वर्ष का हाथी' अर्थ नया है जो सं० 'पशु का बच्चा' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में पशु होने का समान भाव है। फिर भी, सं० अर्थ से सभी पशुओं के बच्चे का बोध होता है, पर ने० के इस अर्थ से मात्र हाथी के बच्चे का और वह भी दस वर्ष के बच्चे (?) का। इस तरह ने० का यह अर्थ सं० की तुलना

में संकुचित हो गया है। अन्य अर्थ सं० के समान ही हैं, अतएव उनमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "आज विराटनगरको पशुमेलामा एउटा पोत बिक्रीकोलागि ल्याइएको थियो।" (आज विराटनगर के पशु-मेला में दस वर्ष का एक हाथी बिक्री के लिए लाया गया था।)
—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

बाबा (वि०। फा० > हि० ा, ने० ा)

फारसी 'बाबा' का अर्थ होता है—श्रेष्ठ, प्रतिष्ठित, साधु, फकीर। उ०हि०डि० पृ० 59।

हि० 'बाबा' का अर्थ है—पिता, पितामह, बूढ़ा पुरुष, साधु, संन्यासियों के लिए आदरसूचक शब्द। पिता, पितामह और वृद्ध पुरुष—सभी प्रतिष्ठित या श्रेष्ठ माने जाते हैं—सम्भवतः इसलिए फा० 'प्रतिष्ठित' या 'श्रेष्ठ' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ होगा। साधु-संन्यासियों के लिए इसका व्यवहार फा० 'साधु' अर्थ के कारण होने लगा होगा, क्योंकि दोनों अर्थ एक ही हैं। यथा, "तुम्हारे बाबा (पितामह) तो अब काशी में रहते हैं न?" "मन्दिर में एक बाबा (साधु) ठहरे हुए हैं।"

ने० 'बाबा' का प्रयोग पिता के समान पूज्य किसी व्यक्ति के लिए होता है। इसके अलावा, बच्चों को पुकारने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। एन-एन-ई-पी-1185। इनमें प्रथम अर्थ फा० 'प्रतिष्ठित' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि फा० और ने०—दोनों के अर्थों में प्रतिष्ठित या पूज्य होने का समान भाव है। फिर भी, फा० में जहाँ सामान्य रूप से 'प्रतिष्ठित' अर्थ है, वहाँ ने० में पिता के समान कोई पूज्य व्यक्ति अर्थ हो गया है। इससे अर्थ-संकोच का स्पष्ट पता चलता है। कभी-कभी बच्चे को पुकारने के लिए लोग आदरसूचक सम्बोधन का प्रयोग करते हैं—दूसरा अर्थ सम्भवतः इसी का परिणाम है। यथा, "जा जान्छस् भने, दिव्याका बाबासँग भन्।" (जाओ, जाओगे तो दिव्या के पिताजी से कहो।) आ० र० छ०। इ० अ० रा० पृ० 21। "के बाबा? —उम्लेर आएको मायालाई बिकल्गाएर लुकाउन ऊ असमर्थ भई।" (कौन बाबूजी? —उमड़ते हुए स्नेह को बेचैन होकर छिपाने में वह असमर्थ हो गई।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 77। "हुन्दैन बाबा अंध्यारो भैसक्यो......।" (यह नहीं होगा बच्चा, अँधेरा हो गया......।) उ० हृ० अ०। वि० धि० पृ० 44।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बारी (तद्०। सं० वाटी > हि० ा, ने० ा)

सं० 'वाटी' का अर्थ होता है—जमीन का वह हिस्सा जहाँ मकान बने, घर, आँगन, बगीचा, रास्ता, कमर, एक प्रकार का अनाज। सं० को० मु० पृ० 358।

सं० वाटी से विकसित हि० 'बारी' का अर्थ होता है—बगीचा, क्यारी, खिड़की, बन्दरगाह। इनमें 'बगीचा' अर्थ सं० का ही है और क्यारी अर्थ इससे विकसित लगता है। प्रायः बगीचे क्यारियों में विभक्त होते हैं, शायद इसी वजह से क्यारी अर्थ आया है। 'खिड़की' और घर में अंग-अंगी भाव है। 'बन्दरगाह' अर्थ सम्भवतः सं० 'घर' अर्थ से आया होगा, क्योंकि जहाजों के लिए बन्दरगाह ही घर है। यथा, "उसने अलग-अलग बारी (क्यारी) में अलग-अलग किस्म के फूल लगाये हैं।"

विपरीत, ने० 'बारी' का अर्थ होता है—सूखी जमीन, धान न लगनेवाली ऊँची जमीन या खेत, बगीचा। एन-एन-ई-पी-1183। ने० हि० को० पृ० 204। इनमें 'बगीचा' अर्थ सं० और हिन्दी दोनों में है। शेष दो अर्थ नए हैं जिनका विकास सं० 'जमीन का वह हिस्सा जहाँ मकान बने' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है। मकान प्रायः सूखी या ऊँची जमीन पर बनाया जाता है, संभवतः इसीलिए ऐसे अर्थ आये हैं। फिर भी यह ध्यान देने की बात है कि सं० अर्थ से ऊँची या नीची, सूखी या गीली जमीन का बोध नहीं होता, पर ने० में 'सूखी जमीन' और 'ऊँची जमीन' अर्थग्रहण के कारण अर्थ-संकोच हुआ है। यथा, "मालिक को बारीको ठिस्कोमा छिमेककका दुई तीन केटा आएर धनवीरलाई जिस्क्याउन थाली।" (मालिक की ऊँची जमीन के ढूह में पड़ोस के दो-तीन लड़के आकर धनवीर को चिढ़ाने लगे।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 104। "बारी-बारी चहारी हिड्नु……।" (ऊँची जमीनों पर घूमते फिरना……।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 13। "दुबै आलु-बारीतिर घुम्नेगए।" (दोनों आलू के खेत की ओर घूमने गए।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 155।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बाला (तत्स०। सं०—हि० II, ने० II)

सं० 'बाला' का अर्थ होता है—बालिका, लड़की, चमेली, घीकुवाँर, हल्दी, छोटी इलायची। सं० को० सु० पृ० 237।

हि० 'बाला' का अर्थ है—जवान स्त्री, पत्नी, सत्रह वर्ष तक की अवस्था की स्त्री, दो-तीन वर्ष की अवस्था की लड़की, पुत्री। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० 'बालिका' या 'लड़की' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि सब में औरत होने का सामान्य भाव है। सामान्य 'लड़की' अर्थ को हि० ने 'जवान स्त्री' या 'दो-तीन वर्ष तक की अवस्था की लड़की' अर्थ में संकुचित कर दिया है। यथा, "उस बाला (जवान स्त्री) का रूप बड़ा मनमोहक है।"

विपरीत, ने० 'बाला' का अर्थ है—12-13 से 16 वर्ष तक की युवती। ने० श० पृ० 747। सं० 'लड़की' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि युवती भी लड़की (मादा) ही होती है। फिर भी, ने० ने सामान्य 'लड़की' अर्थ को 12-13 से 16 वर्ष तक की उम्र के दायरे में लाकर संकुचित कर दिया है। यथा, "बालाभये पछि आमाबाबुलाई विवाह को चिन्ता पिराउँछ।" (12-13 वर्ष तक की युवती हो जाने पर माँ-बाप को विवाह की चिन्ता परेशान करती है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : सामान्य से विशेष)

बुकची (वि०। तु० बुक्चः>फा० बुग्चा>हि० I, ने० I)

फारसी 'बुग्चा' का अर्थ होता है—पोटली, गठरी। उ० हि० डि० पृ० 61।

हि० 'बुकची' का अर्थ है—छोटी गठरी, दर्जी की वह थैली जिसमें वे सुई-धागा रखते हैं। हिन्दी के ये दोनों अर्थ क्रमशः फा० 'गठरी' और 'पोटली' अर्थ से विकसित हुए हैं। इन अर्थों में स्पष्टतः गठरी और पोटली का भाव है। हिन्दी ने सामान्य 'गठरी' को 'छोटी गठरी' और सामान्य 'पोटली' को 'सुई-धागा रखने की पोटली' अर्थ कर लिया है जिससे अर्थ-संकोच हो गया है। यथा, "भिखारी की बाँह में एक बुकची (छोटी गठरी) लटकी हुई थी।"

विपरीत, ने० 'बुकची' का अर्थ है—सुई-धागा आदि रखने की छोटी थैली। एन-एन-ई-पी-1202। यह अर्थ फा० 'पोटली' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि ऐसी थैली भी एक तरह की पोटली ही है। सामान्य 'पोटली' अर्थ को 'सुई-धागा रखने की पोटली' अर्थ में ने० ने संकुचित कर दिया है और हिन्दी की तरह 'छोटी गठरी' अर्थ भी नेपाली में नहीं है। यथा, "दमाई आफ्नो बुकची लिएर आउंछ।" (दर्जी अपनी सुई-धागा की थैली लेकर आयेगा।)
— (हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

माणवक (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'माणवक' का अर्थ होता है—छोकड़ा, बौना, मूर्खराज, सोलह या बीस लरियों की माला। सं० को० सु० पृ० 282।

हि० 'माणवक' का अर्थ है—सोलह वर्ष की अवस्थावाला युवक, विद्यार्थी, निन्दित या नीच आदमी। इनमें 'सोलह वर्ष की अवस्थावाला युवक' और 'विद्यार्थी' अर्थ सं० 'छोकड़ा' अर्थ से विकसित हुए लगते है, क्योंकि 'छोकड़ा' अर्थ में अप्रौढ़ आदमी का भाव है और 16 वर्ष की अवस्था में युवक तथा विद्यार्थी अप्रौढ़ ही होते हैं। फिर भी, सामान्य छोकड़ा अर्थ को उक्त विशेष से युक्त करके और विद्या से जोड़कर अर्थ संकोच कर दिया गया है। 'निन्दित या नीच व्यक्ति' अर्थ सं० 'मूर्खराज' अर्थ से हीनता जैसे भाव के कारण आया लगता है। यथा, "आज के माणवक अपने सही मार्ग से भटके दीखते हैं।"

विपरीत, ने० 'माणवक' का अर्थ है—मूर्ख व्यक्ति। एन-एन-ई-पी-1334। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'मूर्खराज' से आया है। अतएव, ने० अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। वैसे, अन्य अर्थों का परित्याग करने के कारण अर्थ-संकोच माना जा सकता है। यथा, "तिमीजस्तो माणवकलाई शिक्षादिनु व्यर्थ छ।" (तुम्हारे समान मूर्ख व्यक्ति को शिक्षा देना बेकार है।)
—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

माना (तद्०। सं० मानं>हि० I, ने० I)

सं० 'मानं' का अर्थ होता है—मापना, माप, माप का स्तर, मापने की छड़, प्रमाण। एस-ई-डी-पी-435।

हि० 'माना' का अर्थ है—नापना, तौलना, जाँचना, अन्नादि नापने का पात्र जो लकड़ी, मिट्टी या धातु का बना होता है। ये सारे अर्थ सं० 'मापना' और 'माप' अर्थ से स्पष्टतया विकसित हैं। इनमें या तो तौलने या मापने का भाव है या माप का। सामान्य माप अर्थ को अन्नादि नापने का पात्र विशेष अर्थ कर देना अर्थ-संकोच है। यथा, "वह आज भी अन्नों को माना से मापकर बेचता है।"

विपरीत, ने० 'माना' का अर्थ है—एक माप जो आधा सेर या दस मुट्ठी के बराबर होता है। एन-एन-ई-पी- 1338। सं० 'माप' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों में 'माप' का समान भाव है। ने० ने सामान्य 'माप' अर्थ को 'आधा सेर वाला माप' विशेष अर्थ से संकुचित कर दिया है। यथा, "तर छिमेककाका गरीब दुखीहरूले माना मुठी पैंचा लगेको उठाउनमा हमेशा सतर्क रहन्थे।" (लेकिन पड़ोस के गरीब-दुखी लोग आधा सेर या मुट्ठी भर पैंचा लगी चीज को वसूलने में हमेशा सतर्क रहते थे।) बं०। लो० ब० क्ष० पृ० 5। "…घरपछाडि एक माना मकैको बीउ…" (घर

के पीछे आधा सेर मकई का बीज…") ने० सं०को०गी० । र०वि०पृ० 29। "आफैले पनि एक-पटक धान कुटाएको ज्याला डेढ माना चामल दिन सकिया थिएन।" (स्वयं आप ही एकबार धान कुटाने की मजदूरी तीन पाव चावल नहीं दे सका था।) ने० सं० को०गी० । र०वि०पृ० 100।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

मुखिया (तद्० । सं० मुख्य | इया>हि० I, ने० I)

सं० 'मुख्य' का अर्थ होता है—प्रधान, मुखिया । सं०को०सु० पृ० 289 ।

हिन्दी 'मुखिया' का अर्थ है—नेता, प्रधान, सरदार, अगुआ । इनमें 'प्रधान' अर्थ सं० का ही है और शेष अर्थ इससे विकसित जान पड़ते हैं। नेता, सरदार या अगुआ—सब में अन्य की अपेक्षा प्रधान व्यक्ति होने का भाव है, सम्भवतः इसीलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । यथा "आप लोग अपने मुखिया (नेता या सरदार) को बात करने के लिए भेजिए।"

ने० 'मुखिया' का अर्थ है—गाँव का प्रधान आदमी, लिपिक स्तर का पद विशेष, निम्न श्रेणी के क्षत्रियों के लिए मानबोधक शब्द । एन-एन-ई-पी-1357 । ने०हि०को०पृ० 238 । इन अर्थों पर सं० 'प्रधान' अर्थ का प्रभाव ज्ञात होता है। 'गाँव का प्रधान आदमी' अर्थ में प्रधान का भाव स्पष्ट है, नेपाल में लिपिक स्तर का आदमी भी प्रधान आदमी माना जाता है और निम्न श्रेणी के क्षत्रियों में जिस मान के लिए इसका प्रयोग होता है, वह मान निश्चय ही प्रधान व्यक्तियों को ही प्राप्य है । फिर भी, सामान्य प्रधान अर्थ की विशाल परिधि को इन अर्थों में संकुचित कर दिया गया है । यथा, "पैले-देखि नै एघार गाउँको मोटा मुखिया हाम्रो छुट्टै मुखिया।" (पहले से ही ग्यारह गाँव का प्रधान व्यक्ति हमारा (सबसे) भिन्न मुखिया।) उ०हृ०अ० । वि०धि० पृ० 13 । "हौन खरदार ले कुरा छेडिसक्यो मुखिया!" (नहीं खरदार ने बात चला दी है मुखिया।) (लिपिक स्तर का आदमी) । उ०हृ०अ० । वि०धि० पृ० 86।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

रुक्का (वि० । अ० रुकआ > हि० I, ने० II)

अ० 'रुकआ' का अर्थ है—परचा, पुरजा, पैबन्द, पत्र, चिट्ठी। उ०हि०डि० पृ० 278 ।

हि० 'रुक्का' का अर्थ है—छोटा पत्र या चिट्ठी, वह कागज जो ऋण देने वाला ऋण लेने वालों से ऋण के प्रमाणस्वरूप लिखवाता है। इनमें 'छोटा पत्र' अर्थ अ० 'पुरजा' अर्थ से भी विकसित हुआ हो सकता है और अ० 'चिट्ठी' अर्थ से भी। पुरजा में छोटेपन का भाव है और छोटे स्थानीय पत्र पुरजे में लिखकर भेजे जाते हैं, सम्भवतः इस भाव के कारण यह अर्थ आया हो। अ० 'चिट्ठी' से इसका सम्बन्ध सीधा है। ध्यातव्य है कि इस नए अर्थ को विकसित कर हि० ने अर्थ-संकोच कर दिया है। सामान्य 'पुरजा' अर्थ को मात्र 'छोटी चिट्ठी' अर्थ कर देना अर्थ-संकोच इसलिए है कि पुरजे में मात्र चिट्ठी ही नहीं लिखी जाती है, अन्य तरह की बातें भी लिखी जाती हैं। सामान्य 'चिट्ठी' अर्थ को 'छोटी चिट्ठी' कर देना स्पष्टतः अर्थ-संकोच

है। हि० का दूसरा अर्थ अ० 'पुरजा' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि दोनों में कागज का भाव है। इस अर्थ में भी खास मामला (ऋण के लेन-देन का मामला) को सम्बद्ध कर देने के कारण अर्थ-संकोच हो गया है। यथा, "वह बिना रुक्का लिखाए कर्ज नहीं देता है।"

विपरीत, ने० 'रुक्का' का अर्थ होता है—आदेश-पत्र। एन-एन-ई-पी-1429। स्पष्ट है कि यह अर्थ अ० 'पत्र' अर्थ से विकसित हुआ है, लेकिन ने० ने इसके साथ 'आदेश' का भाव जोड़कर सामान्य 'पत्र' अर्थ का संकोच कर दिया है। यथा, "म भोलि विराटनगर जान रुक्का पाएँ।" (मैंने कल विराटनगर जाने का आदेश पाया।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

संवरण (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'संवरण' का अर्थ है—ढकना, छिपाना, चुनना, बहाना करना। सं० को० सु० पृ० 508।

हि० 'संवरण' का अर्थ है—हटाना, आच्छादित करना, किसी चित्तवृत्ति को दबाना, चुनना, कन्या द्वारा विवाह के लिए पति चुनना। इनमें 'हटाना' अर्थ पर सं० 'छिपाना' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि किसी वस्तु को हटाकर भी छिपाया जाता है। 'आच्छादित करना' अर्थ में 'ढकने' का भाव स्पष्ट है, अतएव यह अर्थ सं० 'ढकना' अर्थ से आया है। 'किसी चित्तवृत्ति को दबाना' अर्थ का विकास सं० 'ढकना' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि चित्तवृत्ति को दबाकर उसी प्रकार छिपाया जाता है जिस तरह किसी वस्तु को ढककर। 'चुनना' अर्थ सं० का ही है और इसी से 'कन्या द्वारा विवाह के लिए पति चुनना' अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों में चुनने का भाव है। यद्यपि इस अर्थ से हि० में अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति उभरती है, फिर भी अन्य अर्थों के कारण अर्थ-विस्तार ही मुख्यतः दिखाई पड़ता है। यथा, "मैं मिठाई खाने का लोभ संवरण (चित्तवृत्ति को छिपाना) नहीं कर सका।"

ने० ने हिन्दी की तरह अनेक अर्थों को न ग्रहण करके एक मात्र एक अर्थ को विकसित किया है—पति को वरण करने का काम। एन-एन-ई-पी-1633। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'चुनना' अर्थ से आया है, लेकिन मात्र 'पति को चुनने' जैसा भाव के कारण अर्थ-संकोच हो गया है। यथा, 'आजका नारीलाई स्वइच्छाले संवरण को छूट दिनु समाजको धर्म हो।" (आज की नारी को अपनी इच्छा से पति चुनने की छूट देना समाज का धर्म है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

साग (तद्०। सं० शाक>हि० I, ने० I)

सं० 'शाक' का अर्थ होता है—साग, सब्जी, हरी तरकारी, सागवान का पेड़। सं०को०सु० पृ० 463।

हि० 'साग' का अर्थ है—तरकारी, पकाई हुई भाजी, पौधों की खाने योग्य पत्तियाँ। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, मात्र 'पकाई हुई भाजी' अर्थ नया है। यह अर्थ सं० 'सब्जी' अर्थ से विकसित हुआ जान पड़ता है, लेकिन हि० ने 'पकाई हुई

भाजी' अर्थ करके अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "उसकी थाली में पाँच तरह का साग परोसा गया।"

ने० में 'साग' का अर्थ है—ऐसी पत्तियाँ जो तरकारी में खायी जाती हैं अथवा तरकारी की पत्तियाँ। एन एन-ई-पी-1712। यह अर्थ सं० 'सब्जी' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि इसमें भी सब्जी होने का भाव है या ऐसी पत्ती भी सब्जी की तरह खाई जाती हैं। हिन्दी में 'साग' का अर्थ ऐसी पत्तियाँ भी है और सामान्य तरकारी भी, लेकिन ने० ने सामान्य सब्जी अर्थ से मात्र सब्जी योग्य पत्तियाँ अर्थ विकसित कर अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "योटा राया साग को योटा पातबार खाले खाए बीस रुपिया दण्ड गर्छन्।" (एक राई की तरकारी योग्य पत्ती को बकरे द्वारा खाने पर बीस रुपये जुर्माना करता है।) उ०हु०अ०। वि०घ्रि०पृ० 142। "के १ र, उही त होनी, आलु र साग पालुंगो को।" (क्या है रे, वही तो है न, आलू और पालक की पत्ती की तरकारी।) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 16। "...सागमा कीरा-केलाएर बसिरहन्थी।" ("...तरकारी वाली पत्ती में कीड़ा निकालकर बैठी थी।) न०स०को०गी०। र०धि० पृ० 16।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

स्थापना (तत्स० । सं० > हि०, II, ने० II)

सं० 'स्थापनम्' का अर्थ होता है—खड़ा करना, रखे रहना, निश्चय करना, दृढ़ करना। सं०का०सु०पृ० 585।

हि० 'स्थापना' का अर्थ है—प्रतिष्ठित करना, स्थिर करना, बैठाना, थापना, जमा करना, सिद्ध करना, प्रतिपादन करना, युक्ति, तर्क या प्रमाण द्वारा निश्चित मत। इनमें 'प्रतिष्ठित करना' अर्थ सं० 'खड़ा करना' से और 'स्थिर करना, बैठाना और थापना' अर्थ सं० 'दृढ़ करना' अर्थ से स्वाभाविक विकसित है, क्योंकि इनमें एक ही तरह के भाव हैं। हि० 'जमा करना' अर्थ सं० 'रखे रहना' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि 'जमा करना' में 'रखे रहना' का भाव है। अन्तिम तीन अर्थ सं० 'निश्चय करना' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि इन सभी अर्थों में निश्चय का भाव है। यथा, "इस सम्बन्ध में मेरी स्थापना यह है कि आज की नई कविता मात्र विदेशी अनुकृति है।"

ने० 'स्थापना' का अर्थ है—स्थायी रूप से रखना। इसके अलावा 'स्थिर करना' और 'ठीक से बैठाना' अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-1782। स्पष्ट है कि सं० 'रखे रहना' अर्थ को ही ने० ने 'स्थायी रूप से रखना' अर्थ के रूप में विकसित किया है, लेकिन 'स्थायी' का भाव आ जाने से अर्थ-संकोच हो गया है। 'स्थिर करना' और 'ठीक से बैठाना' अर्थ सम्भवतः सं० 'दृढ़ करना' अर्थ से आये हैं, क्योंकि इन सब में स्थिरता या निश्चलता का समान भाव है। ने० में औरत के प्रसङ्ग में 'स्थापना' का अर्थ 'विवाह करना' या 'स्थायी रूप से रखना' अर्थ हो जाता है जो अर्थ हिन्दी से सर्वथा भिन्न है। यथा, "मलाई स्वास्नी स्थापना गर्नु मा विश्वास थिएन...।" (मुझे स्थायी रूप से औरत रखने में विश्वास नहीं था...।) शि०फू०। पा० पृ० 37।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

आ : ङ—विभेदीकरण : अर्थ-संकोच

जब किसी तरह आपस में मिलने-जुलने वाले अनेक पदार्थों के लिए या किसी

अस्पष्ट या सामान्य विचारों के लिए कोई शब्द प्रयुक्त होता है तो किसी क्षण ऐसा हो सकता है कि वह उनमें से किसी 'एक' पदार्थ या 'एक' विचार की अभिव्यक्ति के लिए व्यवहृत होकर संकुचित हो जाय और यदि वह विशिष्ट प्रयोग भाषा में प्रचलित हो जाय तो एक नया और संकुचित अर्थ आ जाता है।[1]

श्री श्यामसुन्दर दास के अनुसार, "धात्वर्थ के अनुसार अथवा किसी ऐतिहासिक कारण से जो शब्द एक बार पर्याय रहते हैं या देखने में पर्याय मालूम पड़ते हैं, वे ही शब्द जिस व्यवस्थित प्रक्रिया के द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों में आने लगते हैं, उनको कहते हैं—भेदीकरण अथवा भेदभाव का नियम।"[2] इसी विभेदीकरण की प्रवृत्ति के कारण कभी-कभी अर्थ का संकोच भी हो जाता है।

विदेशी भाषा से आये शब्दों के कारण भी विभेदीकरण होता है और कभी-कभी स्वयं उसी तत्सम शब्द से निकले तद्भव शब्द में भी यह नियम काम करता है।

विभेदीकरण का मुख्य कारण यह है कि मनुष्य अनेक पर्यायवाची शब्द के बोझ को नहीं ढो पाता और अनेकार्थी शब्दों से भी कठिनाई महसूस करता है। अतएव, विभेदीकरण के द्वारा वह उन पर्यायवाची शब्दों के अर्थों में फर्क लाकर अर्थ को संकुचित कर देता है और अनेकार्थी शब्द को एकार्थी बना देता है।

कट्टा (तद्० । सं० कट्ट+हि० आ (प्रत्यय) > हि० ।, ने० ।)

सं० 'कट्ट' धातु में हिन्दी 'आ' प्रत्यय के लगने से 'कट्टा' शब्द बना है। सं० 'कट्ट' का अर्थ होता है—ढेर लगाना।

हिन्दी ने ढेर लगाने का विशेष अर्थ ताकत की ढेर या मांस आदि का आधिक्य को ग्रहण कर इसका अर्थ कर लिया है—मोटा-ताजा, बलवान। इस तरह हि० अर्थ का अर्थादेश हो गया है। यथा, "क्या कट्टा शरीर मिला है उसको।"

विपरीत, ने० में 'कट्टा'—'कटा हुआ' या 'चुकता' अर्थ में व्यवहृत होता है। ने० हि० को० पृ० 27। सं० 'कर्तन' से ने० 'काट्नु' क्रिया का विकास हुआ है। कुछ लोग ने० 'कट्टा' का विकास 'काट्नु' से होना बतलाते हैं, लेकिन 'काट्नु' (=काटना) का सम्बन्ध 'कटा हुआ' अर्थ से तो ठीक बैठ जाता है, पर 'चुकता' से ठीक नहीं बैठता।

---

1. "When a word is equally applicable to a number of different objects which resemble each other in some respects, or to a vague or general category of ideas, it may at any moment become specialized by being used to name 'One' of those objects or to express 'One' of those ideas. And if this particular application gains currency in the language, new and specialized sense is the result."—J. B. Greenough & G. L. Kittredge—Words and their Ways in English Speech, p. 248.

2. भाषाविज्ञान, पृ० 192।

इसलिए, मेरा विचार है कि इसका विकास सं० 'कट्टा' से ही मानना चाहिए। चूँकि अनाज को काटकर लोग ढेर लगाते हैं, सम्भवतः इसी भाव के कारण सं० 'ढेर लगाना' अर्थ से 'कटा हुआ' अर्थ विकसित हुआ होगा। साथ ही, ऋण में लिये गये द्रव्यों को महाजन के पास ढेर लगा देना या वापस कर देना ही 'चुकता' कहलाता है, अतएव 'चुकता' अर्थ आया होगा। यथा, "अण्डैमा खाको जग्गाको पनि सैकडा दशमन्दा बढी खाको जति थैलीमा कट्टा हुनेहो कि कसो हो हुजुर।" (खाने के निमित्त जमीन का भी सैकड़ा दस से ज्यादा (लिये गये) मूलधन में चुकता होगा कि कैसा होगा हुजुर।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 67। "दुग्धविकास आयोगले किसानहरूलाई तीनवर्षमा कट्टा हुनेगरि भैंसी किन्न का निमित्त ऋण दिने गरेको छ।" (दुग्धविकास आयोग किसानों को तीन वर्षों में चुकता कर देने के लिए भैंस खरीदने हेतु ऋण देता है।)

स्पष्ट है कि ने० ने 'ढेर लगाना' अर्थ को मात्र लगा-पैसा या ऐसी ही कर्ज में ली गई वस्तु को महाजन के पास ढेर लगाने के अर्थ में संकुचित कर निभेद उत्पन्न कर दिया है। —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

कति (तत्स० । सं० —हि० 1, ने० 1)

सं० 'कति' का अर्थ होता है—कितने, कुछ। सं० को० सु० पृ० 77।

हि० 'कति' का अर्थ है—कितना, कुछ, कौन, बहुत-से। इनमें 'कितना' और 'कुछ' अर्थ सं० के समान ही है और 'कितना' की परिमाणात्मकता के कारण 'बहुत से' अर्थ आया लगता है। 'कति' का प्रयोग मुख्यतः हिन्दी की ग्राम्य भाषाओं में होता है। इसी 'कति' से बना शब्द 'कतिपय' का प्रयोग भी 'कुछ' या 'कई एक' के अर्थ में होता है। यथा, "उसे कति बार समझाया, पर उसने बात न मानी।"

ने० 'कति' का अर्थ होता है—कितना। ने० हि० को० पृ० 28। यह अर्थ सं० का ही है। ने० ने अन्य अर्थों का परित्याग करके अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति दिखाई है। 'कुछ' से इसका अर्थ भिन्न है, अतएव [illegible] आ गया है। यथा, "हिउंदलागेपछि कतिपहाडवासीका मानिसहरू कति नवयौवना रमाउँदै हातमालो गरी सीमाना काटेर मुगलान पस्थे।" (शरद आने पर कितने पहाड़वासियों के मनुष्य, कितनी युवतियाँ आनन्द मनाते हुए हाथ में हाथ डालकर सीमा पार करके भारत में प्रवेश करते थे।) मु० बा०। बा० पृ० 1। "फूलबारे तपाईं कति चाँडै जीवनको थोत्रो दर्शनतिर भाग्नुभयो।" (फूल से आप कितना शीघ्र जीवन के शुष्क दर्शन की ओर भाग गये।) शि० फू०। पा० पृ० 15। —(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

के (तद्० । सं० किम् —हि० 1, ने० 1)

सं० 'किम्' का अर्थ होता है—प्रश्न, वितर्क, निषेध, निन्दा अर्थ में, कौन, क्या। सं० को० सु० पृ० 90।

हिन्दी में 'के' दो अर्थों में प्रयुक्त होता है—एक सम्बन्धकारक की विभक्ति के रूप में और दूसरा 'कौन' अर्थ में। 'कौन' अर्थ स्पष्टतः सं० का है और हिन्दी की बोलियाँ—भोजपुरी और मगही में मुख्य रूप से इसका प्रयोग होता है। चूँकि प्रश्नादि का सम्बन्ध किसी व्यक्ति से होता है, संभवतः इसी भाव के कारण सम्बन्धकारक की

विभक्ति के रूप में इसका प्रयोग होने लगा होगा। यथा, "किसके कहने से तुमने ऐसा किया ?", "राम के सारे मजदूर कामचोर हैं।"

विपरीत, ने० 'के' का अर्थ है—क्या। एन-एन-ई-पी-282। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० का ही है। ने० ने अन्य अर्थों का परित्याग कर दिया है, इस तरह अर्थ-संकोच स्पष्ट है। सं० 'प्रश्न' अर्थ को मात्र 'क्या' अर्थ के द्वारा विभेदीकरण किया गया है, क्यों कि प्रश्न के लिए मात्र 'क्या' सर्वनाम का ही प्रयोग नहीं होता। यथा, "मैले ता तिमी-हरूको केही बिगार गरेको छैन, मेरो पीठपछि तिमीहरू के-के कुरा गर्छौ ?" (मैंने तो तुम लोगों का कुछ बिगाड़ा नहीं है, मेरे पीठ पीछे तुम लोग क्या-क्या बात करते हो ?) मु० बा०। बां० पृ० 12। "ज्ञानीले झर्केर भनी—'के' ?" (ज्ञानी ने जलकर कहा—क्या?) क० सं०। गो० पृ० 14। "के पशु जगत् र मानव समाजको भेद देखाउंदैन सीता ?" (क्या पशु-जगत् और मानव-समाज का भेद नहीं दिखाई देता सीता ?) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 33।

—(हि० अर्थ-विस्तार : भावान्तरण)

गति (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'गतिः' का अर्थ है—चाल, प्रवेश, ज्ञान, दशा, यात्रा, उपाय, प्राप्ति, कर्म-फल। सं० को० सु० पृ० 107।

हि० 'गति' का अर्थ—गमन, चाल, हरकत, दशा, अवस्था, चेष्टा, रूपरग, अन्तिम उपाय, सहारा, ढंग, मोक्ष, पैंतरा आदि—होता है। इनमें 'गमन, चाल, दशा, अवस्था, अर्थ सं० के ही हैं क्योंकि गमन और चाल तथा दशा और अवस्था समानार्थी हैं। 'हरकत' अर्थ सं० 'चाल' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में गत्यावस्था में आने का भाव है। हि० 'चेष्टा' अर्थ पर सं० 'उपाय' अर्थ का प्रभाव जान पड़ता है। ऐसा इसलिए कि चेष्टा करके ही लोग कोई उपाय निकालते हैं। हि० ने सं० 'उपाय' अर्थ को ही संकुचित करके 'अन्तिम उपाय' अर्थ विकसित किया है—यह स्पष्ट है। 'रूपरग' अर्थ सं० 'दशा' अर्थ से इसलिए आया लगता है कि जैसा रूपरग होता है, वैसी ही दशा मानी जाती है। इसी तरह समान भाव के कारण सं० 'कर्मफल' अर्थ से हि० 'मोक्ष' अर्थ का विकास हुआ लगता है। यथा, "उसकी देह में कोई गति (हरकत) ही नहीं हो रही थी।"

विपरीत, ने० में 'गति' का अर्थ-संकोच सा हो गया है। इसमें मुख्यतः 'अवस्था' और 'मुक्ति' अर्थ विकसित हो गये हैं। कहीं-कहीं 'गमन' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-379। स्पष्ट है कि ने० 'अवस्था' अर्थ सं० 'दशा' का समानार्थी है और 'मुक्ति' अर्थ सं० 'कर्मफल' से आया है, क्योंकि 'मुक्ति' भी कर्मफल के रूप में ही प्राप्त होती है। 'गमन' अर्थ सं० चाल का समानार्थी है। अन्य अर्थों का परित्याग करके ने० ने अर्थ-संकोच कर लिया है—यह भी स्पष्ट है। यथा, "पतिको जे गति मेरो पनि त्यही गति।" (पति की जो अवस्था (हालत) वही मेरी भी अवस्था।) न० द्रा०। वि० प्र० को० पृ० 86। "अब तपाईको कविताको के गति होला ?" (अब आपकी कविता की क्या हालत (अवस्था) होगी।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 71। "आफू न गई, महीना-वारीन आउने, आफ्नो भने यो गति।" (स्वयं के न जाने से, मासिक वेतन नहीं आने से अपनी यह हालत।) क० सं०। गो० पृ० 3।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

ताना (तद्० । सं० तानः > हि० I, ने० II)

सं० 'तानः' का अर्थ—धागा, गाने की लय, फैलाव और ज्ञान का विषय—होता है। एस-ई-डी-पी-232।

हि० में 'ताना' का व्यवहार—'कपड़े की बुनावट में लम्बाई के बल के सूत' और 'दरी या कालीन बुनने का करघा' अर्थों में होता है। इनमें प्रथम अर्थ सं० 'फैलाव' अर्थ से और दूसरा अर्थ सं० 'धागा' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि लम्बाई के बल के सूत कपड़े का 'फैलाव' सूचित करते हैं और दरी या कालीन को करघा पर सूतों के सहारे ही तैयार किया जाता है। यथा, "वह उलझे हुए तानों को ठीक कर रहा है।"

विपरीत, ने० 'ताना' का अर्थ होता है—मन की लहर, धुन, लय, करघे में लम्बाई के बल फैलाया गया सूत। ने० हि० को० पृ० 133। इनमें 'मन की लहर' या 'धुन' अर्थ सं० 'गाने का लय' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि गाने की लय से मन में भावों का जन्म होता है और 'धुन' अर्थ 'लय' का लगभग समानार्थी है। अन्तिम अर्थ हिन्दी की तरह ही सं० 'फैलाव' अर्थ से आया हुआ प्रतीत होता है। ने० ने 'लय' अर्थ से 'धुन' और 'मन की लहर' अर्थ विकसित करके विभेद उत्पन्न कर दिया है। यथा, "तर फेरि [illegible] भाइ कहाँ भयो कि भन्ने ताना [illegible] ओझेलमा [illegible]।" (लेकिन फिर [illegible] का क्या हुआ कि धुन उठने के साथ भूख गायब हो गई।) उ० हु० अ०। वि० वि० पृ० 11। "हामी एक अर्काको [illegible] ताना-ताना मा किन अड्नु परेको छ ?" (हमें एक-दूसरे की अस्थिर (मन की) लहरों में क्यों रुकना पड़ता है?) शि० फू०। पा० पृ० 86। —(हि० अर्थ संकोच : विभेदीकरण)

धार (तत्स० । सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'धार' का अर्थ होता है—पकड़ना, भार ढोना, मदद करना, बहना, झरना, वर्षा का अचानक जोरदार बरसना, बर्फ, समुद्र, गहरी जगह, कर्ज, किनारा, सीमा। एस-ई-डी-पी-272।

हि० 'धार' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—जोर की वर्षा, ऋण, प्रदेश, जल-प्रवाह, सोता (चश्मा), हथियार का किनारा, किनारा, सेना, ओर। इनमें 'प्रदेश' अर्थ स्थानवाची होने के कारण सं० 'गहरी जगह' अर्थ से और 'हथियार का किनारा' अर्थ सं० 'किनारा' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। हि० ने सं० के सामान्य 'किनारा' भाव को हथियार के संदर्भ में लेकर 'हथियार का किनारा' अर्थ विकसित कर लिया है जिससे अर्थ-संकोच हो गया है। हि० 'सेना' अर्थ सं० 'मदद करना' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि देशरक्षा के अलावा बहुत सारी संकटकालीन घड़ियों में सेना मदद करती है। हि० 'ओर' अर्थ का सम्बन्ध सं० 'बहना' अर्थ से मालूम पड़ता है, क्योंकि बहने की कोई न कोई दिशा होती है। शेष अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "वह तलवार की धार तेज करा रहा है।"

विपरीत, ने० 'धार' का अर्थ है—'पानी की धारा।' मुख्यतः इसी अर्थ में ने० 'धार' का प्रयोग होता है, फिर भी 'किनारा' और 'रेखा' के अर्थ में कहीं-कहीं प्रयोग

देखा जाता है। एन-एन-ई-पी-901। अन्य अर्थों का परित्याग करके मात्र 'पानी की धारा' तथा एक-दो अन्य अर्थ ग्रहण करने के कारण अर्थ संकोच हो गया है। सं० 'बहना' अर्थ को 'पानी की धारा' अर्थ में सीमित कर विभेद कर दिया गया है। यथा, "...... दुई धारमा रोकिंदै रोकिंदै भए पनि अन्तमा म फेरि उही ठाउँमा आइपुगें।" (...दो धाराओं में बहते हुए भी अन्त में मैं फिर उसी स्थान से वहाँ गया।) भि० कृ०। पा० पृ० 79। "हामीले कोशीधारमा खूब डुबुल्की मार्‍यौं।" (हमने कोशी की धारा में खूब रम लेकर नहाया।) न० दा०। बि० प्र० को० पृ० 34।

—(हि० [illegible] : अर्थसंकोच)

नीति (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'नीतिः' का अर्थ होता है—आचार-व्यवहार, पथ-प्रदर्शन, कार्य-पद्धति, नियम, तौर-तरीका, योजना, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र, देना आदि। एस-ई-डी-पी-301।

हि० 'नीति' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—ले जाने या ले चलनेवाला भाव, व्यवहार की रीति, सामाजिक व्यवहार, सदाचार, राजनीति, राजविद्या, राज्य की रक्षा के लिए काम में लाई जानेवाली युक्ति, उपाय, आचार-विचार, आचरण के सिद्धान्त। ये सारे अर्थ समान भाव के कारण स्पष्टतः सं० आचार-व्यवहार, पथ-प्रदर्शन, राजनीतिशास्त्र, आचारशास्त्र अर्थों से सम्बद्ध हैं। फिर भी सं० 'राजनीतिशास्त्र' अर्थ से राजनीति, राजविद्या और राज्य की रक्षा के लिए काम में लाई जानेवाली नीति अर्थ विकसित करके हि० ने विशेषीकरण का नमूना पेश किया है। यथा, "इस सम्बन्ध में सरकारी नीति अस्पष्ट है।"

विपरीत, ने० 'नीति' का अर्थ होता है—आचार या कार्य-पद्धति। एन-एन-ई-पी-967। ने० ने अन्य अर्थों का परित्याग कर दिया है और अन्य अर्थों से इन अर्थों में पार्थक्य (विभेद) कायम कर लिया है। यथा, "उही ओंसी रात हो जब हरि नीतिप्रति को द्वन्द्वमा रहन्छ, अनित्यो छाया र आलोकमा आन्दोलित हुन्छ।" (वही चाँदनी रात है जब हरि कार्य-पद्धति या आचार सम्बन्धी द्वन्द्व में रहता है, अनित्य छाया और प्रकाश में आन्दोलित होता है।) मा० प०। चाँ० पृ० श।

—(हि० अर्थ विस्तार : विशेषीकरण)

पत्र (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'पत्र' का अर्थ होता है—पत्ता, पंखुरी, चिट्ठी, डैना, तीर में लगा हुआ पंख, तलवार की धार, छुरी, छुरा, लिखने का पत्ता या कागज। एस-ई-डी-पी-312।

हि० 'पत्र' का अर्थ है—पत्ती, दल, लिखा हुआ कागज, चिट्ठी-पत्री, समाचार-पत्र, पन्ना, अभिलेख, तीर या पक्षी का पंख, धातु की चद्दर। इनमें 'लिखा हुआ कागज, समाचार-पत्र, पन्ना, अभिलेख' अर्थ सं० 'लिखने का कागज' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि इन सभी अर्थों में 'कागज' का भाव है। 'कागज' चूंकि पतला और लम्बा-चौड़ा होता है, अतएव इसी सादृश्य के आधार पर हि० 'धातु की चद्दर' अर्थ का विकास हुआ होगा। अन्य अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "आज का पत्र (समाचार पत्र) भी तक आया नहीं है।"

विपरीत ने० 'पत्र' का अर्थ है—समाचार-पत्र, पन्ना, परत। ने०हि०को० पृ० 170। सं० 'लिखने का कागज' अर्थ को संकुचित कर 'समाचार-पत्र' और 'पन्ना' अर्थ विकसित हुए होंगे, ऐसा प्रतीत होता है। ने० 'परत' अर्थ सं० 'पंखुरी' अर्थ से आया होगा, क्योंकि पंखुरियों में अनेक परतें होती हैं। ने० के 'परत', 'समाचार-पत्र' और 'पन्ना' अर्थ में अर्थ-संकोच का पता चलता है, 'पंखुरी' में परत का सामान्य भाव है, पर ने० ने इसे अलग कर विभेद उत्पन्न कर दिया है। यथा, "बिरामी जति जति मृत्युको मुखमा जानलाई अन्तरमा बलजत्था गर्न खोजिरहेको थियो, त्यतितिनका झिमिक्क गर्न न चाहने आंखामा आंसुको पत्र चम्कन थाल्यो।" (बीमार (आदमी) मृत्यु के मुख में जाने के लिए अन्तर में जितना बल लाने का प्रयत्न करता था, उतना ही उसके बन्द न करने की इच्छावाली आँखों में आँसुओं की परत चमकने लगती थी।) क०सं०। गो० पृ० 45। "हृदय को गाल पत्र-भित्र एकदिन पहलाएर आएको त्यो अंकुर सुकेर त्यसै मर्नेभयो त?" (हृदय की गाल तह के भीतर एक दिन अंकुरित हुआ फिर सूखकर उसी प्रकार मृत हो गया न?) मा०मा०। बां० पृ० 44।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

पर (तत्स०। सं० > हि०, II ने० I)

सं० 'पर' का अर्थ होता है—दूसरा, दूर, उस ओर, पश्चात्, श्रेष्ठ, अपरिचित, शत्रु, अन्तिम, तत्पर। सं०को०मु० पृ० 172।

हि० 'पर' का प्रयोग—गैर, अन्य, भिन्न, पीछे का, अलग, श्रेष्ठ—अर्थों में होता है। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० से आए हैं। यथा, "तुम्हें स्व और पर की पहचान नहीं है।"

विपरीत, ने० 'पर' का अर्थ है—अलग, अन्य, दूसरा। एन-एन-ई-डी—997। इनमें 'अलग' अर्थ सं० 'दूर' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि 'अलग' में दूरी का भाव है। 'अन्य' अर्थ सं० 'दूसरा' अर्थ से आया होगा, क्योंकि जो अपने नहीं होते या दूसरे होते हैं, उन्हीं के लिए अन्य का प्रयोग होता है। इस तरह 'अन्य' और 'अलग' अर्थ ग्रहण करके ने० ने विभेद कर दिया है। यथा, "उसको स्पर्शबाट जोगिदै पुलोमा अलि पर सरी।" (उसके स्पर्श से बचने के लिए पुलोमा थोड़ा अलग हट गई।) मु०। बी० पी० को० पृ० 102। "होइन, परका डेरामा आजै नपुगी हुँदैन।" (नहीं होगा, दूसरे डेरे में आज ही बिना पहुँचे नहीं होगा।) मु० आ०। बां० पृ० 23।

पल्ला (तद्०। सं० पटल > हि० I, ने० I)

सं० 'पटल' का अर्थ होता है—छप्पर, पर्दा, घूँघट, समूह, खोल, परिमाण। एस-ई-डी-पी-310।

सं० 'पटल' से विकसित हि० 'पल्ला' का अर्थ होता है—दुपल्ली टोपी के दो भागों में से एक, किवाड़, पलड़ा, तीन मन का बोझ, चद्दर, रजाई या दुलाई के ऊपर का कपड़ा, धोती का एक फर्द आदि। हि० का प्रथम अर्थ सं० 'छप्पर' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि टोपी का हर भाग 'छप्पर' की तरह तिरछा होता है और सिर ढकने के काम में आता है। हि० 'किवाड़' या 'पलड़ा' अर्थ सं० 'पर्दा' अर्थ से आया होगा,

क्योंकि 'किवाड़' भी घर की चीजों की रक्षा परदे की तरह करता है। परिमाणबाचक होने के कारण 'तीन मन का बोझ' अर्थ सं० 'परिमाण' से आया लगता है। 'बद्दर' या 'रजाई के ऊपर का कपड़ा' अर्थ सं० 'खोल' से इसलिए आया लगता है कि ये चीजें भी खोल की तरह व्यवहृत होती हैं। 'धोती का एक फर्द' में 'एक' का भाव है जिससे यह सं० 'परिमाण' से आया लगता है। यथा, "किवाड़ का पल्ला अब तक तैयार नहीं हो सका है।", "एक पल्ला धोती दीजिये।"

ने० 'पल्ला' का अर्थ है—रजाई या दुलाई का खोल, द्वार। 'तराजू का पलड़ा' भी एक अर्थ है, पर यह 'पल्ला' सं० 'पटल' से विकसित नहीं हुआ है। ने०श० पृ० 627। स्पष्ट है कि ने० ने अन्य अर्थों का परित्याग करके अर्थ-संकोच कर दिया है। ये अर्थ हि० की तरह ही क्रमशः सं० 'खोल' और 'पर्दा' अर्थ से आए लगते हैं। यथा, "एउटा पल्ला लागेपछि रजाई धेरै दिन चल्छ।" (एक खोल लग जाने से रजाई बहुत दिनों तक चलती है।) —(हि० और [illegible] : [illegible])

पाती (तद्० । सं० पत्रं : हि० I, ने० II)

सं० 'पत्रं' का अर्थ—पत्ता, डैना, पंखुरी, चिट्ठी आदि होता है। सं० को० मु० पृ० 170।

हिन्दी 'पाती' का अर्थ 'चिट्ठी' या 'पत्ता' होता है। स्पष्ट है कि ये दोनों अर्थ सं० के ही हैं। यथा, "आपकी पाती कल मिली।"

विपरीत, ने० 'पाती' का अर्थ हि० की तरह 'चिट्ठी' न होकर मात्र 'पत्ता' और 'फूल' होता है। (विशिष्ट रूप से देवताओं को चढ़ाया जाने वाला।) एन-एन-ई-पी-1031। स्पष्ट है कि इन अर्थों पर सं० 'पत्ता' अर्थ का प्रभाव है, संभवतः सामीप्य सम्बन्ध के कारण 'फूल' अर्थ भी विकसित हो गया है। देवताओं पर चढ़ाया जाने वाला भाव सामान्य अर्थ में विभेद उत्पन्न कर देता है। यथा, "यसैले सधैंको भन्दा धेरै एक अंजुलि नै पाती ल्याएर बरबर झारेर चढ़ायो। (…इसी तरह सब दिन से ज्यादा एक अंजलि फूल-पत्ती लाकर लगातार गिराकर चढ़ा दिया।) उ०हु०अ०। बि०चि० पृ० 52। "पाती काटेर हालिदियो ती खाइ रहन्छन ।" ("पत्ता काटकर रख दिया था, वही खा रहा है…।") बं०। ली०ब०श० पृ० 44।

बतास (तद्० । सं० वात: > हि० I, ने० I)

सं० 'वात:' का अर्थ होता है—हवा, वायुदेव, शरीर के तीन विकारों (पित्त, वात और कफ) में से एक, वातजनित गठिया आदि बीमारी। सं०को०मु० पृ० 359।

हि० 'बतास' का अर्थ होता है—बात का रोग, गठिया, वायु। स्पष्टतः ये अर्थ सं० के ही हैं। यथा, "बतास (गठिया) के कारण वह उठ-बैठ नहीं सकता।"

विपरीत, ने० 'बतास' का अर्थ है—वायु। एन-एन-ई-पी-1149। हिन्दी की तरह 'गठिया' अर्थ ने० में नहीं होता। ने० ने सं० के अन्य अर्थों का परित्याग कर अर्थ-संकोच कर दिया है। 'वायु' अर्थ स्पष्टतः सं० का ही है। यथा, "औ बतास त्यसबाट भएर जाने वित्तिकै त्यो नष्ट हुन्छ।" (और हवा के उससे होकर जाने मात्र से वह नष्ट

होता है।) आ०र०क०।इ०ब०ग० पृ० 153। "नीला पहाडहरूको नीला छाया... मनपर्दो बतास, तर सम्झँदा सम्झँदै विरक्त लाग्यो।" (नीले पहाड़ों की नीली छाया... मनपसन्द हवा, लेकिन याद करते-करते विरक्ति होने लगी।) शि०फू०। पा० पृ० 70। "चैते बतासले फूलका सिन्कालाई हल्लाइरहेको थियो।" (चैत (महीने) की हवा फूल के छोटे-छोटे पौधों को हिला रही थी।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 76।

बत्ती (तद्० । सं० वर्तिका>हि० I, ने० I)

सं० 'वर्तिका' का अर्थ होता है—चिराग की बत्ती। सं०को०सु० पृ० 347।

हि० 'बत्ती' का अर्थ होता है—चिराग जलाने के लिए रूई या सूत का बँटा हुआ लच्छा, मोमबत्ती, दीपक, रोशनी, पलीता, पतले छड़ या सलाई के आकार में लाई हुई कोई वस्तु, घाव भरने की बत्ती। इनमें 'मोमबत्ती, दीपक, रोशनी, पलीता' अर्थ सं० 'चिराग की बत्ती' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि इनमें अंग-अंगी भाव है। पतले छड़ आकार की कोई वस्तु जैसा अर्थ सं० 'चिराग की बत्ती' अर्थ से रूप-साम्य के कारण आया लगता है। अन्य अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "एक बत्ती (पतले आकार की कोई वस्तु) लेकर उसने ऊपर से कागज़ उतार लिया।"

ने० 'बत्ती' का अर्थ है—दीप, चिराग, लालटेन, टार्च, मशाल, प्रकाश, उजाला करने का साधन। ने० श० को० पृ० 1150। ये सारे अर्थ सं० 'चिराग की बत्ती' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि सभी प्रकाश से सम्बद्ध हैं। ने० ने सं० के अन्य अर्थों का परित्याग करके मात्र एक ही तरह का अर्थ ग्रहण किया है और उनमें भी विभेद उत्पन्न कर दिया है। हि० की तरह 'रूई या सूत का बँटा हुआ लच्छा' अर्थ ने० में प्रचलित नहीं है और ने० की तरह प्रकाश करनेवाले हर साधन (टार्च, मशाल को भी) को हि० में 'बत्ती' नहीं कहते हैं। यथा, "बत्तीको पियाजी रंगको लाइटमा नयाँ सडक को रात बिस्तारै सिमटिँदै थियो।" (लालटेन की पियाजी रंग की रोशनी में नई सड़क की रात धीरे से सिमट रही थी।) शि०फू०। पा० पृ० 78। "लाल बत्तीलाई ताकिरहेको थियो।" (लाल प्रकाश को देख रहा था।) क०सं०। सो० पृ० 4। "बत्ती हेर्न जाने रे?" (प्रकाश देखने जाओगे रे?) मा०भ०। बा० पृ० 35।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बरा (तद्० । सं० वराक>हि० I, ने० I)

सं० 'वराक' का अर्थ होता है—दुःखी, असहाय, अभागा। सं० को० सु० पृ० 343।

सं० 'वराक' से विकसित हि० 'बरा' का प्रयोग—'भुजदंड पर पहनने का एक आभूषण'—के लिए होता है। ऐसा लगता है कि दर्द-पीड़ित व्यक्ति के भुजदंड में ताँबे आदि के तार पहनने के कारण बाद में 'जेवर' अर्थ विकसित हो गया। यथा, "वह चाँदी का नया बरा पहनकर घूमने निकली।"

विपरीत, ने० 'बरा' का अर्थ होता है—'बेचारा'। ने० हि० को० पृ० 199। स्पष्ट है कि सं० 'असहाय' या 'अभागा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। ने० ने सं० अर्थों में विशेषीकरण कर मात्र 'बेचारा' अर्थ ग्रहण किया है और अन्य अर्थों का परित्याग कर दिया है। यथा, "के हामी मानिस [illegible] पशु ! बरा ! यो पनि त म जस्तै होला।" ("क्या हम मनुष्य—या पशु ! बेचारा ! यह भी तो मेरे समान ही होता है।) लं०सा०बां० पृ० 11। "उसको अलिकति अध्यारो मुख देख्यो कि त कसरी पिरोलिन्थ्यो बरा अनेक किसिमबाट उसलाई [illegible] थाल्थ्यो।" (उसका थोड़ा उदास मुख देखा तो किस तरह हैरान होता था बेचारा, अनेक तरह से उस (कष्ट) को कम करता था।) न०स०को०गी०र०वि० पृ० 11)

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

बोटी (तद्० । सं० वंट:>हि० I, ने० I)

सं० 'वंट:' का अर्थ होता है—भाग, बंट, अविवाहित व्यक्ति। सं० को० सु० पृ० 335।

हि० 'बोटी' का अर्थ है—मांस का छोटा टुकड़ा। सं० 'भाग' अर्थ से यह अर्थ स्पष्टतः विकसित है, क्योंकि इसमें भी भाग का भाव है। सं० के सामान्य 'भाग' अर्थ को हि० ने मांस का छोटा भाग (टुकड़ा) अर्थ करके संकुचित कर दिया है। यथा, "चार बोटी मांस से क्या होगा, उसे तो दो किलो चाहिए।"

विपरीत, ने० 'बोटी' का अर्थ है—किसान और जमीन-मालिक को मिलने वाला प्रत्येक हिस्सा। एन-एन-ई-पी-1221। स्पष्ट है कि ने० का यह अर्थ सं० 'भाग' अर्थ से आया है। सं० 'भाग' को जमीन-मालिक और किसान में बाँटकर अलग अर्थ कर लिया गया है जिससे विशेषीकरण हो गया है। यथा, "मोही र जग्गाधनी आफ्नो-आफ्नो बोटी लिएर घर गए।" (बटाईदार और जमीन मालिक अपना-अपना हिस्सा लेकर घर गए।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

भारी (तद्० । सं० भार:>हि० I, ने० II)

सं० 'भार:' का अर्थ होता है—बोझ, झोंका, मेहनत, उत्तरदायित्व, बाहुल्य। सं०को०सु० पृ० 252।

हि० 'भारी' का अर्थ है—बोझिल, कठिन, विशाल, अधिक, दूभर, प्रबल। सं० 'बोझ' अर्थ से 'बोझिल' अर्थ का विकास हुआ है। ऐसा लगता है कि यह विकास व्याकरणिक कारण से हुआ है, क्योंकि सं० भार:+ई (हि० प्रत्यय) से हि० 'भारी' बना है। 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से अर्थ भी 'बोझ' से बोझिल हो गया है। 'बोझिल' पदार्थ को ढोना कठिन है, अतएव 'कठिन' अर्थ आया है। बोझिल पदार्थ आकृति में सामान्यतया विशाल होता है, संभवतः इसलिए 'विशाल' अर्थ आया है। 'अधिक' और 'प्रबल' अर्थ पर सं० 'बाहुल्य' अर्थ का प्रभाव जान पड़ता है, क्योंकि इन सबमें अधिकता का भाव है। 'दूभर' हि० 'कठिन' का समानार्थी है। यथा, "यह सब झमेला उसे बहुत भारी (कठिन) पड़ेगा।"

विपरीत, ने० 'भारी' का अर्थ होता है—बोझ, गठरी, ज्यादा बड़ा। ने० हि० को० पृ० 221। एन-एन-ई-पी-1260। स्पष्ट है कि हि० की तरह ने० ने सं० 'बोझ' से 'बोझिल' अर्थ नहीं विकसित किया, वरन् सीधे 'बोझ' अर्थ को ग्रहण किया। बोझ (यात्रा के क्रम में किसी गठरी) को ज्यादा ढोना पड़ता है, संभवतः इसी से 'गठरी' अर्थ आया है। 'बोझ' की विशालता के कारण शायद 'ज्यादा बड़ा' अर्थ आया है। इस तरह ने० ने 'बोझ' और 'बोझ' से सम्बन्धित अर्थ विकसित किया है और अन्य सं० के अर्थों का परित्याग कर अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, 'पापको भारी र मृत्यु को डरदेखि हामी सधैं उद्धार पाइरहौं।'' (पाप की गठरी और मृत्यु के डर से हम सदा के लिए उद्धार पा गये।) आ०र० छ०। इ०ब०रा० पृ० 154। ''रन बहादुर···भारीचाहिं एउटा कुल्लीलाई बोकाएर दलबाहादुरको पछि-पछि हिंड्यो।'' (रन बहादुर···बोझ को एक कुली पर लादकर दलबहादुर के पीछे-पीछे चला।) मु०बा०।बां० पृ० 42।

—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

भ्रान्त (तत्स०। सं० > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'भ्रान्त' का अर्थ होता है—भूला या भटका हुआ, हैरत में पड़ा हुआ, चक्कर खाता हुआ। सं०को०सु० पृ० 262।

हि० 'भ्रान्त' का अर्थ है—जिसे भ्रान्ति या भ्रम हुआ हो, भूला हुआ, व्याकुल, उन्मत्त, घुमाया हुआ, तलवार के 32 हाथों में से एक। इनमें अन्तिम अर्थ को छोड़कर शेष अर्थ सं० के समान ही हैं। 'तलवार के 32 हाथों में से एक' अर्थ संभवतः सं० 'चक्कर खाता हुआ' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि इस तरह के तलवार-संचालन में भी घुमाकर वार किया जाता है। 'उन्मत्त' अर्थ सं० भूला या भटका हुआ अर्थ से आया होगा, क्योंकि उन्मत्त व्यक्ति भी सही राह से भटका हुआ होता है। यथा, ''वह ऐसा भ्रान्त (उन्मत्त) है कि ठीक बात भी नहीं समझ पाता।''

विपरीत, ने० 'भ्रान्त' का अर्थ है—सिर का घूमना, घुमाया हुआ, भूल में पड़ना। एन एन-ई-पी-1284। इनमें 'सिर का घूमना' अर्थ हि० में प्रचलित नहीं है। ने० का यह अर्थ सं० 'चक्कर खाता हुआ' अर्थ से स्पष्टतः आया है। 'घुमाया हुआ' अर्थ भी सं० 'चक्कर खाता हुआ' अर्थ से स्पष्ट रूप से प्रभावित है। 'भूल में पड़ना' अर्थ सं० 'भूला हुआ' अर्थ का समानार्थी है। ने० ने 'चक्कर खाता हुआ' अर्थ को 'सिर का घूमना' अर्थ में संकुचित कर विभेद उत्पन्न कर दिया है। यथा, ''रक्सी खाएपछि मानिसको दिमाग भ्रान्त हुन्छ।'' (शराब पीने से मनुष्य का दिमाग घूमने लगता है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

योग (तत्स०। सं० > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'योगः' का अर्थ है—जोड़, संयोग, उपाय, ध्यान, युक्ति, तर्क, कपट, नियम, सवारी, वृत्ति, परिश्रम, इलाज, जादू-टोना, लाभ, कुल मीजान, चित्त की एकाग्रता। सं०को०सु० पृ० 305।

हि० 'योग' का अर्थ है—मिलना, संयोग, ध्यान, प्रेम, संगति, उपाय, छल, प्रयोग, दवा, धनलाभ, कोई शुभकाल, नियम, सम्बन्ध आदि। इनमें 'प्रेम, संगति, प्रयोग, कोई शुभकाल, धनलाभ और सम्बन्ध' अर्थ नये हैं जो क्रमशः सं० 'जोड़', 'संयोग', 'परिश्रम', 'संयोग', 'लाभ' और 'जोड़' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। प्रेम

दो व्यक्तियों को जोड़ता है, संगति में साथ या जुड़ने का भाव है, प्रयोग परिश्रम पर आश्रित है, शुभकाल संयोग से आता है, लाभ में धन के लाभ का भाव भी निहित है और सम्बन्ध में दो के जुड़ने का भाव है—इन्हीं साम्य या भाव के कारण इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "बहुत दिनों के बाद ऐसा योग (शुभकाल) आया है।" "तुम्हारे योग (संगति) से मुझे इतना लाभ तो हुआ।"

विपरीत, ने० 'योग' का अर्थ हिन्दी की तुलना में बहुत कम हो गया है जिससे अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति झलकती है। ने० में इसका अर्थ है—मेल, गणित में जोड़ने का काम, मौका। एन-एन-ई-पी-139। इनमें 'मेल' और 'गणित' में जोड़ने का काम अर्थ स्पष्टतः सं० 'जोड़' से आया है। सामान्य 'जोड़' अर्थ को गणित के प्रसंग में लेकर ने० ने विभेदीकरण कर दिया है। 'मौका' अर्थ सं० 'संयोग' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों में भाव-साम्य है। यथा, "राम्रो योग छ, काम गरि हाल्न।" (अच्छा मौका है, काम कर डालो।) "दुई र दुई को योग कति हुन्छ?" (दो और दो का जोड़ कितना होता है?)
(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्ति)

वाचस्पति (तत्स०। सं०>हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'वाचस्पति' का अर्थ होता है—बृहस्पति, एक नक्षत्र, ब्रह्मा, भाषणकुशल व्यक्ति। सं० को० सु० पृ० 357।

हि० 'वाचस्पति' का मात्र एक ही अर्थ है—बृहस्पति। यह अर्थ स्पष्टतः सं० का है। यथा, "यदि वाचस्पति भी आ जायें तो भी उनसे बात बनाने में जीतना कठिन है।"

विपरीत, ने 'वाचस्पति' का अर्थ है—सुवक्ता, अच्छा बोलनेवाला व्यक्ति। एन-एन-ई-पी-1521। ने० ने सं० 'भाषणकुशल व्यक्ति' अर्थ से इन अर्थों को विकसित किया है—यह स्पष्ट है। फिर भी, 'भाषण में कुशल व्यक्ति' अर्थ में बहुत देर तक भाषण देने वाला, अच्छा भाषण देनेवाला, हर मौके पर भाषण देनेवाला जैसे अनेक भाव हैं, लेकिन ने० ने 'सुवक्ता' या 'अच्छा बोलनेवाला' अर्थ में मात्र 'अच्छा' वाला भाव ग्रहण कर अर्थ का विभेदीकरण कर दिया है। अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति भी मात्र इस अर्थ को ग्रहण करने के कारण स्पष्ट है। यथा, "आजको सभामा धेरै वाचस्पतिहरू आएका छन्।" (आज की सभा में बहुत सुवक्ता लोग आये हैं।)

व्यवहार (तत्स०। सं०>हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'व्यवहार' का अर्थ होता है—कार्य, चाल-चलन, बरताव, व्यापार, विषय, रीति-रिवाज, धंधा करना, ठीका, मुकदमा, गणित की एक प्रक्रिया, शासन, दंड, बालिगी, विधानवाद, अनिवार्य काम, नाम, उपाधि। सं० को सु० पृ० 444।

हि० 'व्यवहार' का अर्थ है—क्रिया, बरताव, व्यापार, रोजगार, बोलचाल का प्रयोग, रीति-रिवाज, लेन-देन का काम, महाजनी, झगड़ा, मुकदमा। ये सारे अर्थ संस्कृत के समान या समानार्थी हैं। यथा, "तुम्हारे साथ मेरा व्यवहार (लेन-देन का काम) बहुत दिनों तक नहीं चल सकता, क्योंकि तुम समय पर रुपया वापस नहीं करते हो।"

विपरीत, ने० 'व्यवहार' का अर्थ है—सम्बन्ध, चाल-चलन, आचरण, कार-बार। एन-एन-ई-पी-1578। इनमें 'सम्बन्ध' ऐसा अर्थ है जो हि० में प्रचलित नहीं है। यह अर्थ सं० 'बरताव' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि किसी के साथ कैसा सम्बन्ध

है या होगा, यह उसके साथ किये गये बरताव पर निर्भर करता है। एक तो ने० ने सं० के अन्य अर्थों का परित्याग कर अर्थ-संकोच कर लिया है, दूसरे 'बरताव' अर्थ से 'सम्बन्ध' को अलग कर दिया है। यथा, "नानीथकुं र हर्षनारां यी दुई जनाको व्यवहार सिध्याउन पाए गरे पनि हुने भईसकें।" (नानीथकुं और हर्षनारायण—इन दोनों आदमियों का सम्बन्ध (शादी का) कर लेने के बाद मरा भी जा सकता है।) ए० चि०। ह० स० प्र० पृ० 258। "……हरिको शिरमा अब व्यवहारको सारा भार परिसकेको छ।" (……हरि के सिर पर अब सम्बन्ध (शादी) का सारा भार पड़ गया है।) मा० घ०। बां० पृ० ख।

शुभंकरी (तत्स०। सं०>हि० ग, ने० ग)

सं० 'शुभंकरी' का अर्थ है—पार्वती, दुर्गा, कल्याण करनेवाली, आनन्द देने वाली। सं० को० सु० पृ० 476।

हि० 'शुभंकरी' का अर्थ है—पार्वती। स्पष्ट है कि हि० ने सं० के अन्य अर्थों का परित्याग करके मात्र एक ही अर्थ को ग्रहण किया है। इस तरह हि० 'शुभंकरी' का अर्थ-संकोच हो गया है। यथा, "वह विघ्नों को दूर करने के लिए शिव और शुभंकरी की पूजा करता है।"

विपरीत, ने० 'शुभंकरी' का अर्थ है—पार्वती, दुर्गा, शुभ या मंगल करनेवाली स्त्री। ने० श० पृ० 1010। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के ही हैं। अतएव ने० में 'शुभंकरी' का कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "म ती शुभंकरीको उपकार बिर्सन-सक्तिन।" (मैं उस मंगल करनेवाली (स्त्री) का उपकार भूल नहीं सकता।)

—(हि० अर्थ-संकोच : विभेदीकरण)

सिद्धि (तत्स०। सं०>हि० ग, ने० ग)

सं० 'सिद्धि' का अर्थ होता है—संपादन, पूर्ति, सफलता, निशाना लगाना, पूरी प्राप्ति, आरोग्य के लाभ, वैध या चालू होना, सम्पुष्टि, प्रदर्शन, निर्णय, तत्परता, सौभाग्य, मोक्ष, लोप, अलौकिक शक्ति की प्राप्ति, कौशल, बुद्धि। सं० को० सु० पृ० 559।

हि० 'सिद्धि' का अर्थ होता है—काम का पूरा होना, सफलता, प्रमाणित होना, निश्चय, निर्णय, तप या योग के पूरे होने का अलौकिक फल, मोक्ष, कौशल आदि। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० की तरह हैं। यथा, "बड़ी कठिनाई से उसे सिद्धि (सफलता) मिली।"

विपरीत, ने० 'सिद्धि' का अर्थ होता है—मुक्ति, दक्षता, पूर्णता, योग द्वारा पाई जानेवाली शक्ति। एन-एन-ई-पी-1836। ये सारे अर्थ सं० के समान ही हैं। ने० ने सं० के बहुत सारे अर्थों का परित्याग करके अर्थ-संकोच कर दिया है। ने० में 'पूर्णता' अर्थ का जिस भाव में प्रयोग होता है, हि० में वह नहीं चलता। यथा, "मृत्युलाई होइन आउ जीवनलाई एकपल्ट अर्थपूर्ण सिद्धि गरिदिउं।" (मृत्यु को नहीं, आओ, जीवन को एक-बार अर्थपूर्ण पूर्णता प्रदान कर दूं।) शि० फू०। पा० पृ० 52।

हाँक (तद्० । प्रा० हक्क > हि० I, ने० I)

प्रा० 'हक्क' का प्रयोग 'पुकारने' या 'ललकारने' के अर्थ में होता है।

हि० 'हाँक' का अर्थ है—किसी को बुलाने के लिए जोर से निकाला हुआ शब्द, ललकार, गर्जन, बढ़ावा, दुहाई, सहायता के लिए की हुई पुकार। ये सारे अर्थ प्रा० 'पुकारने' और 'ललकारने' अर्थ से स्पष्टतः प्रभावित हैं। 'गर्जन' में भी वैसी ही जोरदार आवाज होती है जैसी 'पुकारने' में। अतएव, 'पुकारने' अर्थ से इसका विकास हुआ लगता है। यथा, "उसने ऐसी हाँक (गर्जन) लगाई कि सारे लोग चौंक पड़े।" "उसकी हाँक (पुकार) सुनकर मैं दौड़ा हुआ आया।"

हिन्दी में 'करुण हाँक' का अर्थ है—सहायता के लिए पुकारना। 'जोरदार हाँक' का अर्थ है—बढ़ावा देना या ललकारना।

विपरीत, ने० 'हाँक' का अर्थ होता है—हुंकार, उत्साह दिलाना, ललकार। एन-एन-ई-पी-1828। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ प्रा० 'ललकारना' के ही समानार्थी हैं। ने० ने 'पुकारना' अर्थ का परित्याग कर अर्थ-संकोच कर दिया है। हिन्दी में ठीक-ठीक 'हुंकार' अर्थ में 'हाँक' का प्रयोग नहीं होता है और 'ललकारना' से 'हुंकार' अर्थ विकसित कर ने० ने विभेदीकरण कर दिया है। यथा, "यसो निहुरिएर हाँकसँग बोल्छजो……" (इस तरह चिढ़कर हुंकार के साथ बोलता है जो……) आ० र० छ०। ह० व० रा० पृ० 42। "यदि यो पनि सम्भव छैन भने उनी महाराज लाई भविष्यमा सतर्क हुन हाँकदिन चाहन्छन्।" (यदि यह भी संभव नहीं है तो वे महाराज को भविष्य में सतर्क रहने के लिए उत्साह दिलाना (ललकारना) चाहते हैं।) गो० र० अ०। के० मृ० पी० पृ० 208। "मृत्युलाई मानिसको कति विश्वासपूर्ण हाँक।" (मृत्यु को मनुष्य का कितना विश्वासपूर्ण हुंकार।) आ० र० छ०। ह० व० रा० पृ० 152।

—(हि० अर्थ-संकोच : [illegible])

परिशिष्ट

(क) अन्य वर्गों में आए हुए वे शब्द जिनमें हिन्दी भाषा में अर्थ-संकोच घटित हुआ है—

(अ) अर्थ-विस्तार के अन्तर्गत आए शब्द

चुक
जुल्फी
झरना
दिक्क
थरी
हंस

(आ) अर्थादेश के अन्तर्गत आए शब्द

उजार डोर
कछार देहरा
फली
ग्वार बतिया
चाँचर लट्ठ
चोब
टक
टेर
ताप
पुरी
बहना
मध्ययुग

(ख) सांख्यिक विवरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों की संख्या 508 के आधार पर हिन्दी तथा नेपाली भाषाओं में घटित अर्थ-संकोच की स्थिति निम्न प्रकार है—

भाषा	शब्द-संख्या	औसत प्रतिशत
हिन्दी	45	8.8
नेपाली	82	16.3

(1) शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	नेपाली	हि०	ने०
तत्०	12	33	2.3	6.5
तद्०	25	33	4.9	6.5
देशी	1	4	.2	0.8
वि०	7	12	1.4	2.5

() हिन्दी—हिन्दी में तत्सम की तुलना में तद्भव शब्दों में ढाई गुना अधिक अर्थ-संकोच हुआ है।

() नेपाली—नेपाली में तत्सम और तद्भव शब्दों में लगभग समान मात्रा में अर्थ-संकोच हुआ है।

() हिन्दी की तुलना में नेपाली देशी और विदेशी शब्दों में क्रमशः चार गुना और डेढ़ गुना अर्थ-संकोच हुआ है।

(2) शब्द-भेद की दृष्टि से—

	संज्ञा	%	क्रिया	%	विशेषण	%	सर्वनाम	%	क्रिया वि०	%	अव्यय	%
हिन्दी	43	8.4	2	·4	–	–	–	–	–	–	–	–
नेपाली	72	14·3	–	–	7	1.4	1	·2	–	–	2	.4

() हिन्दी—हिन्दी में मात्र संज्ञा और क्रिया में अर्थ-संकोच हुआ है।

() ने०—नेपाली में संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम और अव्यय—इन चारों में अर्थ-संकोच हुआ है।

()—हिन्दी की तुलना में ने० की लगभग डेढ़ गुना संज्ञाओं में अर्थ-संकोच हुआ है।

ने० में क्रिया में अर्थ-संकोच नहीं हुआ है, जबकि हि० में क्रिया में भी अर्थ-संकोच हुआ है।

(3) प्रयोग की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
साधारण शब्द	32	47	6·3	9.3
शिष्ट शब्द	13	35	2.5	7.0

0हि०—हिन्दी में शिष्ट शब्दों की तुलना में साधारण शब्दों में दो गुना से अधिक अर्थ-संकोच हुआ है।

0ने०—नेपाली में अर्थ-संकोच की दृष्टि से शिष्ट और साधारण शब्दों का अनुपात लगभग एक और डेढ़ है।

0—हि० की तुलना में नेपाली के शिष्ट शब्दों में जहाँ दो गुना से ज्यादा अर्थ-परिवर्तन हुआ है, वहाँ साधारण शब्दों में लगभग डेढ़ गुना।

(4) अर्थ-प्रकार की दृष्टि से—

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
अवच्छेदक	4	2	.8	.4
प्रमाणात्मक	4	16	.8	3.2
व्याकरणात्मक	0	3	.0	.6
सामान्य (पर) से विशेष (अपर)	31	39	6.1	7.8
विभेदीकरण	6	22	1.1	4.3

0हि०—हिन्दी में सामान्य (पर) से विशेष (अपर) के बाद अर्थ-संकोच का सबसे महत्वपूर्ण कारण विभेदीकरण ही रहा है, पर उस परिमाण में नहीं जिस परिमाण में नेपाली में।

0ने०—नेपाली में व्याकरणात्मक और अवच्छेदक अर्थ-संकोच लगभग बराबर परिमाण में हुआ है, लेकिन प्रमाणात्मक, विभेदीकरण और सामान्य (पर) से विशेष (अपर) न्यूनता से अधिकता की ओर बढ़ते जाते हैं।

0—हिन्दी और नेपाली में सामान्य (पर) से विशेष (अपर) अर्थ-संकोच लगभग बराबर हुए हैं, पर नेपाली में विभेदीकरण लगभग चार गुना तथा प्रमाणात्मक चार गुना। व्याकरणात्मक अर्थ-संकोच केवल नेपाली में घटित हुए हैं। मात्र अवच्छेदक अर्थ-संकोच हिन्दी में नेपाली की तुलना में अधिक घटित हुए हैं।

इ : अर्थादेश

जब किसी शब्द के मौलिक या प्रारंभिक अर्थ से सम्बन्ध न रखनेवाला कोई बाह्य भाव अनजाने में उस अर्थ के साथ जुड़ जाता है और समय बीतने पर धीरे-धीरे वही मुख्यार्थ बनकर मौलिक अर्थ से सर्वथा भिन्न हो जाता है तो उसे अर्थादेश कहते हैं। श्री बाबूराम सक्सेना मानते हैं कि अर्थादेश से मतलब अर्थ में इतना अधिक अन्तर होने से है कि मौलिक अर्थ खत्म हो जाय और दूसरा अर्थ उसकी जगह पर आ जाय।[1]

यास्क कहते हैं कि कभी-कभी शब्द अपने मुख्य एवं स्वाभाविक अर्थ को छोड़ कर अन्यार्थ में भी प्रयुक्त होने लगता है, ऐसी स्थिति में उसको अर्थादेश कहते हैं।[2]

1. सामान्य भाषाविज्ञान, पृ० 99।
2. निरुक्त—2, 5-6।

जब किसी एक तरह का भाव किसी एक शब्द के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और उसी तरह का मिलता-जुलता भाव शब्द के अभाव में उसी शब्द के माध्यम से अभिव्यक्ति पाने लगता है, तब कालान्तर में यह भी संभव है कि पहले तरह का भाव विलुप्त हो जाय और दूसरी तरह का भाव ही उस शब्द का अर्थ बन जाय। ऐसी स्थिति में, शब्द तो वही रहता है पर समय और आवश्यकता के कारण उसका अर्थ बदल जाता है—इसी को अर्थादेश कहते हैं। इसलिए कहा जाना चाहिए कि अर्थादेश दो तरह के मिश्रित भावों या एक ही विचार के दो पहलुओं के कारण घटित होता है।[1]

भर्तृहरि ने अर्थ की अनुभवजन्यता पर विशेष विस्तार से विचार करते हुए लिखा है कि अर्थ का ग्रहण अनुभव और ज्ञान के अधीन है।[2] अनुभव और ज्ञान के विस्तार के साथ-साथ अर्थादेश भी घटित होता है क्योंकि शब्द वस्तुत: किसी नियत अर्थ का बोध नहीं कराता। प्रत्येक व्यक्ति अपनी वासना और अनुभव के अनुरूप ही उसका स्वरूप निर्धारित कर लेता है, जैसे एक ही वस्तु को वासना के अनुरूप चक्षु नानारूप से ग्रहण करती है।[3]

अर्थादेश क्यों घटित होता है? इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह भी है कि अर्थ अनिश्चित और अपूर्ण होता है। अर्थ की इस अनिश्चितता और अपूर्णता के कारण शब्दों के अर्थ बदलते रहते हैं और इसी बदलने के क्रम में जिस तरह अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच घटित होता है, उसी तरह अर्थादेश भी।[4] कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि अर्थ-विस्तार और अर्थादेश में मुख्य रूप से लक्षणा की प्रवृत्ति कार्य करती है।[5]

प्रसिद्ध जर्मन भाषा विशेषज्ञ हर्मन पाउल का मत है कि अर्थों में परिवर्तन अदृष्ट रूप से होता रहता है। सांस्कृतिक विकास के अनुसार भाषा के प्रत्येक अंगों और उपांगों में विभिन्न भावों को व्यक्त करने के लिये अनेक नए शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। साधारणतया जो शब्द पूर्व-प्रचलित हैं, उनको ही उपयोग में लाया जाने लगता है। शब्द का मौलिक अर्थ कुछ रहता है, परन्तु विभिन्न शाखाओं और विभिन्न श्रेणियों में उसके द्वारा विभिन्न अर्थों का बोध कराया जाने लगता है।[6] इसी क्रम में कभी पुराना अर्थ छूट जाता है और एकदम नया अर्थ चल पड़ता है जिसे अर्थादेश कहते हैं।

अर्थ-विकास की इस अवस्था को भाषातात्त्विकों ने बहुत जटिल तथा संकुल माना है। कभी-कभी अर्थ एक के पश्चात् एक अर्थ-संकोच या अर्थ-विस्तार द्वारा

1. "Transference of meaning occurs between two allied ideas or aspects of an idea." --H. Bahri—Hindi Semantics, p. 219.

2. प्रत्ययाधीनमर्थतत्त्वावधारणम्।—वाक्य० 2,288।

3. नास्ति कश्चिन्नियत एक: शब्दस्यार्थ:।—भर्तृहरि, वाक्य० 3, 288।

4. अकृत्स्नविषयाभासं शब्द: प्रत्ययमाश्रित:।

5. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य—अर्थविज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृ० 118।

6. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य—अर्थ विज्ञान और व्याकरणदर्शन पृ० 123।

अपने पहले अर्थ से धीरे-धीरे हटता जाता है और अन्ततः अनेक परिस्थितियों से गुज-रता हुआ विकसित अर्थ अपने पूर्व-अर्थ का चिह्न तक नहीं छोड़ता। ऐसी अवस्था में इतिहास ऐसे अर्थ को स्थिर करने में सहायक होता है और प्रमाण उपलब्ध नहीं होता तो व्युत्पत्तिकार अर्थ स्थिर करने में प्रायः किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाया करते हैं।[1]

प्रधान अर्थ से गौण अर्थ के निकलने में परिस्थिति अथवा प्रसंग का भी बड़ा महत्त्व है।[2] जब इस तरह प्रधान और गौण— अनेक तरह के अर्थ (एक ही शब्द) चल पड़ते हैं, तब एक नई स्थिति पैदा हो सकती है। शब्द के विभिन्न अर्थों में से एक अर्थ इतना अधिक प्रधान हो जाता है कि उसके अन्य अर्थ भुला दिए जाते हैं और उस एक ही अर्थ का प्रचलन हो जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रधान अर्थ से गौण अर्थ निकलकर यही (गौण अर्थ ही) समय पाकर प्रधान हो जाता है।[3] इसी से अर्थादेश घटित होता है। डॉ० बाहरी मानते हैं कि नए अर्थों की उत्पत्ति विचार की समृद्धि का प्रतीक है।[4]

अर्थादेश अनेक अवस्थाओं और परिस्थितियों में घटित होता रहता है। किसी भी भाषा में उसके पर्याप्त उदाहरण पाये जाते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में अर्थादेश के उदाहरण, अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच की तुलना में बहुत अधिक देखे जा सकते हैं।

इ : क—अर्थापकर्ष : अर्थादेश

शब्द, मनुष्य की तरह जो उनका प्रयोग करते हैं, बहुधा 'बुरा' की ओर जाने की प्रवृत्ति रखते हैं।[5] शब्द के अर्थ में इसी निम्नकोटि के भावों के आगमन को अर्थापकर्ष कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'डिटोरिएशन', 'पेजोरेशन', 'डिजनरेशन' आदि कहते हैं।

अर्थापकर्ष कभी-कभी विशेष कारणवश घटित होता है, अरतु शब्द पहले प्रायः निम्न अर्थ में प्रयोग में आने लगता है, संभवतः हास्य, अप्रशंसा आदि प्रसंगों में। ज्यों-ज्यों समय बीतता है, यह क्रमशः निम्नतर अर्थ का स्वरूप ग्रहण करता जाता है और

1. "The circumstance under which a word is used very often lead to change the predominant element in its meaning."
—E. H. Sturtevant : Linguistic Change, p. 87-88.

2. उपरिवत्, पृ० 123।

3. डॉ० शिवनाथ—अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 132।

4. "The evolution of meaning is a sign of the richness of thought."
—H. Bahri—Hindi Semantics, p. 100.

5. "Words like human beings who use them, often, manifest an unhappy tendency to 'go to bed."
—Louis, H. Gtay—Foundations of Language, p. 259.

अन्त में, यह अत्यन्त घृणासूचक अथवा तिरस्कृत शब्द हो जाता है।[1] इस तरह, वे ही शब्द जो पहले अच्छे अर्थ में आते थे, कारणवश बुरे अर्थ में आने लगते हैं और तब उनका वही मुख्यार्थ बन जाता है।[2]

कुछ विद्वान् मानते हैं कि अर्थापकर्ष अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थादेश—तीनों अवस्थाओं में होता है। लेकिन, इसे मुख्यतः अर्थादेश ही मानना उचित है, क्योंकि इसमें अर्थ पूर्णतया बदल जाता है। पहले के अर्थ के एकदम विपरीत (यानी अच्छा का बुरा) अर्थ हो जाता है जिससे अर्थादेश की प्रवृत्ति ही सामने आती है।

अर्थापकर्ष के कारणों की जाँच करते हुए इसे निम्नांकित चार भागों में बाँटा जा सकता है—

1—संसर्ग;
2—संस्कृति;
3—अलंकार; और
4—विशिष्टीकरण।

इ : क : 1—**संसर्ग : अर्थापकर्ष**—शब्दों का व्यवहार अनेक प्रसंगों में होता है। कभी-कभी देखा जाता है कि किसी विशेष प्रसंग में प्रयुक्त होने के कारण शब्द का अर्थ अपकृष्ट हो जाता है। शब्द के मौलिक अर्थ से तुलना करने पर संसर्ग के कारण हुए अर्थापकर्ष को स्पष्टतः पहचाना जा सकता है।

ऐंठन (तद्० । सं० आवेष्टन; हि० I, ने० I)

सं० 'आवेष्टन' का अर्थ होता है- बेठन, घेरा, रैपर, बाँधना। सं० को० सु० पृ० 51।

हि० 'ऐंठन' का अर्थ है—घुमाव, लपेट, पेंच, मरोड़, बल, फेर, खिंचाव, तनाव। रैपर या घेरा में घुमाव या लपेट होता है, संभवतः इसी भाव से सं० 'रैपर' या 'घेरा' अर्थ से हि० के 'घुमाव, लपेट, पेंच, मरोड़, बल, फेर' अर्थों का विकास हुआ है। हि० 'खिंचाव' और 'तनाव' अर्थों का सम्बन्ध सं० 'बाँधना' अर्थ से दीखता है, क्योंकि बाँधने में 'खिंचाव' या 'तनाव' की जरूरत पड़ती है। यथा, "कपड़े में ऐंठन पड़ गई।"

विपरीत, ने० 'ऐंठन' का अर्थ होता है—मानसिक ऐंठन, सपने में होनेवाला कष्ट। एन-एन-ई-पी-176। प्रतीत होता है कि ने० के ये दोनों अर्थ सं० 'बाँधना' अर्थ

1. "The degeneration is sometimes due to special causes. Usually, however, the word takes it first step in t' e downward path when it is used in slight, perhaps in joeose, disparagement. As time goes on, it gets into worse and worse order, until at last it may become a term of extreme contempt or reprobation."
—J. B. Greenough & O. L. Kitteredege—Words and their Ways in English Speech, p. 283

2. श्यामसुन्दर दास—भाषाविज्ञान, पृ० 202।

से विकसित हुए होंगे। बाँधने में परिश्रम करना पड़ता है जिससे कष्ट होता है और यही कष्ट का भाव 'मानसिक ऐंठन (दबाव)' या 'सपना में होनेवाला कष्ट' अर्थ में भी है। हिन्दी में ये दोनों अर्थ प्रचलित नहीं हैं। लगता है कि ने० ने सं० 'बाँधना' अर्थ में समाविष्ट कष्ट के भाव को मस्तिष्क के साथ जोड़कर ऐसा अर्थ विकसित किया है। यथा, "रात भरि भलाई चुरुटको धूवांको मुस्लोले ऐंठन परिरह्यो, सपना जस्तो ठाउंमा···।" (रात भर मुझे चुरुट के धुएँ की लपट से स्वप्न की स्थिति में भी कष्ट होता रहा।) शि०फू०। पा० पृ० 41। "आज राति ऐंठन भयेदेखि म निंदाएको छुइन।" (आज रात स्वप्न के कष्ट के कारण मैं सो न सका।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

खोर (तद्०। सं० खुरः>हि० I, ने० I)

सं० 'खुरः' का अर्थ होता है—खुर, अस्तुरा, पौधा। सं० को० सु० पृ० 106।

हि० में 'खोर' का प्रयोग—चौपायों को चारा देने की नाँद, सँकरी गली—अर्थ में होता है। चूँकि खुर चौपायों को होती है, शायद इसी से (चौपाया होने की समानता के कारण) 'चौपायों को चारा देने की नाँद' अर्थ विकसित हुआ है। दूसरी संभावना यह भी हो सकती है कि नाँद की आकृति खुर की तरह ही होती है, अतएव आकृति-साम्य के आधार पर भी यह अर्थ विकसित हुआ हो सकता है। किसी-किसी जानवर की खुर फटी होती है और उसके बीच सँकरा लम्बा स्थान (सँकरी गली की तरह) होता है, संभवतः इसी सादृश्य के कारण 'सँकरी गली' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "बैलों को खोर में बाँध दिया गया है जिससे वे घास खा सकें।"

विपरीत, ने० 'खोर' का अर्थ है—जीव जन्तु को रखने या फँसाने के लिए निर्मित लकड़ी का पिंजड़ा या घर, जेल। यहाँ जीव जन्तु से तात्पर्य मुख्य रूप से जानवरों या पक्षियों से है। जानवरों या पक्षियों के रखने की जगह को ने० में 'खोर' कहते हैं। ने०हि०को० पृ० 56। चूँकि खुर की आकृति का 'खोर' ही उनके रहने का घर होता है, अतएव, सं० 'खुर' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ जान पड़ता है। सामान्य लोगों के घर से जानवरों या पक्षियों का घर अलग कर दिया गया है, इसका कारण जानवरों या पक्षियों का संसर्ग है। अतएव, इस तरह का अर्थापकर्ष जानवर या पक्षी के संसर्ग के कारण हुआ मालूम पड़ता है। यथा, "···एउटा सानो कुखुराको खोर जस्तो उसको छाप्रो···।" (···एक छोटे मुर्गीखाने की तरह उसकी झोंपड़ी···।) न०म०को०गी०। र० वि० पृ० 103।

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

घाट (तद्०। सं० घट्टः>हि० I, ने० I)

सं० 'घट्टः' का अर्थ होता है—घाट। सं०को०सु० पृ० 115।

हि० 'घाट' का अर्थ है—तट, चढ़ाव-उतार का पहाड़ी मार्ग, पहाड़, तरफ, चाल-ढाल, तलवार की धार, छल, बुराई, कम। सं० 'घाट' अर्थ हि० में 'तट' के रूप में विद्यमान है। चूँकि घाट ढलुवाँ होता है, अतएव सादृश्य के आधार पर चढ़ाव-उतार वाला पहाड़ी मार्ग, पहाड़, तलवार की धार आदि अर्थ आये हैं। नदी आदि की ढलुवाँ जमीन की ओट में बैठकर चोर, डाकू या बटमार लोगों को लूटते हैं, संभवतः इसी से

छल, बुराई आदि अर्थ आये हैं। नदी के दो तट होते हैं, एक इस ओर और दूसरा दूसरी ओर। संभवतः इसी भाव के कारण 'तरफ' अर्थ आया है। 'चाल-ढाल' अर्थ संभवतः धारा के अनुसार नदी के तट में होनेवाले परिवर्तन के कारण आया होगा। यथा, "तलवार का घाट ही जंक के कारण मिट गया था।"

विपरीत, ने० 'घाट' का अर्थ है—मुर्दा जलाने की जगह, चढ़ने की जगह, नदी आदि का किनारा। एन-एन-ई-पी-470। इनमें 'किनारा' अर्थ सं० 'घाट' के समान ही है। चूंकि नदी की तुलना में घाट ऊँचा होता है और उस पर जाने के लिए चढ़ना पड़ता है, संभवतः इसी भाव के कारण 'चढ़ने की जगह' अर्थ आया है। मुर्दे प्रायः नदियों या तालाबों के घाट पर जलाये जाते हैं, क्योंकि इसके बाद स्नान करना पड़ता है। संभवतः सामान्य किनारा अर्थ मुर्दा जलाने के काम के संसर्ग से 'श्मशान' हो गया है। यथा, "घाटे वैद्यले भन्यो—आज एकरात सम्मलाई त केही हुन्न, घाट चलाउने भये लै जानोस्।" (घाटे वैद्य ने कहा—आज एक रात तक तो कुछ होगा नहीं, श्मशान ले जाना हो तो ले जाइये।) क०स०।गो० पृ० 42।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्यमूलक)

चरन (तद्०। सं०√चर्>हि० I, ने II)

सं० 'चर्' धातु से 'चरन' शब्द का विकास हुआ है। सं० 'चर्' का अर्थ होता है—चलना, खाना। सं०को०सु० पृ० 119।

हि० में 'चर' धातु से विकसित 'चरन' का अर्थ है—भक्षण या चरने का काम, जाना, घूमने की जगह आदि। स्पष्ट है कि इन अर्थों पर सं० 'खाना' और 'चलना' अर्थ का प्रभाव है। सं० 'चलना' क्रिया से हि० में 'घूमने की जगह' अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों में चलने या घूमने का समान भाव है। क्रिया को स्थानवाची बनाकर हि० ने समाहरण की प्रवृत्ति दिखाई है। यथा, "इस शहर में कहीं चरन नहीं, जायें तो कहाँ जायें।"

हि० में इसी 'चरन' से 'संचरन' शब्द बना है, जिसका अर्थ भी 'जाना' होता है।

विपरीत, ने० में 'चरन' का अर्थ है—चरने की जगह। ने०हि०को० पृ० 75। सं० 'खाना' अर्थ पशुओं के संसर्ग से 'चरना' अर्थ में बदल गया लगता है। यथा, "यो सालको सुखाले समस्त चरनलाई नाश गरिदियो।" (इस साल के सूखे ने सभी चरने की जगहों को नष्ट कर दिया।) "म विहानै गाईवस्तुलिएर चरनतिर हिंडे।" (मैं सुबह ही गायों को लेकर चरागाह की ओर चला।) —(हि० अर्थादेश : समाहरण)

डाबर (तद्०। सं० दभ्र>हि० I, ने० I)

सं० 'दभ्रः' का अर्थ होता है—थोड़ा, छोटा, कुछ हद तक। एस-ई-डी-पी-245।

हि० 'डाबर' का अर्थ है—गड्ढा, झील, समुद्र, पोखरी, मैला (पानी)। ऐसा लगता है कि सं० 'छोटा' अर्थ से प्रभावित होकर 'गड्ढा' और 'पोखरी' अर्थ विकसित

हुए हैं, क्योंकि इनमें भी लघुता का समान भाव है। 'समुद्र' और 'झील' अर्थ 'गड्ढा' या 'पोखरी' अर्थ से बाद में विकसित हुए जान पड़ते हैं, क्योंकि इन सबमें पानी के संग्रह-स्थल या 'जमाव-स्थल' का समान भाव है। इसी 'पानी' के भाव के कारण बाद में 'मैला पानी' अर्थ आया होगा। यथा, "वह रोज एक डाबर (गड्ढे) में कपड़े फींचता है।'

ने० 'डाबर' का अर्थ होता है—"रक्त-विकार आदि से शरीर पर पड़नेवाला गोल दाग या सूजन"। ने०हि०को० पृ० 221। चूँकि ये दाग भी छोटे-छोटे होते हैं, अतएव संभव है इसी लघुता के भाव के कारण सं० 'छोटा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "धेरै दिन भयो र पनि उसको शरीरमा दादुराको डाबर हराएका छैनन्।" (बहुत दिन बीत गए, पर उसके शरीर से कोदवा (छोटी चेचक) का दाग मिटा नहीं है।)

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

परेता (तद्० । सं० परितस् > हि० ।, ने० ।)

सं० 'परितस्' का अर्थ है—चारों ओर, सभी तरफ, सभी दिशाओं में, सभी जगह। एस-ई-डी-पी-320।

हि० 'परेता' का अर्थ होता है—जुलाहों का एक औजार जिस पर वे सूत लपेटते हैं, पतंग की डोर लपेटने का बेलन। चूँकि ऐसे औजार या बेलन में सूत या धागा चारों ओर से लपेटा जाता है, अतएव सं० 'चारों ओर' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "सारे धागों को एक परेता में लपेट कर ले आओ।"

विपरीत, ने० 'परेता' का अर्थ होता है—चमड़ा पीटने का पत्थर। एन-एन-ई-पी-1011। चूँकि पत्थर की सभी जगहों से चमड़ा पीटा जाता है, संभवतः इसलिए सं० 'सभी जगह' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। 'चमड़ा' के संसर्ग से सं० अर्थ का अपकर्ष हो गया है, यह स्पष्ट है। यथा, "सार्कीहरूले परेता ल्याएर छाला पिट्ने काम गर्छन्।" (चर्मकार लोग पत्थर लेकर चमड़े को पीटने का काम करते हैं।)

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

लागू (तद्० । सं० लग्न > हि० ।, ने० ।)

सं० 'लग्न' का अर्थ है—लगा हुआ, सटा हुआ, संलग्न। सं०को०सु० पृ० 324।

हि० 'लागू' का अर्थ है—जो लगने योग्य हो, प्रयुक्त या चरितार्थ होनेवाला। स्पष्ट है कि इन अर्थों पर सं० 'लगा हुआ' अर्थ का प्रभाव है, क्योंकि इन सबमें सम्बद्धता का भाव है। यथा, "26 जनवरी, 1950 को भारत का अपना संविधान लागू हो गया।", "आज से देश में राष्ट्रपति शासन लागू हो गया।"

विपरीत ने० 'लागू' का अर्थ होता है—नशावाली चीज, वह जिससे नशा हो। एन-एन-ई-पी-1473। चूँकि नशीली चीज लगती है, अतएव सं० 'लगा हुआ' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। स्पष्ट है कि शराब या ऐसी ही चीजों के संसर्ग से अर्थ का अपकर्ष हो गया है। यथा, "ऊ बारंबार मुग्धभएर पातलीको लागू-

जस्ता आंखमा हेरिरहन्थ्यो।" (वह बारबार मुग्ध होकर पातली की नशीली आँखों में देख रहा था।) न०स०को०गी०। र०वि० पृ० 8।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

इ : क : 2—**संस्कृति : अर्थापकर्ष**—मनुष्य की विचारधारा में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। फलस्वरूप, जो कभी सराहनीय और अच्छा था, बाद में बुरा भी हो जाता है। सामाजिक धारणायें जिस तरह अनेक तरह के कर्मों को बुरा या वर्जित बताती हैं, उसी तरह शब्द के अर्थ को भी नीचे गिरा देती हैं। डॉ० राधाकृष्ण सहाय के शब्दों में—"...आचारगत मान्यताओं के परिवर्तन के साथ-साथ शब्द के अर्थ में भी आरोहण-अवरोहण की स्थितियाँ आती रहती हैं।"[1] लुई० एच० ग्रे ने भी अपनी धारणा को व्यक्त करते हुए लिखा है कि "अर्थापकर्ष का मुख्य कारण आचारशास्त्रीय धारणायें हैं।"[2]

उल्फत (वि०। अ०>हि० II, ने० I)

अरबी 'उल्फत' का अर्थ होता है—प्रेम, चाहत, अनुराग। अ० ता० उ० पृ० 24।

हिन्दी में 'उल्फत' का प्रयोग 'आशनाई' के लिए होता है जो स्पष्टतः अ० 'प्रेम' अर्थ का समानार्थी है। यथा, "उल्फत में उसने सब कुछ गँवा दिया।"

विपरीत, ने० 'उल्फत' का प्रयोग 'फजूल' अथवा 'व्यर्थ का' अर्थ में होता है। ने०हि०को० पृ० 20। संभवतः प्रेम की वजह से लोगों को ज्यादा गम और बरबादी ही मिली, इसलिए इसे फजूल या व्यर्थ की चीज समझा जाने लगा। शायद इसी भाव के कारण इस तरह का अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "तिमोले सबैधन उल्फतमा पायेको हो।" (तुमने सभी धन व्यर्थ में (मुफ्त में) पाया है।) "यो आफ्नो कमाई उल्फतमा खर्ची रहेको छ।" (यह अपनी कमाई फजूल में खर्च कर रहा है।)

कर (तत्। सं०>हि० II, ने I)

सं० 'कर' का अर्थ होता है—हाथ, किरण, मालगुजारी, ओला, प्रत्यय, हस्त नक्षत्र। सं०को०सु० पृ० 80।

हि० 'कर' का अर्थ—हाथ, किरण, मालगुजारी, ओला, पाखण्ड, छल, करने वाला होता है। इनमें 'छल' या 'पाखण्ड' और 'करनेवाला' अर्थ नए हैं जो संभवतः

1. अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 324।

2. "...We may agree with the Duch Linguist, Mgr. Schrijnen, that ethical concepts tend towards pejoration."

—Foundations of Language., p. 261.

सं० 'मालगुजारी' और 'हाथ' अर्थ से विकसित हुए हैं। मालगुजारी, छल या पाखण्ड के सहारे भी वसूली जाती है जिससे इस अर्थ का विकास हुआ होगा। किसी काम के करने का साधन हाथ है, शायद इसलिए 'हाथ' अर्थ से 'करनेवाला' अर्थ का विकास हुआ होगा। हिन्दी में 'दिनकर', 'हितकर' जैसे शब्द प्रचलित हैं जिनका अर्थ है—दिन करनेवाला, हित करनेवाला। चूँकि दिन सूर्य के उदित होने से होता है, अतएव बहुव्रीहि समास से दिनकर का अर्थ सूर्य हो जाता है। यथा, "उसने ऐसा कर (छल) किया कि बेचारा कहीं का नहीं रहा।"

विपरीत, ने० 'कर' का अर्थ होता है—जबर्दस्ती। ने०हि०को० पृ० 30। ने० के इस अर्थ पर सं० 'मालगुजारी' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि मालगुजारी को जबर्दस्ती वसूल करने की प्रथा हर जगह रही है। यथा, "पहाड़ फर्कने मन त छँदै छैन, तर माहिला भुजेलहो भने कर लाउँदै छ…।" (पहाड़ पर लौटने का मन तो है ही नहीं, लेकिन माहिला भुजेल जबर्दस्ती कर रहा है…।) मु०बा०।बां० पृ० 69। "विवाह गर्न मलाई कर नलाऊ बक्स्यांस् मुगा—कल्पनाले भनिन्।" (विवाह करने के लिए मुझ पर जबर्दस्ती न करो माँ—कल्पना ने कहा।) फे०का०मे०हो०। मु०भा० पृ० 113। "उनको शारीरिक स्पर्शका लागि नरेन्द्रलाई कर लाग्न छैन…।" (उनके शारीरिक स्पर्श के लिए नरेन्द्र पर जोर नहीं डाला जा सकता…।) न०दा०। वि०प्र० को० पृ० 22। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

कोठी (तद्०। सं० कोष्ठकः : हि० I, ने० I)

सं० 'कोष्ठकः' का अर्थ होता है—अनाज रखने का गृह, भण्डारगृह/कोठारी। एम-ई-डी-पी-165।

हिन्दी में सं० 'कोष्ठकः' से 'कोठा' शब्द का विकास हुआ और 'कोठा' से 'कोठी' का। हि० 'कोठी' का अर्थ है—बड़ा पक्का मकान, हवेली, बड़ी दुकान, बखार, गर्भाशय। इनमें अन्तिम अर्थ को छोड़कर शेष सब में 'घर' का भाव है, अतएव ये सारे अर्थ सं० 'अनाज रखने का गृह' अर्थ से विकसित हुए होंगे। 'गर्भाशय' बच्चे के लिए जन्मकाल से पूर्व घर के समान ही होता है, अतएव सं० 'अनाज रखने का गृह' अर्थ से ही इस अर्थ का भी विकास हुआ लगता है। यथा, "राजा महाराजा आलीशान कोठियों में रहते हैं।"

ने० कोठी' का अर्थ होता है—वेश्यालय, बड़े व्यापार का स्थान, शरीर का तिल या दाग। ने०हि०को० पृ० 43। इनमें प्रारम्भ के दोनों अर्थों में 'गृह' का भाव है, अतएव सं० 'अनाज रखने की जगह' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ जान पड़ता है। 'शरीर का तिल या दाग' जैसा अर्थ भी सं० के इसी अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि अनाजों के रखने से ऐसे घर भी दागदार या चित्तीदार हो जाते हैं। यथा, "त्यो रण्डी हो, मैले कतिपटक त्यसलाई कोठीमा भेटायेको छु…।" (वह वेश्या है, मैं कई बार उससे वेश्यालय में मिला हूँ…।) प्र०।ग०प्या० पृ० 49। "मुनरियाको तल्लो ओठको देब्रेकोसामा एउटा सानो कोठी थियो।" (मुनरिया के निचले ओठ के बायें गड्ढे में एक छोटा तिल था।) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 40-41। "त्यो गालामा कोठी समेत भएको…।" (उस गाल में तिल भी होने से…।) मा०घ०। बां० पृ० 18।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

चोखा (तद्० । सं० चोक्ष>प्रा० चोक्खा>हि० I, ने० I)

सं० 'चोक्ष' का मौलिक अर्थ––पवित्र या विशुद्ध––होता है जिससे अर्थ संप्रसारित होकर इस शब्द का प्रयोग––ईमानदार, चतुर, मनोहर, अनुकूल, प्रसन्न करनेवाला, सुख देने वाला––आदि अर्थों में पाया जाता है।

हिन्दी में इस शब्द का प्रयोग––जो शुद्ध और उत्तम हो, मिलावट और मैल रहित, खरा, जो सच्चा और ईमानदार हो, पैना, मनोहर, स्वादिष्ट––अर्थों में होता है। इनमें 'स्वादिष्ट' अर्थ संस्कृत 'सुख देने वाला' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि स्वादिष्ट वस्तु जिह्वा को सुख देती है। शेष अर्थ संस्कृत की तरह ही हैं। यथा, "कीमत जो भी लगे, मुझे चोखा माल चाहिए।"

विपरीत, नेपाली 'चोखा' का अर्थ होता है––भोजन में पड़ने वाली नजर, कुदृष्टि। ने० हि० को० पृ० 82। ऐसा लगता है कि नेपाली का यह अर्थ सं० 'मनोहर' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि कभी-कभी मनोहर चीजों पर किसी-किसी की नजर लग जाती है। आज भी बहुत सारी स्त्रियाँ अपने खूबसूरत बच्चे को लोगों की कुदृष्टि से बचाए रखने की चेष्टा करती हैं। संभव है, समय के लम्बे दौर में मनोहरता और कुदृष्टि इस तरह संयुक्त हो गई होंगी कि बाद में कुदृष्टि अर्थ ही रह गया हो और 'मनोहर' अर्थ लुप्त हो गया हो। यथा, "अनि त सबै चोखा गए।" (फिर तो सभी कुदृष्टि गईं।) उ० हु० आ०। वि० थि० पृ० 57।

––(हि० अर्थ-विस्तार : साहचर्य)

चोट (तद्० । सं० √चुट्>हि० I, ने० I)

सं० 'चुट्' धातु से 'चोट' शब्द बना है। 'चुट्' का सं० में अर्थ होता है––काटना, मारना। सं०को०सु० पृ० 122।

हि० 'चोट' का अर्थ है––आघात, प्रहार, घाव, किसी को मारने के लिए हथियार आदि चलाने की क्रिया, आक्रमण, हृदय पर आघात, मानसिक व्यथा, किसी के अनिष्ट के लिए चली हुई चाल, कटाक्ष, विश्वासघात आदि। इन सारे अर्थों में मारने का समान भाव है, अतएव ऐसा अर्थ-विकास हुआ जान पड़ता है।

विपरीत, ने० 'चोट' का एक अर्थ––बुरा फल––भी होता है। एन-एन-ई-पी-पृ० 576। चूँकि किसी को मारने का फल अच्छा नहीं होता, संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "म एउटा चालिसउंचोको बुढो कुमार भूतपूर्व सैनिक, दोस्रो महायुद्धको यौटा चोट, घर, पहाडमा र यहाँ इच्छा लागे अस्थायी जागीर खानु···।" (मैं एक चालिस के ऊपर का बूढ़ा कुमार, भूतपूर्व सैनिक, दूसरे महायुद्ध का यह बुरा फल, घर, पहाड़ में और जहाँ इच्छा हो अस्थायी नौकरी करनेवाला···।) शि० फू०। पा० पृ० 7।

––(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

विदुर (तत्स० । सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'विदुर' का अर्थ होता है––चालाक, तेज, गंभीर। सं० को० सु० पृ० 385।

हि० 'विदुर' का अर्थ है—जानकार, पंडित, कौरवों के सुप्रसिद्ध मंत्री जो राजनीति और धर्मनीति में बहुत निपुण थे। जो चालाक और तेज होते हैं, वे ही जानकार और पंडित माने जाते हैं, अतएव सं० 'चालाक' या 'तेज' अर्थ से हिन्दी के इन अर्थों का विकास हुआ लगता है। अन्तिम अर्थ संज्ञावाची है, फिर भी उसमें भी नैपुण्य का भाव है। यथा, "वे संस्कृत के जाने-माने विदुर हैं।"

विपरीत, ने० 'विदुर' का अर्थ है—धूर्त, निपुण, चतुर। एन-एन-ई-पी-1538। सं० 'चालाक' और ने० 'चतुर' एवं 'निपुण' लगभग समानार्थी हैं। सामान्यतया, चालाक लोग धूर्तता करने लगे जिससे अर्थापकर्ष हो गया और ने० में 'धूर्त' अर्थ भी चल पड़ा। यथा, "आजको युगमा विदुरमानिराको मात्रै निर्वाह चल्न सक्छ।" (आज के युग में मात्र धूर्त लोगों का निर्वाह हो सकता है।)

—(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

इ : क : 3—अलंकार : अर्थापकर्ष—लिखने या बोलचाल के क्रम में प्रायः लोग अतिशयोक्ति या व्यंग्य का प्रयोग करते हैं। कभी-कभी अशुभ के लिए शुभ और अप्रिय के लिए प्रिय शब्द का भी प्रयोग होता है। कालान्तर में, शब्द अपना प्रारंभिक अर्थ खो बैठता है और बाद में प्रयुक्त होनेवाले अर्थ को व्यक्त करने लगता है जिससे अर्थापकर्ष होता है।

गाफिल (वि०। अ०>हि० II, ने० II)

अ० 'गाफिल' का अर्थ होता है—असावधान, बेखबर। उ० हि० कि० पृ० 312।

हि० में 'गाफिल' का अर्थ अरबी की तरह ही 'बेसुध' या 'बेखबर' होता है। यथा, "तुम उसकी ओर से गाफिल रहे और उसने आक्रमण कर दिया।"

इसके विपरीत, ने० में 'गाफिल' का अर्थ होता है—'अपयश'। ने०हि०को० पृ० 62। असावधानी अपयश का कारण होती है। असावधानीवश आदमी गलती करता है और अपयश का भागीदार बनता है। इसलिए, नेपाली का यह अर्थ सं० 'असावधान' अर्थ से विकसित लगता है। यथा, "तिम्रो गाफिल धेरै ठाउँमा फिंजिएकेको छ।" (तुम्हारा अपयश बहुत जगह फैल गया है।)

गाभ (तद्०। सं० गर्भः>हि० I, ने० II)

सं० 'गर्भः' का अर्थ है—पेट, भ्रूण, गर्भ का बच्चा, कोख, अग्नि, कटहल का काँटा। सं०को०सु० पृ० 109।

हि० 'गाभ' का अर्थ है—पशुओं का गर्भ, मध्य, कोंपल। सं० 'भ्रूण' अर्थ हि० में 'पशुओं का गर्भ' अर्थ हो गया लगता है जिससे अर्थापकर्ष हो गया है। चूँकि 'भ्रूण' शरीर के बीच में होता है, अतएव सं० 'भ्रूण' अर्थ से 'मध्य' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। गर्भ का बच्चा कोंपल की तरह ही सुकुमार होता है अतएव 'कोंपल' अर्थ सं० 'गर्भ का बच्चा' अर्थ से विकसित हुआ होगा। यथा, "बसन्त आते ही वृक्ष में नये-नये गाभ फूट पड़े।"

विपरीत, ने० 'गाभ' का अर्थ होता है—मन का छल या कपट, रिक्त स्थान को भरने वाला पत्थर। ने०हिं०को०पृ० 62। एन-एन-ई-पी-405। चूँकि मन का छल भी शरीर के अन्दर उसी प्रकार रहता है जैसे भ्रूण, सम्भवत: इसीलिए सं० 'भ्रूण' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। जिस तरह 'भ्रूण' गर्भाशय के रिक्त स्थान को भरता है, उसी तरह ऐसा पत्थर भी, अतएव सं० 'भ्रूण' से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "...हाम्रो हृदयलाई कोयराला महोदय का कलापूर्ण लेखाईको प्रशंसा मनमा कति गाभ न राखी गर्न कर लाउँछ।" (...मेरा हृदय मन में कोई छल न रखकर कोयराला महोदय के कलापूर्ण लेखन की प्रशंसा करने के लिए जोर मारता है।) दो० च०। वि०प्र०को० पृ० 3।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

चप्पू (तद्०। सं०√चप्>हि० I, ने० I)

सं० 'चप्' धातु से हि० क्रिया 'चाँपना' का विकास हुआ है और 'चाँपना' से हि० 'चप्पू' का। ने० 'चप्पू' का विकास भी इसी √चप् से हुआ है। सं० 'चप्' का अर्थ होता है—सान्त्वना देना, चक्की या लोहे की चीज से पीसना। एस-ई-डी-पी-203।

हि० 'चप्पू' का अर्थ है - एक प्रकार का डाड़ जो पतवार का काम भी देता है, किलवारी। ऐसा लगता है कि चक्की या किसी लोहे की चीज से पीसने में भी श्रम लगता है और इस तरह के डाड़ चलाने में भी। सम्भवत: इसी कार्य-साम्य के आधार पर ऐसा अर्थ विकसित हुआ है। दोनों के चलाने की विधि भी समान है। यथा, "विपरीत धारा में नाव को ले जाने के लिए चप्पू चलाना आवश्यक है।"

विपरीत, ने० 'चप्पू' का अर्थ है—मुफ्त का खाना, हड़प, हजम। ने०हि०को० पृ० 74। ऐसा लगता है कि सं० 'पीसने' में जो लक्षणा से शोषण का भाव है, वही भाव हड़प करने या मुफ्त के खाने में भी है जिससे इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "मेरो सर्व सम्पत्ति उसले चप्पू ग-यो।" (मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति उसने हजम कर ली।)

—(हि० अर्थादेश : उपलक्षण)

धन्धा (तद्०। सं० धन | √धा>हि० I, ने० II)

संक्षिप्त शब्दसागर के अनुसार, सं० 'धन' में 'धा' धातु के योग से 'धन्धा' शब्द बना है। सं० 'धन' का अर्थ होता है—सम्पत्ति, वस्तु। सं० 'धा' का अर्थ है—धरना रखना। सं०श०सा०पृ० 149-50। इस तरह दोनों का सम्मिलित अर्थ—'सम्पत्ति रखना' या 'वस्तु धरना' हुआ।

हि० 'धन्धा' का अर्थ होता है—धन या जीविका के लिए उद्योग या काम-काज, उद्यम, व्यवसाय। चूँकि इस तरह का उद्योग, व्यवसाय या उद्यम का प्रयोजन धनोपार्जन होता है, अतएव सं० 'सम्पत्ति रखना' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ जान पड़ता है। यथा, "जीने के लिए कोई न कोई धन्धा करना ही पड़ता है।"

विपरीत, ने० 'धन्धा' का अर्थ होता है—चिन्ता, शोक, फिक्र। ने०हि०को० पृ० 154। धन की रक्षा के लिए लोगों को चिन्ता करनी पड़ती है, उसके नाश हो जाने पर शोक या फिक्र होती है, अतएव सं० 'सम्पत्ति रखना' अर्थ से इन अर्थों का विकास

हुआ होगा । यथा, "धन्धा नमान् सुम्निमा—आमाले आश्वासनको स्वरमा भनी…।" (चिन्ता न करो सुम्निमा—माँ ने आश्वासन के स्वर में कहा…।) सु० । बी०पी०को० पृ० 37 । "कमाउंछु, ल्याउंछु, र सुखसंग राख्छु तपाईलाई—धन्दा नामान्नोस् ।" (कमाऊँगा, लाऊँगा और आपको सुख से रखूँगा—चिन्ता मत कीजिये।) न०दा० । वि०प्र०को०पृ० 29 । —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

बिगार (तद् । सं० विकार > हि० I, ने० I)

सं० 'विकार:' का अर्थ होता है—परिवर्तन, रद्दोबदल, व्याधि, भावना, उद्विग्नता, बेचैनी । सं०को०सु०पृ० 372 ।

हि० 'बिगार' का अर्थ होता है—बिगाड़, दोष, खराबी, वैमनस्य, झगड़ा । इनमें 'बिगाड़, वैमनष्य, झगड़ा' अर्थ सं० 'परिवर्तन' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि अच्छे सम्बन्ध में जब परिवर्तन होता है तब बिगाड़, वैमनष्य और झगड़ा ही होता है । 'दोष' या 'खराबी' अर्थ पर सं० 'व्याधि' अर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है, क्योंकि व्याधि में भी शरीर में दोष या खराबी उत्पन्न हो जाती है । यथा, "मुझसे बिगार (बिगाड़) करके स्वयं घाटे में रहोगे ।"

विपरीत, ने० 'बिगार' का अर्थ होता है—बरबादी, नाश । एन-एन-ई-पी-1188 । ऐसा लगता है कि ये अर्थ सं० 'व्याधि' से विकसित हुए होंगे, क्योंकि व्याधि के कारण बहुत सारे लोग इलाज कराते-कराते बरबाद हो जाते हैं । अच्छे-अच्छे घर व्याधि के कारण बरबाद या नष्ट होते देखे गये हैं । यथा, "मैले ता तिमीहरूको केही बिगार गरेको छैन…।" (मैंने तो तुम लोगों की कोई बरबादी नहीं की है ।) मु०आ० । बां०पृ० 13 । "नरो न, बिगार गर्दा आमाले त्यति एक बात भन्न हुँदैन ?" (मत रोओ न, बरबादी करने पर क्या माँ ऐसी एक बात नहीं कह सकती है ?) मा०ध० । बां०पृ० 25 । —(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

भान (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'भान' का अर्थ होता है—प्रकाशन, प्रकटन, प्रकाश, चमक, आभास, ज्ञान । एस-ई-डी-पी-403 ।

हि० 'भान' का अर्थ होता है—प्रकाश, दीप्ति, चमक, ज्ञान, आभास । ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, अतएव हिन्दी में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "मुझे वहाँ जाते ही किसी की मौजूदगी का भान (आभास) होता है ।"

विपरीत, ने० 'भान' का अर्थ होता है—भ्रम, भ्रमपूर्ण धारणा, आभास । हिन्दी की तरह ने० में 'प्रकाश' या 'चमक' अर्थ प्रचलित नहीं है । एन-एन-ई-पी-1257 । ये अर्थ सं० 'आभास' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि आभास सदा संदिग्ध रहता है, उसमें भ्रम की गुंजाइश रहती है । यथा, "मलाई भान भयो अरुन्धती मेरो कोठामित्र पसी ।" (मुझे भ्रम हुआ कि अरुन्धती मेरी कोठरी में घुसी ।) सो०र०ज० । के०नु०पो० पृ० 54 । "हरि आमातिर्ट पनि नहेरी पुस्तक नै पढिरहने भान गर्‍यो ।" (हरि ने माँ की ओर भी न देखकर पुस्तक पढ़ते रहने का भ्रम पैदा किया ।) भा०घ० । बां० पृ० 71 । "आफू पढेजस्तो भानगरी अब सुबेदारले… स्वास्नीलाई चियाउन लागे ।"

(स्वयं पढ़ रहे हैं—ऐसा भ्रम (ढोंग) पैदा करके अब सूबेदार...पत्नी को पुकारने लगे।) मा०घ०। बां० पृ० 4।

सूंड़ी (तद्० रा० शुंडी>हि० I, ने० I)

सं० 'शुंडी' का अर्थ होता है—शराब बनाने वाला, कलाल, हाथी। सं०को० सु०पृ० 475।

हि० 'सूंड़ी' का अर्थ है—'एक प्रकार का सफेद कीड़ा जो पौधों को हानि पहुँचाता है।' ऐसा लगता है कि कलाल जिस तरह समाज के लिए हानिकारक है, उसी तरह पौधों के लिए यह कीड़ा भी, सम्भवत: इसी भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। वैसे इस तरह के कीड़े को हाथी की तरह सूँड़ भी होता है, सम्भव है आकृति-साम्य के कारण सं० 'हाथी' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "पूरे पौधे में सूँड़ी लग गई है।"

विपरीत, ने० 'सुंड़ो' का अर्थ होता है—शराब का व्यापारी। एन-एन-ई-पी-1765। यह अर्थ स्पष्टत: सं० का है, अतएव ने० में कोई अर्थ-परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। यथा, "त्यो सूँड़ीले पारेको रक्सी राम्रो हुंदेन।" (उस कलाल की बनाई शराब अच्छी नहीं होती है।) —(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष : अलंकार)

इ : क · 4—विशिष्टीकरण : अर्थापकर्ष—मनुष्यों के मस्तिष्क में अनेक तरह की भावनायें काम करती रहती हैं। कभी-कभी आचार, नीति, रीति, प्रथा, प्रचलन आदि को ध्यान में रखते हुए शब्द के अर्थों को संकुचित कर दिया जाता है जिससे अर्थापकर्ष हो जाता है।

शब्दों के चुनाव में भी लोग फैशन अपनाते हैं और कुछ शब्द इस तरह त्याज्य हो जाते हैं कि उनका प्रचलन मात्र साधारण या पिछड़े वर्ग के लोगों में होता है। फलस्वरूप, वह शब्द अपनी प्राचीन गरिमा खो बैठता है और उसका अर्थापकर्ष हो जाता है।

अवतार (तत्स०। सं०>हि० II, ने० I)

सं० 'अवतार' का अर्थ होता है—किसी देवता का पृथ्वी पर जन्म लेना, भूमिका, अनुवाद, घाट. आगमन। एस-ई-डी-पी-59।

हि० में सं० के ये सभी अर्थ प्रयुक्त नहीं होते, फिर भी 'किसी देवता का लौकिक शरीर धारण करना' अर्थ प्रचलित है। इसके अलावा 'जन्म' या 'शरीर-ग्रहण' और 'सृष्टि' अर्थ भी प्रचलित हैं। स्पष्ट है सं० में मात्र देवता का जन्म लेना ही अवतार कहलाता था, पर हिन्दी में इसका एक सामान्य अर्थ 'जन्म' हो गया है, चाहे वह देवता का हो या किसी और का। सं० के 'देवता का पृथ्वी पर जन्म लेना' अर्थ से ही हि० के ये सारे अर्थ विकसित हुए लगते हैं। यथा, "अयोध्या में भगवान राम ने अवतार लिया था।"

विपरीत, ने० 'अवतार' का अर्थ है—विशिष्ट व्यक्ति, जन्म लेना। एन-एन-ई-पी-84। सं० 'किसी देवता का पृथ्वी पर जन्म लेना' अर्थ से ये अर्थ विकसित हुए

जान पड़ते हैं। इस अर्थ में 'देवत्व' का जो भाव है, उसी से 'विशिष्ट व्यक्ति' अर्थ आया होगा और 'जन्म लेने' के भाव से सामान्य 'जन्म लेना' अर्थ । यथा, "लाइब्रेरियन भएको मेरो अवतारमा ऊ आफ्नो साथी-संगिनी लिएर उपस्थित भई।" (पुस्तकाध्यक्ष होने की मेरी विशिष्टता के कारण वह अपनी साथी-संगिनी को लेकर उपस्थित हुई।) शि०फू० । पा०पृ० ख । —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

चित् (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'चित्' का अर्थ होता है—जानना, पहचानना, होश में आना। सं०को० सु०पृ० 121।

हि० 'चित्' का प्रयोग—चेतना, ज्ञान—के अर्थ में होता है। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'पहचानना' और 'जानना' अर्थ से विकसित हुए हैं। जो पहचान सकता है, माना जाता है कि उसकी चेतना गायब नहीं हुई है और जो जितना जानता है, उतना ही ज्ञानी माना जाता है। यथा, "उसके पास वह चित् नहीं है जिससे सही-गलत को समझ सके।"

विपरीत, ने० 'चित्' का अर्थ है—अचेत, चकित होने की क्रिया। ने०हि०को० पृ० 78। इनमें 'अचेत' अर्थ सं० 'पहचानना' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि जो पहचान नहीं पाता है, उसे अचेत माना जाता है। कभी-कभी कोई जानकारी विस्मय में डाल देती है, सम्भवतः इसी भाव के कारण सं० 'जानना' अर्थ से 'चकित होने की क्रिया' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "विराटनगरमा सुधालाई हेरेर मलाई घेरै चित् लाग्यो।" (विराटनगर में सुधा को देखकर मुझे बहुत विस्मय हुआ या मैं चकित रह गया।) —(हि० अर्थादेश : उपलक्षण)

दशा (तत्स० । सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'दशा' का अर्थ होता है—बुने हुए कपड़े के अन्त का धागा, पोशाक का किनारा, उम्र या जीवन की अवस्था, जीवन की अवधि, अवधि, हालत, मानसिक अवस्था, कर्मफल, भाग्य, मस्तिष्क, ग्रह-दशा, समझदारी। एस-ई-डी-पी-248।

हि० में 'दशा' का अर्थ—स्थिति, प्रकार, हालत या अवस्था—होता है। इनमें 'हालत' या 'अवस्था' अर्थ सं० से सीधे आया है और 'स्थिति' हालत का ही पर्याय है। हि० 'प्रकार' सं० 'हालत' से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि एक व्यक्ति की हालत एक प्रकार की होती है और दूसरे की भिन्न प्रकार की। सम्भवतः हालत-हालत में पाये जाने वाले फर्क के कारण यह अर्थ आया है। यथा, "आजकल उसकी दशा (हालत) अच्छी हो गई है।"

विपरीत, ने० 'दशा' का अर्थ है—खराब दिन, अवस्था। एन-एन-ई-पी-849। हि० में 'दशा' का प्रयोग अच्छी और बुरी दोनों तरह की हालत के लिए हो सकता है, लेकिन ने० में मात्र बुरे दिन के लिए इसका प्रयोग होता है जिससे अर्थापकर्ष हो गया है। ने० 'अवस्था' अर्थ सं० 'उम्र' या 'जीवन की अवस्था' अर्थ से आया है, क्योंकि दोनों में अवस्था है। सं० 'हालत' अर्थ ने० में 'खराब दिन' के रूप में परिवर्तित हो गया लगता है, क्योंकि बुरी हालत में होने को ही खराब दिन कहते हैं। यथा, "दशाले गाँपछि त्यस्तै

हुंदो रहिछ महिला…" । (खराब दिन आने पर ऐसा ही होता रहता है महिला… ।) मु०बा० । बां०पृ० 120 । "मंगलवारको दशा शान्त होस्…।" (मंगल ग्रह का कुप्रभाव दूर हो ।) न०स०को०गी० । र०वि० पृ० 67 । —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

नाल (तत्स० । सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'नाल' का अर्थ होता है—कमल का डंठल, नाड़ी, मूँठ, बेंट, नहर । सं० को०सु०पृ० 158 ।

सं० से आये हि० 'नाल' का अर्थ होता है—कमल, कुमुद आदि फूलों की डंडी, पौधे का डंठल, नली, बन्दूक की नली, सुनारों की फूँकनी, जुलाहों की नली, उल्वनाल, हरताल, जल बहने का स्थान । इनमें 'डंडी' या 'डंठल' अर्थ सं० 'कमल का डंठल' अर्थ से स्पष्टतः गृहीत हुआ है । जिस तरह डंठल या डंडी पतली और लम्बी होती है, वैसी ही नली, बन्दूक की नली, सुनारों की फूँकनी, जुलाहों की नली आदि भी । संभवतः इसी आकृति-साम्य के कारण ये अर्थ विकसित हुए हैं । 'जल बहने का स्थान' अर्थ सं० 'नहर' अर्थ से आया है, क्योंकि नहर में भी जल बहता है । यथा, "उसकी बन्दूक की नाल बहुत लम्बी है ।"

विपरीत, ने० 'नाल' का प्रयोग विशेषतः 'गन्दा जल बहनेवाली नली' के लिए होता है जो स्पष्टतः सं० 'नहर' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है । 'बन्दूक की नली' अर्थ में भी कहीं-कहीं इसका प्रयोग देखा जाता है । यह अर्थ आकृति-साम्य के कारण 'कमल का डंठल' अर्थ से आया लगता है । यथा, "कसैको बहकाउमा परेर तिमी आफ्नो पवित्र प्रेमलाई वासनाको नालमा नमिसाऊ…।" (किसी के बहकावे में पड़कर तुम अपने पवित्र प्रेम को वासना की नाली में न मिलाओ…।) ए० चि० । हृ० च० प्र० पृ० 198 । "तेरो सट्टात तेरै अधिल्तिर नालमा फालि दिन्छु ।" (तुम्हारे बदले तो तुम्हारे सामने की नाली में फेंक देता हूँ ।) क० सं० । गो० पृ० 33 । —(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

बतिया (तद्० । सं० वर्तकः > हि० I, ने० I)

सं० 'वर्तकः' का अर्थ होता है—भोजन, जीविका । सं० को० सु० पृ० 346 । कुछ विद्वान् 'बतिया' का विकास सं० 'वर्तिका' से मानते हैं, पर अर्थ विज्ञान की दृष्टि से यह उचित नहीं जँचता ।

हि० 'बतिया' का अर्थ है—छोटा, कोमल और कच्चा फल । ऐसा लगता है कि हि० के इस अर्थ का विकास सं० 'भोजन' अर्थ से हुआ है । ऐसे कच्चे फल प्रायः खाये भी जाते हैं, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । यथा, "अब तो ककड़ी की बतिया मिलने लगी है ।"

विपरीत, ने० 'बतिया' का अर्थ है—उधार लिया हुआ अन्न । एन-एन-ई-पी-1150 । सं० 'भोजन' और ने० 'उधार लिया हुआ अन्न'—दोनों में अन्न का समान भाव है । नेपाली ने 'उधार लिया हुआ' भाव जोड़कर सं० अर्थ का अपकर्ष कर दिया है । यथा, "यो साल बाली राम्रो छैन, कसरी बतिया सधाउँनु हो, चिन्ता लाग्छ ।" (इस साल फसल अच्छी नहीं है, कैसे उधार लिया हुआ अन्न सधाऊँ, इसकी चिन्ता लगी है ।) —(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

बानी (तद्० । सं० वाणी>हि० I, ने० II)

सं० 'वाणी' का अर्थ होता है—देवी सरस्वती, बात, वचन, बोलने की क्षमता, आवाज, ध्वनि, बड़ाई, ग्रन्थ-रचना, बुनाई का काम, सरकंडा । सं० कों० सु० पृ० 359 ।

हि० 'बानी' का अर्थ है—वचन, मनौती, प्रतिज्ञा, सरस्वती, साधु-महात्मा का उपदेश, गोला, बाना नामक हथियार । इनमें 'वचन' और 'सरस्वती' का अर्थ सं० के ही हैं और 'प्रतिज्ञा' एवं 'मनौती' अर्थ सं० 'वचन' से ही इसलिए विकसित मालूम पड़ते हैं कि प्रतिज्ञा और मनौती भी बोलकर ही प्रकट की जाती हैं । 'साधु-महात्मा का उपदेश' भी बोलकर दिया जाता है, अतएव इसका विकास भी सं० 'वचन' अर्थ से हुआ मालूम पड़ता है । 'गोला' अर्थ पर सं० 'सरकंडा' अर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है, क्योंकि सरकंडा भी गोल ही होता है । अन्तिम अर्थ संज्ञावाची है । यथा, "अपनी बानी (प्रतिज्ञा) पर अटल रहना ।" या "उसकी बानी (वचन) सुनकर देह में आग लग गई ।"

विपरीत, ने० 'बानी' का अर्थ है—आदत, स्वभाव, लत । एन-एन-ई-पी-118। । ऐसा लगता है कि ये अर्थ सं० 'वचन' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि कुछ लोगों को बोलने की आदत लग जाती है । सम्भव है, पहले बहुत अधिक बोलने वाले के लिए इसका प्रयोग होता रहा हो और बाद में इसका अर्थ 'आदत' या 'लत' हो गया हो । यथा, "झुप्रोभित्र पस्नासाथ त्यहां एक किसिमको गन्ध आउन्थ्यो, जसको लंगडालाई बानी परिसकेको थियो ।" (झोंपड़ी के भीतर प्रवेश करते ही वहाँ एक तरह की गन्ध आती थी जिसकी लँगड़े को आदत पड़ गई थी ।) लं० सा० । बां० पृ० 18 । "उसको सिग्रेट खाने बानी थिएन……।" (उसको सिगरेट पीने की आदत नहीं थी…… ।) मु० बा० । बां० पृ० 112 । "सुपारी खाने बानी उनैले पारिदिए को हुन मलाई ।" (सुपाड़ी खाने की लत उन्होंने ही पड़ा दी है मुझे ।) न० दा० । बि० प्र० को० पृ० 26 ।

—(अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

मोच (तद्० । सं० √ मुच्>हि० I, ने० II)

सं० 'मुच्' धातु का अर्थ है—छोड़ना, ठगना, ढीला करना, स्वतंत्र करना । एस-ई-डी-पी-441 ।

हि० 'मोच' का अर्थ है—शरीर के किसी अङ्ग के जोड़ की नस का अपने स्थान से इधर-उधर खिसक जाना । सं० 'छोड़ना' अर्थ से हिन्दी का यह अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है । जो नस इधर-उधर खिसकती है, वह अपने मूल स्थान को छोड़ देती है, सम्भवतः इसीलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । यथा, "मेरे पैर में मोच आ गई है ।"

विपरीत, ने० 'मोच' का अर्थ है—बच्चे के सूखने की बीमारी । ने० श० पृ० 85 5। बच्चे इस बीमारी में खाना-पीना छोड़ देते हैं । छोड़ने की वजह से उसकी देह सूखती चली जाती है । सम्भवः इसीलिए सं० 'छोड़ना' अर्थ से नेपाली के इस अर्थ का विकास हुआ है । यथा, "यस बालकलाई धामी लगाएर मोच मार्नलाए मात्र बचाउन सकिन्छ ।" (इस बच्चे को ओझा से दिखाकर ही सूखे की बीमारी दूर करके बचा सकते हैं ।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

लटपट (तद्० । सं० लटः+पट>हि० I ने० I)

सं० लटः' का अर्थ होता है---चोर, दोष, बच्चों जैसा काम करने वाला । सं० को० सु० पृ० 324 । इसी 'लट' के साथ 'पट' के योग से 'लटपट' शब्द बना है। 'पट' का सं० अर्थ है---जाना, लपेटना । सं० को० सु० पृ० 169 । इस तरह 'लटपट' का अर्थ 'दोषयुक्त' (दोष+लपेटना) होना चाहिए ।

हि० 'लटपट' का अर्थ है---गिरना-पड़ना, जो चुस्त और दुरुस्त न हो, अस्त-व्यस्त, टूटा-फूटा, असक्त, जो न बहुत पतला हो न बहुत गाढ़ा हो । इनमें अन्तिम अर्थ को छोड़कर शेष सभी अर्थों में 'दोष' का भाव है, अतएव ये सारे अर्थ सं० 'दोषयुक्त' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं। अन्तिम अर्थ में रसयुक्त या जलयुक्त होने का जो भाव है, वह सम्भवतः सं० अर्थ में 'लपेटना' या 'मुक्त' होने के भाव के कारण आया है। यथा, "शराबी की लटपट चाल देखते ही कोई भी समझ सकता है कि वह पीये हुए है ।"

विपरीत, ने० 'लटपट' का अर्थ है---गोलमाल (रुपये-पैसे का), जाल-फरेब, लटरपटर । एन-एन-ई-पी-1454 । ने० के ये अर्थ सं० 'दोषयुक्त' या 'चोरी करना' (चोर+लपेटना) अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि ये सारे कर्म दोषपूर्ण भी हैं और एक तरह की चोरी भी । यथा, "कार्यालय को रुपैयांलटपट गर्नाले ऊ बर्खास्त भयो।" (कार्यालय का रुपया गोलमाल करने के कारण ही वह बरखास्त हुआ ।)

---(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

वासना (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'वासना' का अर्थ होता है---कामना, अज्ञान, भावना, कुसंस्कार । सं०को० सु०पृ०369 ।

हि० 'वासना' का अर्थ होता है---प्रत्याशा, ज्ञान, भावना, संस्कार, इच्छा। इनमें 'प्रत्याशा' अर्थ सं० 'कामना' का समानार्थी है और 'भावना' अर्थ सं० का ही है। सं० का 'अज्ञान' अर्थ हि० में 'ज्ञान' हो गया है और 'कुसंस्कार' अर्थ 'संस्कार' । इस तरह हि० में इन दोनों अर्थों का बुरापन लुप्त हो गया है और अर्थोत्कर्ष हो गया है । यथा, "सबके मन में वासना (संस्कार) रूप में स्थायी भाव विद्यमान रहते हैं ।"

विपरीत, ने० 'वासना' का अर्थ है-- भोग-विलास, सुखभोग, कामना । एन-एन-ई-पी-1527 । सं० 'कामना' अर्थ ने० में सीधे गृहीत हुआ है---यह स्पष्ट है । कुसंस्कारी लोग सामान्यतः 'भोग-विलास' या 'सुखभोग' में डूबे रहते हैं, सम्भवतः इसी भाव के कारण सं० 'कुसंस्कार' अर्थ से ने० के ये अर्थ विकसित हुए हैं । यथा, "जमीन्दारहरूको वासनाको प्रवृत्ति हेरेर स्वाभाविक प्रतिक्रिया हुन्छ ।" (जमींदारों के भोग-विलास की प्रवृत्ति देखकर स्वाभाविक प्रतिक्रिया होती है ।) ---(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

हाहा (दे० । अनु०>हि० I, ने० I)

हँसने के क्रम में हा-हा ध्वनि का बोध होता है, इसी से अनुकरण के आधार पर 'हाहा' शब्द बना है।

हि० 'हाहा' का प्रयोग---हँसने का शब्द, हँसी-ठट्ठा, दुहाई, बहुत विनती की पुकार---अर्थों में होता है । स्पष्ट है कि इन सारे अर्थों का सम्बन्ध हँसी से या खुश करने

की विधि से है, अतएव ऐसा अर्थ आया होगा। यथा, "कुछ पढ़ा-लिखा भी करो, दिन भर बैठकर हाहा करने से काम नहीं चलेगा।"

विपरीत, ने० 'हाहा' का प्रयोग कोलाहल, बहुत बड़ी विपत्ति, हाहाकार—जैसे अर्थों में होता है। एन-एन-ई-पी-1838। कहीं-कहीं 'जोर से हँसना' अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। बहुत सारे लोगों के हाहा करने से कोलाहल पैदा हो जाता है, सम्भवतः इसीलिए 'कोलाहल' अर्थ आया है। विपत्ति पड़ने से लोग हाहाकार करते हैं जिससे कोलाहल पैदा हो जाता है। सम्भवतः इसलिए बाद में 'कोलाहल' अर्थ से 'बहुत बड़ी विपत्ति' या हाहाकार' अर्थ विकसित हुए हैं। यथा, "सबैले मेरो हाहा गरेको, म सहन सक्तिन।" (सभी मेरी हँसी उड़ाते हैं, मैं सह नहीं सकता।) क० सं०। गो० पृ० 28। "हाहा न गर्लान् उनीहरूले।" (हाहाकार नहीं किया उन लोगों ने।) ए० चि०। ह० प्र० पृ० 50।

इ : ख—अर्थोत्कर्ष : अर्थादेश

अर्थ जब बुरे से ऊपर उठकर अच्छा हो जाता है तो उसे अर्थोत्कर्ष कहते हैं। लुइस एच० ग्रे का मत है कि शब्द के अर्थ बदलकर अच्छे हो सकते हैं।[1]

जिस तरह मनुष्य के जीवन में उत्थान और पतन दोनों होता है, उसी तरह शब्द के अर्थ भी कभी अच्छे और कभी बुरे दोनों होते हैं। जब शब्द के अर्थ बुरे से अच्छे की ओर प्रवृत्त होते हैं तो उसे अर्थोत्कर्ष कहा जाता है। श्री श्यामसुन्दर दास के अनुसार, अर्थापकर्ष का ठीक विपरीत कार्य है अर्थोत्कर्ष। जिस प्रकार जीवन में उत्कर्ष के उदाहरण कम मिलते हैं, उसी प्रकार भाषा के शब्द-भंडार में भी अर्थोत्कर्ष के उदाहरण कम ही मिलते हैं।[2]

यद्यपि भाषावैज्ञानिकों ने अर्थोत्कर्ष के मनोवैज्ञानिक कारणों पर विचार किया है तो भी अर्थोत्कर्ष के सम्बन्ध में किसी सामान्य प्रवृत्ति अथवा नियम का निर्धारण नहीं किया जा सकता। कभी-कभी तो यह विचित्र कारणों से घटित होता है।[3]

अर्थापकर्ष की तरह अर्थोत्कर्ष को भी चार भागों में बाँटा जा सकता है। अर्थोत्कर्ष के आधार की खोज करते हुए उपलब्ध सामग्रियों पर दृष्टि रखकर यह विभाजन किया गया है।

1. संसर्ग;
2. संस्कृति;

---

1. "Words may chage in meaning for the better."
—Foundations of Language, p. 260.

2. भाषाविज्ञान, पृ० 204।

3. "The assent, however, is not in obedience to any general tendency, but occurs in response to some peculiar cause."—J. B. Greenough & G. L. Kitteredege—Words and their Ways in English Speech, p. 295.

3. अलंकार; और
4. विशिष्टीकरण।

इ : ख---1---संसर्ग : अर्थोत्कर्ष---जिस तरह अर्थ के साथ हीन भाव के जुड़ जाने से अर्थापकर्ष होता है, उसी तरह उच्च भाव के योग हो जाने से अर्थोत्कर्ष हो जाता है। यदि सामान्य अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्द के साथ धार्मिक, विद्वत्ता, सम्मान या बड़प्पन का भाव जुड़ जाता है तो अर्थोत्कर्ष सहज ही देखा जा सकता है।

अड्डा (तद्० । सं०अट्टः > हि० I, ने० II)

सं० 'अट्टः' का अर्थ होता है---ऊँची जगह, छत पर की कोठरी, महल। एस-ई-डी-पी-8।

हि० और ने० दोनों में विकसित यह 'अड्डा' शब्द 'जगह' के अर्थ में ही प्रयुक्त होने के कारण इसका विकास सं० 'ऊँची जगह' अर्थ से हुआ लगता है, पर सं० के 'ऊँची जगह' अर्थ में दोनों में से किसी भी भाषा में प्रयोग नहीं होता।

हि० में इसका अर्थ हो गया है---टिकने की जगह, बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह, ठहरने का स्थान, मिलने या इकट्ठा होने की जगह, वेश्याओं के इकट्ठा होने का स्थान। यथा, "उधर मत जाइये, उधर बदमाशों का अड्डा है।" या "शाम होते ही सभी अड्डा में जमा होने लगते हैं।" इसी 'अड्डा' से बना शब्द 'अड्डाबाजी' भी हि० में प्रयुक्त होता है जिसका अर्थ है---बुरे काम के लिए जमा होना या बेकार काम के लिए एकत्र होना। यथा, "आजकल तुम भी अड्डाबाजी करने लगे हो।"

जैसा कि प्रयोग से स्पष्ट है, हि० 'अड्डा' का अर्थ 'बुरे' में बदल गया है। भले आदमियों के टिकने की जगह को अड्डा नहीं कहते, यह बदमाश, दुश्चरित्र या वेश्याओं के टिकने की जगह को अभिव्यक्त करने लगा है।

विपरीत, ने० 'अड्डा' का प्रयोग बुरे अर्थ में नहीं, वरन् अच्छे अर्थ में होता है। इसमें 'अड्डा' का अर्थ है---अदालत, कचहरी, दफ्तर, अखाड़ा। ने० हि० को० पृ० 4। अर्थात् ऐसी जगह जहाँ पढ़े-लिखे भद्र लोग जमा होते हैं और सरकारी कामकाज करते हैं, ऐसे स्थल को ने० में 'अड्डा' कहते हैं। 'अखाड़ा' अर्थ में इसका प्रयोग प्रायः नहीं होता। यथा, "रामबहादुर सुब्बा सुरभान का अड्डा का कारिन्दा थिए र सबभन्दा विश्वासी मानिस।" (रामबहादुर सुब्बा सुरभान के दफ्तर का नौकर था और सबसे विश्वासी आदमी।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 65। इसी तरह "अड्डाबाट सूचना आएको छ।" (अदालत या कार्यालय से सूचना आई है।) "अड्डामा तारीख छ।" (अदालत में तारीख है) जैसा प्रयोग भी प्रचलित है।

भारत की ऊँची जगहों पर प्रायः चोर-डाकुओं का गुप्त मिलन-स्थल रहा होगा, जैसा कि आज भी पर्वतीय इलाकों में है। संभवतः इसलिए सं० का 'ऊँची जगह' अर्थ का ऐसा अपकर्ष हो गया है, परन्तु नेपाल में पर्वतीय प्रदेश होने के कारण प्रायः ऊँचे ही स्थल हैं। पर्वत के ऊपर या तराई में प्रायः लकड़ी या ईंट के दोमंजिले मकान दिखाई

पड़ते हैं। सरकारी दफ्तर या अदालत प्रायः ऐसे ही मकानों के ऊपरी परकोटे पर स्थित हैं। संभवतः इसलिए सं० 'ऊँची जगह' अर्थ का ऐसा अर्थोत्कर्ष हो गया है।

पढ़े-लिखे लोगों के संसर्ग के कारण अर्थोत्कर्ष घटित होना स्पष्ट है।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

अर्पण (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'अर्पण' का अर्थ होता है—रखना, सजाना, समर्पण करना। एस-ई-डी-पी-54।

हि० 'अर्पण' का अर्थ है—दान, नजर या भेंट। ये अर्थ सं० 'समर्पण करना' अर्थ से प्रभावित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि इन सब में 'देने' का समान भाव है। सं० 'समर्पण करना' में सामान्यतः देने का भाव है, पर हि० के इन अर्थों में पुण्य-लाभ या यश-लाभ की कामना का भाव। देवताओं के लिए किसी वस्तु को देने के अर्थ में हि० में इसका प्रयोग मुख्य रूप से होता है। वैसे, त्याग और बलिदान की भावना जहाँ रहती है, वहाँ भी 'अर्पण' का प्रयोग चलता है। यथा, "पूजा की सामग्री का देवता के चरण पर अर्पण कर देना ही आज की भक्ति है।" या "विनोबाजी ने दीन-दुखियों के लिए अपने जीवन का अर्पण कर दिया है।"

इन अर्थों के अलावा 'देना' या 'रखना' अर्थ में भी हि० 'अर्पण' का प्रयोग होने लगा है। यथा, "पदार्पण।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ है—श्रद्धा से किसी को कोई वस्तु देना। एन-एन-ई-पी-79। सं० 'समर्पण करना' अर्थ से ही ने० का यह अर्थ भी विकसित लगता है, क्यों कि इन दोनों में 'देने' का भाव है। फिर भी, ने० में 'श्रद्धा' का भाव जुड़ गया है जो सामान्यतः हिन्दी अर्थों में नहीं है। दान, नजर या भेंट लोग पुण्य या यश की प्राप्ति के लिए या सामाजिक व्यावहारिकता से बाध्य होकर भी करते हैं, आवश्यक नहीं कि उसमें सचमुच श्रद्धा हो। लेकिन, ने० 'अर्पण' के अर्थ में श्रद्धा का आवश्यक योग है। हि० और ने० में सं० अर्थ की तुलना में अर्थोत्कर्ष सहज ही देखा जा सकता है। यथा, "वितरणमा डाक्टर गोदत्तप्रसादले सबभन्दा पहिले शिवनारायणलाई नै अर्पण गरे।" (वितरण में डाक्टर गोदत्तप्रसाद ने सबसे पहले शिवनारायण को ही श्रद्धापूर्वक दिया।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 217।

—(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

थान (तद्०। सं० स्थानं>हि० I, ने० I)

सं० 'स्थानं' का अर्थ होता है—जगह, निवास, चबूतरा, हालत, आसन, अचलता, वेदी, अभिनय आदि। सं० को० सु० पृ० 585।

हि० 'थान' का अर्थ है—जगह, ठिकाना, डेरा, निवास-स्थान, वह स्थान जहाँ घोड़े या चौपाये बाँधे जाते हों, कपड़े-गोटे आदि का निश्चित टुकड़ा, संख्या, अदद। इनमें 'जगह' अर्थ सं० का ही है, फिर भी अर्थापकर्ष स्पष्ट है। 'कपड़े का टुकड़ा' या 'संख्या' अर्थ सं० 'अचलता' से विकसित हुआ जान पड़ता है, क्योंकि कपड़े के टुकड़े का भी एक निश्चित माप होता है जिससे उसमें अचलता का भाव है। संख्या अपने में अचल ही होती हैं, तभी उसका महत्त्व है। यथा, "दुकान से दो थान कपड़ा ले आओ।"

विपरीत, ने० 'थान' का प्रयोग—'देवता का मन्दिर या देवता के रहने की जगह' अर्थ में होता है। कपड़े या गोटे की खास लम्बाई के अर्थ में भी इसका प्रयोग देखा जाता है। एन-एन-ई-पी-820। इनमें 'देवता का मन्दिर या देवता के रहने की जगह' अर्थ ('जगह' के समान भाव के कारण) सं० 'जगह' अर्थ से स्पष्टतया विकसित लगता है। देवता के संसर्ग से अर्थोत्कर्ष हो गया है—यह भी स्पष्ट है। अन्तिम अर्थ का विकास हि० की तरह ही हुआ जान पड़ता है। यथा, "आइमाई थानको वरिपरि प्रदक्षिणा गरिरहेकीछन्।" (औरतें देवस्थान के चारों ओर प्रदक्षिणा कर रही हैं।) आ० र० छ०। ई० ब० रा० पृ० 135। "कहिले आउनुभो सुयोगजी, म त देउता थान जानलागे मुआसंग।" (कब आये सुयोग जी, मैं तो देवस्थान जाने लगी माँ के साथ।) शि० फू०। पा० पृ० 33। "हामी गोसाईं थान को पोखरीको डीलमा पुग्यो।" (हम देवता के स्थान के तालाब के पास पहुँचे।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 6।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

इ : ख : 2—**संस्कृति : अर्थोत्कर्ष**—जीवन की परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण सामाजिक मान्यताएँ बदलती हैं। जो वस्तुएँ किसी समय त्याज्य या बुरी होती हैं, वही बदले परिवेश में स्वीकार्य या अच्छी हो सकती हैं। यही बात शब्द के अर्थों के साथ भी घटित होती है। पूर्व की सामाजिक धारणाओं के कारण यदि किसी शब्द का अर्थ बुरा रहता है तो आवश्यक नहीं कि वह सदा बुरा ही रहेगा। सामाजिक धारणाओं में परिवर्तन के कारण सम्भव है कि बहुत दिनों के बाद उस शब्द का अर्थ अच्छा हो जाय जिससे अर्थोत्कर्ष घटित होता है।

माया (तत्स०। सं०>हि० ।। ने० ।।)

सं० 'माया' का अर्थ होता है—धोखा, भ्रम असत्य, जादूगरी, लीला, दुर्गा, देवी, भगवती, लक्ष्मी। स० को० सु० प्र० 284-85।

हि० 'माया' का अर्थ होता है—लक्ष्मी, धन, अविद्या, भ्रम, छल, दुर्गा आदि। इनमें लक्ष्मी, भ्रम, छल और दुर्गा अर्थ सं० के ही हैं। लक्ष्मी चूँकि धन की देवी मानी जाती हैं, अतएव सं० 'लक्ष्मी' से 'धन' अर्थ विकसित हुआ लगता है। 'भ्रम' अविद्या के कारण अधिक होता है, संभवतः इसलिए सं० 'भ्रम' से 'अविद्या' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "आज सारे संसार को माया (अविद्या) ने ग्रस लिया है।"

विपरीत, ने० 'माया' का अर्थ है—प्रेम। मुख्यतः इसी 'प्रेम' के अर्थ में ही 'माया' का प्रयोग पाया जाता है, फिर भी शब्दकोश में 'मोह', 'धन' और 'अज्ञान' भी दिये गये हैं। एन-एन-ई-पी-1340। लोग संभवतः भ्रमवश ही 'प्रेम' या 'मोह' करते हैं, क्योंकि ये सभी नश्वर हैं, दुःख देने वाले हैं। संभवतः इसीलिए इन अर्थों का विकास सं० 'भ्रम' अर्थ से हुआ है। शेष अर्थ हिन्दी की तरह हैं और उनका विकास भी हिन्दी की तरह ही हुआ जान पड़ता है। यथा, "......उनीहरू दुवै आपसमा माया गर्छन् भन्ने सुम्निमालाई थाहा थियो...।" ("वे दोनों आपस में प्रेम करते हैं, सुम्निमा को इसका पता था...।) सु० वी०। पी० को० पृ० 122। "जुन आमालाई ऊ संसारमा सबैभन्दा माया गर्थी उनैलाई वास्ता न गरेको मान्न ऊ तयार छैनै थिइन।" (जिस माँ को वह संसार में सबसे बढ़कर प्यार करती थी, उसी का ख्याल न करने की बात वह मानने के

लिए तैयार नहीं थी।) सो० र० ज०। कें० नु० पो० पृ० 22। "जनकलाई माया लाग्यो।" (जनक को मोह हुआ।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 190।

—(अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मल (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'मलः' का अर्थ है—गन्दगी, धूल, मैला, विष्ठा, विकार, पाप, कफ, आँसू, नख, खोंट (कान की)। सं० को० सु० पृ० 276।

हि० 'मल' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—मैल, कीट, शरीर के बाहर निकलने वाला विकार, विष्ठा, विकार, पाप, ऐब। इनमें 'कीट' और 'ऐब' अर्थ नए हैं जो क्रमशः सं० 'गन्दगी' और 'विकार' अर्थ से आये लगते हैं। गन्दगी में कीट पैदा होते हैं और 'ऐब' भी शरीर का विकार ही है, संभवतः इसीलिए इस तरह का अर्थ-विकास हुआ है। यथा. "उसमें बहुत मल (ऐब) है।"

विपरीत, ने० 'मल' का एक अर्थ 'खाद' भी हो गया है, उसके अलावा 'विष्ठा' अर्थ भी प्रचलित है। एन-एन-ई-पी-1318। सं० 'विष्ठा' अर्थ से 'खाद' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि गाय, भैंस, बकरी, भेड़ आदि की विष्ठा का प्रयोग खाद के रूप में होता है। यथा, "शिवनारायणले विदेशी तरकारीहरूका बीउ र अमेरिकन मलहरू किन्नलाई फेरि 25 रुपियाँ सापट लिएका थिए।" (शिवनारायण ने विदेशी तरकारियों के बीज और अमेरिकन खाद खरीदने के लिए फिर पच्चीस रुपये पैंचा लिये थे।) ए० चि०। ह्न० च० प्र० पृ० 70। "आँगना छिर्नां र मल खाल्डा-वरिपरि रोपौंला भनेर बृच्चे बोटा राख्या हिजो...।" (आँगन, आर-धुर और खाद के गड्ढे के चारों ओर रोपूँगा कहकर छोटे पौधे रखा था कल...।) न० ग० को गो०। र० वि० पृ० 105।

—(अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

दामी (तद्०। सं० दाम>हि० दाम>दामी I, ने० I)

सं० 'दाम' का अर्थ होता है—जिसको दिया गया हो, दान में दी गई वस्तु या दान। शब्द कल्पद्रुम। द्वि० भा० पृ० 702।

हि० 'दामी' का अर्थ होता है—मालगुजारी, कर, कीमती, बहुमूल्य। चूँकि 'कर' दिया जाता है, अतएव 'जिसको दिया गया हो' अर्थ से उसका विकास हुआ होगा। 'दान में दी गई वस्तु' संभवतः इसलिए बहुमूल्य है, क्योंकि इसका पारलौकिक महत्त्व है। संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'दान में दी गई वस्तु' अर्थ से 'कीमती' या 'बहुमूल्य' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "इस साल उपज नहीं होने के कारण दामी भी चुकाना कठिन है।"

विपरीत, ने० 'दामी' का एकमात्र अर्थ है—'मूल्यवान्'। एन-एन-ई-पी-856। इस अर्थ का विकास सं० 'दान में दी गई वस्तु' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि 'दान में दी गई वस्तु' का पारलौकिक महत्त्व है। यथा, "कस्तो नसम्झेकी यत्रो दामी औंठी पाएर पनि ?" (इतनी मूल्यवान अँगूठी पाकर भी कैसे नहीं समझी ?) शि० फू०। पा० पृ० 55। "उनको हातमा एउटा दामी क्यामेरा थियो।" (उसके हाथ में एक मूल्यवान् कैमरा था।) सो० र० ज०। कें० नु० पो० 70।

—(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

दरगाह (वि० : फा०>हि० I ने० II)

फा० 'दरगाह' का अर्थ होता है—चौखट, डेवढ़ी, राजसभा, मजार। उ० हि० डि० पृ० 239।

हि० 'दरगाह' का प्रयोग—चौखट, देहरी, दरबार, कचहरी, मकबरा—अर्थों में होता है। इनमें 'राजसभा' अर्थ से हि० 'दरबार' और 'कचहरी' अर्थों का विकास हुआ लगता है। 'राजसभा' के लिए 'दरबार' का प्रयोग सामान्यत: किया जाता है और चूँकि पहले जमाने में बहुत सारे लोगों के झगड़े का फैसला राजसभा में ही होता था, अतएव 'कचहरी' अर्थ आ गया लगता है। 'मजार' पर मकबरा बनाने का विधान है, अतएव फा० 'मजार' अर्थ से 'मकबरा' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "वह दरगाह पर दीप जलाने जाता है।"

विपरीत, ने० 'दरगाह' का अर्थ है—परलोक, ईश्वर का दरबार या ईश्वर का न्यायालय, पूजा-स्थल। ने० हि० को० पृ० 146। एन-एन-ई-पी-843। मृत्यु के बाद कब्र पर मजार बनता है, संभवत: इसीलिए फा० 'मजार' अर्थ से ने० 'परलोक' अर्थ आया है। इसी 'मजार' अर्थ से ही 'पूजा-स्थल' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि मुसलमान लोग मजार पर जाकर धूप-दीप से पूजा करते हैं। शेष अर्थ फा० 'राजसभा' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि राजसभा पृथ्वी पर के लिए न्यायालय थी और वह राजा का दरबार भी थी। इसी भाव में ईश्वरत्व का भाव जुट जाने से ईश्वर का दरबार या ईश्वर का न्यायालय अर्थ हो गया लगता है। यथा, "यो दुनियासित बिदा भएर मान्छीहरूले दरगाहमा जानु पर्छ।" (इस दुनिया से अवकाश लेकर लोगों को परलोक में जाना पड़ता है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

इ : ख : ३—अलङ्कार : अर्थोत्कर्ष—स्नेह, विनम्रता एवं शैली आदि के प्रदर्शन के क्रम में लोग अलंकार का सहारा लेते हैं जिससे अपकृष्ट अर्थ का उत्कर्ष हो जाता है। निन्दा या अपयश का बखान लोग सीधे शब्दों में करना नहीं चाहते, अतएव वे अप्रस्तुत वस्तुओं का सहारा लेते हैं या लाक्षणिक प्रयोग कर उसकी कटुता को समाप्त कर देते हैं। ऐसे प्रयासों के सिलसिले में अनायास ही अलंकार अपना जादू दिखा जाता है और शब्द के अर्थ का उत्कर्ष हो जाता है।

खानगी (वि०। फा०>हि० I, ने० II)

फा० 'खानगी' का अर्थ होता है—रखेली, आत्मीय, निजी, घरेलू। उ० हि० डि० पृ० 201।

हि० 'खानगी' का अर्थ है—'आपस का, निज का, घरेलू, केवल कसब करने वाली तुच्छ वेश्या। इनमें फा० 'रखेली' अर्थ केवल 'कसब करने वाली तुच्छ वेश्या' अर्थ में परिवर्तित हो गया है, क्योंकि दोनों ही समाज की नजर में बुरी समझी जाती हैं। शेष अर्थ फा० के समान ही है। यथा, "वह प्रतिदिन किसी-न-किसी खानगी के घर जाता है।"

विपरीत, ने० 'खानगी' का अर्थ होता है—जागीर, वेतन। ने० हि० को० पृ० 50। 'रखेली' अपनी देह बेचकर जीवन-निर्वाह करती है, संभवत: जीवन-निर्वाह के स्रोत

वाले भाव के कारण ने० में इसका अर्थ हो गया है—'जागीर' या 'वेतन'। जिसको जागीर होती है, वह इसी से जीवन-निर्वाह करता है; जो नौकरी में होता है, वह वेतन से अपना निर्वाह करता है; जिस औरत को जीवन-निर्वाह का कोई उपाय नहीं रहता, वह रखेली बनकर जीवन-यापन करती है। यथा, "वार्षिक खानगी 400) क० रु०। (वार्षिक वेतन 400 कम्पनी का रुपया।) आ० र० छ०। ठ० बं० रा० पृ० 14।"

गम (वि०। अ० >हि० II, ने० II)

अ० 'गम' का अर्थ होता है—असन्तोष, शोक, फिक्र, पछतावा। ए० हि० डि० पृ० 318।

हि० 'गम' का अर्थ है—दुःख, शोक। ये दोनों अर्थ दुःखवाची हैं जो अ० 'शोक' अर्थ से विकसित हुए हैं। यथा, "मुझे उसके बिछुड़ने का गम है।"

विपरीत, ने० 'गम' का अर्थ है—सोच-विचार, ध्यान। ने० हि० को० पृ० 59। ये सारे अर्थ अ० 'फिक्र' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि फिक्र हो जाने पर लोग बहुत सोच-विचार करते हैं। यथा, "एम० के० को कानैमा आएर भांग र गमको लड्डू खाये को गजेंडी एउटा मधिसेले 'बा-जी-बा' कराइदियेको थियो।" (एम० के० के कान में ही आकर भांग और सोच-विचार का लड्डू खाये हुए एक मधेशी गँजेड़ी 'बा-जी-बा' चिल्ला पड़ा था।) आ० र० छ०। ठ० बं० रा० पृ० 41। "भलाई तिम्रो गम थियो" (मुझे तुम्हारा ध्यान था।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

गमी (वि०। अ० गम > हि० I, ने० II)

अ० 'गम' का अर्थ है—असन्तोष, शोक, फिक्र, पछतावा। ए० हि० डि० पृ० 318। इसी 'गम' में 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से 'गमी' शब्द बना है।

हि० 'गमी' का अर्थ है—वह शोक जो किसी मनुष्य के मरने पर उसके सम्बन्धी करते हैं, मृत्यु, शोक की अवस्था या काल। 'मृत्यु' अर्थ को छोड़कर शेष अर्थों में शोक का स्पष्ट कथन है, अतएव ये अर्थ अ० 'शोक' अर्थ से विकसित हुए हैं। प्रियजन की मृत्यु के बाद शोक होता है, संभवत: इसलिए अ० 'शोक' अर्थ से 'मृत्यु' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "अभी उनसे कोई काम होना संभव नहीं, क्योंकि वे गमी में हैं।"

विपरीत, ने० 'गमी' का अर्थ है—'विचारशील'। ने० हि० को० पृ० 59। शोक की अवस्था में लोग ज्यादा विचारमग्न रहते हैं, संभवत: इसी से अ० 'शोक' अर्थ से ने० 'विचारशील' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "तर ती महानुभाव अलि गमी थिए।" (लेकिन वे महाशय जरा विचारशील थे।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 153। —(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

गुन (तद्०। सं० गुण: >हि० I, ने० II)

सं० 'गुण:' का अर्थ है—गुण, डोरी, धनुष की डोरी, लक्षण, स्वभाव, तन्तु, दूब। सं० को० सु० पृ० 111।

हि० में 'गुन' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—जाति-स्वभाव, विशेषता, निपुणता, हुनर, असर, शील। ये सारे अर्थ सं० 'गुण' के या तो समानार्थी हैं, या 'गुण से

दायरे में आ जाते हैं। फिर भी, असर, शील, निपुणता आदि अर्थों को अलग-अलग करके हि० ने विभेदीकरण कर दिया है। यथा, "उसमें ऐसे गुन हैं कि किसी को भी अपनी ओर खींच सकता है।" 'गुन' का व्यवहार मुख्यतः ग्राम्य भाषाओं में होता है।

विपरीत, ने० 'गुन' का अर्थ है---उपकार, भलाई, हित। ने० हि० को० पृ० 64। कुछ लोगों का स्वभाव ही उपकार करने का होता है, या उपकार करना एक मानवीय गुण माना जाता है, संभवतः इसलिए उन अर्थों का विकास सं० 'स्वभाव' या 'गुण' से माना जा सकता है। यथा, "गुन भनेको मानिसले कतिचोटि लाउन सक्छन्।" (उपकारी आदमी को कई बार लाया जा सकता है।) फे० क० मे० हो०। यु० था० पृ० 29। "कै भेट्यो कि दुई-चार जना मान्छेकै अगाडि तेरी आमा को गुन लगाई छाड्दैन।" (कोई मिला कि दो-चार आदमियों के सामने तुम्हारी माँ का हित किये बिना छोड़ता नहीं है।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 50।

---(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

लंपट (तत्स०। सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'लंपट' का अर्थ होता है---बदमाश, कामुक, व्यभिचारी। सं० को० सु० पृ० 322।

हि० 'लंपट' का अर्थ सं० की तरह ही---व्यभिचारी, विषयी और कामुक है। ये तीनों अर्थ लगभग समानार्थी हैं और सं० से सीधे आये हैं। यथा, "ऐसे लंपट आदमी से चरित्र की बात क्या करना।"

विपरीत, ने० 'लंपट' का अर्थ होता है---आसक्त, तन्मय। ने० हि० को० पृ० 254। ने० 'लंपट' का एक अर्थ 'बिछाने का लम्बा कपड़ा' भी होता है, पर यह सं० 'लम्ब+पट' से बना है। कामुक व्यक्ति किसी पर जल्दी आसक्त हो जाता है, संभवतः इसीलिए सं० 'कामुक' अर्थ से ने० 'आसक्त' या 'तन्मय' अर्थ का विकास हुआ है। ध्यातव्य है कि सं० या हि० 'कामुक' अर्थ में जो हीनता का भाव है, उसका बहुत कुछ परिमार्जन ने० 'आसक्त' या 'तन्मय' अर्थ में हो गया है। यथा, "म जूवा तास खेल्दिन, म स्त्रीलंपट छुइनं......।" (मैं जुआ-ताश नहीं खेलता, मैं स्त्री-आसक्त नहीं हूँ......।) आ० र० छ०। द० ब० रा० पृ० 46।

इ : ख : 4---विशिष्टीकरण : अर्थोत्कर्ष---आचार, रीति, प्रथादि के कारण बहुत सारे शब्दों के अर्थ विशिष्ट हो जाते हैं और इसी विशिष्टता के फलस्वरूप अर्थोत्कर्ष भी घटित होता है। कुछ शब्द शिष्ट जनों को प्रिय लगने लगते हैं और वे उनका व्यवहार इस तरह करते हैं कि सामान्य व्यवहार से वह शब्द कट-सा जाता है। फलस्वरूप, कभी-कभी अर्थोत्कर्ष झलकने लगता है।

असल (वि०। अ० > हि० I, ने० II)

अरबी 'असल' का अर्थ होता है---मूल, जड़, आधार, बुनियाद, धातु, सत्य। उ० हि० डि० पृ० 5।

हि० 'असल' का अर्थ थोड़ा परिवर्तित होकर---सच्चा, खरा, उच्च, श्रेष्ठ,

शुद्ध—हो गया है। अ० का 'सत्य' अर्थ हि० में 'सच्चा' के रूप में है और सत्य चूँकि खरा होता है, अतएव इसी से 'खरा' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। 'शुद्ध' 'खरा' का ही पर्यायवाची शब्द है। जो चीज खरी होती है, वह श्रेष्ठ मानी जाती है, संभवतः इसलिए बाद में 'श्रेष्ठ' और 'उच्च' अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "वह असल (खरा) बनिया है।" या "वह असल (उच्च) खानदान का है।"

विपरीत, ने० 'असल' का अर्थ है—अच्छा, बढ़िया, ठीक। एन-एन-ई-पी-92। ऐसा लगता है कि भाव-साम्य के कारण अ० 'सत्य' अर्थ ही ने० 'ठीक' अर्थ में प्रचलित हो गया है। इसी 'सत्य' अर्थ से 'अच्छा' या 'बढ़िया' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि सत्य को लोग सदा से अच्छा मानते आये हैं। 'सत्य' के अन्दर जो अच्छेपन का भाव है, उसी की वजह से सत्यवादी मनुष्य भी अच्छा माना जाता है। फिर भी, सत्य सदा अच्छा ही नहीं होता, कटु भी होता है। ने० ने उसके एक पक्ष को ही ग्रहण किया है और उसके अर्थ को विशिष्ट करके अर्थोत्कर्ष कर दिया है। यथा, "तर मलाई लाग्छ मान्छे भएर द्योता हुन खोज्नु असल हैन।" (लेकिन मुझे लगता है कि आदमी होकर देवता होने की कोशिश करना ठीक नहीं है या अच्छा नहीं है।) सु० । श्री० पी० को० पृ० 10। "सडक मुनि माथि त्यस्तै घर, कोठी, पसल, होटल, रेस्तरां थिए जहां लंगडा भन्दा धेरै असल र धनी मानिसहरू थिए।" (सड़क के नीचे ऊपर वैसे घर, भव्य भवन, दूकान, होटल, रेस्तराँ थे जहाँ लँगड़े की अपेक्षा बहुत अच्छे और धनी लोग थे।) लं० सा०। बां० पृ० 61। —(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

खात (तद्०। सं० खातं > हि० I, ने० I)

सं० 'खातं' का अर्थ है—गड्ढा, खुदा हुआ। सं० को० सु० पृ० 106।

हि० में 'खात' का अर्थ होता है—खोदना, खुदाई, तालाब, कुआँ, गड्ढा, खाद-कूड़ा आदि फेंकनेवाला गड्ढा। इनमें 'खोदना' और 'खुदाई' अर्थ सं० 'खुदा हुआ' अर्थ से स्पष्टतः प्रभावित हैं। 'तालाब, कुआँ, गड्ढा' अर्थ सं० 'गड्ढा' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि इन सबमें गड्ढे होते हैं। रूप-साम्य के आधार पर ही ऐसा अर्थ-विकास हुआ लगता है। यथा, "वहाँ एक विशाल खात (गड्ढा) है।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ एकदम बदल गया है। सं० में जहाँ इसका अर्थ 'गड्ढा' है, वहाँ नेपाली में 'अधिकता' या 'एक जगह इकट्ठा होना'। एन-एन-ई-पी-335। गड्ढे में कोई भी चीज बहुत अधिक मात्रा में जमा की जा सकती है, संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'गड्ढा' अर्थ से 'अधिकता' अर्थ का विकास हुआ है। आसपास का जल पास के गड्ढे में जमा हो जाता है, संभवतः इसलिए 'एक जगह इकट्ठा होना' अर्थ भी सं० 'गड्ढा' अर्थ से विकसित हुआ होगा।

ध्यान देने की बात है कि सं० अर्थ 'गड्ढा' में शून्यता का भाव है, पर ने० के 'अधिकता' अर्थ में पूर्णता का। इस तरह ने० अर्थ का उत्कर्ष हो गया है। यथा, "सुनाखरीको खात थियो यहां।" (फूल अथवा धान की अधिकता थी यहाँ।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 244। —(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

घराना (दे०। (घर+आना) > हि० I, ने० I)

सं० 'गृह' से हि० और ने० 'घर' बना है और इसमें 'आना' प्रत्यय के जुड़ने से 'घराना' शब्द बना है।

हि० में 'घराना' का अर्थ है---खानदान, कुल, वंश। स्पष्ट है कि एक ही घर में उत्पन्न लोगों को एक खानदान का माना जाता है, इसी अर्थ में 'घराना' शब्द प्रयुक्त हुआ है। यथा, "वह बहुत नीच घराना का है।"

विपरीत, ने० 'घराना' का अर्थ है---उच्च कुल या ऊँचा खानदान यानी ऊँच और नीच---दोनों इसमें समाहित हैं, लेकिन ने० में उसके 'उच्चता' का भाव जुड़ गया है जिससे अर्थ का विशिष्टीकरण भी हो गया है और उत्कर्ष भी। यथा, 'दिलीप ठूलो घराना को मानिस थियो।" (दिलीप बड़े और ऊँचे खानदान का आदमी था।) फे० क० भे० हो०। यु० था० पृ० 2। इसी 'घराना' से 'घरान' शब्द भी विकसित हो गया है जिसका अर्थ समान ही है। यथा, "त्यतिले नै पनि कति घरानकी लाग्छ।" (उतने से भी कितने ऊँचे खानदान की लगती हैं।) अ०र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 8।

--(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

झन (दे०। हि० I, ने० I)

'झन' एक अनुकरणात्मक शब्द है। धातुओं के ठोस पदार्थ पर गिरने से या धातु के बर्तन या वस्तु को लोहे जैसी किसी ठोस चीज से ठोकर मारने से ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है।

हि० में संभवतः इसकी उत्पत्ति को ध्यान में रखते हुए ही अर्थ का निर्धारण हुआ है। हि० में इसका प्रयोग 'धातु के टुकड़े के बजने की आवाज' के लिए किया जाता है। यथा, "मैं तो झन की आवाज से ही समझ गया था कि बिल्ली ने कुछ गिरा दिया।"

विपरीत, ने० 'झन' का अर्थ है---अधिक मात्रा में, और भी। ने० हि० को० पृ० 100। अन्य वस्तुओं के गिरने से जैसी आवाज होती है, उसकी तुलना में धातु की किसी चीज के गिरने पर अधिक आवाज होती है। साथ ही, नाटक, सिनेमा या संगीत में दृश्यों या भावों को और (अधिक) प्रभावोत्पादक बनाने के लिए झन की आवाज पैदा की जाती है। संभवतः इन्हीं भावों के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "अर्को बेतमा पाड़ी पायोभने झन बेश।" (दूसरी बियान में पाड़ी होने से और भी अच्छा।) बं०। नी० ब० क्ष० पृ० 2। "रात परेपछि त झन ठूलो आंधी चल्यो।" (रात होने पर तो अधिक मात्रा में बड़ी आँधी चली।) मु० बा०। बां० पृ० 75। "तर उसले छाडेन झन जोडले उल्लाई अंगालेर उसको घांटीनिर लामो तातो सास फेरि रह्यो।" (लेकिन उसने छोड़ा नहीं, और भी जोर से उसे आलिंगन में लेकर उसकी गर्दन के निकट लम्बी गर्म-गर्म साँस फेरता रहा।) क० सं०। गो० पृ० 82।

इ : ग---समाहरण : अर्थादेश

जब अमूर्त अर्थ मूर्त रूप ले लेता है तो उसे समाहरण कहा जाता है। श्यामसुन्दर दास के अनुसार, कभी एक शब्द का अमूर्त अर्थ मूर्त हो जाता है, अर्थात् वह शब्द क्रिया, गुण अथवा भाव का बोधक न होकर किसी द्रव्य का वाचक हो जाता है......।[1] उन्होंने इसका नाम मूर्तीकरण दिया है।

1. भाषाविज्ञान, पृ० 205।

अमूर्त अर्थ का मूर्त अर्थ में परिवर्तन—भाषा में एक सामान्य परिवर्तन है।[1] वैसे भी दैनिक जीवन में इस तरह की बात बराबर होती रहती है। लाल रंग को खतरा की निशानी और हरे रंग को खतराविहीन मानना कुछ ऐसा ही है। ब्रेआल मानते हैं कि अर्थ-परिवर्तन की यह प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी हमारी भाषा का इतिहास।[2]

भर्तृहरि कहते हैं कि सुधी लोगों को लोक-व्यवहार पर दृष्टि रखनी चाहिए, क्योंकि लोक के द्वारा असमाख्येय (सूक्ष्म) तत्त्वों के लिए समाख्येय (स्थूल) का व्यवहार होता है।[3]

अर्थ-परिवर्तन की यह प्रवृत्ति अत्यन्त सामान्य और प्राचीन है। इसके अनेक उदाहरण यहाँ भी देखे जा सकते हैं।

अटल (तत्स०। सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'अटल' का अर्थ होता है—दृढ़, न हिलनेवाला।

हि० 'अटल' का भी यही अर्थ प्रचलित है—जो न टले, स्थिर, नित्य, ध्रुव। ये सारे सं० 'दृढ़' अर्थ के ही समानार्थी हैं। यथा, "उसका निश्चय अटल है।"

विपरीत, ने० 'अटल' का अर्थ है—बड़ी अँगीठी। ने० हि० को० पृ० 4। ऐसा लगता है कि यह शब्द सं० से नेवारी में गया और नेवारी से नेपाली में आया। इसके अर्थ में परिवर्तन तभी हो गया था, जब यह नेवारी में गया था। बड़ी अँगीठी को इधर-उधर ले जाना कठिन होता है, संभवतः इसीलिए सं० 'न हिलनेवाला' अर्थ से ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "बाखाको मासु एउटा अटल मा बनिरहेको छ।" (बकरे का मांस एक बड़ी अँगीठी पर बन रहा है।)

अनुहार (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० के 'हृ' धातु में 'अनु' उपसर्ग लगाकर 'अनुहार' शब्द बनाया गया है जिसका अर्थ होता है—सादृश्य, नकल, समाकृति। एस-ई-डी-पी-24।

हि० में यह प्राय: इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त होता रहा। इसमें सादृश्य, तुल्य, आकृति या किसी चीज की हुबहू नकल जैसे सं० अर्थ प्रचलित हैं। इनके अलावा 'अनुकूल और भेद' जैसे दो नये अर्थ भी प्रचलित हो गये हैं। 'सादृश्य' में अनुकूलता का भाव है, संभवतः इसलिए यह अर्थ आया है। 'भेद' अर्थ संभवतः सं० 'नकल' अर्थ से आया है,

---

1. "One of the commonest transformations in language is from an abstract meaning to a concrete."—J. B. Greenough & G.L. Kitteredge—Words and their Ways in English Speech, p. 256.

2. "The phenomenon goes far back as the history of our languages and continues unber our eyes."

—Breal, M.—Semantics, p. 134.

3. "असमाख्येयतत्त्वानामर्थानां लौकिकैर्यथा।
व्यवहारे समाख्यानं तत्प्रज्ञो न विकल्पयेत्॥" —वाक्यपदीयम्, 21/144।

क्योंकि 'नकल' और 'असल' में कुछ न कुछ भेद अवश्य होता है। यथा, "मुग्धा नायिकाओं के भी चार अनुहार (भेद) होते हैं।" 'सादृश्य' या 'तुल्य' अर्थ तो बहुत प्रचलित हैं। यथा, "वाह रे अनुहार, दोनों में कोई फर्क नहीं।"

विपरीत, ने० में 'अनुहार' का अर्थ है—चेहरा, आकार। एन-एन-ई-पी-47। यह अर्थ संभवत: सं० 'समाकृति' अर्थ से आया है, क्योंकि इसमें भी आकृति का भाव है, फिर भी ने० ने 'सम' का भाव छोड़ दिया है। 'सादृश्य', 'नकल' या 'समाकृति' मात्र सूक्ष्म भाव हैं, पर ने० ने इसे 'चेहरा' या 'आकार' अर्थ में बदलकर स्थूल रूप दे दिया है जिससे समाहरण हो गया है। यथा, "त्यसको लाम्बो अनुहार, भरिलो छाती, गंभीर आंखा...।" (उसका लम्बा आकार, भरी हुई छाती, गंभीर आँखें...।) मु० बा०। बां० पृ० 3। "तर अनुहारसंग परिचित भएर पनि युवति दिलीपको लागि अपरिचित थिइन।" (लेकिन चेहरे से परिचित होने पर भी युवती दिलीप के लिए अपरिचित थी।) फे० क० भे० हो०। यु० था० पृ० 1।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

खाँच (तद्० । सं० √खच्>हि० ।, ने० ।)

सं० 'खच्' धातु से 'खाँच' शब्द बना है। सं० में 'खच्' का अर्थ होता है—बाँधना, पैदा होना। सं० को० मु० पृ० 104।

हि० में इसका अर्थ होता है—संधि, जोड़, खींचकर बनाया हुआ निशान, गठन। हि० 'संधि' और 'जोड़' अर्थ में बँधे होने का स्पष्ट भाव है जिससे इनका विकास सं० 'बाँधना' से हुआ जान पड़ता है। 'खींचकर बनाया हुआ निशान' और 'गठन' अर्थ में भी एक खास रूप या आकृति से बँधे होने का भाव है जिससे इनका भी सम्बन्ध सं० 'बाँधना' से प्रतीत होता है। यथा, "दोनों तख्ते के बीच का खाँच (जोड़) दिखाई देता है।"

विपरीत, ने० 'खाँच' का अर्थ होता है—'चुन्नट'। ने० हि० को० पृ० 50। चूँकि 'चुन्नट' के लिए कपड़े को एक जगह समेटकर खास ढंग से बाँध दिया जाता है, संभवत: इसलिए सं० 'बाँधना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। दूसरी संभावना यह भी प्रतीत होती है कि साधारण कपड़े में समय पाकर यों ही चुन्नट बन जाते हैं, संभवत: इसलिए सं० 'पैदा होना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "मेरो पेटीकोटमा धेरै खांच छन्।" (मेरे पेटीकोट में बहुत चुन्नट हैं।)

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

खोंच (तद्० । सं० √कुंच्>कोंच>हि० ।, ने०)

हिन्दी तथा नेपाली का 'खोंच' सं० √ 'कुंच्' धातु से विकसित हुआ है। 'कुंच्' से हिन्दी तथा नेपाली 'कोंच' बना, तत्पश्चात् इसी 'कोंच' से 'खोंच' शब्द का विकास हुआ है।

संस्कृत √कुंच् का अर्थ होता है—सिकोड़ना, टेढ़ा करना, टेढ़ा-मेढ़ा जाना, छोटा करना। एस-ई-डी-पी-151।

हिन्दी 'खोंच' का अर्थ होता है—किसी नुकीली वस्तु से छिलने का आघात,

काँटे आदि में फँसकर कपड़े का फट जाना। हिन्दी के इन अर्थों पर संस्कृत 'टेढ़ा करना' अर्थ का स्पष्ट प्रभाव दीखता है, क्योंकि छिलने पर या फटने पर चमड़ा या वस्त्र वहाँ टेढ़ा हो जाता है। यथा, "उसके कपड़े में खोंच लग गई।"

हिन्दी अर्थ से सर्वथा भिन्न, नेपाली 'खोंच' का अर्थ होता है—गहरी या सँकरी जगह, दो पहाड़ियों के बीच की जगह। एन-एन-ई-पी-355। नेपाली के इन दोनों अर्थों का विकास सं० 'छोटा करना' अर्थ से हुआ जान पड़ता है। 'सँकरी जगह' और 'दो पहाड़ियों के बीच की जगह' में स्पष्ट रूप से लघुता (संकीर्णता या दूरी की लघुता) का भाव है। यह भी संभव है कि पहाड़ियों के बीच की जगह टेढ़ी-मेढ़ी होने के कारण सं० 'टेढ़ा-मेढ़ा जाना' अर्थ से विकसित हुआ हो। यथा, "हावाको मुस्लोले पहाडको खोंचमा कोचिएको एक टुक्रो कैलो बादललाई लखेट्दै ल्यायो...।" (हवा का झोंका पहाड़ के बीच की जगह में कोंचे हुए एक टुकड़ा कैला बादल को खदेड़ते आया...।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 4। "रविका मनमा फेरि...सिमकुनाको खोंचमा झैं खैरे कुइरो मडारिन थालेको छ।" (रवि के मन में फिर...सिमकुना की सँकरी जगह के समान कुहासा मँडराने लगा है।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 933।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

गट्ठा (तद्०। सं० ग्रंथ् > हि० I, ने० II)

सं० 'ग्रंथ्' का अर्थ है—गूँथना, बाँधना। सं० को० सु० पृ० 114।

हि० 'गट्ठा' का अर्थ है—घास, लकड़ी आदि का बोझ, गट्ठर, बड़ी गठरी, प्याज या लहसुन की गाँठ। घास, लकड़ी आदि को एकसाथ बाँधकर गट्ठर बनाया जाता है, लहसुन-प्याज आदि की गाँठ में भी अनेक छोटे-छोटे टुकड़े एकसाथ बँधे होते हैं, संभवतः इसलिए सं० 'बाँधना' से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "उसके सिर पर एक भारी गट्ठा लदा था।"

विपरीत, ने० 'गट्ठा' का अर्थ है—कारतूस, जमा, समूह। ने० हि० को० पृ० 58। 'कारतूस' फीते में गूँथकर कमर में बाँध ली जाती है, संभवतः इसलिए सं० 'गूँथना' अर्थ से ऐसा अर्थ-विकास हुआ जान पड़ता है। 'जमा' या 'समूह' अर्थ में एक जगह जमा होने या बँधने का भाव है, अतएव सं० 'बाँधने' से इसका विकास हुआ प्रतीत होता है। यथा, "हामी हत्तपत्त उठेर तयार भएर आफ्नो-आफ्नो गोली-गट्ठा लिएर निस्कयौं।" (हमलोग हड़बड़ाकर उठकर तैयार होकर अपनी-अपनी गोली-कारतूस लेकर निकले।) मु० बा०। बां० पृ० 93। "उनीहरूको एक गट्ठा थियो...त्यहाँ दुई-चार जना केटा-केटी औ स्वास्नी-मान्छेहरू पनि थिए।" (उन लोगों का एक समूह था...वहाँ दो-चार लड़के-लड़की और औरतें भी थीं।) मु० बा०। बां० पृ० 222।

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

गह (तद्०। सं० ग्रहः > हि० I, ने० I)

सं० 'ग्रहः' का अर्थ होता है—सूर्यादि नवग्रह, लेना, पकड़ना, अनुग्रह, ग्रहण, घड़ियाल, भूत-प्रेत। सं० को० सु० पृ० 114।

हि० में 'गह' का अर्थ है—पकड़, पकड़ने की क्रिया या भाव, मूठ, दस्ता

(हथियार का)। इनमें 'पकड़' और 'पकड़ने की क्रिया या भाव' अर्थ स्पष्टतः सं० 'पकड़ना' से विकसित हैं। चूँकि मूठ या दस्ता भी पकड़ने के स्थल को कहते हैं, अतएव इसका विकास भी सं० 'पकड़ना' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है। यथा, "उसकी गह (पकड़) बहुत मजबूत थी।"

विपरीत, ने० 'गह' का अर्थ है—आँख का वह गड्ढा जिसमें आँसू भरते हैं। ने० हिं० को० पृ० 61। ऐसा लगता है कि ने० का यह अर्थ सं० 'पकड़ना' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि आँखों के द्वारा आँसू का परित्याग करने पर, क्षण भर के लिए ही सही, ऐसे गड्ढे उन आँसुओं को पकड़ रखते हैं, नीचे नहीं गिरने देते। यथा, "बूढो उमेरमा पनि गहभरी आँसू पारेको देख्दा तिनलाई त्यो दृश्य अत्यन्त नसुहाउंदो र घृणित लाग्यो।" (वृद्धावस्था में भी आँख के गड्ढे भरकर आँसू गिराते हुए देखकर उन्हें यह दृश्य अत्यन्त बुरा और घृणित लगा।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 40। "गहमा सुखका आंसु भरिएका थिए।" (आँख के गड्ढे में सुख के आँसू भर गये थे।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 183। —(हिं० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

गाँस (तद्०। सं० √ग्रस्>हिं० I, ने० I)

सं० 'ग्रस्' धातु से 'गाँस' शब्द का विकास हुआ है। सं० 'ग्रस्' का अर्थ होता है—निगलना, खाना। सं० को० सु० पृ० 114।

हिं० 'गाँस' का अर्थ होता है—रोक-टोक, बन्धन, वैर, भेद की बात, गाँठ, वश, देखरेख, अड़चन। हिं० के ये अर्थ सं० 'निगलना' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं। 'निगलने' के क्रम में मुँह संभवतः बाधा खड़ी करता है, यदि ऐसा नहीं होता तो भोजन सीधे पेट में पहुँच जाता। पर, मुँह खाद्य-पदार्थ को अपने में रखकर थोड़ी देर रोक लेता है जिससे उसे चबाया जा सके। संभवतः इसी भाव के कारण 'टोक-टोक', 'बन्धन', 'गाँठ' या 'अड़चन' अर्थ विकसित हुए हैं। अड़चन पैदा करने वाला वैरी माना जाता है, संभवतः इसलिए 'वैर' अर्थ आया है। 'भेद की बात', 'देख-रेख' वगैरह की जरूरत वहाँ होती है जहाँ वैर-भाव होता है, संभवतः इसलिए ऐसे अर्थ आये हैं। यथा, "ऐसा गाँस (बन्धन) पड़ा है कि उसका आना असंभव है।", "आजकल उससे मेरा गाँस (वैर) है।"

विपरीत, ने० 'गाँस' का अर्थ है—कौर, सिलाई, जोड़। ने० हिं० को० पृ० 61। खाने के क्रम में 'कौर' बनती है, संभवतः इसलिए सं० 'खाना' से 'कौर' अर्थ का विकास हुआ है। 'सिलाई' या 'जोड़' अर्थ में दो वस्तुओं के जुड़ने का भाव है और यही भाव सं० 'खाना' में है, क्योंकि खाना शरीर को नई ऊर्जा से युक्त करता है। संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "सुंगुरले झैं मैले तिमीहरूलाई केवल जन्माएं, तिमीहरूको गांसबासको मैले केही बन्दोबस्त गर्न सकिनं।" (सुअर की तरह मैंने तुमलोगों को केवल पैदा किया, तुम लोगों के भोजन (कौर) और निवास का मैं कोई प्रबन्ध नहीं कर सका।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 1। "मैले मुण्टो गाडेर बेस्वादका गांस मुखमा हालिरहे।" (मैं सिर नीचा करके बेस्वाद का कौर मुँह में डालता रहा।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 47। "खीर त त्यहीं हुई...चार गांसमा सिद्धियायो...।" (खीर तो वहीं दो-चार कौर में समाप्त हो गई...।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 98। "कति सुरिएर खाने बल गर्दा पनि अलिकति गांस निलिएन...।" (कितनी चेष्टा करके भी खाने

के लिए जोर लगाने पर भी कुछ कौर न निगली गई...।) आ० र० छ० । इ० ब० रा० पृ० 147 । —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

घा (तद्० । सं० घात>हि० I, नें० II)

सं० 'घात' का अर्थ होता है—मारना, काटना, घायल करना, नाश, प्रवेश, उत्पादन । एस-ई-डी-पी-377 ।

हि० 'घा' का अर्थ है—तरफ, ओर । संभवतः सं० 'प्रवेश' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि प्रवेश किसी न किसी तरफ या ओर से होता है । यथा, "नदी घा घुमने चलो ।" इस शब्द का प्रयोग हिन्दी की ग्राम्य भाषाओं में होता है ।

विपरीत, नें० 'घा' का अर्थ है—घाव, चोट, सन्धि । नें० हि० को० पृ० 68 । स्पष्ट है कि इनमें 'घाव' और 'चोट' अर्थ सं० 'घायल करना' और 'मारना' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि घायल करने पर घाव होता है और मारने से चोट लगती है । 'सन्धि' अर्थ का विकास संभवतः सं० 'मारना' अर्थ से हुआ है, क्योंकि मारपीट के बाद प्रायः सन्धि हो जाती है । यथा, "उसको देहमा घेरै घाको चिह्न थियो ।" (उसकी देह में बहुत से घाव के चिह्न थे ।) —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

छाँट (तद्० । सं०√छिद्>हि० I, नें० II)

सं० 'छिद्' धातु का अर्थ होता है—काटना, विभाजित करना, हटाना, नष्ट करना । एस-ई-डी-पी-293 ।

हि० 'छाँट' का अर्थ है—'छाँटने-काटने या कतरने की क्रिया, कतरन, अलग की हुई निकाली वस्तु' । स्पष्ट है कि इन अर्थों पर सं० 'काटना' अर्थ का प्रभाव है । काट कर निकाली वस्तु ही 'कतरन' कहलाती है और काटने के बाद ही किसी वस्तु को अलग किया जाता है । वैसे, 'अलग की हुई निकाली वस्तु' अर्थ का सम्बन्ध सं० 'विभाजित करना' से भी विकसित प्रतीत होता है । यथा, "यहाँ पर बहुत छाँट (कतरन) जमा हो गयी है, इसे हटाओ ।"

विपरीत, नें० 'छाँट' का अर्थ है—बनावट, ढाँचा । एन-एन-ई-डी-601 । इनके अलावा एक अर्थ 'ढंग' भी प्रचलित है । नें० हि० को० पृ० 86 । किसी वस्तु की 'बनावट' या 'ढाँचा' वैसा ही होता है जैसा उसे काट-छाँटकर बनाया जाता है, संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'काटना' अर्थ से ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । 'ढाँचा' तैयार करने के लिए, यों ही काट-छाँट करने से काम नहीं चलता, वरन् वैसा करने के लिए ढंग आना चाहिए । संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'काटना' अर्थ से 'ढंग' अर्थ का विकास हुआ है । एक तरह की बनावट वाली चीजें एक ही ढंग की मानी जाती हैं, सम्भव है कि इस भाव के कारण ही 'ढंग' अर्थ आया हो । यथा, "आज पनि दिन उघ्रला जस्तो छाँट थिएन ।" (आज भी दिन खुलने का ढाँचा (रंग-ढंग) नहीं था ।) मु० बा० । बां० पृ० 227 । "आमाको यो छाँट देखेर लाल शंकित भएर भन्यो—भन्नुसन, म किनेर ल्याउंला हुन्न ?" (माँ का ऐसा ढंग देखकर लाल शंकित होकर बोला—बोलो न, मैं खरीदकर लाऊँगा, नहीं होगा ?) क० सं० । गो० पृ० 4 । "कद पनि होचो अर्थात् हिस्सी परेकी तर छाँट नपरे की...।" (कद की छोटी अर्थात् सुन्दर लगनेवाली लेकिन बनावट अच्छी नहीं...।) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 23 । —(हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

चरी (तद्० । सं० √चर् > हि० I, ने० II)

सं० 'चर्' धातु में 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से 'चरी' शब्द बना है। सं० 'चर्' का अर्थ है—खाना, चलना। सं० को० सु० पृ० 119।

हि० 'चरी' का अर्थ है—पशुओं के चरने की जमीन, ज्वार के पेड़ जो चारे के काम में आते हैं। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'खाना' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि इन सबमें पशुओं के द्वारा खाये जानेवाले पदार्थ या चरे जाने के स्थान का भाव है। यथा, "इस बार ऐसी बाढ़ आई कि कहीं चरी नहीं है।" यहाँ सं० खाने के भाव का समाहरण हो गया है जिससे खाद्य-पदार्थ या खाने के स्थान का भाव आ गया है।

विपरीत, ने० 'चरी' का अर्थ है—छोटी चिड़िया, मादा चिड़िया। ने० हि० को० पृ० 75। सम्भवतः इन अर्थों का विकास सं० 'खाना' अर्थ से इसलिए हुआ है कि इस तरह की चिड़िया भी बहुत सारे लोगों के द्वारा खाई जाती है। यथा, "आफ्ले पाले-को चरीले आफैलाई एक दिन ठुंग है भनी धेरै छिमेकीले कुरा पनि गरे।" (उसी की पाली हुई छोटी चिड़िया उसको एक दिन चोंच मारती है, कहकर बहुत पड़ोसियों ने चर्चा भी की।) मु०बा०। बां० पृ० 127। "दिव्या खुशी भएकी बचेरी चरीजस्तो बीच-मा पसी खुब हल्ला गर्दैथिई।" (दिव्या खुश होनेवाली बेचारी छोटी चिड़िया की तरह बीच में घुसकर खूब हल्ला करती थी।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 57।

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

छाक (तद्० । सं० चक् > हि० I, ने० I)

सं० 'चक्' का अर्थ है—अघाना, अड़ना। सं० को० सु० पृ० 116।

हि० 'छाक' का अर्थ होता है—तृप्ति, इच्छापूर्त्ति, वह भोजन जो काम करने वाले दोपहर को करते हैं, नशा, मस्ती। इन अर्थों पर सं० 'अघाना' अर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है। 'तृप्ति' और 'इच्छापूर्त्ति' अर्थ तो 'अघाना' के समानार्थी हैं। दोपहर तक काम करते-करते आदमी बुरी तरह क्षुधाग्रस्त हो जाता है और तब भोजन पाकर वह बड़ा तृप्त होता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण यह अर्थ आया है। जब अघाकर भोजन किया जाता है तो कुछ-कुछ नशा या मस्ती आ जाती है, जो आलस्य या तन्द्रा के रूप में प्रकट होती है। सम्भवतः इसलिए 'नशा' या 'मस्ती' अर्थ आया है। यथा, "दो थाली भात खाने पर उसका छाक पूरा हुआ।"

विपरीत, ने० 'छाक' का अर्थ है—एक वक्त का भोजन। ने० हि० को० पृ० 86। यह अर्थ भी सं० 'अघाना' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि एक वक्त के भोजन से ही लोग तत्काल अघा जाते हैं। यथा, "एउटा बाजको एक छाक को भोजन तिमी दिन्थ्यौ।" (एक बाज को एक वक्त का भोजन तुम देते।) सु०। बी० पी० को० पृ० 22। "तपाईहरूके त दासी भएर दुई छाक पाउंथें...।" (आप लोगों की तो दासी होकर दो वक्त का भोजन खा पाती थी...।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 68।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

जिय (तद्० । सं० जीवः > हि० I, ने० II)

सं० 'जीवः' का अर्थ होता है—प्राण, प्राणी, जीविका। सं० को० सु० पृ० 127।

हि॰ 'जिय' का प्रयोग—मन या चित्त—के लिए होता है। इस शब्द का मुख्यतः प्रयोग ब्रजभाषा या ऐसी ही हिन्दी की उपभाषाओं में होता है। सं॰ 'प्राण' से हि॰ के इस अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है, क्योंकि 'प्राण' जिस तरह शरीर के अन्दर स्थित माना जाता है, उसी तरह 'मन' या 'चित्त' को भी। वैसे लाक्षणिक अर्थों में 'प्राण' का प्रयोग भी मन या चित्त के लिए होता है। यथा, "वहाँ रहते हुए मेरे प्राण जैसे अकुलाने लगे।" यहाँ 'प्राण' का अर्थ 'मन' ही है। यथा, "आज मेरा जिय उदास है।" "जिय तेरे कछु भेद उपजि है।"—सूर॰।

विपरीत, ने॰ 'जिय' का अर्थ है—शरीर। ने॰ हि॰ को॰ पृ॰ 96। सं॰ 'प्राणी' अर्थ से ने॰ का यह अर्थ विकसित लगता है। चूँकि हर प्राणी शरीरधारी होता है, अतएव ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "उनको छ फुटभन्दा अग्लो जिय, हेर्दापनि डर लाग्ने फराक छाती...।" (उनका छः फुट से ऊँचा शरीर, देखते ही डर लगने वाली विस्तृत छाती...।") सो॰ र॰ ज॰। के॰ नु॰ पो॰ पृ॰ 38।

—(हि॰ अर्थादेश : लक्षणा)

टाँक (तद्॰। सं॰ टंक् > हि॰ I, ने॰ I)

सं॰ 'टंक्' का अर्थ होता है—बाँधना। सं॰ को॰ गु॰ पृ॰ 130।

हि॰ 'टाँक' का अर्थ होता है—कूत, अंदाज, तीन या चार माशे की एक तौल (जौहरी)। किसी वस्तु को देखकर उसे अनुमान में बाँधना ही कूत या अंदाज कहलाता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण हि॰ के ये अर्थ आये हैं। 'तीन या चार माशे की तौल' अर्थ तो स्पष्टतः वस्तु को उस तौल की सीमा में बाँधने वाले भाव के कारण आया लगता है। यथा, मैं समझता हूँ कि यह बीस किलो होगा, तुम्हारी टाँक क्या है ?"

विपरीत, ने॰ 'टाँक' का अर्थ है—'बटन'। ने॰ हि॰ को॰ पृ॰ 109। चूँकि बटन भी कपड़े के दो हिस्से को आपस में बाँधता है, सम्भवतः इसलिए सं॰ 'बाँधना' अर्थ से 'बटन' अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "जुन कमेजमा खल्ती हुन्थ्या त्यसमा पनि एक थोक न एक थोक विचित्रता त अवश्य हुन्थ्यो, उदाहरणार्थ कम्मरदेखि घांटीसम्म टाँक लगाउनु पर्ने।" (जिस क़मीज में जेब होती थी, उसमें भी एक चीज विचित्र अवश्य होती थी, उदाहरणार्थ कमर से गले तक बटन लगाना पड़ता था।) सो॰ र॰ ज॰। के॰ नु॰ पो॰ पृ॰ 38-39।

—(हि॰ अर्थादेश : सम्बद्ध)

देखा (तद्॰। सं॰ दृश् > हि॰ देखना > हि॰ I, ने॰ I)

सं॰ 'दृश्' का अर्थ होता है—देखना, दृष्टि, आँख। सं॰ को॰ गु॰ पृ॰ 145।

हि॰ 'देखा' का अर्थ है—अवलोकन किया। यह हि॰ 'देखना' का भूतकालिक रूप है। स्पष्ट है कि यह सं॰ 'देखना' से सीधे गृहीत हुआ है। यथा, "मैंने इतनी छोटी उम्र में बहुत को बनते और बिगड़ते देखा।"

विपरीत ने॰ 'देखा' का अर्थ है—सामने, आगे, देखने या दिखाई पड़ने वाला स्थान। ने॰ हि॰ को॰ पृ॰ 151। जो सामने या आगे होता है, वही दिखाई पड़ता है, सम्भवतः इसी भाव के कारण सं॰ 'देखना' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "मेरो घरको देखामा एउटा पीपलको वृक्ष छ।" (मेरे घर के सामने एक पीपल का वृक्ष है।)

देखी (तद्० । सं० । दृश् > हि० देखना > हि० देखी I, ने० I)

सं० 'दृश्' का अर्थ है—देखना, दृष्टि, आँख । सं० को० सु० पृ० 145 ।

हि० 'देखी', हि० 'देखना' क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप है । अतएव, हि० का यह अर्थ सं० 'देखना' से स्पष्टतः विकसित है । यथा, ''मैंने आज वह पुस्तक देखी जिसकी चर्चा आप कर रहे थे ।''

विपरीत, ने० 'देखी' का अर्थ है—देखने को मिलने वाला, भवितव्य, निश्चय, अवश्य । ने० हि० को० पृ० 152 । 'देखने को मिलने वाला' अर्थ स्पष्टतः सं० 'देखना' से विकसित है । आगे जो कुछ देखने को मिलने वाला है, उसे ही भवितव्य कहते हैं, अतएव यह भी सं० 'देखना' से विकसित लगता है । भाग्यवादी मानते हैं कि भविष्य में देखने को मिलने वाली घटनाएँ निश्चित या अवश्य ही होने वाली हैं, सम्भवतः इसलिए 'निश्चित' और 'अवश्य' अर्थ भी सं० 'देखना' से ही विकसित हुए होंगे । वैसे, आँख से देखी चीजें निश्चित या अवश्य हैं, परोक्ष की चीजों के बारे में निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता—ऐसा लोग मानते हैं । सम्भवतः है, इस भाव के कारण सं० 'आँख' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ हो । यथा, ''के ममाथि पेरेको ईश्वरको देखी तिमीहरूले देखेर खुशी भएका होइना ?'' (क्या मेरे सिर पर पड़े ईश्वरीय भवितव्य को देखकर तुम लोग खुश नहीं हुए हो ?)

धाप (तद् । सं० स्थापन > हि० थाप > हि० I, धाप ने० I)

सं० 'स्थापन' से ही हिन्दी तथा नेपाली 'धाप' का विकास हुआ जान पड़ता है । इन दोनों के बीच की कड़ी 'थाप' रही होगी—ऐसा अनुमान तर्कसम्मत लगता है ।

सं० 'स्थापन' का प्रयोग—स्थिर करना, दृढ़ करना, स्थापित करना, निर्देश करना, मानसिक स्थिरता, निवास आदि—अर्थों में होता है । एस-ई-डी-पी-623 ।

हिन्दी भाषा ने संस्कृत √स्था (061) के मूल अर्थ 'गति निवृतौ' को लिया जो 'स्थान' शब्द के समीप है । हिन्दी में 'धाप' का प्रयोग—दूरी की एक माप जो कहीं एक मील की और कहीं दो मील की मानी जाती है, लम्बी दौड़, लम्बा-चौड़ा मैदान, खेत की माप—आदि अर्थों में होता है । स्पष्ट है कि इन सारे अर्थों में स्थानवाची होने का भाव है । यथा, ''एक ही धाप में (लम्बी दौड़) मैं वहाँ पहुँच जाऊँगा ।''

हिन्दी अर्थ से सर्वथा भिन्न नेपाली 'धाप' का अर्थ होता है—शाबाशी के लिए पीठ ठोंकना, खेल में एक साँस की दौड़ की दूरी । ने० हि० को० पृ० 155 । इनमें दूसरा अर्थ स्थानवाची होने के कारण हिन्दी अर्थों की तरह ही विकसित लगता है । प्रथम अर्थ—शाबाशी के लिए पीठ ठोंकना—सम्भवतः सं० 'दृढ़ करना' अर्थ से प्रभावित है । पीठ ठोंककर कोई भी आदमी किसी को ज्यादा दृढ़ता प्रदान करना चाहता है जिससे वह उस मार्ग पर और भी साहस के साथ बढ़ सके । यहीं यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि नेपाली के इस अर्थ पर हिन्दी 'थाप' अर्थ का अवश्य प्रभाव पड़ा होगा, क्योंकि हि० 'थाप मारना' और नेपाली 'पीठ ठोंकना' अर्थ में बहुत साम्य है । यथा, ''बूढाले खेलाई ···स्नेह को भावले धाप मार्दै सम्झाउन थाल्यो ।'' (बूढ़े ने रने को...स्नेह के भाव से पीठ ठोंकते हुए समझाया ।) मु० बा० । बा० पृ० 14 । आगाडि पीठ्यूँमा धाप दिएको कुरा ।'' (आगे पीठ में ठोंककर शाबाशी देने की बात ।) न० स० को० गी० । र० वि० पृ० 162 ।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

निखार (तद्० । सं० निकारः > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'निकारः' का अर्थ होता है—अनाज को ओसाना, फटकना, ऊपर उठाना, हत्या करना, तिरस्कार, बेइज्जती, घाव, गलती, गाली, विरोध । एस-ई-डी-पी-286 ।

हि० 'निखार' का अर्थ होता है—निर्मलता, शृंगार । हि० के इन अर्थों पर सं० 'फटकना' अर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है । अनाज को फटककर परिष्कृत या निर्मल बनाया जाता है और शृंगार में भी लोग मैल को साफकर सौन्दर्य को चमकाते हैं, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । 'शृंगार' अर्थ का विकास सं० 'ऊपर उठाना' से भी हो सकता है, क्योंकि सौन्दर्य को शृंगार करके और बढ़ाया जाता है । यथा; "उसके चेहरे में दिन-ब-दिन निखार आता जा रहा है ।"

विपरीत, ने० 'निखार' का अर्थ होता है—अवसाद या अवशेष । एन-एन-ई-पी-940 । इन अर्थों पर सं० 'ओसाना' या 'फटकना' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि ओसाकर या फटककर अन्न के फालतू तत्त्वों को अलग किया जाता है । ऐसे ही फालतू या गन्दे तत्त्व को अवसाद कहते हैं । यथा, "यो भांडोमा मात्र कालीको निखार तेल छ ।" (इस बरतन में मात्र खल्ली का अवसाद वाला तेल है ।)

—(हि० अर्थादेश : अर्थोत्कर्ष)

इ : घ—अमूर्तीकरण : अर्थादेश

जब मूर्त अर्थ अमूर्त अर्थ में बदल जाता है तो उसे अमूर्तीकरण कहते हैं। तात्पर्य यह कि जब कोई शब्द पहले किसी मूर्त पदार्थ का वाचक था, लेकिन बाद में वह अमूर्त भाव, गुण या क्रिया का वाचक बन गया तो उसे अमूर्तीकरण कहते हैं ।

ब्लूमफील्ड का कहना है कि अर्थ-परिवर्तन के अध्ययन से पता चलता है कि मूर्त अर्थों से अमूर्त भावों का उदय अधिक होता है ।[1]

जिस तरह मानवीकरण के अन्तर्गत मानव के गुणों को व्यक्ति के रूप में प्रयोग किया जाता है, उसी के विपरीत अमूर्तीकरण के अन्तर्गत व्यक्ति के गुण को व्यक्ति के बदले प्रयोग में लाया जाता है । ग्रीनओ तथा किट्टरिज इसी बात को स्वीकारते हुए कहते हैं कि मूर्त अर्थ का अमूर्त अर्थ के व्यवहार का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग यह है कि किसी व्यक्ति या वस्तु के लिए किसी गुण के नाम का व्यवहार किया जाता है ।[2]

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ज्यों-ज्यों भाषा की उन्नति होती है,

---

1. "The surface of study of semantic change indicates that refind and abstract meanings largely grow out of more concrete meanings."—Leonard Bloomfield—Language, p. 249.

2. "One striking use of the abstract for the concrete is the application of the name of a quality to a person or thing. This may be regarded as the reverse of personification."—J. B. Greenough & G. L. Kitteredge.—Words and their Ways in English Speech, p 256-57.

अमूर्तीकरण की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है। प्रवृत्ति का ज्यों-ज्यों परिष्कार होता है, त्यों-त्यों लोग स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगते हैं। हरदेव बाहरी का मत है कि अमूर्तीकरण भाषागत संस्कार का परिणाम है।[1]

उल्का (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० में 'उल्का' शब्द—लुक, मशाल, अग्नि, आकाश से गिरा हुआ तारा—के अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है। सं०को०मु०पृ० 68।

हि० में 'लुक, टूटता तारा, मशाल' अर्थ प्रचलित हैं जो सं० से सीधे गृहीत हुए हैं। इनके अलावा 'ज्वालाहीन पदार्थ' और 'दीया' अर्थ भी विकसित हुए हैं जो सं० से भिन्न हैं। हि० के ये दोनों नये अर्थ सम्भवतः सं० 'आकाश से गिरा हुआ तारा' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि ऐसे तारे प्रायः ज्वालाहीन होते हैं या धरती पर आते-आते ज्वालाहीन हो जाते हैं और दूर से देखने से ये दीये के समान ही प्रकाशमान दीखते हैं। सम्भव है, इसी भाव-सादृश्य और रूप-सादृश्य के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ हो। यथा, "घर में उल्के की रोशनी टिमटिमा रही थी।"

विपरीत, ने० 'उल्का' का अर्थ होता है—बदमाशी, बदतमीजी, विचित्र व्यवहार। ने०हि०को०पृ० 20। आकाश से गिरता हुआ तारा अपने रास्ते से भटका हुआ होता है। उससे कभी-कभी बहुत बड़ी हानि हो जाती है। लगता है, नेपाली ने सही रास्ते से भटकने और हानि पहुँचाने वाले भाव को मुख्य रूप से ग्रहण किया और इस तरह का नया अर्थ विकसित कर लिया। यथा, "कस्तो उल्का, कस्तो नहुने कुरा; हे ईश्वर, अब के होला ?" (कैसा विचित्र व्यवहार, कैसी असम्भव बात; हे ईश्वर, अब क्या होगा ?) ने० म० को० गी०। र० वि० पृ० 165।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

ओर (तद्०। सं० अवारः > हि० I, ने० I)

श्री बालचन्द्र शर्मा, टर्नर महोदय एवं सं० हि० श० के अनुसार, 'ओर' का विकास सं० 'अवारः' से हुआ है। सं० 'अवारः' का अर्थ होता है—पास का नदी-तट, इस ओर। एस-ई-डी-पी-62।

सं० 'अवारः' से बने हि० 'ओर' का अर्थ है—तरफ, किनारा, छोर, दिशा, पक्ष। ये सारे अर्थ सं० 'इस ओर' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि सबमें 'ओर' का भाव है। यथा, "आप किसकी ओर (पक्ष) हैं ?"

विपरीत, ने० 'ओर' का अर्थ है—ओट, पक्ष। ने० हि० को० पृ० 24। इनमें 'पक्ष' अर्थ सं० 'इस ओर' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि 'पक्ष' में किसी ओर होने का भाव है। 'ओट' अर्थ हिन्दी अर्थों से भिन्न है और इसका विकास सं० 'पास का नदी-तट' अर्थ से हुआ लगता है। चूँकि नदी-तट ऊँचा होता है, अतएव उसकी ओट में छिपा जा सकता है, सम्भवतः इसलिए ऐसा अर्थ आया है। यथा, "यति ओर टांसिएर फेरि पर सर्नं त्यस बाहुन केटीलाई तिमीले सिल्ली ठान्यो।" (इतना (पास) ओट में लेकर

1. "Abstraction, it may be remarked, is a consequence of Linguistic Culture."—Hindi Semantics, p. 230.

फिर दूर हट जाने से उस ब्राह्मण-पुत्री को तुमने पागल समझा।) सो० र० ज०। के० तु० पो० पृ० 185। "ओर पर त आउलान स्वास्नीमान्छे।" (पक्ष-विपक्ष में तो आती हैं औरतें।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 149। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

कंस (तत्स०। सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'कंसः' का अर्थ होता है—उग्रसेन का पुत्र, श्रीकृष्ण का मामा तथा मथुरा का राजा, जल पीने का पात्र, काँसा। सं०को०सु०पृ० 74।

हि० में 'श्रीकृष्ण का मामा' और 'काँसा'—दोनों अर्थ सुरक्षित हैं। इनके अलावा 'प्याला, कटोरा, सुराही, मजीरा' अर्थ भी विकसित हो गये हैं। ये अर्थ सं० 'जल पीने का पात्र' अर्थ से विकसित हुए जान पड़ते हैं, क्योंकि ये सारे पात्र हैं। 'मजीरा' अर्थ सं० 'जल पीने का पात्र' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि सम्भव है पहले दोनों की आकृति लगभग एक-सी होती हो। यथा, "एक कंस (प्याला) में पानी ले आओ।"

विपरीत, ने० 'कंस' का अर्थ है—दुष्ट। ने०हि०को०पृ० 26। मथुरा के राजा कंस दुष्ट माने जाते हैं, क्योंकि उन्होंने देवकी के सात पुत्रों की निर्मम हत्या की थी और बाद में कृष्ण को भी मरवाने का प्रयत्न किया था। सम्भवतः उसकी दुष्टता के कारण ही ने० का यह अर्थ आया है। यथा, "यस्तो कंस व्यक्तिसित दया को याचना गर्नु पनि पाप हो।" (ऐसे दुष्ट व्यक्ति से दया की याचना करना भी पाप है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

कच (तत्स०। सं०> हि० II, ने० II)

सं० 'कचः' का अर्थ होता है—केश, सूखा घाव, बंधन, बृहस्पति का पुत्र, बादल। सं०को०सु०पृ० 75।

हि० में संस्कृत के—केश, सूखा जख्म और बादल—अर्थ तो प्रचलित हैं ही, साथ ही 'दाग', 'झुंड' और 'वस्त्र का छोर'—ये तीन नये अर्थ भी विकसित हो गये हैं। चूँकि 'सूखा घाव' दाग छोड़ जाता है, सम्भवतः इसलिए 'दाग' अर्थ आया है। 'झुंड' अर्थ का विकास सं० 'बन्धन' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि झुंड में बहुत सारे जीवों के एकसाथ होने का भाव है, जैसा कि बन्धन में होता है। 'बन्धन' का काम ही दो या अनेक को एकसाथ जोड़ना है। 'वस्त्र का छोर' अर्थ भी सं० 'केश' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि दोनों में लहराने या हल्का-फुल्का होने का समान भाव है। यथा, "उसकी देह में अनेकानेक कच हैं।"

विपरीत, ने० 'कच' का अर्थ है—दाग करना, रेखांकित करना। ने०हि०को० पृ० 26। ने० के ये अर्थ सं० 'सूखा घाव' अर्थ से विकसित लगते हैं। 'सूखा घाव' शरीर पर दाग छोड़ जाता है और घाव के छूट जाने पर भी उसकी रेख रह जाती है। यथा, "पढ्दाखेरि महत्वपूर्ण सूक्तिहरूमा कच गरि राखेको खण्डमा दोस्रो पटक पढ्नमा सुविस्ता हुन्छ।" (पढ़ते समय महत्त्वपूर्ण सूक्तियों को रेखांकित करके रखने से दूसरी बार पढ़ने में आसानी होती है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

कमान (वि० । फा० > हि० ।।, ने० ।।)

'कमान' फारसी शब्द है जिसका अर्थ होता है—धनुष, चाप। उ० हि० डि० पृ० 253।

हि० 'कमान' का अर्थ है—धनुष, इन्द्रधनुष, मेहराब, तोप, बन्दूक। ये सारे अर्थ फा० 'धनुष' अर्थ से विकसित प्रतीत होते हैं। 'इन्द्रधनुष' में 'धनुष' का भाव स्पष्ट है। जिस तरह धनुष टेढ़ा होता है, उसी तरह 'इन्द्रधनुष' और 'मेहराब' भी। सम्भवतः इसी रूप-साम्य के कारण ये अर्थ विकसित हुए हैं। 'तोप' और 'बन्दूक' मारक हथियार हैं, उसी तरह जिस तरह धनुष। अतएव, ये अर्थ कार्य-साम्य के आधार पर विकसित हुए हैं। यथा, "उसने डाकुओं को कमान (बन्दूक) से भूँज दिया।"

विपरीत, ने० 'कमान' का अर्थ हो गया है—अख्तियार। ने०हि०को०पृ० 30। इसके अलावा कहीं-कहीं 'धनुष' अर्थ भी देखा जाता है। 'अख्तियार' या 'हुकूमत' अर्थ फा० 'धनुष' अर्थ से सम्भवतः इसलिए आया है कि पहले शक्तिशाली लोग अपना 'अख्तियार' या 'हुकूमत' ताकत के बल पर कायम रखते थे और बन्दूक, तोप, बम आदि का आविष्कार नहीं होने के कारण उनकी ताकत धनुष (बाण) पर ही निर्भर रहा करती थी। यथा, "पहाडवस्ती तथा कमानका नवजवानहरू डिपूमा गएर नाउं लेखाउन थाले।" (पहाड़ी बस्ती तथा हुकूमत के अन्दर के नौजवान लोग डिपू में जाकर नाम लिखाते थे।) मु० बा०। बां० पृ० 207। "ठाऊं-ठाउंमा विस्तृत जंगल फांडी त्यहां चिया कमान बनाउन···।" (जगह-जगह पर विस्तृत जंगल को उजाड़ कर वहाँ चाय की (बगान बनाकर) हुकूमत कायम करना···।) मु० बा०। बां० पृ० 202।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

खपुवा (तद्० । सं० खर्पर > हि० ।, ने० ।।)

सं० 'खर्पर' का अर्थ होता है—चोर, ठग, खोपड़ी, खोपड़ी का अर्द्ध भाग, भिखारी की थाली, छाता, एक खनिज पदार्थ। एस-ई-डी-पी-285।

हि० 'खपुवा' का अर्थ होता है—भग्गू, डरपोक। लगता है, हिन्दी ने सं० 'ठग' या 'चोर' अर्थ के हीनता का भाव ग्रहण किया और उसी तरह हीनभाव वाले नए अर्थ को विकसित कर लिया। 'चोर' या 'ठग' स्वभाव से भग्गू या डरपोक होते हैं। चोरी करने या ठगने के बाद वे रुकते नहीं। यथा, "वैसा खपुवा मारपीट में टिक नहीं सकता।"

विपरीत, ने० 'खपुवा' का अर्थ होता है—बहुत दिन टिकनेवाला, टिकाऊ। ने०हि०को० पृ० 47। ने० का यह अर्थ सं० 'खोपड़ी' अर्थ से विकसित मालूम पड़ता है, क्योंकि खोपड़ी ही मस्तिष्क की रक्षा करती है और उसे टिकाऊ बनाती है। यदि मस्तिष्क खोपड़ी से आच्छादित नहीं होता तो संभवतः उसका टिकाऊपन भी नहीं रहता। यथा, "विदेशी वस्तुहरू अलि बढ्ता खपुवा हुन्छन्।" (विदेशी चीजें कुछ ज्यादा टिकाऊ होती हैं।)

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

गाल (तद्० । सं० गंडः > हि० ।, ने० ।)

सं० 'गंडः' से 'गाल' शब्द का विकास हुआ है। सं० 'गंडः' का अर्थ होता है—गाल, बुल्ला, फोड़ा, गाँठ, घेघ, चिह्न, गैंडा, वीर। सं०को०सु० पृ० 107।

हि० 'गाल' का अर्थ है—कपोल, गंड, मुख, मुँहजोरी। इनमें 'कपोल' और 'गंड' अर्थ सं० 'गाल' के ही पर्यायवाची हैं। 'गाल' मुख में ही होता है या मुख के पास होता है, संभवतः इसलिए 'मुख' अर्थ विकसित हुआ है। लोग गाल-मुख के सहारे ही बोलते हैं, अतएव 'मुँहजोरी' अर्थ भी आ गया है। वैसे, 'मुँहजोरी' के लिए 'गाल बजाना' मुहावरा प्रचलित है मात्र 'गाल' नहीं। यथा, "तुम गाल बजाकर (मुँहजोरी करके) जीत नहीं सकते।"

विपरीत, ने० 'गाल' का अर्थ होता है—अपयश, लांछन, दोष। ने०हि०को० पृ० 62। ने० के इन अर्थों का विकास सं० 'गाल' (कपोल) अर्थ से हुआ जान पड़ता है। लोग गाल बजाकर ही या बोलकर ही (बोलने में गाल के सहयोग की भी जरूरत होती है) किसी को अपयश या दोष देते हैं या किसी पर लांछन लगाते हैं।

इसका विकास सं० 'गालि' या 'गाढ़' से हुआ नहीं लगता है, जैसा कि कुछ नेपाली विद्वान् मानते हैं। 'गालि' का अर्थ है—'गाली' या 'शाप' जो 'अपयश', 'लांछन' या 'दोष' से सर्वथा भिन्न है। 'गाढ़' से तो इसका सम्बन्ध किसी प्रकार नहीं बैठता, क्योंकि इसका अर्थ 'दृढ़' होता है। अतएव, इसका विकास सं० 'गंड:' से ही मानना उपयुक्त है। यथा, "अलि कुना काप्चा पारेर बस अैले, सवारी आउने बेला भयो गाल पर्छ।" (थोड़ा कोने में सरककर अब बैठो, राजा की सवारी आनेका समय हुआ, लांछन लगेगा।) न०स०को०गी०। र०वि० पृ० 75। "व्यवहारबाट हुने लोकको गाल अबगाल पनि अब उसैमाथि पर्छ।" (व्यवहार से होने वाले लोगों का अपयश भी अब उसी के ऊपर पड़ेगा।) मा० घ०। बां०पृ० ख।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

गोला (तत्स०। सं०>हि० ।, ने० ।)

सं० 'गोला' का अर्थ है—गेंद, संखिया, गोदावरी नदी। सं० को० सु० पृ० 113।

हि० में 'गोला' का अर्थ है—किसी पदार्थ का बड़ा गोल पिण्ड, वायुगोला, जंगली कबूतर, गरी का गोला, वह बाजार या मंडी जहाँ अनाज या किराने की बड़ी-बड़ी दूकानें हों, रस्सी-सूत आदि की गोल लपेटी हुई पिंडी। इनमें 'जंगली कबूतर' और 'मंडी' अर्थ छोड़कर शेष सारे अर्थों में गोलाई का भाव है जिससे ये अर्थ सं० 'गेंद' (गोल होने के कारण) अर्थ से विकसित प्रतीत होते हैं। संभव है, जंगली कबूतर गोदावरी नदी के किनारे के जंगलों में अधिक पाये जाते हों जिससे ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। 'अनाज मंडी' वाला अर्थ भी संभवत: 'गेंद' अर्थ से ही विकसित हुआ है। हो सकता है, पहले ऐसी मंडियाँ एक ही जगह वृत्ताकार रूप में अवस्थित होती हैं। जिससे ऐसा अर्थ आया होगा। यथा, "वह सामान लाने गोला गया है।" "इस गोले का वजन दो क्विंटल है।"

ने० 'गोला' का अर्थ है—वृत्ताकार या गोल। एन-एन-ई-पी-448। चूँकि 'गेंद' भी गोल होती है, संभवतः इसलिए सं० 'गेंद' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "आकाशको माझमा हिउंको शीतल गोला झैं टांगिएको चंद्रमाको रमाइलो जुनेलीमा आफुलाई डुबाउन चाहीं।" (आकाश के बीच में बर्फ की शीतल गोल वस्तु के समान टँगे हुए चन्द्रमा की आनन्ददायक चाँदनी में अपने को डुबाना चाहा।) न०स० को०गी०। र०वि० पृ० 80। —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

चख (तद्० । सं० चक्षुष्>हि० I, ने० II)

सं० 'चक्षुष्' का अर्थ होता है—आँख । सं०को०सु० पृ० 117 ।

हि० 'चख' का अर्थ भी 'आँख' ही होता है । 'झगड़ा-तकरार' अर्थ वाला चख फा० का 'चख' है, सं० का नहीं । यथा, "उसने लाल-लाल चख करते हुए कहा !" 'चख' का व्यवहार हि० की ग्राम्य भाषाओं में ही होता है ।

विपरीत, ने० 'चख' का अर्थ होता है—आश्चर्य, गजब । ने० हि० को० पृ० 73 । चूँकि आश्चर्य के भाव की अभिव्यक्ति मुख्यतः आँखों के द्वारा होती है, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थ आया लगता है । यथा, "उसकी मृत्यू को खबर सुनेर मलाई चख लाग्यो ।" (उसकी मृत्यु की खबर सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ ।)

जिद्दी (त्रि० । अ० जिद्दी>हि० I, ने० I)

अ० 'जिद्दी' का अर्थ होता है—दुराग्रही हठी । उ०हि०डि० पृ० 380 ।

हि० 'जिद्दी' का अर्थ अ० की तरह ही 'हठी' या 'दुराग्रही' होता है । यथा, "उस जिद्दी से अपनी बात मनवा लेना बहुत कठिन है ।"

विपरीत, ने० 'जिद्दी' का अर्थ हि० की तरह 'जिद्द करनेवाला' या 'दुराग्रही' न होकर 'जिद्द', 'हठ' या 'एक ही बार में काम करना' होता है । एन-एन-ई-पी-654 । एक ही बार में काम करना भी एक तरह का हठ ही है, अतएव ये सारे अर्थ लगभग समानार्थी हैं । ये सारे अर्थ अ० 'हठी' अर्थ से ही विकसित हुए हैं—यह स्पष्ट है । यथा, "तर रनेको जिद्दी बुढालाई थाहा थियो ।" (लेकिन रने की जिद्द बूढ़ा जानता था ।) मु० बा० । बां० पृ० 23 । "उ जिद्दी गर्छ ।" (वह जिद्द करता है ।) प्र० । ग० प्या० पृ० 28 । "सन्नानी जिद्दी गर्थिन—पान्छु हेर्नोसन आमा !" (सन्नानी जिद्द करती थी—जाती हूँ, देखो न माँ ।) न०दा० । वि०प्र०को० पृ० 29 । "रात भर एम० के० छोरै हुन्छ भनेर— जिद्दी गर्थ्यो...।" (रात भर एम० के० लड़का ही होगा—कहकर जिद्द करता रहा...।) अ०र०छ० । इ०ब०रा० पृ० 99 ।

ठहर (तद्० । सं० √स्था>हि० I, ने० II)

सं० 'स्था' धातु से हिन्दी तथा नेपाली 'ठहर' का विकास हुआ है । डॉ० बाबूराम सक्सेना √'स्था' धातु या सं० 'स्थविर' से 'ठहर' का विकास मानते हैं ।

सं० 'स्था' धातु का अर्थ होता है—खड़ा होना, ठहरना, रहना, छूट जाना, देर करना, प्रतीक्षा करना, रोकना । एस-ई-डी-पी०-621 ।

हिन्दी 'ठहर' का अर्थ है—स्थान, रसोई का स्थान, लिपाई-पोताई । सं० 'खड़ा होना', 'ठहरना' और 'रहना' अर्थों में स्थान का भाव छिपा हुआ है । लगता है बाद में इसी स्थान-भाव के कारण हिन्दी के प्रथम दो अर्थ ('स्थान' और 'रसोई का स्थान') विकसित हुए । 'रहना' अर्थ के कारण संभवतः 'लिपाई-पोताई' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि रहने वाले स्थान की लिपाई-पोताई करना स्वाभाविक है । यथा, "आज उसे कहीं ठहर (स्थान) नहीं मिलता ।" हिन्दी में 'ठहर' का प्रयोग मुख्यतः ग्राम्य भाषाओं में होता है ।

नेपाली 'ठहर' का अर्थ होता है—निश्चय, निश्चित विचार। ने० श० पृ० 429। ऐसा लगता है कि नेपाली के ये अर्थ सं० 'ठहरना' या 'रोकना' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि इन सारे अर्थों में 'ठहराव' का भाव है। नेपाली में 'ठहर' का प्रयोग साहित्य में होता है, हिन्दी की तरह मात्र ग्राम्य भाषाओं में नहीं। यथा, "नागरिक मतदाता र तिनका छोरा-छोरीहरू सबै मानिस हुन् भन्ने ठहर सत्य हो…।" (नागरिक मतदाता और उनकी पुत्र-पुत्रियाँ—सभी मनुष्य हैं, यह धारणा (निश्चित विचार) सही है…।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 11। "घटनाहरू र चरित्रहरूका कथालाइ उपन्यासभित्र थन्काउनु पर्छ भन्ने उनीहरूको ठहर छ।" (घटनाओं और चरित्रों की कहानी को उपन्यास के अन्दर ठीक जगह पर रखना पड़ता है, ऐसा उन लोगों का निश्चित विचार है।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० छ।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

ठूँग (तद्० । सं० तुंड>हि० I, ने० I)

सं० 'तुंड' का अर्थ होता है—मुख, चोंच, थूथन। सं०को०मु० पृ० 135।

हि० 'ठूँग' का अर्थ है—चोंच, ठोर, ठोर से मारने की क्रिया। 'ठोर' मुख का ही एक भाग है, अतएव सं० 'मुख' अर्थ से 'ठोर' अर्थ विकसित जान पड़ता है। 'चोंच से मारने की क्रिया' अर्थ स्पष्टतः सं० 'चोंच' अर्थ से विकसित है। यथा, "इस पक्षी की ठूँग छोटी है।"

विपरीत, ने० 'ठूँग' का अर्थ होता है—माथे के बालों की जड़ को दो अँगूठे के नाखूनों से दबाने की क्रिया। ने०हि०को० पृ० 117। संस्कृत के 'चोंच' अर्थ से नेपाली का यह अर्थ विकसित लगता है। चोंच और अँगूठे में आकृति-साम्य तो है ही, चोंच मारने की क्रिया और बालों को अँगुली या अँगूठे से दबाने की क्रिया में भी साम्य है। यथा, "सीताको आमा नभएकोले शृंगारको कमीले गर्दा उसका कपालमा धेरै लिखाहरू परेकाले उसकी दिदीले जम्मै ठुँगी दिई।" (सीता की माँ के नहीं रहने से शृंगार की कमी के कारण उसके बालों में बहुत लीख पैदा होने से उसकी बहन ने सभी को अँगूठे के नाखून से खींचकर बाहर निकाल दिया।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

तरंग (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'तरंग:' का अर्थ होता है—लहर, कूद, वस्त्र। एस-ई-डी-पी-231।

हि० 'तरंग' का अर्थ 'लहर' भी है और 'स्वरलहरी' तथा 'मन की उमंग' भी। ये नए अर्थ भी सं० 'तरंग' अर्थ से ही प्रभावित लगते हैं, क्योंकि स्वर में भी तरंग की तरह फैलने की शक्ति है और मन में उमंग भी इसी तरह उठती और प्रभाव डालती है। यथा, "उसके संगीत की तरंग में सारे श्रोता खोये रहे।"

विपरीत, ने० 'तरंग' का अर्थ है—उमंग। एन-एन-ई-पी-767। जिस तरह 'लहर' धारा को या जल को प्रभावित करती है, उसी तरह 'उमंग' भी मन को। संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "सानीको हृदय केही बेर लाज र संकोचको तरंगमा पौडी खेलिरह्यो।" (सानी का हृदय कुछ देर लाज और संकोच की उमंग में तैरते हुए खेलता रहा।) मा०घ०। बां० पृ० 14। "एम०के० ले

पनि बातचीतको तरंगमा दुई चार प्रश्न र टिप्पणीहरूको ढुँगा हान्यो तर त्यतिले तरंग मोडिएन।" (एम० के० ने भी बातचीत की उमंग में दो-चार प्रश्न और टिप्पणियों का पत्थर फेंका, लेकिन इससे उमंग मुड़ी नहीं।) अ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 125। "तर चेतना को लहर का साथ-साथै तरंग का लहर पनि आए।" (लेकिन चेतना की लहर के साथ-साथ उमंग की लहर भी आई।) उ०हु०अ०। वि०धि० पृ० 82।

—(हि० अर्थादेश : अमूर्तीकरण)

देहरा (तद्० । सं० देह > हि० I, ने० I)

सं० 'देह' का अर्थ होता है—शरीर। सं०को०सु० पृ० 146।

हि० 'देहरा' का अर्थ होता है—मनुष्य का शरीर। स्पष्ट है कि सं० 'शरीर' अर्थ को ही संकुचित करके 'मनुष्य का शरीर' अर्थ विकसित किया गया है। यथा, "इस माटी के देहरा का क्या भरोसा—कब नष्ट हो जाय।"

विपरीत, ने० 'देहरा' का अर्थ है—जीवन या जिन्दगी। ने०हि०को० पृ० 152। जब तक शरीर है, तभी तक जीवन भी, संभवतः इसी भाव के कारण यह अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "दुई विवाह गरेका हुनाले आज देवीरमण का देहरा बितेका छन्।" (दो विवाह करने के कारण आज देवी रमण की जिन्दगी चौपट हो गई है।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

पेश (वि० । फा० > हि० II, ने० II)

फा० 'पेश' का अर्थ होता है—प्रत्यक्ष, सम्मुख, सामने। उ० हि० डि० पृ० 108।

हि० 'पेश' का अर्थ फारसी की तरह ही—सामने, आगे या सम्मुख—होता है। अतएव हिन्दी में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा "बन्दी को पेश (सामने) करो।"

विपरीत, ने० 'पेश' का अर्थ है—आगे देने का काम, पता देने का काम, घोषणा। एन-एन-ई-पी-1068। इनमें 'आगे देने का काम' अर्थ फा० 'सम्मुख' अर्थ से स्पष्टतया विकसित है। जिसका पता नहीं होता, वह अज्ञात रहता है, अतएव उसे प्रत्यक्ष नहीं माना जा सकता, पर पता मिल जाने से वह ज्ञात हो जाने के कारण लगभग प्रत्यक्ष हो जाता है। संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'प्रत्यक्ष' अर्थ से 'पता देने का काम' अर्थ आया है। लोगों के बीच जिस कानून की घोषणा कर दी जाती है, वह सबके सामने आ जाता है, केवल किताबी चीज या मानसिक चीज नहीं रह जाती। संभवतः इसी भाव से 'घोषणा' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "जीन खुकुरी रमको पेश संग साटासाट भएको हाम्रो परिचय र हाम्रो घनिष्टता साथै मैले उसलाई शिवराज जी नाउँले बोलाउन थालिसकेको थिएँ।" (जीन खुकुरी रम के आगे देने के साथ पारस्परिक आदान-प्रदान हुए हमारे परिचय और घनिष्ठता के साथ, मैं उसे शिवराज जी नाम से पुकार चुका था।) शि०फू०। पा० पृ० 7।

बुंदा (तद्० । सं० बिन्दु > हि० I, ने० II)

सं० 'बिन्दु' का अर्थ होता है—बूँद, छोटा कण, बिन्दु, हाथी के शरीर पर का रंगीन चिह्न, शून्य। एस-ई-डी-पी-391।

हि० 'बुन्दा' का अर्थ है—बुलाक के आकार का नाक में पहनने का गहना, लोलक, माथे पर लटकाने की टिकली। ये सारे पदार्थ गोल भी होते हैं और आकृति में छोटे भी, और ऐसी ही गोल और लघु आकृति बूँद या शून्य (अंक) की भी होती है, संभवत: इसी आकृति-साम्य के कारण सं० 'बूँद' या 'शून्य' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "उसकी नाक में बुंदा शोभ रहा था।"

विपरीत, ने० 'बुन्दा' का अर्थ है—प्रमाण, मूल बात। एन-एन-ई-पी-1202। लम्बी बातचीत के अन्दर कुछ ही मूल बात होती है जिसे मूल बिन्दु कहा जाता है और वही उसके तथ्यपूर्ण होने का प्रमाण है। संभवत: इसी भाव के कारण सं० 'बिन्दु' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "आफ्नो पक्ष बलियो पार्न उसले कुनै ठोस बुन्दा प्रस्तुत गर्न सकेन।" (अपना पक्ष मजबूत करने के लिए वह कोई ठोस प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सका।) —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

मोहिनी (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'मोहिनी' का अर्थ है—मोह लेने वाली (स्त्री), विष्णु भगवान का एक रूप, वैशाख महीने के शुक्ल पक्ष की एकादशी, एक प्रकार की जूही (फूल)। सं०को० सु० पृ० 296।

हि० 'मोहिनी' का अर्थ है—मोहनेवाली, विष्णु भगवान का एक रूप का नाम, जादू, माया। इनमें 'जादू' और 'माया' अर्थ नए हैं, शेष संस्कृतवत् हैं। ये दोनों नए अर्थ सं० 'मोह लेनेवाली' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि जादू और माया भी (कुछ देर के लिए ही सही) आदमी को मोहाभिभूत कर लेते हैं। यथा, "न जाने वहाँ क्या मोहिनी (जादू) है कि जहाँ जाकर वापस आने का जी नहीं करता।"

विपरीत, ने० 'मोहिनी' का प्रयोग 'मोहित या मुग्ध करना या कराना' के लिए होता है। एन-एन-ई-पी-1380। स्पष्ट है कि सं० 'मोह लेनेवाली' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। सं० अर्थ में जहाँ मोह लेनेवाली स्त्री का भाव है, ने० में स्त्री का भाव न होकर यह एक क्रिया हो गई है और इसका प्रयोक्ता स्त्री या पुरुष कोई भी हो सकता है। यथा, "दिदी तपाईलै ता हाम्रो सानीलाई कस्तो मोहिनी लाउनुभयो नि!" (दीदी, आपने तो हमारी सानी को कैसा न मोहित कर लिया है!) मा० घ०। बां० पृ० 11।

हिन्दी की तरह ने० में 'जादू' या 'माया' अर्थ प्रचलित नहीं है।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

लहरी (तत्स०। सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'लहरी' का अर्थ होता है—तरंग, लहर। सं० को० सु० पृ० 327।

हि० 'लहरी' का अर्थ है—तरंग, मनमौजी। इनमें 'तरंग' अर्थ सं० के समान है और 'मनमौजी' अर्थ इसी से विकसित जान पड़ता है। जो व्यक्ति मन की तरंग के अनुसार चलता है या तरंग की तरह ही उन्मुक्त विचरता है, वही मनमौजी कहा जाता है। संभवत: इसलिए 'तरंग' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। वैसे 'मनमौजी' में जो 'मौज' है, उसका एक अर्थ 'तरंग' भी होता है। यथा, "ऐसा लहरी आदमी कब कहाँ चला जाय, कहना कठिन है।"

ने० 'लहरी' का अर्थ होता है—जोश, उमंग, उत्तेजना। इसके अलावा 'तरंग' अर्थ भी प्रचलित है, पर मुख्यत: 'उमंग' या 'जोश' अर्थ में ही इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-1470। ये सारे नए अर्थ सं० 'तरंग' अर्थ से ही विकसित हुए जान पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि जिस तरह तरंग जल को उत्तेजित या आन्दोलित करता है, उसी तरह जोश, उमंग या उत्तेजना भी मनुष्य को। संभवत: इसी कार्य-साम्य या भाव-साम्य के आधार पर ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "ऊ एक लहरी एक टंकारसंग भन्दथ्यो…।" (वह एक जोश, एक झंकार के साथ बोलता था…।) न० सं० को० गी०। रं०वि० पृ० 72। "…सनपाट या धान लदाएको लहरी भ्वांक्-भ्वांक् गर्दै आउंदा…।" (…पाट या धान लदाने की उमंग उत्कट रूप में आकर…।) सो० र०ज०। के० नु० पो० पृ० 75। "…फेरि क्षणमा फुकेर जल लहरीको अनुकरणमा तलतिर झरिरहेछन्…।" (…फिर क्षण में मुक्त होकर जल की तरंग के अनुकरण में नीचे की ओर गिर रहे हैं…।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 86। —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

वली (तत्स०। सं०>हि० ाा, ने० ाा)

सं० 'वली' का अर्थ होता है—झुर्री, चमड़े की शिकन, धर्म-सम्बन्धी लगान। सं० को० सु० पृ० 349।

हि० 'वली' का अर्थ है—झुर्री, शिकन, श्रेणी, लकीर। इनमें 'झुर्री' और 'शिकन' अर्थ संस्कृतवत् हैं और शेष अर्थ इन्हीं से विकसित जान पड़ते हैं। चूँकि शिकन या झुर्री के कारण चेहरे पर अनेक लकीरें पड़ जाती हैं, अतएव 'लकीर' अर्थ आया होगा। भावानुसार शिकन अनेक तरह की होती है, संभवतः इसलिए 'शिकन' अर्थ से 'श्रेणी' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "उसके चेहरे पर घृणा की वली (लकीर) खिंच गई थी।"

विपरीत, ने० 'वली' का प्रयोग—प्रकार, किस्म, तरह—के लिए होता है। एन-एन-ई-पी-1515। यथा, "अनेकवली गर्छ, पुलिस ल्याउंछु भन्छ, साथीहरू बटुल्छ।" (अनेक तरह का करता है, पुलिस लाऊँगा, बोलता है, साथियों को जमा करता है।) अ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 42। —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

हेर (तद्०। सं० हेरिक:>हि० ा, ने० ा)

सं० 'हेरिक:' का अर्थ होता है—भेदिया, जासूस। सं० को० सु० पृ० 621।

हि० 'हेर' का मुख्यत: प्रयोग ग्राम्य भाषा में होता है। 'ढूँढ़ने' के अर्थ में हि० 'हेर' का प्रयोग प्रचलित है। ऐसा लगता है कि जासूस के द्वारा सदा रहस्य या अपराधी को ढूँढ़ने के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "वह अपनी खोई हुई गाय की हेर में गया है।"

विपरीत, ने० 'हेर' का प्रयोग 'किसी को सावधान कराने वाला शब्द' के रूप में होता है। एन-एन-ई-पी-1818। सं० 'जासूस' अर्थ से ने० का यह अर्थ विकसित जान पड़ता है, क्योंकि जासूस से लोग सावधान रहा करते हैं। यथा, "आज भाले र पोथी जस्ता भएर अघि र पछि डेरामा हुप्लुक्क आईपुग्दा कस्तो राम्रो देखियेको हेरत।" (आज नर और मादा पक्षी की तरह आगे और पीछे होकर निवास-स्थान में चटपट आये हुए कितना अच्छा लगता है, देखो तो।) मु० बा०। बां० पृ० 13। "वास्तवमा मेरो हेर-

विचारलर्फ उसले दिएको ध्यान···।" (वास्तव में मेरे देखने और विचारने की तरफ उसने जो ध्यान दिया······।) सो० र० ज०। के० मु० पो० पृ० 37।

ने० में 'हेर्नु' क्रिया का अर्थ 'देखना' होता है। 'हेर' इसी का एक रूप है जिसमें किसी को देखने के लिए सावधान करने का भाव आ गया है।

—(हि० अर्थादेश : अमूर्तीकरण)

इ : ङ—उपलक्षण : अर्थादेश

असमान होकर भी एक-दूसरे में निहित हो सकने वाले शब्द जब आपस में अन्तर्निहित हो जाया करते हैं तो उपलक्षण का तत्त्व कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में 'सिन्एकडाकी' कहते हैं।[1]

जहाँ अंश अंशी को आत्मसात् कर लेता है और अंशी अंश का बोध करा देता है—ऐसे उपलक्षण के उदाहरण हर भाषा में देखे जा सकते हैं। कहीं-कहीं बहुवचन एकवचन का बोध करा सकता है और एकवचन बहुवचन का—यह भी उपलक्षण का ही उदाहरण है। हिन्दी में 'तुम' और अंग्रेजी में 'यू' (you) एकवचन और बहुवचन दोनों का बोध कराता है। आजकल 'मैं' की जगह 'हम' का भी काफी प्रयोग होता है, जबकि 'हम' बहुवचन है और 'मैं' एकवचन। नेपाली में 'तिमी' बहुवचन है, पर आदरसूचक में वही एकवचन हो जाता है। यही बात 'तिनी' के साथ भी होती है।

अजिर (तत्स०। सं० > हि० II, ने० I)

सं० 'अजिर' का अर्थ होता है—फुर्तीला, शीघ्र, चौक, आँगन, वायु, मेढक। सं० को० सु० पृ० 14।

हि० में सं० के 'आँगन' और 'वायु'—ये दो ही अर्थ रह गए हैं, शेष अर्थ छूट गए हैं। साथ ही, 'शरीर' और 'इन्द्रियों का विषय'—ये नए अर्थ भी विकसित हो गए हैं। चूँकि 'फुर्तीला' शरीर होता है, संभवत: इसलिए 'शरीर' अर्थ आया है और यही बात 'इन्द्रियों का विषय' अर्थ के साथ भी घटित होती प्रतीत होती है। सम्भव है, इन्द्रियों की चंचलता के कारण यह अर्थ आया हो या 'शरीर' अर्थ विकसित हो जाने के बाद, बाद में 'इन्द्रियों का विषय' अर्थ आया हो। यथा, "प्रतिभा के मन्दिर का पुजारी पुराने अजिर से बाहर ही निकल आता है।"

विपरीत, ने० 'अजिर' का अर्थ—'जिद्दी' या 'कहा न माननेवाला' होता है। जिद्दी या कहा न माननेवाला आदमी अपने मन से काम करता है और इस सिलसिले में वह अपने ढंग से कामों को तेजी से कर डालता है जिससे दूसरे उसे प्रभावित न कर सकें। सम्भवत: इसी भाव से ने० के ये अर्थ सं० 'तेज' अर्थ से विकसित हुए हैं। स्पष्ट है कि असमान होकर भी 'तेज' और 'जिद्दी' अर्थ एक-दूसरे में अन्तर्निहित हो गए हैं जिससे उपलक्षण का तत्त्व आया है। यथा, "यस्तो आजिरकोलागि कोही तर्क छैन।" (ऐसे जिद्दी के लिए कोई तर्क नहीं है।) —(हि० अर्थादेश : उपलक्षण)

---

1. डॉ० राधाकृष्ण सहाय—अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 369।

इजार (वि० । अ० इजार>हि० I, ने० I)

'इजार' एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ होता है—पगड़ी, पायजामा, लूँगी। लो० स० पृ० 27।

हि० 'इजार' का अर्थ 'पायजामा' या 'सूथन' होता है। स्पष्ट है कि हि० ने इस अर्थ को सीधे अ० से ग्रहण किया है और 'पगड़ी' और 'लूँगी' अर्थ का परित्याग कर दिया है। यथा, "उसके घर में इजार पहनने का प्रचलन नहीं है।"

विपरीत, ने० 'इजार' का अर्थ पायजामा न होकर 'पायजामा बाँधने की रस्सी' हो गया है। ने० हि० को० पृ० 14। वैसे उर्दू में इस अर्थ के लिए 'इजारबन्द' शब्द का प्रयोग होता है, पर ने० ने 'इजार' से ही यह अर्थ विकसित कर लिया है। स्पष्ट है कि यह अर्थ अंश-अंशी भाव के कारण अ० 'पायजामा' अर्थ से विकसित हो गया है। यथा, "मेरो पायजामामा इजारत छन्दै छैन।" (मेरे पायजामा में बाँधने की रस्सी तो है ही नहीं।) ——(हि० अर्थ-संकोच : विभेदीकरण)

उट्ठा (दे० । हि० I ने० I)

हि० में खेल या हँसी-मजाक में बुरी तरह हार मानने के अर्थ में 'उट्ठा' शब्द का प्रयोग होता है और नेपाली में आर्थिक विपन्नता या ऐसी ही किसी विडंबना के कारण तात्कालिक जीवन से हार मानकर पूर्व-स्थान के त्याग के अर्थ में। शब्दकोश में ने० 'उट्ठा' का अर्थ 'स्वस्थान-त्याग' दिया गया है। ने० हि० को० पृ० 17। अर्थ-विवेचन से स्पष्ट है कि हार मानने का भाव दोनों ही भाषाओं में है। हिन्दी में इसका प्रयोग इस तरह होता है—"वह दोनों हाथ ऊपर उठाकर उट्ठा हो गया।" ने० में 'उट्ठा' का प्रयोग इस तरह होता है—"कोशी नदीको बाढीले धैरेको बासउट्ठा गन्यो।" (कोशी नदी की बाढ़ से बहुतों को वास-स्थान त्यागना पड़ा।)

खाटा (तद्० । सं० कटु>हि० I, ने० II)

सं० 'कटु' का अर्थ होता है—तीता, तीक्ष्ण, ईर्ष्यालु। सं० को० सु० पृ० 76।

हि० में 'खाटा' का अर्थ होता है—'खट्टा'। यह अर्थ सं० 'तीक्ष्ण' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि खट्टा का स्वाद भी तीक्ष्ण होता है। 'तीक्ष्ण' और 'खट्टा'—दोनों स्वादबोधक हैं—अतएव ऐसा अर्थ-परिवर्तन हुआ होगा। 'खाटा' का प्रयोग मुख्यतः हि० की ग्राम्य भाषाओं में होता है। यथा, "खाटा आम अच्छा नहीं लगता।"

विपरीत, ने० 'खाटा' का अर्थ होता है—घाव का दाग। एन-एन-ई-पी-335। चूँकि घाव का दाग तीक्ष्ण अनुभव की याद दिलाता है, सम्भव है इसीलिए सं० 'तीक्ष्ण' अर्थ से ऐसा अर्थ विकसित हुआ हो। यथा, "मभित्र एउटा मूल्यहीन मुटु अपराधका खाटा बसिसके का दुईतीनवटा खतहरू।" (मेरे अन्दर एक मूल्यहीन स्थान, अपराध का दाग पड़ा हुआ दो-तीन घाव।) शि०फू०। पा०पृ० 65। "तरत्यसको खाटाले शरीरको एक अंग यस्तो विकृत बनाइदिएको छ…।" (लेकिन उसके घाव के दाग ने शरीर के एक अंग को ऐसा विकृत बना दिया है…।) शि० फू०। पा० पृ० 83।

गंज (तत्स० । सं०>हि० I ने० II)

सं० 'गंज:' का अर्थ होता है—अवज्ञा, खजाना, गोशाला, शराबखाना, झोंपड़ी। सं० को० सु० पृ० 107।

हि० में 'गंज' का अर्थ है---सिर के बाल उड़ने का रोग, सिर में छोटी-छोटी फुंसियों का रोग। ऐसा लगता है कि हि० के ये अर्थ सं० 'शराबखाना' अर्थ से विकसित हुए होंगे। सामान्य भारतीय शराबखाना गंदगी से भरा होता है जिससे वहाँ रहने वाले लोगों के सिर में 'फुंसियों का रोग' हो जाना स्वाभाविक है और शराब-सेवन और गंदगी के कारण तथा गिरे स्वास्थ्य के कारण सिर के बाल भी उड़ सकते हैं। सम्भव है, इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-परिवर्तन हुआ हो। यथा, "उसका सिर गंज-पीड़ित है।"

विपरीत, ने० 'गंज' का अर्थ है---कबूतर का दरबा, खुखड़े के म्यान में संलग्न कलम, चकमक आदि रखने की जगह। ने०हि० को० पृ० 58। इनमें 'कबूतर का दरबा' सं० 'झोंपड़ी' अर्थ से और अन्य अर्थ सं० 'खजाना' अर्थ से विकसित हुए जान पड़ते हैं। 'कबूतर का दरबा' झोंपड़ी की तरह ही होता है, सम्भवतः इसी आकृति-साम्य के कारण यह अर्थ आया हो। जिस तरह 'खजाना' में द्रव्य रहता है, उसी तरह चकमक या अन्य छोटे हथियार रखने के स्थान का भाव ने० के इन अर्थों में है। यथा, "एउटा रोगको कारणले मेरो गंज खाली भयो।" (एक रोग की वजह से मेरा कबूतर का दरबा खाली हो गया।) --- (हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

गुना (तद्० । सं० गुणनं > हि० ।, ने० ।)

सं० 'गुणनं' का अर्थ है---गुणा, बखान करना। सं० को० सु० पृ० 111।

हि० 'गुना' का अर्थ है---वह प्रत्यय जो किसी संख्या में लगकर किसी वस्तु का उतनी ही बार और होना सूचित करता है, गुणा (गणित में)। स्पष्ट है कि हिन्दी का यह अर्थ सं० 'गुणा' अर्थ से विकसित हुआ है। यथा, "वह मेरा चारगुना खाता है।"

विपरीत, ने० 'गुना' का अर्थ है---पेंचकी रेखा। ने० हि० को० पृ० 64। सं० 'गुणा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ प्रतीत होता है, क्योंकि इसमें एक ही तरह का पेंच कई बार वृत्ताकार में घूमता आगे बढ़ता चलता है, जबकि गुणा में वही संख्या कई बार आकर संयुक्त होती है। यथा, "यस कांटीले काम दिएन किनभने गुना छैन।" (यह काँटी काम नहीं करेगी, क्योंकि पेंच नहीं है।)

चटक (तद्० । सं० चटुल > हि० ।, ने० ।)

सं० 'चटुल' का अर्थ है---चंचल, मनोहर, कंपन। सं० को० सु० पृ० 117। एस-ई-डी-पी-201।

हि० में सं० 'चटुल' से बने 'चटक' का अर्थ है---तेजी, फुरती, चटकीलापन, कान्ति, तेजी से। इनमें 'तेजी', 'फुरती' और 'तेजी से' अर्थ सं० 'चंचल' अर्थ से और 'चटकीलापन' तथा 'कान्ति' अर्थ सं० 'मनोहर' अर्थ से स्पष्टतः विकसित हैं। यथा, "क्या चटक (तेजी) है उसकी चाल में।"

विपरीत, ने० 'चटक' का अर्थ है---'जादू'। ने० हि० को० पृ० 73। जादूगर तेजी से चीजों को गायब करते हैं और लाते हैं, सम्भवतः इसी चंचलता की वजह से 'जादू' अर्थ आया है। यह भी सम्भव है कि चूँकि जादू का खेल मनोहर होता है, जिससे सं० 'मनोहर' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "चटक गर्नेले एक रूपियांको चार रूपियां तुल्याउंदा उसका बाहुलावाट रूपियां झरेको रमितेहरूले देखे भने त्यो चटकको कोही मूल्य हुंदैन...।" (जादूगर द्वारा एक रुपया को चार रुपया करते हुए, उसकी बाँह

से रुपया झरते हुए दर्शकों ने देखा, पर उस जादू की कोई कीमत नहीं होती···।)दो०च०। वि० प्र० को० पृ० 6। "मेरी साखै फुपूको छोटा चटक देखाए झैं अरून्धतीले मलाई लोप्पा ख्वाएको दृश्य देखाउन कटिबद्ध थिए।" (मेरा सम्बन्ध में फूफू का लड़का जादू दिखाने के समान अरुन्धती से मुझको अपमान का धक्का खिलाने का दृश्य दिखाने के लिए कटिबद्ध था।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 54।

चहक (दे०। अनु०>हि० I, ने० I)

श्री बालचन्द्र शर्मा इसे सं० 'चाकचक्य' से विकसित मानते हैं, लेकिन डॉ० बाबूराम सक्सेना के अनुसार यह युक्तिसंगत नहीं है। सं० हि०श० इसे अनुकरणबोधक शब्द मानता है। 'चह-चह' ध्वनि के अनुकरण पर 'चहक' शब्द निर्मित किया गया है। हि० में 'चहक' का अर्थ होता है--पक्षियों का मधुर स्वर, चिड़ियों की चह-चह। स्पष्ट है कि हिन्दी ने अनुकरण के आधार पर ही अर्थ ग्रहण किया है। यथा, "चिड़ियों की चहक सुन कर मन प्रसन्न हो जाता है।"

विपरीत, ने० ने 'चहक' का भावात्मक अर्थ ग्रहण किया है। चिड़ियों की 'चह-चह' ध्वनि से वातावरण में रौनक आ जाती है। सम्भवतः इसी भाव के कारण ने० 'चहक' का अर्थ 'चमक' हो गया है। ने० हि० को० पृ० 76। यथा, "तिम्रो अनुहारमा कस्तो चहक···। (तुम्हारे चेहरे पर कैसी चमक···।)

दौरा (वि०। अ० दौर > हि० II, ने० I)

अ० 'दौर' का प्रयोग इन अर्थों में होता है---घूमना, गति चाल परिधि, घेरा, बारी, युग या काल, विस्तार, गोष्ठी या सभा में खाने-पीने या पढ़ने-पढ़ाने का क्रम जो कई बार चलता हो। उ० हि० डि० पृ० 256।

हि० 'दौरा' का अर्थ होता है---चक्कर, भ्रमण, अफसर का इलाके में पड़ताल के लिए घूमना, सामयिक आगमन, किसी रोग का लक्षण जो समय-समय पर आता हो, बाँस या मूँज की टोकरी। इनमें अन्तिम अर्थ को छोड़कर शेष में घूमने या आने का भाव है, अतएव इनका विकास सं० 'घूमना' या 'चाल' अर्थ से हुआ होगा। बाँस या मूँज की टोकरी चूँकि गोल होती है, अतएव इस अर्थ का विकास सं० 'घेरा' या 'परिधि' अर्थ से हुआ लगता है। यथा, "जब इस बार मैं दौरे पर था तो पीछे मेरी पत्नी को दिल का दौरा पड़ गया।"

विपरीत, ने० 'दौरा' का अर्थ होता है---लबादा। ने०हि०को०पृ० 153। नेपाली में 'दौरा' (एक तरह का कुरता) और 'सुरवाल' (एक तरह का चुस्त पायजामा) पहनने का आम रिवाज है या इसे यों भी कह सकते हैं कि नेपाल के पुरुषों की यह राष्ट्रीय पोशाक है। चूँकि इस तरह के लबादे में बहुत घेरा होता है और इसे वृत्ताकार (नीचे से) बनाया जाता है, अतएव सम्भवतः इन अर्थों का विकास सं० 'घेरा' या 'परिधि' अर्थ से हुआ होगा। यथा, "फाटेको मैलो दौरा र सुरवालको नाउंमा लाज ढाक्ने धोती मात्रै लाएर आउंथे।" (फटा हुआ मैला लबादा (कुरता) और पायजामा के नाम पर मात्र लाज ढकने वाली धोती पहनकर आता था) मु० बा०। बां० पृ० 109। "दौरा न सौरा खल्ती रांडका।" (पोशाक न तोशाक—विधुर की जेब।) ने० स० को० गी०। र० वि०

पृ० 30। "दौराले दोहोरो छेलेर छाती र पेटलाई बचाउराख्दथ्यो।" (लबादे को दोहरा करके छाती और पेट को बचाए रखता था।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 53।
—(हि० अर्थ-विस्तार : भिन्नीकरण)

धुरी (तद्०। सं० धुर् > हि० I, ने० II)

सं० 'धुर' का अर्थ होता है—जुआ, धुरी का वह भाग जहाँ पहिया रहता है, भार, उत्तरदायित्व, कर्तव्य, उच्चतम जगह, चोटी। एस-ई-डी-पी-273।

सं० 'धुरी' का अर्थ है—गाड़ी का अक्ष। स्पष्ट है कि हि० का यह अर्थ सं० 'धुरी का वह भाग जहाँ पहिया रहता है' अर्थ से विकसित है। यथा, "बिना धुरी के गाड़ी चल नहीं सकती।"

विपरीत, ने० 'धुरी' का अर्थ होता है— 'खपरैल आदि के छाजन का सबसे ऊपरी हिस्सा'। ने०हि०को पृ० 156। स्पष्ट है कि ने० का यह अर्थ सं० 'उच्चतम जगह' या 'चोटी' अर्थ से विकसित हुआ है। यथा, "सूर्योदय को प्रथम किरणले घरको धुरी स्पर्श गऱ्यो।" (सूर्योदय की प्रथम किरण ने घर के सबसे ऊपरी हिस्से का स्पर्श किया।) मा० घ०। बां० पृ० 34। "......म्याउची आपना दुवै हाथ कपाल पछिल्तिर बाँधेर शून्य-भावले धुरी माथितिर एकोहोरो भएर हेर्न लागेकी रहिछ।" (...म्याउची अपने दोनों हाथ बाल के पीछे की ओर बाँधकर शून्य भाव से घर के ऊपरी हिस्से की ओर एकाग्र होकर देखती रही।) मु० बा०। बां० पृ० 20-21।

थिति (तद्०। सं० स्थितिः > हि० I, ने० II)

सं० 'स्थितिः' का अर्थ होता है—रहने का भाव, टिकाऊपन, हालत, सीधा खड़ा होने का भाव, निवास, स्थायी होने का भाव, जीवन-काल, ग्रहण-काल, पालन पोषण, संग-साथ, पद-मर्यादा, ऊँचा ओहदा, कर्तव्य-परायणता, धर्म-परायणता औचित्य, रीति-रिवाज, व्यवहार, मान्यता आदि। सं० को० सु० पृ० 586।

हि० 'थिति' का अर्थ है—ठहरा हुआ, स्थापित, रखा हुआ, स्थिति, स्थायित्व, रहन, रक्षा, अवस्था। ये सारे अर्थ सं० अर्थों से ही मिलते-जुलते हैं, अतएव हि० में किसी प्रकार का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "मन्दिर की थिति (स्थापित) होने से वह स्थान महत्वपूर्ण हो गया है।"

विपरीत, ने० 'थिति' का अर्थ है—कायदा, नियम। ऐसा लगता है कि ने० के ये अर्थ सं० 'रीति-रिवाज' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि रीति-रिवाज उस कायदे या नियम का ही दूसरा नाम है जिसका पालन किसी खास समुदाय के लोग करते हैं। यथा, "यसलाई स्वीकार गर्दा हाम्रो रीति-थितिमा ठूलो विघ्न पर्छ।" (इसे स्वीकार करने पर हमारे रीति-रिवाज (नियम) में बड़ी बाधा उपस्थित होती है।) सु०। बी० पी०को० पृ० 15। "चेकपोष्टका मानिसहरूले थिति बिगारिदिएकाले नेपाली यात्रीहरूको लागि ठूलो चिन्ताका विषय छ......।" (चेकपोस्ट के मनुष्यों द्वारा नियम बिगाड़ देने के कारण नेपाली यात्रियों के लिए बड़ी चिन्ता का विषय है ......।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 6। "गाउंहरूले पैसा दिएर थिति बिगार्न पाउनु हुन्न।" (गाँव के लोग पैसा देकर नियम नहीं बिगाड़ पायेंगे।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 14।

पौन (तद्० । सं० पवन: > हि० I, ने० II)

सं० 'पवन:' का अर्थ होता है—हवा । एस-ई-डी-पी-327 ।

हि० 'पौन' का अर्थ है—हवा, प्राण, जीवात्मा, भूत-प्रेत । ये सारे अर्थ सं० 'हवा' अर्थ से ही विकसित हुए हैं । चूँकि हवा के बिना प्राण का रहना असंभव है, अतएव 'प्राण' अर्थ आया होगा । जीवात्मा हवाधीन है, अतएव 'जीवात्मा' अर्थ आया होगा; या यह भी संभव है कि यह अर्थ इसलिए आया हो कि जिस तरह हवा अदृश्य होती है, उसी तरह जीवात्मा भी । 'भूत-प्रेत' अर्थ के विकसित होने के पीछे संभवत: यह धारणा है कि भूत-प्रेत का निवास हवा में माना जाता है और हवा की तरह ही यह भी अदृश्य और गतिमान होता है । यथा, "शायद उसे हवा (भूत-प्रेत) लग गई है ।"

विपरीत, ने० 'पौन' का अर्थ है—साँस, प्राणवायु । ने० श० पृ० 671 । हिन्दी की तरह ने० में 'हवा' अर्थ नहीं चलता । 'साँस' अर्थ में हि० में 'पौन' का प्रयोग नहीं होता । इनमें 'प्राणवायु' अर्थ का विकास हि० 'प्राण' की तरह ही सं० 'हवा' अर्थ से हुआ जान पड़ता है । चूँकि हम साँस के रूप में हवा को ही अन्दर खींचते और बाहर छोड़ते हैं, अतएव सं० 'हवा' से ही 'साँस' अर्थ का विकास हुआ लगता है । यथा, "रोगीको पौनचलिरहेकोले हुंदा बाँच्ने आशा छ ।" (रोगी की साँस चलते रहने के कारण बचने की आशा है ।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बहना (तद्० । सं० वह् > हि० I ने० I)

सं० 'वह्' धातु का अर्थ होता है—ढोना, यातायात, आगे बढ़ाना । एस-ई-डी-पी 498 ।

हि० 'बहना' का अर्थ होता है—प्रवाहित होना, पानी की धारा में पड़कर जाना, स्रवित होना, हवा का चलना, हट जाना, फिसल जाना, मारा-मारा फिरना आदि । ये सारे अर्थ सं० 'ले जाने' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि इन सबमें किसी न किसी चीज को एक जगह से दूसरी जगह ले जाये जाने या जाने का भाव है । यथा, "पानी तेजी से बह रहा है ।"

विपरीत, ने० 'बहना' हि० की तरह क्रिया न होकर संज्ञा है । इसमें इसका अर्थ है—नाव खेने वाली पतवार । एन-एन-ई-पी-1196 । इस अर्थ पर सं० 'ले जाने या ढोने की क्रिया' अर्थ का प्रभाव है । चूँकि पतवार नाव को खेकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाता है, इसलिए 'पतवार' अर्थ आया होगा । यथा, "...हरि एउटा पुरानो नाउमा चढी बहना खेलाउंदै सानीलाई उतार्न खोजिरहेको...।" (...हरि एक पुरानी नाव में चढ़कर पतवार चलाते हुए सानी को उतारने की ताक में था...।) मा० घ० । बां० पृ० 80 । —(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

बाजी (वि० । फा० > हि० II, ने० II)

फा० 'बाजी' का अर्थ होता है—क्रीड़ा, खेल, लीला, तमाशा, कौतुक । उ० हि० डि० पृ० 62 ।

हि० 'बाजी' का अर्थ है—ऐसी शर्त जिसमें हार-जीत के अनुसार कुछ लेन-देन भी हो, शर्त, दाँव, बदान, आदि से अन्त तक कोई ऐसा पूरा खेल जिसमें शर्त लगी हो ।

ये सारे अर्थ फा० 'खेल' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में ऐसी शर्त लोग खेल-खेल में लगा देते होंगे या जिस तरह खेल आनन्द देता है, उसी तरह इस तरह की शर्त भी। सम्भवतः इसी से फा० 'खेल' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "बाजी लगाओ तो खेलें।"

विपरीत, ने० 'बाजी' का अर्थ है—होड़। वैसे 'शर्त' अर्थ भी प्रचलित है। एन-एन-ई-पी-1177। ने० 'होड़' या 'प्रतिद्वन्द्विता' के अर्थ में हि० 'बाजी' का प्रयोग नहीं होता है। 'होड़' अर्थ का विकास फा० 'खेल' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि खेल में प्रायः दो दलों या व्यक्तियों के बीच जीतने के लिए 'होड़' का भाव रहता है। यथा, "कुनो कुनो बखत उसको परिवएको हत्केलामा कुनै धर्मात्माले पुण्य बेसाउन बाजी थापेको पैसा खस्दथ्यो।" (किसी-किसी वक्त उसकी फैली हुई हथेली में किसी धर्मात्मा द्वारा पुण्य खरीदने के होड़ का पैसा गिरता था।) न०स०को०गी०। र०वि० पृ० 73।

—(हि० अर्थादेश : उपलक्षण)

राई (तद्० । सं० राजिका > हि०; ा, ने० ा)

(वि० । अ० राई > हि० ा, ने० ा)

स० 'राजिका' का अर्थ होता है—कतार, श्रेणी, छोटी सरसों, अम्हौरी। सं०को०सु० पृ० 314। अ० 'राई' का अर्थ है—राजा, पशु चराने वाला। उ० हि० डि० पृ० 266। हि० और ने०—दोनों की 'राई' के अर्थ पर सं० और अ० अर्थों का प्रभाव है।

हि० 'राई' के 'एक प्रकार की छोटी सरसों, और बहुत थोड़ी मात्रा' अर्थों पर सं० 'छोटी सरसों' अर्थ का प्रभाव परिलक्षित होता है। प्रथम अर्थ तो स्पष्टतः संस्कृतवत् है और उसमें जो लघुता का भाव है, उससे 'बहुत थोड़ी मात्रा' अर्थ का विकास हुआ लगता है। हि० 'राजा' और 'सर्वश्रेष्ठ' अर्थ अ० 'राजा' अर्थ से आये लगते हैं। चूँकि राजा राज्य भर का सर्वश्रेष्ठ आदमी समझा जाता है, अतएव 'सर्वश्रेष्ठ' अर्थ आया होगा। यथा, "मैं अपने राई की हार्दिक वन्दना करता हूँ।"

विपरीत, ने० 'राई' का अर्थ है—एक प्रकार की भेड़, जमींदार या किराती की उपाधि। एन-एन-ई-पी-1413। इसमें प्रथम अर्थ सं० 'कतार' या अ० 'पशु चराने वाला' अर्थ से विकसित हुआ होगा। यह लोकप्रसिद्धि है कि भेड़ एक-दूसरे के पीछे उसी तरह चलती हैं जिस तरह कोई कतार में चलता हो। इसीलिए कहा जाता है कि यदि एक भेड़ कुएँ में गिर जाय तो सभी गिर जा सकती हैं। सम्भवतः कतार की इसी प्रवृत्ति के कारण 'भेड़' अर्थ आया हो, अथवा यह भी सम्भव है कि अ० 'पशु चराने वाला' अर्थ में पशु का जो भाव है, भेड़ के पशु होने के कारण इसी से यह अर्थ आया हो। द्वितीय अर्थ 'जमींदार या किराती की उपाधि' अर्थ पर अ० 'राजा' अर्थ का प्रभाव जान पड़ता है। जमींदार अपने क्षेत्र के लिए राजा के समान दबदबा रखने वाला होता है, सम्भवतः इसलिए वह राजा के समान ही आदरणीय समझा जाता था। किराती भी रणकुशल होने के कारण ऐसा ही आदरणीय माना जाता है। सम्भव है, इसी आदर-भाव के कारण अ० 'राजा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "राई मेरो जात, थर मेरो चामलिंग…।" (किराती मेरी जाति और उपनाम मेरा चामलिंग…।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 65। "…हुकुमदार सरदार र डाक्टर

युद्धवीर राईहरू नाचेकाथिए ।" (···हुकुमदास सरदार और डाक्टर युद्धवीर-जैसे राई की उपाधि रखने वाले जमींदार ने नृत्य किया था।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 95-96।
—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

इ : च—लक्षणा : अर्थादेश

मुख्यार्थ के बाधा पड़ने पर जब उससे सम्बन्धित दूसरा अर्थ—रूढ़ि या प्रयोजन से—लिया जाता है तो उस अर्थ को बताने वाली शक्ति को लक्षणा कहते हैं। मुख्यार्थ ही सभी अर्थों को बताने में सक्षम नहीं होता, इसलिए लक्षणा की भी जरूरत पड़ती है। श्यामसुन्दर दास के शब्दों में, रूढ़ि अथवा प्रयोजन के अनुरोध से असाक्षात्-संकेतित अर्थ में प्रयुक्त शब्द लक्षक कहलाते हैं। उनसे बोध्य अर्थ लक्ष्य कहलाते हैं और उनकी अर्थ बोध कराने की शक्ति लक्षणा कहलाती है।[1]

मम्मट ने कहा है कि मुख्य अर्थ के बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण जिस क्रिया (शक्ति) द्वारा मुख्य से सम्बन्ध रखने वाला अन्य अर्थ लक्षित होता हो, उसे लक्षणा-व्यापार (शक्ति) कहते हैं।[2]

अर्थ-विकास में लक्षणा का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अर्थ-विस्तार और अर्थादेश में मुख्य रूप से लक्षणा की प्रवृत्ति कार्य करती है।[3] देवेन्द्रनाथ शर्मा तो यहाँ तक कह डालते हैं कि अर्थ-विकास इन तीनों (अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थादेश) में से किसी भी दिशा में क्यों न हो, उसके पीछे लक्षणा-वृत्ति काम करती है।[4]

अर्थादेश में लक्षणा बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत प्रबन्ध में आए ढेर-सारे शब्द जिनका अर्थादेश लक्षणा के कारण हुआ है, इस बात के प्रमाण हैं और इन उदाहरणों को देखकर यह बात भी स्पष्ट हो जाती है कि लक्षणा कभी-कभी बड़ा ही अद्भुत अर्थ-परिवर्तन ला देती है।

असती (तत्स० । सं० > हि० II, ने० I)

सं० में यह 'कुलटा' या 'सतीत्वहीन औरत' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। एस-ई-डी-पी-69।

हि० में भी 'असती' का वही अर्थ प्रचलित है जो सं० में, यानी 'कुलटा' या 'सतीत्वहीन'। यथा, "असती नारियाँ समाज के लिए कलंक होती हैं।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ होता है— सत्यरहित, बेईमान। ने०हि०को०पृ०9। सत्य है सतीत्व की रक्षा करना और जो इसकी रक्षा नहीं करती वह अवश्य ही सत्यमार्ग से विचलित है। सम्भवत: इसी भाव के कारण सं० 'कुलटा' या 'सतीत्वहीन' अर्थ से ने० के इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "जहां पनि हुन्छन् यस्ता असती

1. भाषाविज्ञान, पृ० 219।
2. "मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढ़ितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिता क्रिया॥" काव्यप्रकाश, 2।9।
3. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य—अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन पृ० 118।
4. भाषाविज्ञान की भूमिका, पृ० 271।

मोरा।" (कहीं भी होगा ऐसा बेईमान दुष्ट।) ने०स०को०गी०। र०थि०पृ० 70।
"यस्तो असतीमा विश्वास नगर।" (ऐसे झूठे पर विश्वास मत करो।)

खाल (तद्०। सं० खल्लः > प्रा० खल्ला > हि० ı, ने० ı)

सं० 'खल्लः' का अर्थ होता है—चमड़ा, मशक, खरल, गड्ढा, चातक पक्षी, वस्त्रभेद। सं०को०सु०पृ० 105।

हि० 'खाल' का अर्थ होता है—चमड़ा, आधा चरसा, धौंकनी, मृत शरीर। इनमें अन्तिम अर्थ को छोड़कर शेष सारे अर्थ चमड़ा से सम्बन्धित हैं (धौंकनी भी चमड़े की बनती है,) अतएव ये सारे अर्थ सं० 'चमड़ा' से विकसित हैं। चमड़ा शरीर के मृत होने के बाद ही उतारा जाता है, सम्भवतः इसलिए 'मृत शरीर' अर्थ भी सं० 'चमड़ा' अर्थ से विकसित हुआ होगा। शेर-बाघ आदि के चमड़े के अन्दर भूसा या ऐसी ही कोई चीज भरकर ऐसा शेर या बाघ तैयार कर लिया है जो देखने में जीवन्त लगता है, पर वह होता मृत है। सम्भव है, इसी भाव के कारण 'मृत शरीर' अर्थ आया हो। यथा, "उसने मार हंटर से सारी खाल उधेड़ दी।"

विपरीत, ने० 'खाल' का अर्थ है—प्रकार, जुआ खेलने की जगह। ने०हि०को० पृ० 51। एन-एन-ई-पी-338। ऐसा लगता है कि सं० 'वस्त्र-प्रकार' अर्थ से ने० 'प्रकार' अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों में प्रकार का भाव है। ने० का दूसरा अर्थ सम्भवतः सं० 'गड्ढा' अर्थ से आया है। जुआ खेलना सदा से एक निम्न कर्म माना जाता है और यह अवैध भी है। सम्भव है, इसलिए लोग छिपने के लिए गड्ढों में जाकर खेलते हों जिससे ऐसा अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "कस्तो खालको मान्छे, असिस्टेण्ट म्यानेजर कसले बनाएछ यसलाई?" (किस प्रकार का आदमी है, किसने इसे असिस्टेन्ट मैनेजर बनाया?) आ०र०छ०। ड०भ०रा०पृ० 243। "तिम्रा अनौठा कुरा हुन थी, र आज त झन् तिम्रा सबै कुरा अनौठो खालका भइरहेछन्।" (तुम्हारी अनूठी बात है यह और आज तो तुम्हारी सारी बात अनूठे ढङ्ग (प्रकार) की ही हो रही है।) मु०। बी०पी०को० पृ० 31। "लालपनि दत्तचित्त भएर ठूलो खालमा रुपैयाँको थुप्रो हेरिरहेको थियो।" (लाल भी दत्तचित्त होकर जुआ खेलने की बड़ी जगह में रुपयों का ढेर देख रहा था।) क० सं०। गो० पृ० 11। (हि० अर्थ-विस्तार : विशेषीकरण)

गनगन (दे०। अनु० > हि० ı, ने० ı)

'गनगन' हि० और ने०—दोनों में एक अनुकरणबोधक शब्द है।

हि० में इसका अर्थ होता है—काँपने या रोमांच होने की मुद्रा। धातु के किसी टुकड़े पर ठोकर मारने के बाद उसमें हल्का कम्पन होता है और उससे 'गनगनाहट' की आवाज होती है, लगता है आवाज की अनुकृति पर 'गनगन' शब्द ग्रहण कर 'कम्पन' अर्थ हि० ने विकसित कर लिया है। यथा, "सिंह की गर्जन सुनकर मेरी सारी देह गनगन करने लगी।"

विपरीत, ने० 'गनगन' का अर्थ होता है—बेकार की बात। ने० हि० को० पृ० 59। ठोकर लगने के बाद धातु की चीज से निकलने वाली गनगन की आवाज का कोई खास अर्थ नहीं होता, सम्भवतः इसलिए 'बेकार की बात' अर्थ ग्रहण किया गया है।

यथा, "कमानमा भित्रबाट गनगन र विरोध शुरू भयो।" (चायबागान के भीतर से बेकार की बात और विरोध शुरू हुआ।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 196।

गुहा (तत्स०। सं०>हि० ग, ने० ग)

सं० 'गुहा' का अर्थ है—गुफा। सं० को० सु० पृ० 112।

हि० में 'गुहा' अर्थ सं० की तरह ही 'गुफा' या 'कन्दरा' होता है। इस तरह हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "इस गुहा में एक तपस्वी वर्षों से साधनारत हैं।"

विपरीत, ने० 'गुहा' का अर्थ है—साक्षी, गवाही। ने० हि० को० पृ० 64। कन्दरा मुख्यत: तपस्वियों का तपस्या-स्थल रहा है। वह उनकी सतत् साधना और कर्त्तव्यनिष्ठा का मूक गवाह भी होता है। सम्भवत: नेपाली ने इसी भाव के कारण 'साक्षी' अर्थ विकसित किया है। वैसे, अर्थ से यह भी अनुमान लगता है कि यह शब्द 'गवाह' का ही संक्षिप्त रूप हो, लेकिन कोशकारों ने इसे सं० का तत्सम शब्द माना है। यथा, "उसका जीवनको साधनाको गुहा यो झुप्रोमात्र हो।" (उसके जीवन की साधना का साक्षी एकमात्र यह झोंपड़ी है।)

गोकुल (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'गोकुल' का अर्थ होता है—गोकुल गाँव, गायों का समूह। सं० को० सु० पृ० 113।

हि० 'गोकुल' का अर्थ है—गौओं का झुण्ड या गोशाला। चूँकि गोशाला में भी गायें रहती हैं, अतएव हि० के ये अर्थ सं० 'गायों का समूह' अर्थ से आये हैं। 'गोकुल-गाँव' अर्थ भी हि० में प्रचलित है। यथा, "वह अपने को छुपाने के लिए गोकुल में घुस गया।"

विपरीत, ने० में यह 'एक गहना विशेष' के लिए प्रयुक्त होता है। ने० हि० को० पृ० 65। सम्भव है कि इस तरह का गहना गोकुल गाँव में विशेष रूप से प्रचलित हो जिससे ऐसा अर्थादेश हुआ होगा। यथा, "म एउटा गोकुलकोलागि कतिदिनदेखि आग्रह गरिरहेको छु तर हजुरले ध्यान दिनुभएको छैन।" (मैं एक गोकुल (गहना) के लिए कितने दिन से आग्रह कर रही हूँ, पर आपने ध्यान नहीं दिया।)

गोटा (तद्०। सं० गोष्ठ>गोठ्ठ>गुट्ट>गोट>हि० I, ने० I)

नागरी प्रचारिणी सभा कोश एवं टर्नर के अनुसार, 'गोटा' का विकास सं० 'गोष्ठ' (>गोट>गोटा) से हुआ है।

सं० 'गोष्ठ' का अर्थ होता है—गायघर, सभा, मंडली। एस-ई-डी-पी-193।

सं० 'गोष्ठ' के 'मंडली' अर्थ से मंडलाकार (गोलाई) अर्थ का विकास हुआ जो परवर्ती भाषाओं में (नेपाली, कश्मीरी, बँगला, उड़िया, हिन्दी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी आदि में) वस्तु या संख्या-निर्देशक इच्छित वस्तु, इकाई, ठोस, सम्पूर्ण, सजावट का फीता, हुक्का की टिकिया, चाँदी का पिण्ड—आदि अर्थों में संप्रसारित हुआ। (टर्नर)

हिन्दी 'गोटा' का प्रयोग मुख्यतः—बुना हुआ फीता जो कपड़ों के किनारे पर लगाया जाता है, के लिए होता है। मराठी भाषा में भी इस शब्द का प्रयोग हिन्दी अर्थ में ही होता है। वस्त्र के पहन लिए जाने पर उसके साथ लगा हुआ फीता शरीर के चारों ओर मंडलाकार घिर जाता है, सम्भवतः इसीलिए सं० 'मंडली' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "उसकी साड़ी में बहुत सुन्दर गोटा लगा हुआ है।"

विपरीत, ने० 'गोटा' का अर्थ होता है—ठो, अदद। ने० हि० को० पृ० 65। 'सभा' या 'मंडली' अर्थ में अनेक लोगों के एकत्रित होने का संख्यात्मक भाव है। सम्भव है, इसी संख्यात्मक भाव के कारण नेपाली में इन अर्थों का विकास हुआ हो। यथा, "मैले तिमीलाई दस गोटा पुस्तक दिएको थिएं तर नौ गोटा मात्र मलाई फर्काएछौ।" (मैंने तुम्हें दस अदद पुस्तकें दी थीं, लेकिन नौ ठो मात्र मुझे लौटाई गईं।)

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

गोठ (तद्० । सं० गोष्ठ् > हि० I, ने० I)

सं० 'गोष्ठ्' का अर्थ होता है—एकत्र होना। सं० को० सु० पृ० 113।

हि० 'गोठ' का अर्थ है—गोशाला, गोष्ठी, श्राद्ध, सैर। चूँकि गोशाले में गायें और गोष्ठी, श्राद्ध एवं सैर करने के सिलसिले में आदमी एकत्र होते हैं, अतएव इन अर्थों का विकास सं० 'एकत्र होना' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है। यथा, "आज की गोठ में बहुत सारे साहित्यकार आये थे।"

ने० 'गोठ' का एकमात्र अर्थ होता है—गोशाला। अतएव, हिन्दी में यह शब्द अपेक्षाकृत अधिक अर्थों में व्यवहृत होता है। ने० के इस अर्थ का विकास भी हिन्दी की तरह ही हुआ है। यथा, "हामी लिपी-लिपी गोठमा मिल्यों।" (हम छिप-छिपकर गोशाले में मिलते थे।) ने० सं० को० गी०। र० वि० पृ० 158। "ऊँ फेरि सुन, हरिराम को छ महीनाको एकदिन पनि नाघेछभने, के भने, तेरा गोठका गोरु र भैंसी फुकाउने छ नि।" (और फिर सुनो, हरिराम का छः महीना से एक दिन भी ज्यादा होने पर, क्या कहूँ, तेरे गोशाले की गाय और भैंस खोली चली जायगी न।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 4। "अधिल्तिर आंगनमुनि गोठमा गाईहरू कराएर कुंडो पिनाको मांग गर्दै थिए।" (सामने की ओर आँगन के नीचे गोशाले में गायें चिल्लाकर कुट्टी-खल्ली की माँग करती थीं।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 239।

इस तरह ने० में गाय-भैंस रखने के स्थान के अर्थ में 'गोठ' का व्यवहार होता है।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

चाला (तद्० । सं० चालः > हि० I, ने० I)

सं० 'चालः' का अर्थ है—गमन, कम्प, चलता हुआ, प्रस्थान, नीलकण्ठ। एस-ई-डी-पी-207।

हि० 'चाला' का अर्थ है—छूट, खानगी, प्रस्थान, यात्रा का मुहूर्त, नई बहू का प्रथम बार ससुराल से मायके या मायके से ससुराल जाना। ये सारे अर्थ सं० 'गमन' अर्थ से विकसित मालूम पड़ते हैं, क्योंकि सब में जाने का भाव है। यथा, "आज मेरा चाला (यात्रा का मुहूर्त) नहीं हुआ, इसलिए जाना स्थगित कर दिया।"

विपरीत, ने० 'चाला' का अर्थ है--व्यवहार, चाल-चलन। ने० हि० को० पृ० 77। चूँकि 'चाल-चलन' और 'व्यवहार' अर्थ में जीवन में आगे बढ़ने (चलने) के ढंग का भाव है, अतएव इन अर्थों का विकास सं० 'गमन' अर्थ से हुआ जान पड़ता है। यथा, "विजुवाले भन्यो--हेर न, हाम्री छोरी सुम्निमाको चाला।" (तांत्रिक ने कहा--देखो न, हमारी बेटी सुम्निमा की चाल-चलन।) सु०। बी० पी० को० पृ० 16। "सपैंका चाला तस्तै त हो।" (सभी की चाल-चलन तो वैसी ही है।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 179। "...त्यसैले त यस्तो चाला भएको छ यो घरको।" (...इसीलिए तो ऐसा व्यवहार हो गया है इस घर का।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 30। "कप्तानी आमा आफ्नी छोरी सन्नानीको ग्रामीण चाला देखि खपिनसक्नु भएर उसलाई घसार्दै-पसार्दै लग्नु हुन्थ्यो।" (कप्तानी माँ अपनी बेटी सन्नानी की ग्राम्य चाल-चलन देखकर क्रोधित होकर उसे खींचते हुए ले गई।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 13।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

छाँटा (तद्० । सं० छात > हि० I, ने० II)

सं० 'छात' से हि० तथा नेपाली 'छाँट' का विकास हुआ है और इसी 'छाँट' से बाद में 'छाँटा' शब्द विकसित हुआ है। सं० 'छात' का अर्थ होता है--कटा हुआ, बँटा हुआ, विभाजित, पतला, धुँधला। एस-ई-डी-पी-293।

हि० 'छाँटा' का अर्थ है--छाँटने की क्रिया या भाव, किसी को छल से अलग करना। स्पष्ट है कि सं० 'कटा हुआ' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है, क्योंकि दोनों अर्थों में काटकर अलग करने का भाव है। यथा, "सीधा आदमी जानकर सबने उसे छाँटा कर दिया है।"

विपरीत, ने० 'छांटा' का अर्थ है--चेष्टा, स्वाँग, ढंग, धोई हुई दाल। ने० हि० को० पृ० 86। काटने के लिए चेष्टा करनी पड़ती है और इसका अलग-अलग ढंग होता है। सम्भवतः नेपाली ने सं० अर्थ के इसी भाव को प्रमुखता से ग्रहण किया और 'चेष्टा', 'ढंग' आदि अर्थ विकसित कर लिया। यथा, "...तैपनि एउटा छांटाले तिमीलाई गांज्यो।" (तोभी एक चेष्टा से तुमको रंज हुआ।) गो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 185।

नेपाली में 'छांटा' और 'छांट' के लगभग समान ही अर्थ हैं। आज के ने० साहित्य में 'छांट' का प्रयोग ही अधिक मिलता है, छांटा का कम।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

छाल (तद्० । सं० छल्लि > प्रा० छल्ली > हि० I, ने० I)

सं० 'छल्लि' का अर्थ होता है--छाल, लता, सन्तति। एस-ई-डी-पी-213।

हि० 'छाल' का अर्थ सं० 'छाल' की तरह ही 'पेड़ों का ऊपरी कड़ा छिलका' या 'वल्कल' होता है। यथा, "इस पेड़ की छाल दवाई के रूप में व्यवहृत होती है।"

विपरीत, ने० 'छाल' का अर्थ है--लहर। ने० हि० को० पृ० 87। चूँकि 'लहर' भी पानी की ऊपरी परत पर होती है जिस तरह पेड़ के ऊपर का छिलका, सम्भवतः इसी भाव के कारण सं० 'छाल' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "ज्ञानी को

अन्तरमा, के भएर हो, व्यथा को छाल रोकिनुभन्दा उम्लन खोज्थ्यो।" (ज्ञानी के अन्दर में, क्या हुआ, व्यथा की लहर रोकने पर उमड़ जाना चाहती थी।) क० सं०। गो० पृ० 21-22। "खालि उसको हृदयमा ठूलो छाल उठिरहेको थियो।" (केवल उसके हृदय में बड़ी लहर उठ रही थी।) क० सं०। गो० पृ० 63। "पार्वतीले नाइकेका आंखामा उर्लेको वासनाको छाललाई तुरन्तै पढी।" (पार्वती ने नाइके की आँख में उत्पन्न वासना की लहर को तुरन्त ही पढ़ लिया।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 129। "हरिको गंभीर कण्ठबाट निस्केको एक-एक शब्द सागरको छाल भएर सानीको हृदयलाई पखालेर फेरि फर्केर जान्थ्यो।" (हरि के गंभीर कण्ठ से निकले हुए एक-एक शब्द सागर की लहर बनकर सानी के हृदय को धोकर फिर वापस जाती थी।) मा० घ०। बां० पृ० 53।

छिया (तद्०। सं० क्षिया > हि० I, ने० II)

सं० 'क्षिया' का अर्थ होता है—क्षति, विनाश, विध्वंश, बरबादी, अनौचित्य, आचार प्रतिकूल। एस-ई-डी-पी-172।

हि० 'छिया' का अर्थ है—घृणित बस्तु, मैल, मैला, घृणित। जिस वस्तु से क्षति या विनाश हो, उसके प्रति घृणा हो जाना स्वाभाविक है। सम्भवत: इसी भाव के कारण 'घृणित' या 'घृणित वस्तु' अर्थ आया है। 'मैल' या 'मैला' भी घृणित वस्तु है, अतएव ये अर्थ इसी से बाद में विकसित हुए होंगे। यथा, "वहाँ पैर मत रक्खो, वहाँ छिया है।"

विपरीत, ने० में 'छिया' का अर्थ होता है—छोटा टुकड़ा, फाँकी, खेलविशेष में जुड़ी हुई दो-तीन वस्तु। ने० हि० को० पृ० 88। किसी वस्तु का जब विध्वंश होता है तो वह टुकड़े-टुकड़े हो जाती है या क्षति होने से प्रभावित व्यक्ति का हृदय टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, सम्भवत: इन्हीं में से किसी एक भाव के कारण 'छोटा टुकड़ा' अर्थ विकसित हुआ होगा। फाँकी मारने से भी क्षति होती है, सम्भवत: इसलिए 'क्षति' अर्थ से 'फाँकी' अर्थ का विकास हुआ होगा। अन्तिम अर्थ का विकास बाद में 'छोटा टुकड़ा' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है जिन्हें आपस में जोड़ने का भाव इस अर्थ में है। यथा, "उनको हृदय वेदनाले छिया-छिया हुन्छ।" (उनका हृदय वेदना से टुकड़ा-टुकड़ा होता है।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 41। "त्यसमाथि स्वास्नीको घोचपोचले गर्दा उसको मुटु छिया-छिया हुन खोज्दथ्यो।" (उसपर पत्नी के व्यंग्यबाण से उसका सिर टुकड़ा-टुकड़ा होना चाहता है।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 55। "चुप्प त लागिन तर उनको कोमल हृदय मेरो निष्ठुर व्यवहारले छिया-छिया भएको मैले सजिलै अनुमान गरे।" (चुप तो हो गई, लेकिन उसके कोमल हृदय के मेरे निष्ठुर व्यवहार से टुकड़ा-टुकड़ा होने का अनुमान मैंने आसानी से कर लिया।) सो० र० ज०। के० नृ० पो० पृ० 70।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

जग (तद्०। सं० जगत् > हि० II, ने० II)

सं० 'जगत्' का अर्थ होता है—संसार, वायु, चलनेवाला, जंगम। सं० को० सु० पृ० 124।

हि० 'जग' का अर्थ होता है—संसार या संसार के लोग। इनमें 'संसार' अर्थ तो सं० का ही है और 'संसार के लोग' अर्थ आधाराधेय सम्बन्ध से लक्षणा द्वारा इसी

'संसार' अर्थ से विकसित हुआ है। यथा, "आज सारा जग अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है।"

विपरीत, ने० 'जग' का अर्थ है—नींव। ने० हि० को० पृ० 91। यह अर्थ सं० 'संसार' अर्थ से ही विकसित हुआ जान पड़ता है, क्योंकि संसार ही सबकी उत्पत्ति और स्थिति का आधार या नींव है। यथा, "अगि-अगि जस्तै जग लिएर डाक्टर गोदत्तप्रसाद बसिहाले।" (आगे-आगे डाक्टर गोदत्तप्रसाद जैसे नींव लेकर बैठ गया।) ए० चि०। हृ०च०प्र०पृ० 116। "भारतवर्षमा यत्रो ठूलो साम्राज्य अशोकपछि कसैले स्थापित गरेको थिएन तर यो साम्राज्य को जग बलियो थिएन।" (भारतवर्ष में इतना विशाल साम्राज्य अशोक के बाद किसी ने स्थापित नहीं किया, लेकिन इस साम्राज्य की नींव मजबूत नहीं थी।) दो० त्र०। वि० प्र० को० पृ० 72। "धने चाहन्छ...साहू र महाजनहरूको ऋण-रूपी धमिराले थोत्रिएको धुरीखामाहरूको जग पुनः निर्माण गर्न।" (धने चाहता है... साहू और महाजन लोगों का ऋण-रूपी दीमक से बेकार हुए धुरी-खंभे आदि की नींव का फिर से निर्माण करना।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 3। "...उसलाई पनि गहिरो रउसले छोएथ्यो ··एउटा मुलुक को जग बसाल्ने जसभा भाले-पोथीमा कुनैले पनि एकाअर्कालाई हेप्दैन।" (उसको भी गहरी कल्पना छूती थी...एक देश की नींव डालने की जिसमें नर-मादा पक्षियों में कोई भी एक-दूसरे को नहीं खदेड़ेगा।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 95। ('संसार के लोग' अर्थ में) —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

जागीर (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

फा० 'जागीर' का अर्थ होता है—जायदाद या जमींदारी जो सरकार से किसी बड़े काम के बदले मिले। उ० हि० श० पृ० 241।

हि० 'जागीर' का भी लगभग यही अर्थ है। हि० ने० फा० के 'जायदाद' अर्थ को छोड़ दिया है और 'जमींदारी जो सरकार से मिले' अर्थ को ग्रहण किया है। यथा, "उसे राजा ने खुश होकर एक जागीर दे दी।"

ने० 'जागीर' का अर्थ है—तलब, नौकरी। एन-एन-ई-पी-648। ये अर्थ फा० अर्थ से ही विकसित हुए होंगे, क्योंकि जिस तरह किसी के लिए राजा या सरकार से मिली जमींदारी भरण-पोषण का साधन थी, उसी तरह बहुत-से लोगों के लिए नौकरी या नौकरी से मिलनेवाला वेतन। वैसे 'तलब' या 'नौकरी' भी प्रायः सरकार ही देती है, जैसे जमींदारी देती थी। यथा, "माहिलाबा को जागीर कहांछ, थाह छ?" (माहिला बाबा की नौकरी कहाँ है, पता है?) क० सं०। गो० पृ० 2। "मार-मार, तेरो जागीर खोसाउने त्यो जुम्रेलाई...।" (मारो, मारो, तुम्हारी नौकरी समाप्त करनेवाले उस चीलर को···।) क० सं०। गो० पृ० 62। "...यहाँ इच्छालागे अस्थायी जागीर खानु र लगत्तै ढाक्रेगिरीमा रमाउनु मेरो जीवनको नियमबद्धता।" (···जहाँ इच्छा हो अस्थायी नौकरी करना और तुरत बेकारी में आनन्द लेने की मेरी जिन्दगी की नियमबद्धता।) शि० फू०। पा० पृ० 7। "2007 सालको परिवर्तन र अव्यवस्थापछि उहांले जागीर छोडिदिनुभयो।" (2007 साल के परिवर्तन और अव्यवस्था के बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 16। "उ पनि त जागीर खाई-खाई राती पढ्छ आछाममा।" (वह भी तो नौकरी कर-करके रात में पढ़ता है आसाम में।) उ० हु० अ०। वि० थि० पृ० 205।

टनाटन (दे० । अनु० > हि० ।, ने० ।)

'टनाटन' एक अनुकरणबोधक शब्द है जो 'टन' ध्वनि की आवृत्ति की नकल पर बना है। किसी धातु के बरतन या वस्तु पर आघात पड़ने से ऐसी ध्वनि उत्पन्न होती है।

हि० में इसका अर्थ होता है—लगातार टन-टन शब्द, लगातार घंटा बजने की ध्वनि। स्पष्ट है कि टन-टन ध्वनि के आधार पर ही इन अर्थों को ग्रहण किया गया है, क्योंकि इन दोनों अर्थों में ऐसी ध्वनि है। यथा, "रात के बारह बजे अचानक घंटा टनाटन बजने लगा।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ होता है—परिपूर्ण, भरा हुआ। ने० हि० को० पृ० 108। चूँकि टन-टन ध्वनि लगातार बजकर अधिकता या परिपूर्णता का बोध कराती है, सम्भवतः इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। वैसे, टन-टन ध्वनि कभी-कभी इतनी कर्णप्रिय होती है कि मन प्रसन्नता से परिपूर्ण हो जाता है, सम्भव है इस भाव के कारण ही यह अर्थ आया हो। यथा, "नयां सडकमा टनाटन भीड भई सकेको थियो।" (नई सड़क में पूरी भीड़ हो गई थी।) शि० फू०। पा० पृ० 75। बिचारीकी बुहारी को घरको टनाटन भकारीले उसको मुट सल्कन्थ्यो...।" (न्यायाधीश की पोतोहू के घर की भरी हुई बखारी से उसका हृदय जलने लगता था।) न० सं० को० गी०। र० वि० पृ० 107।

टीपना (तद्० । सं० टेपन > हि० ।, ने० ।)

सं० 'टेपन' का अर्थ होता है—फेंकना। एस-ई-डी-पी-430।

हि० 'टीपना' का अर्थ है—दबाना, चाँपना, धीरे-धीरे ठोकना, चित्र बनाने के लिए उसकी रेखायें खींचना, जोड़ का खाली स्थान भरना। ऐसा लगता है कि सं० 'फेंकना' अर्थ में जो बल-प्रयोग का भाव है, उसी से 'दबाना, चाँपना और ठोकना' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि इन सब में बल के प्रयोग करने का भाव है। शेष दो अर्थों, पर 'फेंकना' के 'करना' भाव का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा, "जरा मेरी पीठ को टीप (चाँप) दो।"

विपरीत, ने० 'टिप्नु' का अर्थ है—तोड़ना, उठाना। डी-एन-एल-पी-244 (टर्नर)। बाद में इस 'तोड़ना' का प्रयोग सम्भवतः 'रोटी तोड़ना' के प्रसंग में होने लगा जिससे 'भोजन करना' जैसा नया अर्थ विकसित हो गया। लगता है कि यह अर्थ बाद में विकसित हुआ है जिस वजह से टर्नर महोदय ने अपने शब्दकोश में इस अर्थ का उल्लेख नहीं किया है। सं० 'फेंकना' अर्थ में जो 'गति' या 'बल' का भाव है, वही 'तोड़ना' या 'उठाना' में भी, सम्भवतः इसलिए इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "अलिकति भातटिपेर जनक गइहाले।" (थोड़ा भात खाकर जनक चला गया।) आ० र० छ०।" इ० ब० रा० पृ० 148। —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

टेर (तद्० । सं० तार > हि० ।, ने० ।)

टर्नर के अनुसार, 'टेर' का विकास हिन्दी क्रियापद 'टेरना' से हुआ है। नागरी प्रचारिणी सभा कोश के अनुसार, इसका विकास सं० 'तार' से हुआ है। नेपाली ने इस शब्द को हिन्दी से ग्रहण किया है—ऐसा टर्नर का संकेत है।

सं० 'तार' का अर्थ होता है—ऊँचा, जोर की आवाज, चमकीला, साफ, अच्छा, सुन्दर। एस-ई-डी-पी-233।

हि० 'टेर' का अर्थ होता है—गाने में ऊँचा स्वर, तान, बुलाने का ऊँचा शब्द, पुकार। स्पष्ट है कि इन अर्थों पर सं० 'जोर की आवाज' अर्थ का प्रभाव है। यथा, "इतने ऊँचे स्वर में वह किसे टेर रहा है ?"

विपरीत, ने० में 'टेर' का अर्थ होता है—आज्ञापालन, आदर, अदब। ने० हि० को० पृ० 114। आज्ञाकारिता और आदर ऊँचे या श्रेष्ठ भाव माने जाते हैं। यह अपने से श्रेष्ठ (ऊँचा) के प्रति प्रदर्शित किया जाता है और पालन करने वाला भी श्रेष्ठ या ऊँचा समझा जाता है, सम्भवतः इसलिए इन अर्थों का विकास सं० 'ऊँचा' अर्थ से हुआ होगा। नेपाल में श्रेष्ठता का परिचायक विनम्रता है जो छोटे-छोटे बच्चों में भी देखी जा सकती है। जहाँ कहीं भी अपने से बड़े लोग मिल जाते हैं, छोटी उम्र वाले बड़ी श्रद्धा से अभिवादन कर अपना आदर प्रदर्शित करते हैं। सम्भव है, श्रेष्ठता का यही आधार इस तरह के अर्थादेश का कारण बना हो। 'अदब' आदर का ही पर्याय है। यथा, "साहू-को खाएर टेर-पुच्छरै नलाई बसाई कसरी हुन्छ त ?" (महाजन का खाकर अदब न करके बैठ जाने से किस तरह होगा तब ?) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 32।

—(हि० अर्थ-संकोच : विभेदीकरण)

ठोस (तद्० । सं० स्थास्नु > हि० ठस > हि० ा, ने० ा)

ज्ञानेन्द्र मोहन दास 'ठोस' शब्द की निष्पत्ति सं० 'स्थापक' से मानते हैं। संसद बंगला कोश के अनुसार, यह शब्द बंगला 'ठोस' धातु से निष्पन्न है। हरिचरण बंद्योपाध्याय तथा टर्नर साहब इस शब्द को हिन्दी मानते हैं। सम्भव है कि √ ठोस धातु हिन्दी की रही हो। हिन्दी का ठूँसना या ठूसना ठोस का समीपवर्ती है। नागरी प्रचारिणी सभा कोश के अनुसार, सं० 'स्थास्नु' से हि० 'ठस' और इससे हि० 'ठोस' का विकास हुआ है। ने० 'ठोस' का विकास भी इसी 'स्थास्नु' से हुआ है या हिन्दी से सीधे गृहीत हुआ है। सं० 'स्थास्नु' का अर्थ होता है—स्थिर, अचल, टिकाऊ, स्थायी, निरन्तर। सं० को० सु० पृ० 586।

हि० 'ठोस' का अर्थ होता है—जो पोला या खोखला न हो, दृढ़, मजबूत। चूँकि 'टिकाऊ' चीजें मजबूत होती हैं और वे अन्दर से खोखली नहीं होतीं, अतएव इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "यह मकान बहुत ठोस बना है।"

विपरीत, ने० 'ठोस' का अर्थ है—दोष या खोट, मजबूत। ने० हि० को० पृ० 118। एन-एन-ई-पी-728। कभी-कभी अचलता भी दोष मानी जाती है, सम्भवतः इसलिए 'दोष' अर्थ सं० 'अचल' अर्थ से विकसित हुआ होगा। ने० 'मजबूत' अर्थ सं० 'टिकाऊ' अर्थ से स्पष्टतः विकसित लगता है, क्योंकि मजबूत चीज ही टिकाऊ होती है। यथा, "राम्रो काम गर्नेलाई पनि मानिसले केहि न केहि ठोस दिन्छन्।" (अच्छा काम करने वाले को भी लोग कोई न कोई दोष देते हैं।) —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

डहन (तद्० सं० दहनः > हि० ा, ने० ा)

सं० 'दहनः' का अर्थ होता है—आग, दाह। सं० को० सु० पृ० 141।

हि० 'डहन' का अर्थ होता है—'जलन'। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'दाह' का पर्याय है। अतएव हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "आग में जल जाने से वह डहन से परेशान है।"

विपरीत, ने० 'डहन' का अर्थ है—ईर्ष्या होना, जलन होना, टीस मारना। ने० हि० को० पृ० 120। जिस तरह 'आग' या 'दाह' शरीर को जलाती है, उसी तरह ईर्ष्या या टीस मन को। सम्भवत: इसलिए ये अर्थ सं० 'आग' या 'दाह' अर्थ से विकसित हुए हैं। यथा, "मेरो उन्नति देखेर उनीहरू डहन्छन्।" (मेरी उन्नति देखकर वे लोग ईर्ष्या करते हैं।)

डोब (तद्० । सं० डिम्ब:>हि० I, ने० II)

सं० 'डिम्ब:' का अर्थ होता है—उपद्रव, कलह, भयंकर शब्द, बच्चा, अंडा, भय, भ्रमर। सं० को० सु० पृ० 130।

हि० 'डोब' का अर्थ है—डुबाने का भाव, गोता, डुबकी। ये अर्थ सं० 'कलह' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि गृह-कलह के कारण बहुत सारे लोग जल में डूबकर आत्महत्या कर लेते हैं या धन-दौलत के नाश हो जाने के कारण डूब जाते हैं। यथा, "वह डोब मारकर उस पार चला गया।"

ने० 'डोब' का अर्थ है—चोट, चिह्न, छिद्र या बिल। ने० हि० को० पृ० 123। एन-एन-ई-पी-741। इनमें 'चोट' अर्थ सं० 'उपद्रव' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि उपद्रव हो जाने पर मारपीट हो जाती है और उसमें चोट लगना स्वाभाविक है। 'चिह्न' अर्थ सम्भवत: 'चोट' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि जहाँ चोट लगती है, वहाँ घाव का चिह्न रह जाता है। 'छिद्र' या 'बिल' अर्थ संभवत: सं० 'अंडा' अर्थ से आकृति-साम्य के आधार पर विकसित हुआ होगा। यथा, "दृढ़तापूर्वक गठित भइसकेको स्वभावले गर्दा पुन: उनहरूको आ-आफ्नो व्यक्तिगत जीवनको रथ स्वभाव को गहिरो डोबमा लागेर हिड्न थाल्यो।" (दृढ़तापूर्वक संगठित होने के स्वभाव के कारण फिर इन लोगों का अपना-अपना व्यक्तिगत जीवन का रथ गहरे छिद्र में फँसकर चलने लगा या गहरी चोट खाकर चलने लगा।) गु०। बी० पी० को० पृ० 93। "...उसका निर्धा आंखाहरू मुनि अस्पष्ट बस्नलागेका नीला डोबहरूले प्रमाण दिइरहन्थे...।" (उसकी कमजोर आँखों के नीचे अस्पष्ट पैदा हुए नीले चिह्न (दाग) प्रमाणित करते थे...।) शि० फू०। पा० पृ० 85। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

डोर (तत्स०। सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'डोर' का अर्थ है—बन्धन की रस्सी। सं० को० सु० पृ० 130।

हि० 'डोर' का अर्थ है—डोरा या मोटा धागा। चूँकि इससे भी बाँधा जा सकता है, अतएव सं० 'बन्धन की रस्सी' अर्थ से ये अर्थ विकसित हुए लगते हैं। यथा, "एक डोर लेकर कपड़े को बाँध दो।"

विपरीत, ने० 'डोर' का अर्थ है—जमीन आदि की पैमाइश के लिए गए हुए कर्मचारी, पैमाइशी का काम। ने० हि० को० पृ० 123। सम्भवत: पहले जमीन को रस्सियों से नापा जाता था जिससे ऐसा अर्थ विकसित हुआ है। दूसरी सम्भावना यह प्रतीत होती है कि स्वतन्त्र जमीन को नापकर सही माप के बन्धन में बाँधने के कारण भी यह अर्थ विकसित हो सकता है। यथा, "अचेल त बेलुका भो कि डोरका खर्दार सदसे साउकोटा बाजेकां पुगेर आउंचु भनेर सुइकुच्चा ठोकिहाल्थ्यो लिआधरतिर।" (आजकल तो शाम हुई कि जमीन आदि की पैमाइश करने वाला कर्मचारी सदा साउकोटा

दादा के यहाँ पहुँच जाता है और 'तुम्हारे घर की ओर आऊँगा' कहकर व्यंग्य करता है।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 119। "यता डोरको पीर उता छोरीको त्यो दशा।" (यहाँ पैमाइशी का झमेला, वहाँ बेटी की ऐसी बुरी हालत।) उ० हु० अ० वि० धि० पृ० 138।
—(हि० अर्थ-संकोच : विभेदीकरण)

डोला (तद्०। सं० दोला > हि० I, ने० II)

सं० 'दोला' का अर्थ 'पालकी' या 'डोली' होता है। सं० को० सु० पृ० 147।

हि० 'डोला' का अर्थ सं० की तरह ही 'पालकी' है। यथा, "वह डोले पर सवार होकर ससुराल चली गई।"

विपरीत, ने० 'डोला' का अर्थ है -दरबारों में मालिक-वर्ग के लिए लाई गई कन्या। ने० हि० को० पृ० 123। सम्भव है, नेपाल में पहले राजवंश के लोगों के लिए या ऐसे ही उच्च समृद्ध परिवारों के लिए पालकी में कन्याओं को चढ़ाकर लाया जाता हो, जिससे ऐसा अर्थादेश हो गया लगता है। नेपाल में आज भी बहुविवाह की प्रथा है जिससे ऐसी सम्भावना अयुक्तिसंगत नहीं लगती। यथा, "बेहुलीले नै आफ्नू देश या कुरा या अफ्न्याइँ छोड्नुपर्छ, भन्नेहरूको लाउस क्याइँमा यत्निखेर डोला चढ्नुभन्दा राम्रो बरू बुढीकन्ने हुनुमै ठान्यो।" (बेहुली ने अपना देश या भाषा या अपनापन छोड़ना होगा, यह सोचकर प्रयत्नभर मालिकों की कन्या बनकर पालकी में चढ़ने के बजाय पत्नी होना अच्छा है, ऐसा निश्चय किया।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 185।

ताक (तद्०। सं० तर्क > प्रा० तक्क > हि० I, ने० II)

सं० में 'तर्क' का प्रयोग—अनुमान, सन्देह, किसी वस्तु का निश्चय करना, भावना-चिन्तन द्वारा किसी वस्तु का पता लगाना, बोलना या चमकना—अर्थों में पाया जाता है। एस-ई-डी-पी-231।

हिन्दी तथा नेपाली में 'तर्क' का प्रयोग बहस, विवेचना आदि अर्थों में समान रूप से पाया जाता है, पर इससे विकसित 'ताक' का अर्थ दोनों भाषाओं में भिन्न हो गया है।

हिन्दी 'ताक' का अर्थ होता है—ताकने की क्रिया या भाव, स्थिर दृष्टि, टकटकी तथा अवसर की प्रतीक्षा, मौका। यथा, "वह लगातार उधर ताक रहा है।" या "वह ताक लगाए बैठा है।"

नेपाली 'ताक' का अर्थ हिन्दी की तरह ही 'मौका' होता है, पर दूसरा अर्थ 'समय' भी विकसित हो गया है। एन-एन-ई-पी-775। लगता है कि नेपाली ने इस शब्द को हिन्दी से ही ग्रहण किया है। इसने हिन्दी के 'मौका' अर्थ को तो अपना लिया, पर इसी से दूसरा अर्थ 'समय' भी विकसित कर लिया। मौका उपयुक्त समय का ही दूसरा नाम है। नेपाली ने 'उपयुक्त' को हटाकर सामान्य रूप से 'समय' अर्थ को विकसित किया है। यथा, "एक ताक म काठमांडौ गएको थिएं।" (एक बार (एक समय पर) मैं काठमांडू गया था।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 72। "पहिले किनेर ल्याएको ताक त म निकै यसको हेर विचार गर्थे ...।" 'पहले खरीदकर लाने के मौके पर तो मैं अच्छी तरह इसका सोच-विचार करता था।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 39।
—(हि० अर्थ-विस्तार : भ्रान्त धारणा)

ताप (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'तापः' का अर्थ होता है— गर्मी, सन्ताप । सं० को० सु० पृ० 134 ।

हि० 'ताप' का अर्थ सं० के समान ही—गर्मी, आँच, दुःख—होता है । इनके अलावा एक नया अर्थ 'ज्वर' भी विकसित हो गया है । चूँकि ज्वर आने पर शरीर की गर्मी बढ़ जाती है, सम्भवतः इसलिए सं० 'गर्मी' अर्थ से यह अर्थ आया है । हिन्दी में शारीरिक ताप (ज्वर), मानसिक ताप (चिन्ता), सन्ताप (शोक)—इस तरह अनेक अर्थों में ताप का प्रयोग पाया जाता है । यथा, "वह शारीरिक ताप से विकल है ।"

विपरीत, ने० 'ताप' का अर्थ मुख्य रूप से—'कष्ट' या 'पीर'—होता है । एन-एन-ई-पी-779 । यह अर्थ सं० 'सन्ताप' अर्थ से विकसित जान पड़ता है, क्योंकि सन्ताप में भी कष्ट का भाव है, पर कष्ट से ज्यादा है । यथा, "यी दुईजना दाजुबहिनीहरूको व्यवहार बांकीभएकोले शिवनारांलाई विघ्ने ताप हुन्थ्यो, अब निश्चित भएर शिवनारां आनन्दको सास फेरि रहेका छन् ।" (इन दोनों भाई-बहनों का विवाह-सम्बन्ध बाकी रहने के कारण शिवनारायण को काफी कष्ट होता था, अब निश्चित होकर शिवनारायण आनन्द की साँस ले रहा था ।) ए० चि० । हू० च० प्र० पृ० 332 ।

(हि० अर्थ-संकोच : अवच्छेदक)

ताली (तत्स० । सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'ताली' का अर्थ है—ताड़ वृक्ष, ताड़ी, कुंजी । सं० को० सु० पृ० 134 । एस-ई-डी-पी-234 ।

सं० 'ताली' से आये हि० 'ताली' शब्द का अर्थ है—कुंजी, ताड़ी, पाठ्य-पुस्तकों की व्याख्या । इनमें प्रारम्भ के दो अर्थ तो संस्कृतवत् ही हैं, अन्तिम अर्थ 'पाठ्य-पुस्तकों की व्याख्या' सं० 'कुंजी' अर्थ से विकसित हुआ जान पड़ता है, क्योंकि ऐसी व्याख्या मूल पुस्तक के भावों को खोलकर रख देती है, जैसे कुंजी ताला को खोलती है । यथा, "आजकल मूल पुस्तक को छोड़कर कुंजी पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ चली है ।"

विपरीत, ने० 'ताली' का अर्थ होता है—नींद से आँख का चढ़ना, लय । ने० हि० को० पृ० 134 । एन-एन-ई-पी-783 । इनमें पहला अर्थ सं० 'ताड़ी' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि ताड़ी पीने से नशा के कारण आँखें चढ़ जाती हैं । 'लय' अर्थ संभवतः सं० 'कुंजी' अर्थ से आया है, क्योंकि लय ही किसी गीत की सफलता की कुंजी होती है । यथा, "बर्मा बस्या बाबुका तालीमे छोराहरू रच्न पो रच्न ।" (बर्मा में रहकर पिता के नींद में आ जाने पर लड़के रचे जाते रहे ।) उ० हु०अ० । वि० धि० पृ० 89 । "अबको ताली बरी जो मधेश जाने सम्भावनामा थिई……।" (इस बार दादी मधेश जाने की संभावना में थी…।) —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

तेलिया (तद्० । सं० तैलं > हि० I, ने० I)

सं० 'तैलं' से 'तेल' शब्द बना और इसमें 'इया' प्रत्यय के लगने से 'तेलिया' शब्द बना । सं० 'तैलं' का अर्थ होता है—तेल । सं० को० सु० पृ० 137 ।

हि० 'तेलिया' का अर्थ है—तेल की तरह चिकना और चमकीला, तेल के-से रंगवाला, तेली या तेली-सम्बन्धी, काला, चिकना और चमकीला रंग, इस रंग का

घोड़ा, सींगिया नामक विष। इनमें प्रथम तीन अर्थ तो सं० 'तेल' से स्पष्टतः सम्बन्धित हैं और शेष अर्थों पर तेल के रंग या गुण का प्रभाव है। तेल चमकदार और चिकना होता ही है, कभी-कभी कुछ कालापन लिए हुए भी होता है। तेल के रंग का होने के कारण ही यह 'विष' अर्थ आया है। यथा, "तेलिया पत्थर बहुत उपयोगी होता है।"

विपरीत, ने० 'तेलिया' का अर्थ होता है--चिकनी चौकोर छोटी मजबूत ईंट, तेल के रंग का कीमती हीरा, तेल-सा चिकना। ने० हि० को० पृ० 137। चूँकि तेल बहुत चिकना और चमकदार होता है और इसी तरह की यह ईंट भी होती है, अतएव ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। शेष दो अर्थ स्पष्टतः 'तेल' अर्थ से विकसित हैं, क्योंकि इनमें तेल के रंग या गुण का स्पष्ट कथन है। यथा, "राजभवन तेलिया ईंटले निर्मित भएको छ।" (राजभवन चिकनी चौकोर छोटी मजबूत ईंट से निर्मित हुआ है।)

--(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

तोरन (तद्० । सं० तोरण>हि० I, ने० I)

सं० 'तोरण' का अर्थ होता है--बरसाती, मेहराबदार फाटक, गर्दन, बन्दनवार। सं० को० सु० पृ० 137। एस-ई-डी-पी-239।

हि० 'तोरन' का अर्थ 'घर या नगर का बाहरी फाटक' या 'वन्दनवार' होता है। ये दोनों अर्थ सं० 'मेहराबदार फाटक' और 'वन्दनवार' अर्थ से आये हैं। संभव है, घर या नगर का बाहरी फाटक मेहराबदार होता हो जिससे ऐसा अर्थ-परिवर्तन हुआ होगा। यथा, "समारोह के उपलक्ष्य में तोरन सजाया गया है।"

विपरीत, नेपाली 'तोरन' का अर्थ--'नारा' होता है। ने०हि०को० पृ० 138। गर्दन और कंठ में बड़ा निकट का सम्बन्ध है। नारे की जोरदार आवाज कंठ से ही उच्चरित होती है। अतएव, इस अर्थ का विकास सं० 'गर्दन' अर्थ से हुआ लगता है। यथा "गली-गलीमा तोरन गुंजिरहेको छ।" (गली-गली में नारा गूँज रहा है।)

--(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

थाह (तद्० । सं० स्ताघ>हि० I, ने० I)

सं० 'स्ताघ' का अर्थ होता है--छिछला। सं० को० सु० पृ० 582।

हि० 'थाह' का अर्थ होता है--धरती का वह तल जिस पर पानी हो, गहराई का अन्त या हद, कम गहरा पानी जिसका अन्दाज मिल सके, गहराई का पता, अन्त। ये सारे अर्थ सं० 'छिछला' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि छिछला में कम गहरे जलवाले स्थल का भाव है। इसी भाव के कारण 'तल' अर्थ आया होगा और चूँकि 'तल' पर जाकर गहराई का अन्त हो जाता है, अतएव इसी अर्थ से यह दूसरा अर्थ विकसित हुआ होगा। 'अन्त' अर्थ जल का अन्त होने के भाव से विकसित प्रतीत होता है। यथा, "उस नदी में कितना पानी है, इसकी थाह पाना कठिन है।"

विपरीत, ने० 'थाह' का अर्थ है-- याद, ज्ञान, अनुभव, जानकारी, पता। ने० हि० को० पृ० 142। इनमें 'ज्ञान, अनुभव, जानकारी' और 'पता' लगभग समानार्थी हैं, 'याद' अर्थ थोड़ा भिन्न है। चूँकि छिछली जगह में कितना पानी है, इसका ज्ञान या पता पाना आसान है, संभवतः इसलिए ये सारे अर्थ विकसित हुए होंगे। ज्ञान जिसका होता है, वह बात याद रहती है, संभवतः इसलिए 'याद' अर्थ इन अर्थों से बाद में विकसित हुआ होगा। यथा, "तिमीले आफ्नो धर्मलाई कति विघ्न मान्ने गन्या छौं भन्ने

थाह नै नभाजस्तो मलाई।" (तुमने अपने धर्म को कितना बड़ा माना है, इसकी जानकारी ही जैसे मुझे नहीं हुई।) सु०। बी० पी० को० पृ० 68। "त्यै पुरानो हाम्रो कमानको, म्यानेजरलाई कुटेको केस त हो, थाह छ नि तपाईलाई।" (वह हमारे चायबगान के मैनेजर को मारने का पुराना मुकदमा तो है, आपको पता है न।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 246। "कति जोतें, क्यारेर जोतें, कसरी बीउ राखे, कतिबेला गोरू-फुकाएर, कसरी ह्यां आइपुगें, क्या थाह नि छैन।" (कितना जोतते, किससे जोतते, किस तरह बीज रखते, कब बैल खोलकर किस तरह यहाँ आ पहुँचे, क्या पता ही नहीं है।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 165। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

थैली (तद्०। सं० स्थविः>हि० I, ने० I)

टर्नर महोदय के अनुसार, 'थैली' का विकास सं० 'स्थविः' से हुआ है। श्री बालचन्द्र शर्मा इसे प्राकृत 'थइआ' से विकसित मानते हैं।

सं० 'स्थविः' का अर्थ होता है—झोला, जुलाहा, स्वर्ग, फल, कोठी, आग। सं० को० सु० पृ० 584।

हि० 'थैली' का प्रयोग मुख्यतः—छोटा थैला, बटुआ या रुपयों से भरी हुई थैली— अर्थों में होता है। सं० 'झोला' अर्थ को हिन्दी ने 'बटुआ' या 'छोटा थैला' अर्थ में विकसित कर लिया है। बाद में, इस तरह के थैले रुपये-पैसे रखने के लिए व्यवहृत होने लगे जिससे अन्तिम अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "उन्हें पाँच हजार की थैली भेंट की गई।"

विपरीत, नेपाली 'थैली' का एक अर्थ 'पूँजी' हो गया है। वैसे 'छोटा झोला' के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। एन-एन-ई-पी-829। ऐसा प्रतीत होता है कि नेपाली में सं० 'झोला' अर्थ से पहले 'छोटा झोला' अर्थ आया। बाद में, इस तरह के झोले रुपये-पैसे को रखने के लिए व्यवहृत होने लगे। रुपयों से सम्बन्ध जुड़ जाने के कारण, बाद में, 'पूँजी' अर्थ में भी इसका प्रयोग होने लगा। यथा, "...धाउंठेले के भनेर हात पर्‍या थैली फिर्ता दिइरहन्थ्यो रे।" (...बाउठे क्या कहकर हाथ आई पूँजी वापस कर रहा था रे।) न० सं० को० गी०। र० वि० पृ० 56। "झण्डेमा खाको जग्गाको पनि सैकडा दशभन्दा बढी खाको जति थैलीमा कट्टा हुनेहो कि कसो हो हुजुर।" (लगभग नहीं खाई हुई जमीन का भी सैकड़ा दस से बढ़कर खाई हुई पूँजी में कटौती होगी कि कैसा होगा हुजुर।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 67। —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

दर (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

हि० और ने० 'दर' का विकास फा० 'दर' से भी हुआ है और सं० 'दरः' से भी। फा० 'दर' से आये हि० और ने० 'दर' में कोई अर्थभेद नहीं है, लेकिन सं० 'दरः' से आये 'दर' के अर्थों में अन्तर आ गया है। सं० 'दरः' का अर्थ होता है—कन्दरा, गड्ढा, भय, थोड़ा, फाड़ना। सं० को० सु० पृ० 140। एस-ई-डी-पी-246।

सं० 'दरः' से विकसित हि० 'दर' का अर्थ होता है—फाड़ने की क्रिया, गड्ढा, दरार, कन्दरा, भय। स्पष्ट है कि सं० और हि० के अर्थ लगभग समान ही हैं। दरार

में भी गड्ढा होने के कारण सं० गड्ढा से 'दरार' अर्थ विकसित हो गया लगता है। यथा, "उसकी दीवाल में अनेक दर हैं।"

विपरीत, ने० 'दर' का अर्थ है—तीज के अगले दिन खाया जानेवाला स्त्रियों का विशेष खाना, गरिष्ठ खाद्य। ने० हि० को० पृ० 146। ने० श० पृ० 500। ऐसा लगता है कि 'तीज के अगले दिन खाया जानेवाला स्त्रियों का विशेष खाना' अर्थ सं० 'थोड़ा' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि उपवास के बाद इस तरह का खाना थोड़ी मात्रा में खाया जाता है और चूँकि यह खाना जल्दी पचता नहीं है जिससे 'गरिष्ठ खाद्य' अर्थ आया होगा। यथा, "तीजका व्रताहरूलाई अगिल्लो दिन दर भएन भने व्रत गर्न सक्दैनन।" (तीज व्रत करनेवाली के लिए अगले दिन का विशेष खाना नहीं होने से व्रत नहीं कर सकती है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

देवल (तद्० । सं० देवालयः > हि० I, ने० II)

सं० 'देवालयः' का अर्थ होता है—मन्दिर, स्वर्ग। एस-ई-डी-पी-259।

हि० 'देवल' का अर्थ है—'देवमन्दिर'। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० से ही आया है। यथा, "वह प्रतिदिन देवल जाता है।"

ने० में 'देवल' का अर्थ होता है—पूजा करनेवाला, देवालय। एन-एन-ई-पी-879। इनमें 'पूजा करनेवाला' अर्थ नया है जो संभवतः 'मंदिर' अर्थ से ही विकसित हुआ है। मन्दिर में जो जाता है, वह पूजा करता ही है, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हो गया है। यथा, "सुदूरबाट देवलका घंटाहरू ट्वांग-ट्वांग गर्दै बाजिरहेका थिए।" (दूर से देवालय के घण्टे 'ट्वांग-ट्वांग' करके बज रहे थे।) क० स०। गो० पृ० 59। "त्यहाँ धेरै देवलहरू छन्।" (वहाँ बहुत पुजारी लोग हैं।)

धर (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

'धर' का सं० में अर्थ होता है—पकड़ना, ढोना, पहनना, धारण करना, सुरक्षित रखना, प्रदत्त, रखना, भार सहना आदि। एस-ई-डी-पी-268।

हि० 'धर' का अर्थ है—धारण करनेवाला, ऊपर लेनेवाला, सँभालनेवाला, ग्रहण करनेवाला। ये सारे अर्थ लगभग समान हैं और सं० 'धारण करना' अर्थ से विकसित लगते हैं। यथा, "अमेरिका पाकिस्तान का पक्षधर है।"

विपरीत, ने० 'धर' का अर्थ है—छुटकारा, शर्म, धज्जी, सुख। ने० हि० को० पृ० 154। इनमें 'छुटकारा' अर्थ संभवतः सं० 'सुरक्षित रहना' अर्थ से आया होगा, क्योंकि 'सुरक्षित' में दुश्मन से छुटकारा पा जाने का भाव है। 'शर्म' और 'सुख' अर्थ संभवतः सं० 'ढोना' और 'रखना' अर्थ से आये हैं, क्योंकि बहुत-सारे लोगों को शर्म ढोनी पड़ती है और सुख तो सभी रखना चाहते हैं। 'धज्जी' अर्थ संभवतः 'सुरक्षित रखना' अर्थ से आया होगा, क्योंकि धज्जी सुरक्षित नहीं रहने से व्यक्ति या वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है। यथा, "ब्याज पनि महीनेपिच्छे नतिरी धर दिदैनन्…।" (ब्याज भी महीने-महीने नहीं देने से छुटकारा नहीं देगा…।) बं०। ली०ब० क्ष० पृ० 2। "आखिर नमिलाइदिई धर नपाएर कान्छदाइ उतालागे, म यथा आँए।" (आखिर समझौता नहीं होने से सुख न पाकर कान्छा भाई वहाँ गये, मैं यहाँ आया।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 133। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

धेर (तद्० । सं० अधिक > हि० I, ने० I)

सं० 'अधिक' का अर्थ है––बहुत, ज्यादा । सं० को० सु० पृ० 17 ।

हि० 'धेर' का प्रयोग 'एक अनार्य जाति' के लिए होता है । ऐसा लगता है कि इस जाति के अन्तर्गत व्याप्त असभ्यता की अधिकता के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है । यथा, "अभी भी धेर लोगों के निश्चित घर नहीं होते ।"

विपरीत, ने० 'धेर' का अर्थ सं० के समान ही 'ज्यादा या बहुत' है । ने० हि० को० पृ० 157 । इसलिए ने० के इस शब्द में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "चिनेका मानिसहरूसंग धेरबेर बात गर्नु उसलाई यातना भोग्नु बराबर हुन्छ ।" (जान-पहचान के मनुष्यों के साथ ज्यादा समय बात करना उसके लिए यातना भोगने के बराबर है ।) आ० र० छ० । इ० ब० रा० पृ० 109 । ––(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

धौ (तद्० । सं० धवः > हि० I, ने० I)

सं० 'धवः' का अर्थ है––कंपन, मनुष्य, धूर्त, पति, एक वृक्ष । सं० को० सु० पृ० 150 ।

हि० 'धौ' का अर्थ सं० के समान ही––एक जंगली पेड़, पति, स्वामी, पुरुष––होता है । इस तरह हि० अर्थ में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "बिना धौ की औरत निराश्रिता हो जाती है ।"

विपरीत, ने० 'धौ' का अर्थ होता है––कठिनाई या मुश्किल । ने० हि० को० पृ० 150 । ने० का यह अर्थ संभवतः 'पति' अर्थ से विकसित हुआ है । नेपाल में पुरुष की अपेक्षा नारियों की संख्या बहुत अधिक है जिस वजह से पति पाना वहाँ एक समस्या रही है । संभव है, पति पाने की कठिनाई की वजह से ऐसा अर्थ विकास हुआ हो । दूसरी संभावना यह प्रतीत होती है कि धूर्त लोगों द्वारा कठिनाई पैदा कर देने के कारण सं० 'धूर्त' अर्थ से यह अर्थ विकसित हुआ हो । यथा, "त्यो वास्तवमा के थियो, चिन्न दामिनीलाई धौ भएन ।" (वह वास्तव में कौन था, पहचानने में दामिनी को कठिनाई नहीं हुई ।) सो० र० ज० । के० नु० पो० पृ० 21 । "अनि आंखाभरि जमिसकेको आंसु आमाको नजरदेखि लुकाउन धौ-धौ पर्‍यो ।" (फिर भर आँख जमे हुए आँसू को माँ की नजर से छिपाने में कठिनाई हुई ।) मा० म० । बां० पृ० 91 । "सुतिरहेको तीन काला-मूर्तिहरूलाई ठम्म्याउन धौ परेन ।" (सोई हुई तीन काली मूर्तियों को अनुमान द्वारा समझने में कठिनाई नहीं हुई ।) सो० र० ज० । के० नु० पो० पृ० 98 ।

नेवारी (तद्० । सं० 'नेपालः' > हि० I, ने० I)

सं० 'नेपालः' का अर्थ होता है––नेपाल देश जो भारत के उत्तर में स्थित है । इसी से बना 'नेपालाः' का अर्थ होता है––नेपाल के लोग और 'नेपाली' का अर्थ होता है––एक जंगली वृक्ष या इसका फल । एस-ई-डी-पी-303 ।

हि० 'नेवारी' का अर्थ होता है––जूही की जाति का एक पौधा जिसमें सफेद रंग के छोटे-छोटे फूल लगते हैं, वनमल्लिका । स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'नेपाली' शब्द के 'एक जंगली वृक्ष' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि यह पौधा भी एक तरह का वृक्ष ही है । यथा, "उस उद्यान में जाते ही नेवारी की सुगन्ध से मन प्रसन्न हो जाता है ।"

विपरीत, ने० में 'नेवारी' का अर्थ है—नेपाल में रहनेवाले नेवार जाति के लोग सम्बन्धी। एन-एन-ई-पी-972। ने० का यह अर्थ सं० 'नेपाल देश' अर्थ से लक्षणा द्वारा आधाराधेय सम्बन्ध के कारण विकसित हुआ प्रतीत होता है। यथा, "पाटनको कृष्ण-मन्दीरमा नेवारी संस्कृतिको छाप पाइन्छ।" (पाटन के कृष्ण-मन्दिर में नेपाल में रहने-वाली नेवारी जाति के लोगों की संस्कृति की छाप पाई जाती है।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

पहार (तद्० । सं प्रहर>हि० I, ने० II)

सं० 'प्रहर' का अर्थ होता है—दिन का आठवाँ हिस्सा, घड़ी, लगभग तीन घंटे का समय। एस-ई-डी-पी-373।

हि० 'पहार' का अर्थ है—पहरेदार। इसका प्रयोग मुख्यत: ग्राम्य भाषा में होता है। पहरेदार हर समय पहरा करता रहता है या कहीं-कहीं केवल रात के प्रहरों में ही पहरा करता है। इस तरह, 'पहरेदार' में जो समय का भाव है, उसी के कारण सं० 'घड़ी' या 'तीन घंटे का समय' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "इतना कीमती सामान की रक्षा के लिए कोई पहार नहीं।"

विपरीत, ने० 'पहार' का अर्थ है—सूर्य की गर्मी, धूप। ने० श० पृ० 630। सूर्य की गर्मी या धूप हर समय नहीं पड़ती, इसके पड़ने का खास समय होता है, संभवत: समय से गर्मी के जुड़े रहने के भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ होगा। यथा, "पहाडमा धेरै यस्ता ठाउंहरू पनि पाइछन् जहां पहार सजिलैसंग पाइन्छ।" (पहाड़ पर अनेक ऐसी जगह भी मिल जाती हैं जहाँ धूप आसानी से मिलती हो।) "यो थुम्की साहे पहा-रिलो छ।" (यह चोटी बहुत धूपयुक्त है।) —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

पातल (तद्० । सं० पत्रं>हि० I, ने० II)

सं० 'पत्रं' का अर्थ होता है—पत्ता, पाँखुरी डैना, चिट्ठी आदि। सं० को० सु० पृ० 170।

सं० 'पत्रं' से विकसित हि० 'पातल' का अर्थ होता है—पत्तल। चूँकि पत्तल पत्तों की बनी होती है, अतएव यह अर्थ सं० 'पत्ता' अर्थ से विकसित हुआ लगता है। यथा, "पातल परोस दिया गया है।"

विपरीत, ने० 'पातल' का अर्थ होता है—पहाड़ी का घना जंगल। ने० श० पृ० 635। चूँकि जंगल वृक्ष और पत्तों का समूह होता है, अतएव 'घना जंगल' अर्थ का विकास सं० 'पत्ता' अर्थ से हुआ लगता है। यथा, "अब उसका आंखाले हिमालदेखि काली पातल हुंदै तल्लो पातल······मा पुगेर विश्राम लिन लागे।" (अब उसकी आँखें हिमालय से 'काली' जंगल होती हुई नीचे पहाड़ी जंगल······में पहुँचकर विश्राम करने लगीं।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 218। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

पायक (तद्० । सं० पादात:>हि० II, ने० II)

सं० 'पदाति:' या सं० 'पादात:' का अर्थ होता है—पैदल सिपाही। एस-ई-डी-पी-331।

हि० 'पायक' का अर्थ होता है—पैदल सिपाही, दूत, सेवक। इनमें प्रथम अर्थ तो सं० का ही है। संभव है, पहले 'दूत' और 'सेवक' भी सिपाही ही होता रहा हो, जिससे ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "एक पायक भेजकर वहाँ का समाचार जानना चाहिए।"

विपरीत, ने० 'पायक' का अर्थ होता है—काम करने में आसान, अनुकूल। एन-एन-ई-पी-1034। सिपाही की मदद से वैध काम कराने में आसानी हो जाती है और बहुत सारी स्थितियों में वातावरण अनुकूल हो जाता है। संभव है, इसीलिए लक्षणा के आधार पर ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "मेरो परिस्थिति पायक न परेसम्म तिमीले पर्खनै पर्छ।" (मेरी परिस्थिति अनुकूल न होने के कारण तुमको प्रतीक्षा करनी होगी।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

पाल (तद्० । सं० पटलं > हि० I, ने० II)

सं० 'पटलं' का अर्थ होता है—छत, ढक्कन, ढकना, ओट, घूंघट, ढेर, परिमाण, टोकरी। एस-ई-डी-पी-310।

हि० में सं० 'पटलं' से आये 'पाल' का अर्थ है—नाव के ऊपर हवा के सहारे ढकेले जाने के निमित्त लगाया गया कपड़ा, तंबू, शामियाना, ओहार, पालकी आदि ढकने का कपड़ा। जिस तरह घर के ऊपर छत रहती है, उसी तरह नाव के ऊपर कपड़ा लटका रहता है, इसी सादृश्य के कारण प्रथम अर्थ आया लगता है। तंबू, शामियाना, ओहार या पालकी आदि ढकने का कपड़ा—सभी स्थल या वस्तु के ढकने का काम करते हैं, सम्भवतः इसी भाव के कारण इन अर्थों का विकास सं० 'ढक्कन' अर्थ से हुआ हो। यथा, "नाव पाल की सहायता से तेजी से बढ़ने लगी।"

विपरीत, ने० 'पाल' का अर्थ होता है—रक्षास्थल, तंबू। जिस तरह ढक्कन किसी वस्तु को ढककर उसकी रक्षा करता है, उसी तरह यह रक्षास्थल भी रक्षा करता है। सम्भवतः इसलिए 'रक्षास्थल' अर्थ आया है। 'तंबू' अर्थ का विकास हि० की तरह ही हुआ प्रतीत होता है। यथा, "दर्केझरीको कालो भयावह रातमा एक्लो पाल यसको जीवनको सुरक्षा।" (तेज बरसती वर्षा की काली भयावह रात में अकेला तंबू (या रक्षास्थल) इसके जीवन की सुरक्षा।) आ० र० ६० । इ० ब० स० पृ० 4। "लाम-बाट मानिसहरू भित्र पसेर मतदानपत्र खसालेर पालबाट बाहिर आउन लागे।" (पंक्ति से मनुष्य लोग भीतर जाकर मतदानपत्र गिराकर तंबू से बाहर आने लगे।) सो० र० ज० । के० नु० पो० पृ० 115। "अर्जुनसाग साथमा सुनकेशा मैयां धौल्यागिरी-नेरि एउटा पालमा बसेकी थिइन।" (अर्जुना के साथ सुनकेशा मैयां धौल्यागिरी के नज़-दीक एक तंबू (या रक्षास्थल) में बैठी थी।) सो० र० ज० । के० नु० पो० पृ० 198।
—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

पालि (तत्स० । सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'पालिः' का अर्थ होता है—कान का अग्रभाग, कोण, कोर, पंक्ति, पुल, चीलर, प्रशंसा, गोद, सीमा। एस-ई-डी-पी-334।

हि० 'पालि' का अर्थ है—कान के पुट के नीचे का मुलायम चमड़ा या लौ, कोना, पंक्ति, किनारा, सीमा, बाँध, गोद, चिह्न, जूँ, ढूह, बटलोई। सं० 'सीमा' अर्थ से हि०

'बाँध', 'चिह्न' और 'ढूह' अर्थ विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि कहीं-कहीं खेत या दो देशों की सीमा पर बाँध की तरह ऊँचा बना दिया जाता है या सीमा वाले स्थान पर कोई 'चिह्न' दे दिया जाता है या कहीं-कहीं ढूह जैसा बना दिया जाता है। 'बट-लोई' अर्थ सम्भवतः आकृति-साम्य के कारण बाद में हि० 'ढूह' अर्थ से ही विकसित हुआ होगा। शेष सारे अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "सारी सेना को चार पालियों (पंक्तियों) में विभक्त कर दिया गया है।"

विपरीत, ने० 'पालि' का अर्थ होता है—खेप, फेरा, बार, समय। एन-एन-ई-पी-1039। ऐसा लगता है कि ने० के ये अर्थ सं० 'प्रशंसा' या 'सीमा' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि प्रशंसा भी समय-सापेक्ष है और सीमा भी। ये सारे अर्थ भी समय से प्रतिबंधित या सम्बन्धित हैं। यथा, "यसपालि त त्यही बंगाली ठीटो निस्क्यो भने मात्र।" (इस बार तो वही बंगाली लड़का निकला मात्र) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 71। "तर खै यो पालि त झन् दुब्लाइछस।" (लेकिन क्यों इस बार तो एकदम दुबली हो गई हो।) मा० घ०। बा० पृ० 64। "यति साह्रो कडा शब्द उसले कार्कीलाई जोवनमा यो प्रथमपालि प्रयोगगरेकी थिई…।" (इतना अधिक कड़ा शब्द उसने कार्की को जीवन में प्रथम बार कहा था…।) बं० ली० ब० क्ष० पृ० 36।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

पोल (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'पोलः' का अर्थ होता है—ढेर, बड़ा आकार, आकार। एस-ई-डी-पी-349।

हि० 'पोल' का प्रयोग—शून्य स्थान, अवकाश, खोखलापन, सारहीनता—अर्थों में होता है। कभी-कभी बहुत चीजें बाहर से विशाल होकर भी भीतर से शून्य होती हैं, शायद इसी भाव के कारण सं० 'बड़ा आकार' अर्थ से शून्य स्थान या खोखलापन अर्थ आया है। खोखली चीजें सारहीन मानी जाती हैं—अतएव 'सारहीनता' अर्थ बाद में विकसित हुआ होगा। अवकाश के समय काम से शून्य होने के कारण 'अवकाश' अर्थ का विकास हुआ जान पड़ता है। यथा, "ऊपर से ही मोटा-तगड़ा है, भीतर तो पोल है।"

विपरीत, ने० 'पोल' का अर्थ होता है—रहस्योद्घाटन, चुगली। एन-एन-ई-पी-1073। ने० के ये अर्थ सं० 'बड़ा आकार' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं। ऐसा इसलिये कि बहुत-सी चीजें बाहर से विशाल होकर भी भीतर से खोखली होती हैं। इसका ज्ञान तब होता है जब इसका रहस्योद्घाटन होता है। वैसे, हर बड़े आकार का, चाहे वह धन का भंडार हो या और कुछ, कुछ न कुछ रहस्य होता है। किस तरह किसका शोषण कर वह ढेर जमा किया गया है, इसको बताना भी रहस्योद्घाटन कहलाता है। सम्भव है कि इसी भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "…तपाई पनि दिनहुं आउनुहुन्छ रे, इत्यादि कुरा छिमेकीहरुको पोल गरेका रहेछन्।" (…आप दिन में भी आते रहे हैं, इत्यादि बातें पड़ोसियों ने रहस्योद्घाटित कर दी हैं।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 140। "पोल लाउंछेस बाढी ?" (चुगली करती है दुष्टा ?) मा० घ०। बां० पृ० 5। "एउटा कुरो अर्कोलाई पोल गरेर दुई जनामा फाटो तुल्याउनु…।" (एक की बात दूसरे को चुगली करके दो आदमियों में मनमुटाव पैदा करना…।) न० स० को० गी०। वि० पृ० 101। —(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

फेरा (दे० । हि० फेरना > हि० I, ने० I)

सं० श० सा० के अनुसार, सं० 'प्रेषणं' से हि० 'फेरना' क्रिया का विकास हुआ है। 'फेरना' का अकर्मक रूप 'फिरना' होता है। ने० 'फेरा' का विकास हि० 'फिरना' से हुआ लगता है।

हि० 'फेरना' का अर्थ है—घुमाना, मोड़ना, वापस करना आदि। लगता है कि हिन्दी के ये अर्थ सं० 'प्रेषण' के 'प्रेषित करना' अर्थ से प्रभावित हैं। हि० 'फिरना' का एक अर्थ होता है—बार-बार फेरे खाना।

हि० 'फेरा' का अर्थ है—परिक्रमण, चक्कर, लपेटने में एक बार का घुमाव, मोड़, बार-बार आना-जाना, पलटकर आना, मंडल। ये सारे अर्थ हि० 'मोड़ना' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि मोड़ने में भी चक्कर लगने का भाव है और इन सभी अर्थों में भी। यथा, "आजकल इधर चोर-डाकुओं का बराबर फेरा (बार-बार आना-जाना) लगा करता है।" या "क्या बात है, आज कई बार फेरा लग गया?"

विपरीत, ने० 'फेरा' का अर्थ है—खेप, बार, दफा। एन-एन-ई-पी-1134। 'खेप' में भी बार-बार आने-जाने का भाव है और हिन्दी 'फिरना' का अर्थ 'बार-बार फेरे खाना' में भी। अतएव, यह उसी से विकसित है। यथा, "अरुणले एकफेरा पुलुक्क रेखालाई हेऱ्यो।" (अरुण ने एक बार प्रसन्नतापूर्वक रेखा को देखा।) फे० रा० भे० हो०। यु० था० पृ० 80। "…रविले इशावेललाई एक फेरा हेऱ्यो।" (…रवि ने इशावेल को एक बार देखा।) आ० र० छ०। इ० व० रा० पृ० 60। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

बगली (वि० । फा० बगल > हि० I, ने० I)

फा० 'बगल' का अर्थ होता है—पार्श्व, पहलू, कक्ष, कांख, गोद। उ० हि० डि० पृ० 81। इसी में 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से 'बगली' शब्द बना है।

हि० 'बगली' का अर्थ होता है—बगल से सम्बन्ध रखने वाला, बगल का, कुश्ती का एक दाँव, वह थैली जिसमें दर्जी सूई-धागा रखते हैं, कुरते आदि में कपड़े का वह टुकड़ा जो कंधे के नीचे लगाया जाता है। ये सारे अर्थ फा० 'पार्श्व' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि सब में पार्श्व का भाव है। कुश्ती के इस दाँव में प्रतियोगी को बगल में पकड़कर पटका जाता है, दर्जी ऐसी थैली को बगल में लटकाकर रखते हैं, कुरते का कपड़ा भी बगल में लटकता है—इस तरह सारे अर्थ 'पार्श्व' से सम्बन्धित हैं। यथा, "उसने बगली (बगल का) वाले को इशारा किया।"

विपरीत, ने० 'बगली' का अर्थ है—थैली, जेब। एन-एन-ई-पी-1141। हि० की तरह 'दर्जी की थैली' अर्थ न होकर सामान्य थैली अर्थ हो गया है। चूंकि जेब पार्श्व में ही रहती है, सम्भवतः इसलिए फा० 'पार्श्व' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "भैगो, त्यसै दिनोस् म बगलीमा नै हाल्छु।" (हो गया, उसी तरह दीजिये, मैं जेब में ही डालूंगा।) फे० क० भे० हो०। यु० था० पृ० 124।

—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

बथान (तद्० । सं० अवस्थानं > हि० I, ने० I)

सं० 'अवस्थानं' का अर्थ होता है—स्थिति, बसने की जगह। सं० को० सु० पृ० 38।

हि० 'बथान' का अर्थ होता है—गाय-भैंस आदि बाँधने की जगह। इसका प्रयोग मुख्यत: ग्राम्य भाषाओं में होता है। प्रतीत होता है कि सं० 'बसने की जगह' अर्थ का अपकर्ष होकर केवल 'गाय-भैंस जैसे चौपायों के रहने या बसने की जगह' अर्थ हो गया है। यथा, "दूध लेना हो तो भैंस की बथान पर जाओ।"

विपरीत, ने० 'बथान' का अर्थ होता है—झुंड, दल, समूह। एन-एन-ई-पी-1151। सम्भवत: ये अर्थ सं० 'बसने की जगह' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि मानव-स्वभाव है कि जहाँ भी लोग बसते हैं, झुण्ड या समूह में बसते हैं। यथा, "एक जाति का ती चाराहरू एक बथानमा उड्छन्…।" (एक जाति के वे पक्षी एक झुण्ड में उड़ते हैं…।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 86। "सात डाँडा पार गए पनि गिद्धका बथानले सिनु पैल्याए झैं तंलाई पैल्नाउंछन् यी।" (सात पहाड़ के पार जाने पर भी गिद्ध का झुंड मुर्दा को जैसे खोज निकालते हैं, वैसे तुम्हें भी खोज लेगा यह।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 70। —(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

बार (तद्०। सं० वार:>हि० II, ने० II)

सं० 'वार:' का अर्थ होता है—ढक्कन, समूह, रुकावट, राशि, दिन (जैसे-मंगलवार), बारी, दफा, दरवाजा, महादेव, निश्चित काल, तीर। सं० को० सु० पृ० 364।

हि० 'बार' का अर्थ होता है—द्वार, आश्रय का स्थान, ठिकाना, दरबार। इनमें 'द्वार' अर्थ सं० का ही है और अन्य अर्थ इसी से विकसित जान पड़ते हैं। पहले बहुत सारे लोग राजाओं के द्वार या दरबार के आश्रित होते थे, सम्भवत: इसी भाव के कारण 'आश्रय का स्थान' या 'ठिकाना' अर्थ विकसित हुआ होगा। यथा, "जैसे ही वह बार (दरवाजा) से अन्दर गया, बम विस्फोट हो गया।"

विपरीत, ने० 'बार' का अर्थ होता है—रोक, झाड़ी, घेरा, सप्ताह का कोई दिन। एन-एन-ई-पी-1183। सं० 'रुकावट' से शुरू के तीन अर्थ और 'दिन' अर्थ से 'सप्ताह का कोई दिन' अर्थ विकसित हुए जान पड़ते हैं। झाड़ी और घेरा भी अन्दर जाने में रुकावट पैदा करते हैं, सम्भवत: इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। यथा, "औषधिमा बरखीको बार गरिन्न आमै।" (क्या दवा में साल भर के अशौच की रुकावट नहीं की माँ ?) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 293। "उघ्रेको छाता हातबाट छुटेर…सड़कको बारमा गएर अड्क्यो।" (उघड़ा हुआ छाता हाथ से छूटकर…सड़क के घेरे में जाकर अटक गया।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 34। "उच्च आकाशको शून्यतामा जहां कुनै अवरोध छैन, बार र छेकान छैन…।" (ऊँचे आकाश की शून्यता में जहाँ कोई रुकावट नहीं है, घेरा या रोक नहीं है…।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 86। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बासा (तद्०। सं० वास>हि० I, ने० II)

सं० 'वास' का अर्थ होता है—सुगन्ध, महक, ठहराव, डेरा, मकान, जगह, वस्त्र, पोशाक। एस-ई-डी-पी-504।

हि० 'बासा' का अर्थ होता है—वह स्थान जहाँ दाम देने पर पकी हुई रसोई मिलती है, निवास, निवास-स्थान, वस्त्र, पोशाक। इनमें प्रथम अर्थ नया है जो संभवत:

'डेरा' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि डेरा में लोग न केवल रहते हैं, वरन् पकी हुई रसोई का भी प्रबन्ध रखते हैं। यथा, "मुझे आज रात बासा में भोजन करना पड़ा।"

विपरीत, ने० 'बासा' का अर्थ है—बस्ता, थैली (खैनी रखने की)। ने० श० पृ० 740। चूंकि बस्ता या थैली कपड़े की बनी होती है, अतएव ये अर्थ सं० 'वस्त' अर्थ से विकसित लगते हैं। यथा, "खाइसकेपछि किताबहरू एउटा बासामा बांधी सधैंको जस्तो हरिमती स्कूल जान्थिन्।" (खाने के बाद किताबों को एक बस्ता में बाँध कर सब दिन की तरह हरिमती स्कूल जाती थी।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 15। "…कबे कामीले बासाको सूर्ती मुखमा हाल्दै भन्यो।" (कबे लोहार ने थैली की खैनी मुँह में डालते हुए कहा।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 4।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

भीत (तद्०। सं० भित्तिः >हि० I, ने० II)

सं० 'भित्तिः' का अर्थ होता है—दीवाल, चीरना, विभाजन, टुकड़ा, अंश, दरार, फाँक, चटाई। सं० को० सु० पृ० 255।

सं० 'भित्तिः' से विकसित हि० 'भीत' का अर्थ है—दीवार, विभाग करनेवाला परदा, चटाई, छत। इनमें 'छत' अर्थ नया है जो सं० 'दीवाल' अर्थ से सामीप्य-सम्बन्ध के कारण आया लगता है। शेष अर्थ सं० के ही हैं। यथा, "इस बार की बाढ़ में अनेक घरों की भीत (दीवाल या छत) गिर गई।"

विपरीत, ने० 'भीत' का अर्थ है—कपड़े का पर्दा विशेष। ने० श० पृ० 792। यह अर्थ सं० 'दीवाल' अर्थ से विकसित हुआ जान पड़ता है, क्योंकि जिस तरह दीवाल पर्दा का काम करती है, उसी तरह का ऐसा कपड़ा भी। यथा, "मैले आफ्नो कोठाको बीचमा भीत राखी दुई भाग गरें।" (मैंने अपनी कोठरी के बीच में कपड़े का पर्दा देकर दो भाग कर दिया।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मत्ता (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'मत्ता' का अर्थ होता है—शराब। सं० को० सु० पृ० 268।

हि० 'मत्ता' का अर्थ है—शराब, दस अक्षरों का एक वृत्त। इनमें प्रथम अर्थ सं० का ही है और अन्तिम अर्थ संज्ञा है। संज्ञा होने के कारण आवश्यक नहीं कि इसका सम्बन्ध सं० अर्थ से हो ही। सं० 'शराब' अर्थ से इस अर्थ का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दीखता, वैसे सम्भव है कि पहले लोग शराब पीकर इस तरह के छन्द में रचना करते हों या शराबियों को यह छन्द बहुत प्रिय हो जिससे ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। यथा, "उसने इतनी मत्ता पी है कि बेहोश पड़ा हुआ है।"

विपरीत, ने० 'मत्ता' का अर्थ है—पूरा जवान हाथी। एन-एन-ई-पी-1298। जवान हाथी भी शराबी की तरह मतवाला होकर झूमता है, सम्भव है इसी भाव के कारण सं० 'शराब' अथ से इस तरह का अर्थादेश हुआ हो। यथा, "पल्लो सडकबाट एउटा मत्ता यतै आइरहेको छ।" (सामने सड़क से एक जवान हाथी इसी ओर आ रहा है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मारना (तद्० । सं० मारणम् > हि० I, ने० I)

सं० 'मारणम्' का अर्थ होता है—मारने या वध करने की क्रिया, धातु आदि को गलाना वा जलाना, किसी की मृत्यु या विनाश हेतु किया जानेवाला जाप आदि । सं० को० सु० पृ० 285 ।

हि० 'मारना' का अर्थ है—हनन करना, प्राण लेना, दु:ख देना, कुश्ती या मल्ल-युद्ध में विपक्षी को पछाड़ देना, बन्द कर देना, फेंकना । हि० के ये सारे अर्थ सं० 'मारने या वध करने की क्रिया' अर्थ से विकसित लगते हैं । 'दु:ख देना' भी किसी को तिल-तिल कर मारना ही है, कुश्ती में पछाड़ देने से विपक्षी की प्रतिष्ठा धूल-धूसरित हो जाती है जिससे एक तरह की मौत ही उसकी हो जाती है, 'बन्द कर देना' में भी आगे के रास्ते का हनन कर देने का भाव है और मार देने के बाद मृत देह बेकार हो जाती है, अतएव उसे फेंकने का ही रिवाज है । अतएव, इन्हीं भावों के कारण ये नए अर्थ विकसित हुए होंगे । यथा, "ऐसा करके तो आप भविष्य का मुँह ही मार देंगे ।"

विपरीत, ने० 'मार्नु' का एक अर्थ 'बुझाना' भी होता है, वैसे 'मारना' या 'प्राण लेना' जैसा अर्थ भी है । ने० हि० को० पृ० 235 । बुझाने पर आग या लपट की हत्या हो जाती है, सम्भवत: इसी भाव के कारण सं० 'वध करना' अर्थ से इस नए अर्थ का विकास हुआ है । यथा, "रविले बत्ती मान्यो ।" (रवि ने रोशनी बुझा दी ।) आ० र० छ । इ० ब० रा० पृ० 148 । — (हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मोही (तद्० । सं० मोहिन् > हि० I, ने० I)

सं० 'मोहिन्' का अर्थ होता है—मोह करनेवाला, लालची । सं० को० सु० पृ० 296 ।

सं० 'मोहिन्' से विकसित हि० 'मोही' का अर्थ होता है—मोह करनेवाला, प्रेम करनेवाला, लालची, अज्ञानी । सम्भवत: लालच के कारण ज्ञान खो देने की वजह से सं० 'लालची' अर्थ से 'अज्ञानी' अर्थ का विकास हुआ होगा । अथवा यह भी सम्भव है कि मोह को भारतीय दर्शन में अज्ञान का प्रतीक मानने के कारण 'मोह करनेवाले' से 'अज्ञानी' अर्थ का विकास हुआ होगा । यथा, "उससे ब्याज छुड़वाना मुश्किल है, क्योंकि उसके समान धन का मोही (लालची) मिलना कठिन है ।"

विपरीत, ने० 'मोही' का 'लालची' या 'अज्ञानी' अर्थ नहीं होता है । हि० की तरह 'मोह करनेवाला' या 'प्रेम करनेवाला' अर्थ भी ने० में न होकर 'मोहनेवाला' अर्थ होता है । ने० श० पृ० 857 । सं० 'मोह करनेवाला' अर्थ ही परिवर्तित होकर 'मोहने-वाला' हो गया है—ऐसा प्रतीत होता है । ने० में 'मोही' का एक अर्थ 'बटाईदार' भी होता है, पर वह 'मोही' सं० 'महि' से विकसित हुआ है । यथा, "अस्तो मोही रूप हेरेर कसैको मन आफ्नो वशमा रहन सक्दैन ।" (ऐसा मोहनेवाला रूप देखकर किसी का मन अपने वश में रह नहीं सकता ।) —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

योजक (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'योजक' का अर्थ है—जोड़नेवाला । सं० को० सु० पृ० 305 ।

हि० 'योजक' का अर्थ सं० की तरह ही 'मिलाने या जोड़नेवाला' होता है। इस तरह हि० अर्थ अपरिवर्तित रह गया है। यथा, "दो लकड़ी के टुकड़े एक योजक से जुड़े होते हैं।"

विपरीत, ने० 'योजक' का अर्थ है—प्रबन्ध। एन-एन-ई-पी-1392। सं० 'जोड़ने-वाला' अर्थ से ने० के इस अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि प्रबन्ध भी संस्था के विभिन्न निकायों के बीच जोड़नेवाली कड़ी का काम करता है। यथा, "योजना सफल पार्न एक योग्य योजकको आवश्यकता पर्दछ।" (योजना को सफल करने के लिए एक योग्य प्रबन्धक की आवश्यकता होती है।) हिन्दी ने 'प्रबन्धक' अर्थ के लिए इसी 'योजक' से 'संयोजक' शब्द बना लिया है।

रद्द (वि०। अ०>हि० I, ने० II)

अ० 'रद' का अर्थ है—लौटाना, खंडन, प्रतिवाद, अस्वीकृति, झुठलाना, वार खाली कर देना। उ० हि० डि० पृ० 271।

हि० 'रद्द' का अर्थ होता है—जो काट-छाँट, तोड़ या बदल दिया गया हो, जो खराब या निकम्मा हो गया हो, कै। इनमें प्रथम अर्थ अ० 'खंडन' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि खडन में भी काट-छाँट या तोड़-बदल का भाव है। अ० 'अस्वीकृति' अर्थ से 'जो खराब या निकम्मा हो गया हो' अर्थ विकसित लगता है, क्योंकि ऐसी ही चीजों को अस्वीकृत किया जाता है। 'कै' अर्थ पर अ० 'लौटाना' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि कै में भी खाये गए भोजन को बाहर लौटा दिया जाता है। हि० 'रद्दो-बदल' में 'रद्द' का 'बदलना' या 'खंडन' अर्थ सुरक्षित है। यथा, "आज सुबह से ही उसे रद्द हो रही है।"

विपरीत, ने० 'रद्द' का अर्थ है—खारिज, निकम्मा। ने० श० पृ० 874। हि० की तरह 'काट-छाँट' या 'परिवर्तित किया हुआ' अर्थ ने० में प्रचलित नहीं है। ने० के ये अर्थ अ० 'अस्वीकृति' अर्थ से प्रभावित लगते हैं, क्योंकि 'खारिज' में अस्वीकृति का भाव है और निकम्मी चीजों को ही अस्वीकृत किया जाता है। यथा, "खालिंग बूढ़ा हामीलाई रद्द पार्छ।" (खालिंग बूढ़ा हमको निकम्मा बताता है।) मु० बा०। बां० पृ० ख। "तिम्रो प्रस्ताव सर्वसम्मतिबाट रद्द भयो।" (तुम्हारा प्रस्ताव सर्वसम्मति से खारिज हो गया।) हि० में 'निकम्मा' अर्थ अब प्रचलित नहीं है और 'खारिज' अर्थ में कहीं-कहीं प्रयोग होना शुरू हो गया है, फिर भी यह पूर्णरूपेण प्रचलन में नहीं आया है।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

रिमझिम (दे०। हि० I, ने० II)

'रिमझिम' हि० और ने०—दोनों का देशज शब्द है। हि० ने सम्भवत: 'रिम' और 'झिम' शब्द के अनुकरण से, जो प्राय: वर्षा के समय सुनाई पड़ता है, इस शब्द को ग्रहण किया है। ने० ने सम्भवत: सुन्दर और सुखद दृश्य जिसमें ऐसे 'रिम-रिम' या 'झिम-झिम' की झंकार व्याप्त हो, से इस शब्द को ग्रहण किया है।

अतएव, हि० 'रिमझिम' का अर्थ हो गया है—वर्षा की छोटी-छोटी बूंदों का लगातार गिरना। स्पष्ट है कि छोटी-छोटी बूंदों के गिरने से ऐसी ध्वनि निकलती है, शायद इसलिए इस तरह का अर्थ ग्रहण किया गया है। यथा, "आज सुबह से ही रिम-झिम वर्षा होती रही।"

विपरीत, ने० 'रिमझिम' का अर्थ है—हर्षोत्सव, सुन्दर दृश्य, तमाशा। एन-एन-ई-पी-1427। हर्षोत्सव में वाद्य-यंत्रों के बजने से या बहुत सारे लोगों के हँसने या बात करने से इस तरह की ध्वनि पैदा होती है, सम्भवत: इसलिए ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। तमाशा में भी वाद्य-यंत्रों का सहारा लिया जाता है जिससे ऐसी ध्वनि का बोध होता है, शायद इसलिए तमाशा अर्थ आया है। सुन्दर दृश्य में इस तरह की एक अव्यक्त ध्वनि होती है, या लोगों के अन्तर में इस तरह की ध्वनि गुँजित होने लगती है जिससे इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "आज मेरो घरमा छोरो जन्मेको हुनाले उत्सवको बडो रिमझिम छ।" (आज मेरे घर में पुत्र पैदा होने के कारण उत्सव का बड़ा हर्ष है।)

रोजा (वि०। फा० रोज़ा>हि० I, ने० II)

फा० 'रोज़ा' का अर्थ है—उपवास, व्रत। उ० हि० डि० पृ० 275।

हि० 'रोजा' का अर्थ फा० की तरह ही—व्रत, उपवास, मुसलमानों का व्रत—होता है। चूँकि रोजा वाला व्रत मुसलमान ही करते हैं, अतएव 'मुसलमानों का व्रत' अर्थ देकर अर्थ को अधिक स्पष्ट किया गया है, यह कोई नया अर्थ नहीं है। यथा, "मैं दिन में कुछ नहीं खाता, रोजा है।"

विपरीत, ने० 'रोजा' का अर्थ है—उत्कृष्ट, असली, चुना हुआ। एन-एन-ई-पी-1441। ऐसा लगता है कि चूँकि व्रत करना एक उत्कृष्ट चीज समझी जाती है, सम्भवत: इसलिए 'उत्कृष्ट' अर्थ आया है। 'असली और चुना हुआ' अर्थ इसी 'उत्कृष्ट' अर्थ से बाद में विकसित हुआ होगा। यथा, "यो उनको रोजा सुइटर हो।" (यह ऊन का उत्कृष्ट स्वीटर है।)

लग (तद्०। सं० लग्न>हि० I, ने० I)

सं० 'लग्न' का अर्थ है—लगा हुआ, सटा हुआ, सम्बद्ध। सं०को०सु०पृ० 324।

हि० 'लग' का अर्थ है—तक, निकट, लगन, प्रेम, वास्ते, साथ। सं० 'लगा हुआ' या 'सम्बद्ध' अर्थ से ही हि० के ये सारे अर्थ विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि इन सारे अर्थों में सम्बद्धता या नैकट्य का भाव है। यथा, "ऐसी लग (लगन) लगी है कि वह उसके बिना एक क्षण भी नहीं रह पाता।"

विपरीत, ने० 'लग' का अर्थ है—एक मनुष्य द्वारा एक दिन में समाप्त होनेवाला काम, नियत काम, अकेले का काम। एन-एन-ई-पी-1449। लगता है कि सं० 'सम्बद्ध' अर्थ से ने० के इन अर्थों का विकास हुआ है, क्योंकि एक मनुष्य से उस पूरे काम को एक दिन के लिए सम्बद्ध कर दिया जाता है। यथा, "मानिसले आफ्नो लग गर्न छाड्नु हुदैन।" (मनुष्य को अपना नियत काम छोड़ना नहीं है।) —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

लट्ठ (तद्०। सं० यष्टि:>हि० I, ने० I)

सं० 'यष्टि:' का अर्थ है—डंडा, छड़ी, डाल, टहनी, खंभा। सं० को० सु० पृ० 302।

हि० 'लट्ठ' का अर्थ होता है—बड़ी लाठी। स्पष्ट है कि सं० 'डंडा' अर्थ से यह अर्थ विकसित हुआ है, अन्तर मात्र इतना आया है कि जहाँ डंडा में सामान्य रूप से छोटी-बड़ी सभी तरह की लाठियों का भाव है, वहाँ हिन्दी 'लट्ठ' का अर्थ मात्र 'बड़ी लाठी' है। यथा, "वह एक लट्ठ लेकर मारपीट के लिए निकल गया।"

विपरीत, ने० 'लट्ठ' का अर्थ है—नशा में माता हुआ, गहरी निद्रा में डूबा हुआ। एन-एन-ई-पी-1456। ऐसा लगता है कि जिस तरह डंडे को सीधा खड़ा रहने के लिए किसी के सहारे की जरूरत होती है, उसी तरह नशे में माते हुए आदमी को भी, सम्भवत: इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। अथवा यह भी सम्भव है कि नशे में माता हुआ आदमी और गहरी निद्रा में डूबा हुआ आदमी जमीन पर डंडे की तरह ही सीधा और निस्पन्द पड़ा रहता है जिससे ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "......गाउँघर डुली-डुली जांड रक्सी खाएर लट्ठ भएर घर आउँथ्यो।" (..... गाँव-घर घूम-घूमकर शराब पीकर नशे में चूर होकर घर आता था।) मु० बा०। बां० पृ० 124। "उनके भनेका शब्द संगीत जस्तो लट्ठ पार्दै मेरो हृदयको अन्तरसम्म पुग्थे।" (उनके कहे हुए शब्द संगीत की तरह नशा करते हुए मेरे हृदय के अन्दर पहुँचते थे।) न०दा०। वि०प्र०को०पृ० 76।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

लाम (तत्स०। कश्मीरी—लाम > हि० II, ने० II)

'लाम' शब्द के मूल के सम्बन्ध में मतभेद पाया जाता है। सं० हि०श० बतलाता है कि इसे फा० 'लाम' से उत्पन्न माना जाना चाहिए, पर फा० 'लाम' का अर्थ 'लोहे की कड़ियोंवाला कवच' होता है जिससे हि० एवं ने० अर्थों का तालमेल नहीं बैठता। अतएव, इसकी उत्पत्ति कश्मीरी 'लाम' से मानना चाहिए जिसका संकेत टर्नर महोदय ने दिया है। क० 'लाम' का अर्थ होता है—'सुनिश्चित आक्रमण।' डी-एन-एल-पी-554।

हि० 'लाम' का प्रयोग—सेना, फौज या 'बहुत-से लोगों का समूह'—अर्थ में होता है। चूंकि सेना या फौज का सम्बन्ध आक्रमण से है, अतएव लक्षणा से ऐसा अर्थ ग्रहण किया गया है। सेना में बहुत से लोग रहते हैं, सम्भवत: इसलिए हि० 'सेना' से 'बहुत-से लोगों का समूह' अर्थ बाद में विकसित हुआ होगा। यथा, "अचानक कल लाम ने आक्रमण कर दिया।"

विपरीत, ने० 'लाम' का अर्थ है—पंक्ति, युद्ध का रास्ता, युद्ध। डी-एन-एल-पी-554। 'युद्ध का रास्ता' और 'युद्ध' अर्थ आक्रमण से स्पष्टत: सम्बद्ध हैं, अतएव इनका विकास क० 'सुनिश्चित आक्रमण' अर्थ से हुआ होगा। आक्रमण के समय या युद्ध में सेना पंक्तिबद्ध होकर आगे बढ़ती है, संभवत: इसलिए क० 'सुनिश्चित आक्रमण' अर्थ से ने० 'पंक्ति' अर्थ विकसित हुआ होगा। यथा, "पुरुष र महिलाहरूको लाम निकै लामो भैसकेको थियो।" (पुरुष और महिलाओं की पंक्ति अच्छी लम्बी हो गई थी।)

(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

वस्ति (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'वस्ति:' का अर्थ होता है—निवास, पड़ाव, नाभि के नीचे का भाग, पेड़ू, मूत्राशय, पिचकारी। सं० को० सु० पृ० 353।

हि० 'वस्ति' का अर्थ है—पेड़ू, मूत्राशय, पिचकारी। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, अतएव हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "आजकल मेरी वस्ति में दर्द शुरू हो गया है।"

विपरीत, ने० 'वस्ति' का अर्थ है—पेट, पेट का निचला हिस्सा, निवास, मूत्राशय। एन-एन-ई-पी-1517। ने० श० पृ० 942। इनमें 'पेट' और 'निवास' अर्थ

हिन्दी की तुलना में नए हैं। 'निवास' अर्थ सं० के समान ही है और 'पेट' अर्थ सं० 'पेड़ू' अर्थ से सामीप्य सम्बन्ध के कारण विकसित हुआ जान पड़ता है। यथा, "लौ तिमी यहिं बस, म आफ्नो वस्तिमा जान्छु।" (लो तुम यहीं बैठो, मैं अपने निवास को जाता हूँ।) "मेरो बस्तिमा दर्द छ।" (मेरे पेट में दर्द है।)

संगिनी (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'संगिनी' का अर्थ होता है—सहचरी, सखी, पत्नी, भार्या। सं० को० सु० पृ० 495।

हि० 'संगिनी' का अर्थ है—साथ रहनेवाली स्त्री, सखी, सहेली, साथ देने वाली। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० 'सहचरी' और 'सखी' अर्थ से ग्रहण किये गये हैं। यथा, "उसकी जीवन-संगिनी दगा दे गई।"

विपरीत, ने० 'संगिनी' का अर्थ—'स्त्री-साथी', 'मितिनी' तो है, साथ ही 'एक प्रकार का लोकनृत्य' भी है। एन-एन-ई-पी-1630। प्रथम दो अर्थ सं० 'सखी' अर्थ से स्पष्टतः विकसित हैं, अन्तिम अर्थ भी सं० 'सखी' अर्थ से ही विकसित जान पड़ता है, क्योंकि ऐसे नृत्य में अनेक सखियाँ मिल-जुलकर नृत्य करती हैं। यथा, "आजको संगिनी हेरेर चित प्रसन्न भयो।" (आज का लोकनृत्य देखकर मन प्रसन्न हो गया।) "किन्तु अप्रकट रूपमा त्यस बहिनीबाट विस्तारै संगिनी निस्कन्छे······।" (लेकिन अप्रकट रूप में उस बहन (के मुख) से धीरे-धीरे लोकनृत्य का गीत निकलता है।) मा० घ०। बां० पृ० ग।

सन्न (तद्०। सं० शून्य>हि० I, ने० I)

सं० 'शून्य' का अर्थ होता है—खाली, निर्जन, ऊसर, अस्थिरचित्त, अकेला, अभावयुक्त, निराकार, अविद्यमान, निरर्थक, जिसका कुछ असर न हो, चेतनारहित, नंगा, निरपराध। सं० को० सु० पृ० 478।

हि० 'सन्न' का अर्थ है—संज्ञा-शून्य, स्तब्ध, भौंचक, डर से चुप। ये सारे अर्थ सं० 'चेतनारहित' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि चेतना लुप्त हो जाने पर आदमी स्तब्ध या भौंचक रह जाता है। कभी-कभी डर से भी चेतना गायब हो जाती है और आदमी चुप हो जाता है। यथा, "उसकी बौखलाहट देखकर मैं सन्न रह गया।"

विपरीत, ने० 'सन्न' का अर्थ है—मानसिक आवेग या गुस्सा उठना। एन-एन-ई-पी-1669। चूँकि गुस्से में लोगों का चित्त अस्थिर हो जाता है, संभवतः इसलिए सं० 'अस्थिर चित्त' अर्थ से ये अर्थ विकसित हुए हैं। यथा, "कसैले पनि अर्काको कुरा सुनेर कसै माथि चाडै सन्न हुनुहुँदैन।" (किसी से भी दूसरे की बात सुनकर किसी पर तुरत क्रोधित नहीं होना चाहिए।) —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

सवारी (वि०। फा०>हि० II, ने० II)

फा० 'सवारी' का अर्थ होता है—वाहन, सवार होने की चीज। उ० हि० डि० पृ० 339।

हि० 'सवारी' का प्रयोग—किसी चीज पर विशेषतः चलने के लिए चढ़ने की क्रिया, सवार होने की वस्तु या पशु, वह व्यक्ति जो सवार हो, जुलूस—अर्थों में होता

है। इनमें 'जलूस' अर्थ को छोड़कर शेष अर्थ सं० 'वाहन' से स्पष्टतः सम्बद्ध हैं। किसी वाहन पर चढ़कर लोग कहीं जाते हैं, इसी तरह की गति का भाव 'जलूस' में भी है, अतएव इस अर्थ का विकास भी सं० 'वाहन' से ही हुआ प्रतीत होता है। यथा, "वहाँ जाने के लिए सवारी का प्रबन्ध हो गया है।"

विपरीत, ने० 'सवारी' का अर्थ है—घोड़े पर चढ़ना, बड़े व्यक्तियों का आगे बढ़ना, प्रतिष्ठा, व्यक्ति (जैसे महाराज)। डी-एन-एल-(टर्नर) पी-551। सं० 'वाहन' अर्थपरिवर्तित होकर 'घोड़े पर चढ़ना' हो गया होगा। चूंकि घोड़े पर चढ़ने के बाद आगे जाना स्वाभाविक है, अतएव 'आगे बढ़ना' अर्थ आया होगा। संभवतः घोड़े आदि का प्रयोग विशेषतः प्रतिष्ठित लोग ही करते थे जिससे 'प्रतिष्ठा' और 'व्यक्ति' (महाराज) अर्थ आ गया लगता है। ने० में प्रतिष्ठा का भाव इस तरह महत्त्वपूर्ण हो गया है कि महाराज के आगमन को 'सवारी आउनु' कहते हैं। ने० में 'सवारी नहीं हुई' का अर्थ है—महराज नहीं आये। इसका उदाहरण टर्नर ने इस प्रकार दिया है—"महाराजको सवारी किन भएन ?" (महाराज क्यों नहीं आये ?)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

सांध (तद्० । सं० संधानं>हि० I, ने० II)

सं० 'संधानं' का अर्थ होता है—जोड़, मिलावट, मित्रता, गाँठ, चित्त की स्थिरता, दिशा, अनुमोदन, शराब, घाव के भरने की क्रिया, काँसा, खोज, निशाना। सं० को० सु० पृ० 500।

हि० 'सांध' का अर्थ होता है—जिस पर संधान किया जाय, लक्ष्य। यह अर्थ सं० 'निशाना' अर्थ से स्पष्टतः विकसित है। यथा, "उनके सारे षड्यंत्र की सांध मैं ही हूँ।"

विपरीत, ने० 'सांध' का अर्थ है—सानना, सीमा। एन-एन-ई-पी-1679। सं० 'जोड़' या 'गाँठ' अर्थ से ने० का यह अर्थ आया लगता है, क्योंकि सीमा वहीं होती है जहाँ दो भिन्न प्रदेश या वस्तु जुड़ती हैं। 'सानने' में जोड़ने या मिलाने का भाव स्पष्ट है। यथा, "......तर जब यिनी कालेजको टर्मिनल जांचमा सर्वप्रथम भए, शिक्षक र छात्रहरूको आश्चर्यको सांधी रहेन ?" (......लेकिन जब यह कालेज के टर्मिनल जाँच में सर्वप्रथम आया तो शिक्षक और छात्रों के आश्चर्य की सीमा न रही।) सो०र०ज०। के० नु० पो० पृ० 39। "ल त ठूलै, सांध लौ।" (लो ठूले, सान लो।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 37।

साख (तद्० । सं० साक्ष्य>हि० I, ने० I)

सं० श० सा० के अनुसार, हि० 'साख' का विकास हि० 'साक्षी' से और हि० 'साक्षी' का विकास सं० 'साक्षिन्' से हुआ है। श्री बालचन्द्र शर्मा मानते हैं कि ने० 'साख' ने० 'खास' से वर्ण-विपर्यय के द्वारा बना है। ने० 'खास' अ० 'खास' से आया है। लेकिन, जैसा कि डॉ० बाबूराम सक्सेना का विचार है, इस शब्द को सं० 'साक्ष' से विकसित मानना ज्यादा उपयुक्त होगा।

सं० 'साक्ष' का अर्थ होता है—समर्थन, सबूत, गवाही। सं० को० सु० पृ० 548।

हि० 'साख' का प्रयोग—गवाह, प्रमाण, गवाही, धाक, रोब, मर्यादा, लेनदेन की प्रामाणिकता—अर्थ में होता है। इनमें 'गवाह' और 'गवाही' अर्थ सं० 'गवाही' अर्थ से विकसित है और इसी से 'प्रमाण' अर्थ आया लगता है, क्योंकि गवाही भी घटना की प्रामाणिकता के लिए प्रस्तुत की जाती है। 'धाक, रोब और मर्यादा' अर्थ सं० 'समर्थन' अर्थ से आये लगते हैं क्योंकि जिसका जितना समर्थन होता है, वह उतना ही धाकवाला, रोबवाला या मर्यादावाला समझा जाता है। 'लेनदेन की प्रामाणिकता' अर्थ हि० 'प्रमाण' अर्थ से ही बाद में विकसित हुआ होगा। यथा, "उसकी साख समाप्त हो गयी है।"

विपरीत, ने० 'साख' का अर्थ होता है,—विश्वासपात्र, निकट सम्बन्धी, मित्र। एन-एन-ई-पी-1712। ये सारे अर्थ सं० 'समर्थन' या 'गवाही' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि समर्थन या गवाही का काम प्राय: विश्वासपात्र, निकट सम्बन्धी या मित्र ही करते हैं। यथा, "कुनै साख साथी संग यात्रामा जानु राम्रो हुन्छ।" (किसी विश्वास-पात्र मित्र को साथ लेकर यात्रा में जाना अच्छा होता है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

स्थिति (तत्स०। सं०>हि० ॥, ने० ॥)

सं० 'स्थितिः' का अर्थ होता है—रहने का भाव, टिकाऊपन, हालत, सीधा खड़े रहने का भाव, निवास, स्थायी होने का भाव, जीवन-काल, ग्रहण-काल, पालन-पोषण, संग-साथ, ऊँचा ओहदा, कर्त्तव्यपरायणता, धर्मपरायणता, ठहरने की जगह, व्यवहार, अवरोध, मान्यता आदि। सं० को० सु० पृ० 586।

हि० 'स्थिति' का अर्थ है—एक स्थान या अवस्था में रहना, अवस्थान, दशा, हालत, रहना, ठहरना, अस्तित्व, निवास, पद, दर्जा, पालन, स्थिरता। ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, अन्तर मात्र यह हुआ है कि सं० के 'ऊँचा ओहदा' अर्थ का हि० ने सामान्य 'पद' या 'दर्जा' अर्थ कर दिया है। इस तरह, इस अर्थ में विस्तार आ गया है। यथा, "वह किसी अच्छी स्थिति (पद) पर नहीं है।"

विपरीत, ने० 'स्थिति' का एक अर्थ है—गतिरोध। वैसे 'हालत' और 'एक ही अवस्था में रहना' अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-1782। इनमें 'गतिरोध' अर्थ सं० 'अवरोध' से आया लगता है, क्योंकि दोनों में रुकावट का भाव है। हि० में यह अर्थ प्रचलित नहीं है। 'हालत' अर्थ सं० का ही है और 'एक ही अवस्था में रहना' अर्थ सं० 'रहने का भाव' या 'स्थायी होने का भाव' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि इनमें रहने का समान भाव है। यथा, "म आफ्नो नियंत्रणमा थिएन, स्थिति छुट्याउन सक्ने सामर्थ्य ममा थिएन······।") (मैं अपने नियंत्रण में नहीं था, गतिरोध समाप्त कर सकने का सामर्थ्य मुझमें नहीं था······।" शि० फू०। पा० पृ० 71।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य)

सागर (तत्स०। सं०>हि० ॥, ने० ॥)

सं० 'सागरः' का अर्थ होता है—समुद्र, सात वा चार की संख्या। सं० को० सु० पृ० 548।

हि० 'सागर' का अर्थ है—समुद्र, बड़ा तालाब, झील। चूँकि बड़े तालाब और झील में भी बहुत बड़े परिमाण में पानी रहता है, संभवतः इसलिए सं० 'समुद्र' अर्थ से

इन अर्थों का विकास हुआ होगा। यथा, "हिमालय पर्वत पर अनेकानेक सुन्दर सागर (झील) हैं।"

विपरीत, ने० में 'सागर' का एक अर्थ 'समुद्र' तो है, पर दूसरा अर्थ 'श्मशान-घाट' भी है। एन-एन-ई-पी-1713। चूँकि समुद्र में डूबकर बहुत-से लोग मौत के शिकार हो जाते हैं और समुद्र उन लोगों के लिए श्मशान की तरह हो जाता है, संभवतः इसीलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। दूसरी वजह यह भी हो सकती है कि प्रायः श्मशान-घाट समुद्र या नदी के किनारे होते हैं जिससे सामीप्य सम्बन्ध के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ होगा। यथा, "भोलि लाश लिएर हामीहरूले सागर जानु पर्छ।" (कल लाश लेकर हम लोगों को श्मशान-घाट जाना पड़ेगा।) ——(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

सानु (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'सानु' का अर्थ होता है——शिखर, पहाड़ पर की चौरस जमीन, जंगल, राह, तेज हवा, सूर्य, विद्वान् व्यक्ति, अंकुर, पल्लव, जमीन की ढाल। सं० को० सु० पृ० 550।

हि० 'सानु' का प्रयोग——पर्वत की चोटी, शिखर, अन्त, सिरा, चौरस जमीन, वन, सूर्य, विद्वान्——अर्थ में होता है। इनमें 'अन्त' या 'सिरा' अर्थ को छोड़कर शेष अर्थ सं० की तरह ही हैं। 'अन्त' या 'सिरा' अर्थ का विकास सं० 'शिखर' अर्थ से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि शिखर तक पहुँचकर पर्वत की ऊँचाई का अन्त हो जाता है और यही ऊँचाई का अन्तिम सिरा होता है। यथा, "सानु (अन्त) तक जाते-जाते वह बिल्कुल थक गया।"

विपरीत, ने० 'सानु' का अर्थ है——छोटा, शिखर, किनारा, पत्थर। ने० श० पृ० 1068। 'अंकुर' में लघुता का भाव होता है। लगता है, नेपाली ने इसी 'अंकुर' अर्थ से 'छोटा' अर्थ विकसित कर लिया है। 'शिखर' अर्थ सं० का ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसी 'शिखर' अर्थ से ने० 'किनार' अर्थ आया होगा, क्योंकि 'शिखर' भी पहाड़ का किनारा ही है। 'पत्थर' अर्थ सं० 'पहाड़ पर की चौरस जमीन' या 'शिखर' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि ऐसी जमीन या शिखर पत्थरयुक्त होता है। यथा, "संसारको बादशाह झैं खेल्दिरहेको सानु डराएका र शंकाएका आँखाले बाबुको अनुहार हेर्न थाल्यो।" (······संसार के बादशाह की तरह खेलते हुए छोटी डरी हुई और शंकालु आँख से पिता के चेहरे को देखने लगी।) न० सं० को० गी०। र० बि० पृ० 52। "मसिना कैला रौंहरूले छोपिएको सानु टाउको के निस्सार अड्किएको छ?" (महीन कैला रोआं से छाया हुआ छोटा सिर, क्या बेकार अटका हुआ है?) शि० फू०। पा० पृ० 35। ——(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

सुर (तद्०। सं० स्वरः>हि० II, ने० I)

सं० 'स्वरः' का अर्थ होता है——आवाज, व्यंजन वर्णों को छोड़कर अन्य वर्ण, साँस की हवा, खर्राटे की आवाज, सरगम। सं० को० सु० पृ० 598।

सं० 'स्वरः' से विकसित हि० 'सुर' का अर्थ है——स्वर या ध्वनि। स्पष्ट है कि सं० 'आवाज' अर्थ को ही हि० ने ग्रहण किया है। यथा, "उसके गाने का सुर ठीक नहीं है।"

विपरीत, सं० 'स्वरः' से आये ने० 'सुर' का अर्थ है——धुन, इच्छा, मुराद, होश, गाने का स्वर या ध्वनि। एन-एन-ई-पी-1756। इनमें 'धुन' और 'गाने का स्वर' या

'ध्वनि' अर्थ सं० 'सरगम' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि सरगम में गाने का स्पष्ट भाव है और इसमें प्रेम रखनेवाले लोग अपनी ही धुन में लगातार गाते ही चलते हैं। 'इच्छा' या 'मुराद' अर्थ भी इसी 'सरगम' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि इसके आशिक लोग हरदम इसे ही सुनने या सुनाने की इच्छा या मुराद रखते हैं। 'होश' अर्थ संभवतः सं० 'आवाज' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि अपने में तल्लीन रहनेवाला आदमी आवाज सुनकर ही होश में आता है। यथा, "उनीहरू आफ्नै सुरमा थिए।" (वे लोग अपनी ही धुन में थे।) मु० बा०। बां० पृ० 240। "झ्यालबाट कुदेर भाग्ने पनि सुर कस्तछिन्।" (खिड़की से कूदकर भागने के भी होश कहाँ थे।) प्र०। ग० प्या० पृ० 92। "एक सुरले दौडिरहेको ट्रकलाई···।" (लगातार दौड़ती हुई ट्रक को···।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 4।

इ : छ––सादृश्यमूलक : अर्थादेश

समान रूप या आकृति के आधार पर जो अर्थादेश होता है, उसे सादृश्यमूलक कहते हैं। कभी-कभी यह समान गुण के आधार पर भी होता है।

मनुष्य स्वभाव से अनुकरण की प्रवृत्ति पालता है। अतएव, जहाँ कहीं भी समान रूप या गुण को देखता है, एक के लिए दूसरे शब्द का प्रयोग करने लगता है। अग्नि में उत्ताप होता है और क्रोध में भी। इसलिए क्रोधपूर्ण दृष्टि को 'आग्नेय दृष्टि' कहा जाने लगा। इसी तरह खंभा मकान का आधार होता है और नेता देश का। अतएव खंभा प्रसंगवश नेता का बोध करा सकता है। इस तरह समान आकृति और समान गुण के कारण जो अर्थादेश होता है, उसे सादृश्यमूलक कहते हैं।

ब्रेआल ने माना है कि किसी वैपरीत्य अथवा सरूपता पर जोर देने के लिए भाषायें सादृश्य का सहारा लेती हैं।[1] डॉ० सरयूप्रसाद अग्रवाल मानते हैं कि अस्पष्ट भावों को स्पष्ट, सरल बनाने के लिए सादृश्य का सहारा लिया जाता है।[2]

कचौरी (तद्०। सं० कच्च+पुटिका > हि० I, ने० I)

सं० 'कच्च' का अर्थ है 'कच्चा' और 'पुटिका' का अर्थ है––पूड़ी। यानी ऐसी पूड़ी जिसमें कुछ 'कच्चा' (उरद आदि की पीठी) भरा हुआ हो।

हि० में 'कचौरी' का वही अर्थ होता है जो सं० 'कच्च+पुटिका' का, यानी–– एक प्रकार की पूड़ी जिसके भीतर उरद आदि की पीठी भरी जाती है। इस प्रकार हि० 'कचौरी' के अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है।

विपरीत, ने० 'कचौरी' का अर्थ है––कटोरी, कटोरी की शक्ल का टीका। ने० हि० को० पृ० 26। यह अर्थ सं० 'पूड़ी' अर्थ के सादृश्य के आधार पर विकसित हुआ जान पड़ता है, क्योंकि पूड़ी भी फूलकर कटोरी के आकार की ही हो जाती है। दूसरा अर्थ स्पष्टतः आकृति-साम्य को उद्घोषित करता है। यथा, "एउटा कचौरीमा भातहालेर मैले भिखारीलाई दिएँ" (एक कटोरी में भात डालकर मैंने भिखारी को दिया।) "यसले आफ्नो निधारमा कचौरी बनाएको छ।" (उसने अपने ललाट में टीका बनाया है।)

1. "Language here recourses to Analogy...... (c) To emphasise either an antithesis or similitude." ––Semantics, p. 67.

2. भाषाविज्ञान और हिन्दी, पृ० 103।

कलकल (तत्स० । सं०>हि० ।, ने० ।)

सं० 'कलकल' का अर्थ होता है—जन-समुदाय का कोलाहल । सं० को० सु० पृ० 83 ।

हि० 'कलकल' का अर्थ है—मिली-जुली आवाज, कोलाहल, झगड़ा, वाद-विवाद, झरने आदि के जल गिरने की आवाज । इनमें 'मिली-जुली आवाज' या 'कोलाहल' अर्थ सं० 'जन-समुदाय का कोलाहल' अर्थ से बिल्कुल साम्य रखता है । चूँकि झगड़ा या वाद-विवाद में भी बहुत सारे लोगों के बोलने के कारण इसी तरह की आवाज निकलती है, अतएव ये अर्थ सं० 'कोलाहल' अर्थ से विकसित हुए होंगे । झरने आदि से जल के गिरने के क्रम में ऐसी ही ध्वनि उत्पन्न होती है, अतएव सादृश्य के आधार पर यह अर्थ भी सं० अर्थ से ही विकसित लगता है । यथा, "यहाँ झरने की कलकल ध्वनि गूँजती रहती है ।"

विपरीत, ने० 'कलकल' का अर्थ है—पानी पीने या नदी बहने (की आवाज) का प्रकार । ने० हि० को० पृ० 31 । पानी पीने के क्रम में कंठ से और नदी बहने के 'सिलसिले' में जल की टकराहट से उसी तरह की ध्वनि निकलती है, जैसे अनेक लोग कोलाहल मचा रहे हों, सम्भवतः इसलिए सादृश्य के आधार पर ऐसा अर्थ-विकास हुआ जान पड़ता है । यथा, "नदीको कलकलको आवाज मीठो लाग्छ ।" (नदी की कलकल आवाज मधुर लगती है ।) "सुब्बासाहब ऐले जल खान्छ यस्तो यो कलकलबाट थाहा लाग्छ ।" (सुब्बासाहब अभी जल पी रहे हैं, ऐसा इस कलकल ध्वनि से पता चलता है ।)
—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

खाई (तद्० । सं० खातं>हि० ।, ने० ।)

कुछ विद्वान् मानते हैं कि 'खाई' का विकास सं० 'खनि' से हुआ है, पर मेरी दृष्टि से इसका विकास सं० 'खातं' से मानना चाहिए । सं० 'खनि' का अर्थ है—'खान' और 'खातं' का अर्थ है—गड़हा, खुदा हुआ । सं० को० सु० पृ० 106 । अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हि० और ने० 'खाई' का सम्बन्ध 'खातं' से ही ठीक बैठता है, 'खनि' से नहीं ।

हि० 'खाई' का अर्थ होता है—वह नहर जो किसी महल या गाँव आदि की रक्षा के लिए खोदी जाती है, खंदक । स्पष्ट है कि सं० 'गड़हा' अर्थ ही हि० में रक्षात्मक दृष्टि से खोदा गया गड़हा हो गया है । यथा, "उसने बिना समझे-बूझे खाई में छलाँग लगा दी ।"

विपरीत, ने० 'खाई' का अर्थ होता है—गड्ढा या खाड़ी । एन-एन-ई-पी-334 । चूँकि खाड़ी भी एक तरह का विशाल गुड्ढा ही है, अतएव सादृश्य के आधार पर ऐसा अर्थ-विकास हुआ है । यथा, "नेपालमां खाई र पर्वत को अजीब शृंखला छ ।" (नेपाल में गड्ढे या खाड़ी और पर्वत की अजीब शृंखला है ।) "यो खाई कस्तो गहिरो छ ।" (यह खाड़ी कितनी गहरी है ।) —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

खूँटा (तद्० । सं० क्षोडः>हि० ।, ने० खुट्टो ।)

टर्नर 'खूँटा' का विकास प्रा० 'खूंटा' से मानते हैं । नागरी प्रचारिणी सभा कोश तथा डॉ० राधाकृष्ण सहाय ने इसे सं० 'क्षोडः' से विकसित माना है । अर्थ तथा रूप की दष्टि से यह समीचीन ही लगता है ।

सं० 'क्षोड:' का अर्थ होता है—हाथी बाँधने के लिए जमीन में गड़ी लकड़ी। एस-ई-डी-पी-173।

हि० 'खूँटा' का अर्थ है—पशु बाँधने के लिए जमीन में गड़ी लकड़ी या मेख। सं० में मात्र हाथी को 'बाँधने के लिए' गड़ी हुई लकड़ी को 'क्षोड:' कहते हैं, हि० ने उसी अर्थ को विस्तृत करके सामान्य 'पशुओं को बाँधने के लिए गड़ी लकड़ी' अर्थ कर लिया है। यथा, "भैंस को खूँटे में बाँध दो।"

विपरीत, सं० 'क्षोड:' से विकसित ने० 'खुट्टो' का प्रयोग 'पैर' के लिए होता है। डी-एन-एल-पी-124 (टर्नर)। कहीं-कहीं गाय या भैंस दूहते समय बछड़े को गाय या भैंस के पैर में बाँध दिया जाता है। इसलिए सम्भवत: पहले 'खुट्टो' अर्थ गाय या भैंस का पैर हुआ होगा और बाद में सामान्य पैर। स्तम्भ और पैर में आकृति-साम्य भी है। सम्भव है, इस आकृति-साम्य के कारण इस तरह का अर्थ-विकास हुआ हो। यथा, "मेरो खुट्टामा दर्द छ।" (मेरे पैर में दर्द है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : विशेष से सामान्य)

गलथना (तद्०। सं० गलस्तन>हि० I, ने० I)

सं० 'गलस्तन' का अर्थ होता है—गले की स्तनसदृश ग्रंथी (जो बकरियों को होती है।) एस-ई-डी-पी-184।

हि० में इसका अर्थ होता है—वे थैलियाँ जो कुछ बकरियों की गर्दन के दोनों ओर लटकती हैं। स्पष्ट है कि हि० और सं० का अर्थ एक ही है। यथा, "गलथनायुक्त बकरी बूढ़ी मानी जाती है।"

विपरीत, ने० 'गलथना' का अर्थ है—घोड़े की ठोडी पर रहनेवाला साज। ने० हि० को० पृ० 60। घोड़े की ठोडी पर लटकता हुआ साज, सादृश्य के कारण, अनायास ही गले से लटकने वाली ग्रन्थी की याद दिला देता है। सम्भवत: इसी सादृश्य के कारण ने० में इस तरह का अर्थादेश हुआ है। यथा, "गलथना लगाएपछि घोडाको रूप राम्रो भइहाल्छ।" (साज लगा देने पर घोड़े का रूप सुन्दर हो जाता है।)

गांज (तद्०। सं० गंज:>हि० II, ने० I)

सं० 'गंज:' का अर्थ होता है—खजाना, अवज्ञा, गोशाला, शराबखाना, झोंपड़ी। सं० को० सु० पृ० 107।

हि० 'गांज' का अर्थ है—राशि, ढेर। चूँकि खजाना में भी द्रव्य का ढेर होता है, सम्भवत: इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "वहाँ अनाज का गांज लगा हुआ है।"

विपरीत, ने० 'गांज' का अर्थ होता है—'धान आदि का पौधा-समूह जो मुट्ठी भर के अन्दाज में एक ही जगह सटकर उगता है। ने०हि० को० पृ० 61। चूँकि इस अर्थ में भी बहुत सारे पौधे के एक जगह पैदा होने का भाव है, इसलिए सं० 'खजाना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि खजाना में भी बहुत सारे द्रव्य एक जगह जमा रहते हैं। यथा, "रंतेल्नी कान्छीको सकारात्मक उत्तरले सबैको चेहरामा आशा सलवक पलाएको देखियो, डंठलो लागेको गांजबाट बनैया कुरिलो पलाएजस्तै।" (रंतेल्नी कान्छी के स्वीकारात्मक उत्तर से सबके चेहरे में आशा सामान्य रूप से गायब होती देखी गई, डंठलवाले पौधों के समूह से जंगली बाँस-जैसे पौधों की तरह भागते हुए।) उ० हु० अ०। बि० धि० पृ० 163। —(हि० अर्थादेश : उपलक्षण)

चउर (तद्० । सं० चामरः > हि० I, ने० II)

सं० 'चामरः' का अर्थ होता है—चँवर या कभी-कभी घोड़े के सिर पर लगाये जानेवाला पताका । एस-ई-डी-पी-206 ।

हि० में 'चउर' का प्रयोग मुख्यतः ग्राम्य भाषाओं में ही 'चँवर' के अर्थ में होता है । इसके अलावा 'घोड़ा या हाथी के सिर पर लगाई जानेवाली कलँगी' या 'झालर' के लिए भी इसका प्रयोग होता है । स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० के समान ही हैं । यथा, "दिन-रात देवता को चउर बुलाने के बाद उसकी मनोकामना पूर्ण हुई ।"

विपरीत, ने० 'चउर' का अर्थ है—घासवाला मैदान या चौर । ने० हि० को० पृ० 73 । ऐसा अर्थादेश का कारण यह मालूम पड़ता है कि जिस तरह चँवर में लम्बे-लम्बे मुलायम बाल होते हैं, उसी तरह घासवाले मैदान में भी लम्बी-लम्बी मुलायम घास होती है । सम्भवतः इसी आकृति-साम्य के कारण यह अर्थ आया है । यथा, "स्कूल लाग्न अझै आधा घण्टा बाँकी थियो, त्यसो हुनाले हामी स्कूलको अगाडिको चउरमा बसेर गफ गरिरहेका थियौं ।" (स्कूल प्रारम्भ होने में अभी आधे घण्टे की देर थी, इसी वजह से हम स्कूल के आगे के घासवाले मैदान में बैठकर गप कर रहे थे ।) दो० च० । वि० प्र० को० पृ० 17 । "दुबै एक कुनाको चउरमा गएर बसे ।" (दोनों एक कोने के घासवाले मैदान में जाकर बैठे ।) बं० । ली० ब० क्ष० पृ० 30 । "नरेन्द्रले नै एकान्तको फुलकाहा चउरमा हामीलागि खेल्ने ठाउं रोजे ।" (नरेन्द्र ने ही एकान्त का फुलकाहा घासवाले मैदान में हमारे लिए खेलने की जगह चुनी ।) न० दा० । नि० प्र० को० पृ० 8 ।

चनक (तद्० । सं० चणकः > हि० I ने० I)

सं० 'चणकः' का अर्थ है—चना, मुनिभेद । सं० को० गु० पृ० 117 ।

हि० 'चनक' का अर्थ सं० की तरह ही 'चना' होता है । यथा, "थोड़े से चनक से मेरी भूख नहीं मिट सकती ।"

विपरीत, ने० 'चनक' का अथ होता है—बटेर विशेष । ने० हि० को० पृ० 74 । सम्भवतः इस तरह के बटेर की आकृति एवं रंग चने की तरह होने के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ होगा । जिस तरह चने की नाक निकली होती है और शरीर मोटा होता है, उसी तरह बटेर की भी चोंच निकली होती है और शरीर मोटा होता है । यथा, "यो वनमा थुप्रै चनक छन् ।" (इस जंगल में बहुत बटेर हैं ।)

चांचर (तद् । सं० चर्चरी > हि० I, ने० I)

सं० 'चर्चरी' का अर्थ होता है—उत्सवोल्लास, चापलूसी, घुँघराले बाल । सं० को० सु० पृ० 119 ।

हि० 'चांचर' का अर्थ है—वसन्त ऋतु में गाया जानेवाला एक राग, चर्चरी राग । चूँकि वसन्त ऋतु में उल्लास के कारण ऐसे राग अलापे जाते हैं, सम्भवतः इसलिए सं० 'उत्सवोल्लास' से इस अर्थ का विकास हुआ होगा । यथा, "आम्र-मंजरियों की सुगंध एवं चांचर की मधुर ध्वनि वातावरण को मोहक बना रही थीं ।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ है—एक प्रकार का पक्षी । ने० हि० को० पृ० 76 । चूँकि इस पक्षी के पंख घुँघराले बाल की तरह ही सुन्दर होते हैं, सम्भवतः इसी आकृति-

साम्य के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "लौ सुन, यो चांचरको स्वर, कति मीठो छ।" (लो सुनो, इस पक्षी की आवाज कितनी मीठी है।)

—(हि० अर्थ-संकोच : प्रसारात्मक

चांद (तद्० । सं० चन्द्रः>हि० ा, ने० ा)

सं० 'चन्द्रः' का अर्थ है—चन्द्रमा, कपूर, जल, हीरा, सोना। सं० को० सु० पृ० 119।

हि० में 'चाँद' का अर्थ होता है—चन्द्रमा, द्वितीया के चन्द्रमा के आकार का एक आभूषण, खोपड़ी का मध्य भाग। इनमें 'चन्द्रमा' अर्थ सं० का ही है और इसी की आकृति-साम्य के आधार पर 'आभूषण' अर्थ आया है। खोपड़ी का मध्य भाग भी चन्द्रमा की तरह चमकीला और गोल होता है, सम्भवतः इसलिए आकृति-साम्य के आधार पर ही यह अर्थ भी विकसित हुआ होगा। यथा, "वह चाँद पहनकर सखियों को दिखाने निकल गई।"

विपरीत, ने० 'चाँद' का अर्थ होता है—टोपी में लगाने का बैज। ने० हि० को० पृ० 76। चूँकि यह बैज भी चन्द्राकार होता है, अतएव आकृति-साम्य के कारण ही सं० 'चन्द्रमा' अर्थ से यह अर्थ विकसित लगता है। यथा, "चांद जडिएका टोपीहरू लगाएका सिपाहीहरूको लाम हेरिरहूं जस्तो लाग्छ।" (बैज जड़ी हुई टोपियाँ पहने सिपाही की कतार को देखते रहने की इच्छा होती है।) —(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

चाक (तद्० । सं० चक्रः>प्रा० चक्क>हि० ा, ने० ा)

सं० 'चक्रः' से प्रा० 'चक्क' और इसी से हि० और ने० 'चाक' का विकास हुआ है। सं० 'चक्रः' का अर्थ होता है—पहिया, कुम्हार का चाक, चकवा पक्षी, सेना, समूह, राष्ट्र, विष्णु का अस्त्र, भँवर, ग्राम-समूह, व्यूहभेद। सं०को०सु० पृ० 117।

हि० 'चाक' का अर्थ होता है—कुम्हार का ऐसा चक्र जिस पर वे मिट्टी रखकर बरतन बनाते हैं, पहिया, कुएँ से पानी खींचने की चर्खी, मण्डलाकार चिह्न की रेखा आदि। इनमें प्रथम दो अर्थ सं० के ही हैं, अन्य अर्थ सं० 'पहिया' अर्थ से आकृति-साम्य के कारण विकसित जान पड़ते हैं क्योंकि चर्खी भी गोल होती है और मण्डलाकार का अर्थ ही गोल है। यथा, "कुम्हार चाक पर बरतन बनाते हैं।"

विपरीत, ने० 'चाक' का अर्थ है—नितम्ब। ने० हि० को० पृ० 76। चूँकि पहिया की तरह ही नितम्ब भी गोलाकार होता है, संभवतः इसलिए सं० 'पहिया' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "ऊ बुढा भएका बाबुलाई चाक देखाएर हिड्यो।" (वह अपने वृद्ध पिता को नितम्ब दिखाकर चला गया।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

चौकस (दे० (चौ+कस)। हि० ा, ने० ा)

'चौ' का अर्थ है—'चार' और 'कस' का अर्थ है—'कसा हुआ।' इन्हीं दोनों के योग से 'चौकस' शब्द बना है। इसका शाब्दिक अर्थ हुआ—जो चारों ओर से कसा हुआ हो।

हि० में सं० का 'जो चारों ओर से कसा हुआ' अर्थ थोड़ा परिवर्तित होकर 'जो सब तरह से ठीक हो' हो गया है, यानी— सावधान, ठीक, पूरा। जो सभी ओर अपनी दृष्टि रखते हैं, उसे ही सावधान माना जाता है, सावधान व्यक्ति ही ठीक माना जाता है और 'पूरा' अर्थ में सभी तरह से भरे हुए होने का भाव है। इस तरह सं० अर्थ से ही इन अर्थों का विकास हुआ है। यथा, "तुम पर किसी भी समय प्रहार हो सकता है, हरदम चौकस रहो।"

विपरीत, ने० 'चौकस' का अर्थ है—चौखट। ने० हि० को० पृ० 83। चूंकि चौखट भी चारों ओर से कसी हुई होती है, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "तिम्रो घरका चौकस फब्ल्यांटा दुवै मजबूत छन्।" (तुम्हारे घर के चौखट और दरवाजे दोनों मजबूत हैं।) —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

छरी (तद्०। सं० शरः>हि० I, ने० II)

सं० 'शरः' से हि० 'छड़' और इससे हि० 'छरी' का विकास हुआ है। ने० 'छरी' का विकास भी सं० 'शरः' से हुआ है। इसे कुछ ने० विद्वान् नेपाली का देशज शब्द मानते हैं, पर मेरी दृष्टि में इसे 'शरः' से ही विकसित मानना चाहिए। सं० 'शरः' का अर्थ है—सरकंडा, तीर, पाँच की संख्या, मलाई, बदमाशी, चोट। सं० को० सु० पृ० 459।

हि० 'छरी' का अर्थ है—सीधी पतली लकड़ी, पतली लाठी, झंडी जिसे मुसलमान पीरों की मजार पर चढ़ाते हैं। ये सारे अर्थ सं० 'तीर' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि ये सारी चीजें तीर की तरह ही पतली और छोटी होती हैं। यथा, "उसने छरी से मार-मार कर उसकी चमड़ी उधेड़ दी।"

विपरीत, ने० 'छरी' का अर्थ है—माथे के पिछली तरफ के केश की छँटाई। ने० हि० को० पृ० 86। ने० का यह अर्थ सं० 'तीर' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि इसमें पिछले बाल को काटकर तीर की तरह नुकीला बना दिया जाता है और सिर के पीछे तीर-सी ही आकृति निकाल दी जाती है। यथा, "तिमी आफ्नो छरी किन बनाउंदैनौ ?" (तुम अपना बाल क्यों नहीं छँटाते हो ?)

(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

झरी (तद्०। सं० झरः>हि० I, ने० I)

सं० 'झरः' का अर्थ होता है—झरना। सं०को०सु० पृ० 129।

हि० 'झरी' का अर्थ होता है—झरना, चश्मा, एक कर जो सौदा बेचने वालों से लिया जाता है। इनमें 'झरना' या 'चश्मा' अर्थ तो सं० की तरह ही है, संभवतः अनेक लोगों से कर लेकर एक जगह जमा करने के भाव के कारण सं० 'झरना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है, क्योंकि झरना में भी पानी गिरकर एक जगह जमा होता रहता है। यथा, "वह झरी से पानी लाने चला गया।"

विपरीत, ने० 'झरी' का अर्थ होता है—बारिश। ने०हि०को० पृ० 101। जिस तरह झरना में पानी ऊपर से नीचे लगातार गिरता रहता है, उसी तरह बारिश में भी। संभवतः इसलिए सादृश्य के आधार पर अर्थादेश हुआ है। यथा, "…दार्जिलिंगको

वर्षा को मूसलधारे पानी झरीमा पनि यी दुवै संगै हुन्थे।" (…दार्जिलिंग की वर्षा के मूसलाधार पानी-बारिश में भी ये दोनों साथ ही होते थे।) लं०सा०। बां० पृ० 13। "अश्लील गालीहरूको झरी लगाउँदै आँगनमा उफ्रन थाल्थिन।" (अश्लील गालियों की वर्षा करते हुए आँगन में कूद रही थीं।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 138। "भदौको वर्सदो झरी उनको कोमल देहमा छिन छिनमा झरि रहन्थ्यो।" (भादों की झरती हुई वर्षा उनकी कोमल देह पर क्षण-क्षण झर रही थी।) सो०र०ज०। के०नु० पो० पृ० 213। —(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

झार (तद्० । सं० झाट:>प्रा० झाड़>हि० I, ने० II)

सं० 'झाट:' का अर्थ होता है—कुंज, वन। सं०को०सु० पृ० 129।

हि० 'झार' का अर्थ है—एकमात्र, कुल, समूह, झुंड। 'समूह' या 'झुंड' अर्थ सं० 'कुंज' या 'वन' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि कुंज या वन में भी लताओं और वृक्षों का झुंड रहता है। कुल में समूह के सारे पदार्थों के योग का भाव है, संभवतः इसलिए यह अर्थ हि० 'समूह' से बाद में विकसित हुआ लगता है। 'एकमात्र' अर्थ सं० 'वन' या 'कुंज' अर्थ से इसलिए आया होगा, चूँकि कहीं-कहीं एक ही वन या कुंज होता है। यथा, "वहाँ जंगली पौधों का झार (समूह) है।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ है—तृण या झाड़ी। ने०हि०को० पृ० 102। चूँकि कुंज या वन में घास भी होती है, संभवतः इसलिए 'तृण' अर्थ विकसित हुआ है। वैसे जिस तरह कुंज में वृक्ष-लता आदि एक-दूसरे में उलझी होती हैं, उसी तरह तृण भी एक-दूसरे में उलझे होते हैं। घासों का झुंड भी कुंज की तरह ही हो जाता है। संभव है, इसी सादृश्य के आधार पर यह अर्थ आया हो। 'झाड़ी' अर्थ सं० कुंज का ही समानार्थी है। यथा, "आँगनमा झार उम्रिएर जंगल भएको थियो।" (आँगन में घास बढ़कर जंगल हो गई थी।) गु०।बी०पी०को० पृ० 116। "गोसाईंथानको पोखरीको डीलको बैरको काँडे झारभित्र विस्तारै उ पसी…।" (देवता के थान की पोखरी की बगल की बेर की कँटीली झाड़ी में वह घुसी…।) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 34। "एक-दुई ऐंसेलूका झारहरू छन् त्यस भिरालोमा।" (एक-दो ऐंसेलू की झाड़ियाँ हैं, उस ढालुवा में।) प्र०। ग०प्या० पृ० 15। "मुन्तिरको एउटा बारीबाट नसुकेको चिसो झार जंगल पारिएको…।" (नीचे की एक बाड़ी में नहीं सूखी हुई ठंठी घास ने जंगल बना दिया था…।) आ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 156।

तुहिन (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तुहिन' का अर्थ होता है—पाला, बर्फ, कपूर, चन्द्रकिरण। सं०को०सु० पृ० 136। एस-ई-डी-पी-237।

हि० में 'तुहिन' का प्रयोग—पाला, कुहरा, हिम, तुषार, चाँदनी और शीतलता—अर्थ में होता है। चूँकि बर्फ शीतल होता है, संभवतः इसलिए 'शीतलता' अर्थ आया है। अन्य अर्थ सं० की तरह ही हैं यथा, "शरदऋतु की प्रभात वेला में चारों ओर तुहिन फैला हुआ था।" या "चन्द्रमा तुहिन की वर्षा कर रहा था।"

विपरीत, ने० 'तुहिन' का अर्थ होता है—पहाड़ी नदी पार करने के लिए गड़ारी पर लगा हुआ रस्सा। ने०हि०को० पृ० 137। इसके अलावा हि० की तरह 'बर्फ' और 'कुहरा' अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-796। ने० का यह नया अर्थ संभवत: सं० 'पाला' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि जाड़े की ऋतु में पाला भी एक छोर से दूसरे छोर तक अनेक रस्सों की तरह फैला रहता है। संभव है, इसी आकृति-साम्य के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "हामीहरूले तुहिनको मदतले नदी पार गर्‍यौं।" (हम लोगों ने रस्सी की मदद से नदी को पार किया।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

दह (तद्० । सं० ह्रद्>हि० I, ने० I)

सं० 'ह्रद्' का अर्थ है—हृदय, छाती, पेट, शरीर का अन्दरूनी हिस्सा। सं० को०सु० पृ० 619।

हि० 'दह' का अर्थ होता है—नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो, कुंड, हौज। जिस तरह हृदय शरीर के अन्दर रहता है, उसी तरह नदी के अन्दर पानी का गहरा स्थान भी; संभव है, इसी सादृश्य के कारण यह अर्थ आया हो। 'कुंड' या 'हौज' लगभग हृदय की तरह की आकृति वाला होता है, संभवत: इसलिए ऐसा अर्थ आया होगा। एक और सादृश्य यह है कि कुंड जल से भरा होता है और हृदय रक्त से। यथा, "वह नदी पार करते समय एक दह में फँस गया।"

विपरीत, ने० 'दह' का अर्थ होता है—पानी जमा होने की जगह, पोखर। एन-एन-ई-पी-850। संभवत: ये अर्थ सं० 'हृदय' अर्थ से इस सादृश्य के कारण विकसित हुए हों कि जिस तरह हृदय में रक्त रहता है, उसी तरह इन चीजों में पानी। वैसे, इन स्थलों की आकृति भी लगभग हृदय जैसी होती है। हिन्दी ने 'कुंड' या 'हौज' या 'नदी का वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो' अर्थ करके 'दह' को सीमित कर दिया है, पर ने० ने 'पानी जमा होने की कोई भी जगह' अर्थ करके अर्थ को विस्तृत आयाम दे दिया है—इस तरह हि० और ने० अर्थों में थोड़ी भिन्नता आ गई है। यथा, "एउटा कुनामा छाता थुनेर ठड्याए, त्यहीं छाताको टुप्पाबाट चुहेको पानीको दह जम्यो।" (एक कोने में छाता बन्दकर अड़का दिया, वहीं छाते की नोक से चुए हुए पानी का जमाव हो गया।) दो०च०। वि०प्र०को० पृ० 27। "ठाउं-ठाउं दह जमेर हिलो मिसिएका पानी का कुण्ड…।" (जगह-जगह पानी जमा होकर कीचड़-मिश्रित पानी का कुण्ड…। न० दा०। वि०प्र०को० पृ० 96। "वहाँ दह दुइरा छ, सानो र ठूलो।" (वहाँ पोखर दो है—छोटा और बड़ा।) अ०र०छ०। इ०ब०रा० पृ० 101।

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

दांती (तद्० । सं० दन्त:>हि० दाँत>हि० दाँती I, ने० I)

सं० 'दन्त:' का अर्थ है—दाँत। सं०को०सु० पृ० 140।

हि० 'दाँती' का अर्थ होता है—दाँतों की पंक्ति, दर्रा। इनमें 'दाँतों की पंक्ति' अर्थ स्पष्टत: 'दाँत' से विकसित है और 'दर्रा' अर्थ संभवत: दो दाँतों के बीच की दरार के सादृश्य के कारण आया होगा। यथा, "दाँती बहुत सुन्दर है।"

विपरीत, ने० 'दाँती' का अर्थ होता है---खपरैल के छाजन का किनारा, घेरे का किनारा, आरा। ने०हि०को० पृ० 148। एन-एन-ई-पी-852। खपरैल के छाजन का किनारा, घेरे का किनारा (नेपाल में प्राय: घेरे लकड़ी के बनते हैं और लकड़ी के ऊपरी सिरे को दाँत की तरह नुकीला बना दिया जाता है), दोनों में दाँत की तरह की आकृति होती है या ऐसा लगता है जैसे दाँतों की पंक्ति है। आरा में स्पष्टत: दाँत की तरह नोक बनाई हुई रहती है जिससे वह लकड़ी काटता है। इसलिए ये सारे अर्थ सं० 'दाँत' अर्थ से ही सादृश्य के आधार पर विकसित हुए होंगे। यथा, "मुनरियालाई दांती लागेका छ।" (मुनरिया को दाँत बैठने का रोग लग गया है।) न०दा०। वि०प्र०को० पृ० 48। इस प्रयोग से स्पष्ट है कि ने० में 'दाँती' का एक नया अर्थ---दाँत पर दाँत बैठने का रोग---भी चल पड़ा है। "कर्मीले दांतीले काठ चिरेको हो।" (बढ़ई ने आरे से लकड़ी फाड़ी है।)
---(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

नल (तत्स०। सं०>हि० III, ने० I)

सं० 'नल' का अर्थ होता है---नरकट, कमल, राजा विशेष, नल नामक बन्दर। एस-ई-डी-पी-281।

हि० 'नल' का अर्थ होता है नरक, कमल, राजा नल, नल नामक बन्दर। इनमें 'नरक' अर्थ को छोड़कर शेष सारे अर्थ सं० के ही हैं। राजा नल को शापवश या कलिकाल के प्रभाव से बहुत यातना झेलनी पड़ी थी। संभवत: इसीलिए सं० 'राजा विशेष' (नल) अर्थ से हि० का यह अर्थ विकसित हुआ है। धारणा है कि नरक में बहुत यातना सहनी पड़ती है। यथा, "उसे नरक की यातना भुगतनी होगी।"

विपरीत, ने० 'नल' का अर्थ है---फल, झाड़ा गया गेहूँ आदि का पौधा यानी डंठल। स्पष्ट है कि नरकट की तरह का होने के कारण ऐसा अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "वर्षादिमा गोरूहरू नलका भरगा वरछन।" (बरसात में बैल गेहूँ की डंठल या भूसी पर जिन्दा रहते हैं।)
---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

पेटी (तद्०। सं० पेटिका>हि० I, ने० I)

सं० 'पेटिका' का अर्थ होता है---छोटा बक्सा, छोटा थैला, टोकरी। एस-ई-डी-पी-348।

हि० 'पेटी' का अर्थ होता है---छोटी सन्दूक, छाती और पेड़ू के बीच का स्थान, कमर में बाँधने का चौड़ा तसमा, चपरासा, हज्जाम का बक्सा। इनमें 'छोटी सन्दूक' अर्थ सं० 'छोटा बक्सा' का ही समानार्थी है। 'हज्जाम का बक्सा' भी छोटा होता है, संभवत: इसलिए ऐसा अर्थ आया है। पेड़ू और छाती के बीच का स्थान लगभग छोटे बक्से की आकृति का होता है और जिस तरह बक्से में सामान भरते हैं, उसी तरह इसमें भी भोजन डालते हैं, संभवत: इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। 'कमर' में बाँधने का चौड़ा तसमा' या 'चपरासा' चूँकि पेट के इसी भाग पर बाँधा जाता है, इसलिए शायद सामीप्य-सम्बन्ध से यह अर्थ आया है। यथा, "उसने पैंट को पेटी से कस दिया।"

विपरीत, ने० 'पेटी' का अर्थ होता है---कमरबन्दी, घर के अगल-बगल बनाई गई ओसारे की जमीन। एन-एन-ई-पी-1067। हि० या सं० की तरह 'छोटा बक्सा' अर्थ

ने० में प्रचलित नहीं है। ये अर्थ संभवतः सं० 'छोटा बक्सा' और 'टोकरी' अर्थ से विकसित हुए होंगे। नेपाल में टोकरी को पीठ पर लेकर उसका एक फीता सिर में और दूसरा कमर में बाँधकर ढोने का रिवाज है। संभवतः इसलिए टोकरी से सम्बन्धित होने के कारण 'कमरबन्द' (बेल्ट) अर्थ आया होगा। घर की अगल-बगल की ओसारे-जैसी ऊँची जमीन की आकृति एक बक्से-सी होती है, क्योंकि यह बक्से की तरह ही चतुर्भुजाकार और ऊँची होती है। संभवतः इसी आकृति-सादृश्य के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "कृष्णे विस्तारै पसलको पेटीमा टाउको झुकाएर [illegible] जण्डमान्छेतिर आफैंआफ पुग्यो...।" (कृष्ण धीरे-धीरे दूकान के ओसारे में सिर झुकाकर सोचते हुए क्रोधी मनुष्य की ओर अपने आप पहुँच गया...।) क०सं०। गो० पृ० 77। "त्यो नयां सडकको ढोकैनेर पेटीमा बिजुली को खम्बामा अडेरा लागेर बसेको माग्नेको कण्ठबाट फुटेको संगीत थियो त्यो।" (उस नई सड़क के दरवाजे के ओसारे में बिजली के खंभे से उठंगकर बैठे हुए भिक्षुक के कंठ से निकला हुआ संगीत था वह।) न०रा०को०गी०। स०वि० पृ० 63।

—(हि० अर्थविस्तार : सादृश्य)

पोट (तत्स०। सं० > हि० I, ने० I)

सं० 'पोटः' का अर्थ होता है—घर की नींव। एस-ई-डी-पी-348।

हि० 'पोट' का अर्थ होता है—गठरी, पोटली, ढेर, अटाला। ऐसा लगता है कि घर की नींव में ईंट आदि का ढेर लगाये जाने के कारण 'ढेर' या 'अटाला' अर्थ विकसित हुआ होगा। चूँकि वस्तुओं को एक जगह बाँधकर 'पोटली' या 'गठरी' बनाई जाती है जिसमें इससे ढेर का भाव आ गया है। इसलिए यह अर्थ हि० 'ढेर' अर्थ से बाद में विकसित हुआ प्रतीत होता है। यथा, "इतनी बड़ी पोट लेकर कहाँ चले ?"

विपरीत, ने० 'पोट' का अर्थ होता है—त्रिपासा या पासा के खेल में पौ (Ace) या एक इकाई। एन-एन-ई-पी-1072। जिस तरह घर के लिए नींव महत्वपूर्ण है, उसी तरह पासा के लिए पौ भी, संभवतः इसी भाव-सादृश्य के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "त्रिपासाको खेलमा पोटको भूमिका महत्वपूर्ण हुन्छ।" (त्रिपासा के खेल में पौ की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

फली (तद्० । सं० फलं > हि० I, ने० I)

सं० 'फलं' का अर्थ होता है—वृक्षों का गूदेदार बीजकोष, फल, धार, बाण का हल्का नुकीला भाग, नतीजा, उपज, इनाम, काम, अभिप्राय। सं० हि० को० पृ० 230।

हि० 'फली' का अर्थ होता है—छोटे पौधों में लगनेवाले लम्बे और चिपटे फल जिनमें छोटे-छोटे बीज होते हैं, छीमी। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'वृक्षों का गूदेदार बीजकोष' या 'फल' अर्थ से विकसित हुआ है, लेकिन हि० ने 'छोटे पौधों में' जैसा भाव लाकर अर्थ-संकोच कर दिया है। यथा, "अभी बाजार में मटर की फली नहीं आई है।"

विपरीत, ने० 'फली' का अर्थ है—रन्दे की फली या धार। एन-एन-ई-पी-1115। स्पष्ट ही है कि यह अर्थ सं० 'धार' अर्थ से विकसित हुआ है, लेकिन ने० में यह सामान्य धार नहीं है। चूँकि 'रन्दे की फली' भी धारदार होती है, अतएव ऐसा

अर्थादेश भाव-सादृश्य के कारण हुआ होगा। यथा, "रण्डाको फलीमा समय-समयमा शान चढाउँनु पर्छ।" (रन्दे को फली में समय-समय पर शान चढ़ाना पड़ता है।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

फूली (तद्० । सं० फुल्ल > हि० I, ने० I)

सं० 'फुल्ल' का अर्थ होता है—खिला हुआ, फैला हुआ, खुला हुआ, फूल खिलना। एस-ई-डी-पी-384।

हि० 'फूली' का अर्थ है—वह सफेद दाग जो आँख की पुतली पर पड़ जाता है। ऐसा लगता है कि आँख के इस दाग में और फूल में एकरूपता होने के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। जिस तरह कोई फूल खिलता है, उसी तरह आँख की काली पुतली के बीच सफेद दाग भी धीरे-धीरे प्रकट होता है। संभवतः इसलिए ऐसा अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "उसकी आँख में फूली हो गई है।"

विपरीत, ने० 'फूली' का अर्थ है—कान या नाक में पहनने का आभूषण। ने० श० पृ० 717। चूँकि यह आभूषण आकृति में फूल की तरह होता है, संभवतः इसलिए सं० 'फूल खिलना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "सुडौल नाकमा सानो फूली र बुलाकी…।" (सुडौल नाक में छोटा फूल जैसा आभूषण और बुलाकी…।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 10। "त्यो कानको एक जोर मारवाड़ी…एक जोर फूली… पर्‍यो भने पनि परेन भने पनि त्यो हो।" (वह कान की एक जोड़ी मारवाड़ी (एक जेवर विशेष)…एक जोड़ी कान का फूल जैसा जेवर पड़ा भी तो पड़ा नहीं—ऐसा ही है।) न०रा०को०गी०। र०वि० पृ० 31। —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

बंडा (तद्० । सं० बंट: > हि० I, ने० II)

सं० 'बंट:' का अर्थ होता है—भाग, हिस्सा, बेंट, अविवाहित व्यक्ति। सं० को० सु० पृ० 335।

हि० 'बंडा' का अर्थ होता है—एक प्रकार का कच्चू या अरुई। ऐसा लगता है कि आकृति-साम्य के कारण सं० 'बेंट' अर्थ से यह अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "इस बार बंडा का भाव भी एक रुपया प्रति किलोग्राम है।"

विपरीत, ने० 'बंडा' का अर्थ होता है—अंश, भाग, हिस्सा। एन-एन-ई-पी-1155। स्पष्ट है कि ने० का यह अर्थ सं० से सीधे ग्रहण किया गया है। अतएव ने० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "हामी सबै दाजु-भाइमा अंशबंडा भइसकेको छ।" (हम सभी भाइयों में हिस्सा हो गया है।)

(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

बगर (तत्स० । सं० प्राकार: > हि० I, ने० II)

सं० 'प्राकार:' का अर्थ होता है—शहर की चहारदीवारी। सं० को० शु० पृ० 220।

हि० 'बगर' का अर्थ है—महल, घर, कमरा, आँगन, वह स्थान जहाँ गाय बाँधी जाती हो, घाटी। चूँकि महल, घर, कमरा, आँगन और गाय बाँधने का स्थान—

सभी चहारदीवारी या दीवाल से घिरा होता है, अतएव ऐसा अर्थादेश हुआ है। घाटी भी चारों ओर ऊँची-ऊँची दीवाल-जैसी पर्वत-श्रेणियों से घिरी होती हैं, अतएव लक्षणा से ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "उसका बगर (महल) देखकर स्तब्ध रह जाओगे।"

विपरीत, ने० 'बगर' का अर्थ है—नदी का किनारा। एन-एन-ई-पी-1141। चूंकि नदी का किनारा भी चहारदीवारी की तरह ऊँचा होता है, सम्भवतः इसलिए सादृश्य के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "उ त एकलै नदीको बगरमा सोमदत्त आउंछ कि भनी दिनभरि पर्खेर बसीरहंकी थिई।" (वह तो अकेले, नदी के किनारे सोमदत्त आयगा, सोचकर दिन भर प्रतीक्षा करती बैठी रही थी।) सु०। बी० पी० को० पृ० 13। "त्रिवेणीको बगर समतुल्ल छ।" (त्रिवेणी नदी का किनारा सर बराबर है।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 180। "···नदीमा विस्तृत बगरमा मेला लाग्ने ठार बनाएका रहेछन्।" (···नदी में विस्तृत मैदान में मेला लगने की ऊँची जमीन बना दी है।) मु० बा०। बा० पृ० 15। —(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

बाली (तद्०। सं० बाल:>हि० I, ने० I)

सं० 'बाल:' का अर्थ होता है—बच्चा, मूर्ख, पूँछ, केश। सं० को० सु० पृ० 237।

सं० 'बाल' से विकसित हि० 'बाली' का अर्थ होता है—जौ-गेहूँ के पौधों की बाल। जौ-गेहूँ के पौधों की बाल में भी केश की तरह लम्बे-लम्बे रेशे निकले होते हैं, संभवतः इसी सादृश्य के कारण सं० 'केश' अर्थ में यह अर्थ विकसित हुआ होगा। यथा, "इस बार गेहूँ की बाली अच्छी नहीं है।"

विपरीत, ने० 'बाली' का अर्थ है—खेत में उपजनेवाला कोई अन्न। एन-एन-ई-पी-1184। अन्न की बाली की आकृति जानवरों की पूँछ की तरह होती है, संभवतः इसलिए सं० 'पूँछ' अर्थ से ऐसा अर्थ आया होगा। यथा, "मोहीहरू कहाँ बाली उठाउन जाने काम पनि राम बहादुर नै गर्दथे।" (बटाईदार के यहाँ से अन्न लाने का काम भी रामबहादुर ही करता था।) ए०चि०। ह्०च०प्र० पृ० 65। "गांवभरिको लुगा सिएको बाली उठाउंथ्यो।" (गाँव भर के कपड़ा सीने (की मजदूरी में) का अन्न वसूलता था।" बं०ला०ब०क्ष० पृ० 7। "पोहोरपरार झैं बा बाली थन्काउन मोरंग जानुभएको थियो।" (पिछले और तीसरे साल की तरह पिताजी अन्न को ठिकाना लगाने मोरंग गये थे।) सो०र०ज०। के०नु०पो० पृ० 51।

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

लहर (तद्०। सं० लहरि: या लहरी>हि० II, ने० II)

सं० 'लहरि:' या 'लहरी' का अर्थ होता है—तरंग, लहर। सं० को० सु० पृ० 327।

हि० 'लहर' का अर्थ है—ऊँची उठती हुई जल की राशि, बड़ा हिलोरा, उमंग, जोश, मन की मौज, बेहोशी, पीड़ा आदि का वेग जो रुक-रुककर उत्पन्न हो। इनमें प्रथम दो अर्थ सं० के समान ही हैं और शेष अर्थ सं० 'तरंग' से विकसित लगते हैं। उमंग, मन की मौज, जोश और पीड़ा भी तरंग की तरह ही उठती है और समाप्त होती है, अतएव इस तरह के अर्थ विकसित हुए हैं। यथा, "उसके मन में ऐसी लहर (उमंग)

उठी कि वह रात के बारह बजे वायलिन बजाने लगा।" या "मेरे घाव में लहर (पीड़ा का झोंका) उठ रही है।"

विपरीत, ने० 'लहर' का अर्थ होता है—पंक्ति, अकारण विचार-परिवर्तन, मन का भाव। डी-एन-एल (टर्नर)। चूँकि तरंगों की कई पंक्तियाँ होती हैं, अतएव सादृश्य के कारण 'पंक्ति' अर्थ आया होगा। साथ ही, मन में विचार या भाव भी तरंग की तरह ही बनते-मिटते हैं, अतएव शेष दोनों अर्थ विकसित हुए होंगे। यथा, "…अरू तीन-चार फोटोहरूको लहरमा, दांयादेखि द्वितीयस्थानमा राखियेको।" (…और तीन-चार फोटो की पंक्ति में दायाँ से द्वितीय स्थान पर रखा था।) आ०र०छ०। इ०ब० रा० पृ० 13।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

इ : ज—सम्बद्ध : अर्थादेश

शब्द जब पहले एक विशेष तरह के भाव को व्यक्त करता है, बाद में उसी तरह के सम्बद्ध भावों को व्यक्त कर सकता है।[1] रूप अथवा क्रिया की समता के कारण इस तरह का विचित्र स्थानान्तरण हो जाता है। प्रस्तुत प्रबन्ध में इस तरह के उदाहरण सबसे अधिक आये हैं।

अकबरी (वि०। अ०>हि० II, ने० II)

यह शब्द अ० 'अकबर' में फा० 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से बना है। अ० 'अकबर' का अर्थ होता है—महान्, बहुत बड़ा, सबसे बड़ा। उ०हि०डि० पृ० 44। अतएव 'अकबरी' का अर्थ 'बड़प्पन-सम्बन्धी' होना चाहिए।

हि० 'अकबरी' का अर्थ होता है—एक मिठाई विशेष, लकड़ी पर की नक्काशी, अकबर-सम्बन्धी। अकबर हिन्दुस्तान का एक प्रसिद्ध राजा हो गया है; संभव है, उसका यह नाम राजा के बड़प्पन से युक्त होने के कारण रखा गया हो। हि० के ये सारे अर्थ इसी 'अकबर' से विकसित मालूम पड़ते हैं। संभवत: अकबर के समय में इस तरह की मिठाई और नक्काशी ज्यादा प्रचलित होगी जिससे ऐसा अर्थ-विकास हुआ होगा। 'अकबरी' का अर्थ 'अकबर-सम्बन्धी' लेना स्वाभाविक ही है। यथा, "उसने काफी खर्च करके यह अकबरी कराई है।"

विपरीत, ने० 'अकबरी' का अर्थ होता है—बढ़िया (सोना), असली। ने० हि०को० पृ० 2। संभवत: इन अर्थों का विकास अ० 'महान्' अर्थ से हुआ है। जो महान् होता है, वह किसी न किसी रूप में अच्छा भी होता है। दूसरी संभावना यह प्रतीत होती है कि शायद अकबर के समय में शुद्ध या बढ़िया सोने का सिक्का चलता हो या शुद्ध सोने का प्रचलन हो और बाद में उसमें मिलावट आ गई हो जिससे ऐसा अर्थादेश हुआ होगा। यथा, "अकबरी सुनलाई कसीलाउनु पर्दैन।" (श्रेष्ठ सोने के लिए कसौटी की जरूरत नहीं है।) "यो अकबरी सुन हो।" (यह बढ़िया सोना है।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

---

1. "Terms belonging to the sphere of one sense are often made to apply to the objects of another."

—E.H. Sturtevant—Linguistic Change, p. 91.

अख्यान (तद्० । सं० आख्यान>हि० II, ने० I)

यह शब्द सं० के 'आख्यान' का तद्भव रूप है जो प्रा० में अक्खाण था। सं० में इसका अर्थ होता है—कहना, कथन, कहानी। सं०को०मु० पृ० 44।

हि० में सं० का मूल अर्थ ही सुरक्षित है, उसमें न अर्थ-विस्तार हुआ है, न अर्थ-संकोच और न उसका अर्थादेश ही हुआ है। जैसे, "अब अख्यान बखानहुं भुवनसिंह चौहान।" रामरसिक०, पृ० 699।

विपरीत, ने० 'अख्यान' का अर्थ एकदम भिन्न हो गया है। ने० में इसका अर्थ होता है—अंदाज, अनुमान। ने० हि० को० पृ० 2। नेपाली के ये अर्थ सं० 'कहानी' अर्थ से विकसित लगते हैं। पहले कहानियाँ काल्पनिक हुआ करती थीं। लगता है, नेपाली ने इसी कल्पना-तत्त्व की प्रधानता के कारण पहले 'कल्पना' अर्थ विकसित किया होगा और बाद में, इसी से 'अनुमान' अर्थ चल पड़ा होगा। कल्पना और अनुमान—दोनों में बहुत-कुछ भाव-सादृश्य है। यथा, "तिम्रो अख्यानमा सत्य छैन।" (तुम्हारे अनुमान में सत्य नहीं है।)

अनि (तद्० । सं० अन्य>हि० I, ने० I)

यह शब्द सं० के 'अन्य' से विकसित हुआ है। प्रा० में यह 'अन्न' था जो हि० में 'अन्य' और साधारण बोलचाल या ग्राम्य भाषा में 'अनि' हो गया है। ने० में यह एक शिष्ट शब्द के रूप में प्रयुक्त होता है। ने० के एक विद्वान् ने इसे सं० 'अन्य' से विकसित न मानकर एक देशज शब्द माना है, जो मेरी दृष्टि में ठीक नहीं है। 'अनि' का सीधा सम्बन्ध 'अन्य' से दीखता है—ध्वनि और अर्थ दोनों दृष्टियों से।

सं० 'अन्य' का अर्थ होता है—दूसरा, अलग, अलावे। एस-ई-डी-पी-26।

हि० में 'अनि' का वही अर्थ प्रचलित है जो सं० 'अन्य' का। अनि 'अन्य' या 'दूसरा' के अर्थ में हि० में प्रयुक्त होता है। यथा, "इस सहर छड़ि, अनि सहर जाव।"

विपरीत, ने० में यह संयोजक शब्द के रूप में व्यवहृत होने लगा है। इसमें इसका अर्थ होता है—फिर, उसके बाद, तब। ने०हि०को० पृ० 5। ने० के इन अर्थों में सं० 'दूसरा' या 'अलावे' का भाव है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि यह तो पहली बात हुई, फिर (दूसरी बात) क्या हुआ। यानी जिस तरह प्रथम के बाद दूसरा का स्थान आता है, उसी तरह पूर्व के कथन के बाद फिर या उसके बाद की बात आती है। अतएव, ने० के ये अर्थ सं० अर्थ से सम्बद्ध दीखते हैं। यथा, "अनि एउटा गंभीर प्रश्न उसका हृदय कोटरमा आउंथ्यो।" (उसके बाद एक गंभीर प्रश्न उसके हृदय-कोटर में आता था।) लं० सा० । बां० पृ० 14।

अन्त (तत्स० सं०>हि० I, ने० I)

सं० में इसका अर्थ है—छोर, सीमा, समीप, सुन्दर, स्वरूप, स्वभाव, नाश। एस-ई-डी-पी-25।

हि० में—समाप्ति, आखिर, अन्तिम भाग, सीमा और मृत्यु—अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है। इनमें 'समाप्ति' और 'मृत्यु' अर्थ नए हैं जो सं० 'नाश' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। नाश होने पर सब कुछ समाप्त हो जाता है और मृत्यु नाश

का ही उग्रतम रूप है। संभवतः इसी भाव के कारण ऐसा अर्थ-विकास हुआ है। शेष अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "साँस रुक-रुक कर चल रही है, लगता है उसका अन्त (मृत्यु) समीप आ गया।"

विपरीत, ने० 'अन्त' का अर्थ होता है—दूसरा, अन्यत्र, कहीं। ने० हि० को० पृ० 6। ये अर्थ सं० 'छोर' अर्थ से विकसित हुए जान पड़ते हैं, क्योंकि किसी भी चीज का एक छोर एक तरफ होता है तो दूसरा छोर अन्यत्र या दूसरी तरफ। यथा, "अरूबेला अन्त चैतमा लखनथापाको जन्त।" (और समय में दूसरों की पर चैत में लखनथापा की बारात जाओ।) "अन्त कां हुन्थिन्…।" (अन्यत्र कहाँ होंगी…।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 21। "अन्त के गर्ने त? भने जनक ले।" (तो दूसरा क्या किया जाय? जनक ने कहा।) आ०र०छ०। इ०त्र०रा० पृ० 232। "…यहाँ अन्तभन्दा घेरै ग्राहक ऊ पाउंथी।" (…यहाँ अन्यत्र से अधिक ग्राहक वह पाती थी।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 163। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

अन्तर (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० में इसका अर्थ होता है—बीच में, भीतर, भेद, अवधि, दूसरा, अवकाश, अभिप्राय। एस-ई-डी-पी-26।

हि० 'अन्तर' का अर्थ होता है—बीच, भेद, फासला, छिद्र आदि। इनमें 'बीच' और 'भेद' अर्थ सं० के ही हैं। 'फासला' अर्थ सं० 'बीच में' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि फासला हरदम दो वस्तुओं के बीच में रहता है। 'छिद्र' भी चूँकि किसी न किसी चीज के बीच में होता है, संभवतः इसलिए सं० 'बीच में' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "इस जगह से बीस मील के अन्तर (फासला) पर दिल्ली है।"

विपरीत, ने० 'अन्तर' का अर्थ होता है—किनारा। ने०हि०को० पृ० 6। शायद यह अर्थ सं० 'भेद' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि किनारा धारा से या वस्तु के मध्य भाग से सदा भिन्न होता है। यथा, "अब अलि अन्तर हुंदो नलागी धरै पाइएन।" (अब थोड़ा किनार न लगे मुक्ति नहीं मिलेगी।) न०स०को०गी०। र० बि० पृ० 75। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

अपेक्षा (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० में इसका अर्थ है—आशा, आकांक्षा। एस-ई-डी-पी-35।

हि० में—इच्छा, आवश्यकता, आश्रय, भरोसा, कार्य-कारण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध—अर्थ में 'अपेक्षा' का प्रयोग होता है। इनमें 'इच्छा' अर्थ सं० 'आकांक्षा' का समानार्थी है। जिससे कुछ आशा रहती है, उसी का भरोसा किया जाता है और उसी के आश्रय में लोग जाना चाहते हैं। संभवतः इसलिए सं० 'आशा' अर्थ से 'भरोसा' और 'आश्रय' अर्थ का विकास हुआ होगा। आवश्यकता पड़ने पर किसी की मदद की आशा की जाती है, संभवतः इसलिए 'आवश्यकता' अर्थ आया होगा। 'कार्य-कारण का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध' अर्थ भी सं० 'आकांक्षा' अर्थ से ही विकसित लगता है, क्योंकि ऐसे सम्बन्ध में एक-दूसरे के प्रति निश्चित आकांक्षा रहती है। यथा, "इस काम में मुझे तुम्हारी अपेक्षा (आवश्यकता) नहीं है।"

कौर बनाना पड़ता है, सम्भवतः इसी से फा० 'पहले' अर्थ से 'कौर' अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "त्यो भिखारीले एक कबलमा सबै भात खायो।" (उस भिखारी ने एक कौर में सभी भात खा लिया।)

कहाँ (तद्० । सं० कथम्>हि० I, ने० I)

हि० और ने० 'कहाँ' के मूल के सम्बन्ध में काफी मतवैभिन्य है। टर्नर महोदय ने० 'कहाँ' की व्युत्पत्ति नहीं बतलाते और इसे रोम० 'का' जिसका अर्थ 'कहाँ' होता है, से तुलना करते हैं। इसी तरह उनकी दूसरी धारणा है कि यह सं० 'कथम्' से भी मिलता-जुलता है जिसका अर्थ—'कैसे' होता है। एस-ई-डी-पी-130। सं० हि० श० में हि० 'कहाँ' का मूल वै० 'कुह' को माना गया है, पर इसका अर्थ 'कुबेर' होता है जिससे हि० अर्थों का कोई सम्बन्ध नहीं बैठता। अतएव, मेरी दृष्टि में इसे सं० 'कथम्' से ही विकसित मानना चाहिए। डॉ० बाबूराम सक्सेना का विचार है कि सं० में अत्र, तत्र की तरह 'कत्र' शब्द के होने की सम्भावना है। हि० और ने० 'कहाँ' का विकास इसी 'कत्र' शब्द से हुआ होगा। लेकिन, 'कत्र' शब्द अनुपलब्ध है, अतएव इससे विकास नहीं दिखाया गया है।

हि० 'कहाँ' का अर्थ होता है—किस जगह ? किस स्थान पर ? हि० का यह अर्थ सं० 'कैसे' से विकसित लगता है, क्योंकि दोनों प्रश्नवाचक हैं, मात्र अन्तर यह आया है कि हि० ने सं० अर्थ को स्थानवाची कर लिया है। यथा, "तुम कहाँ जा रहे हो ?"

विपरीत, ने० में 'कहाँ' का अर्थ होता है—कैसे ? किस जगह ? डी-एन-एल-पी-81 (टर्नर)। इनमें 'किस जगह' अर्थ तो हि० के समान ही है, पर 'कैसे' अर्थ हि० से भिन्न है और सं० से सीधे ग्रहण किया गया है। इनके अलावा एक एकदम नया अर्थ विकसित हो गया है—'के घर पर' या 'के यहाँ'। बहुत सारे शब्दकोश में इस अर्थ का उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन प्रयोग में खूब प्रचलित है। इससे ऐसा भान होता है कि यह एकदम नया विकसित अर्थ है जिसे अभी कोश में स्थान नहीं मिला है। 'किस जगह' अर्थ से ही इस अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि यह अर्थ भी स्थानवाची है, पर इस नए अर्थ की प्रश्नवाचकता लुप्त हो गई है। यथा, "रवि आज आफै दशाबेल-कहाँ धन्यवाद दिन गयो।" (रवि आज स्वयं दशाबेल के घर पर धन्यवाद देने गया।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 191। —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

किन (तद्० । सं० किम्>हि० I, ने० I)

सं० 'किम्' का अर्थ होता है—प्रश्न, वितर्क, निषेध, निन्दा अर्थ में, कौन, क्या। सं० को० सु० पृ० 90।

सं० 'किम्' से विकसित हि० 'किन' का अर्थ हो गया है—चाहे, क्यों नहीं। इनमें 'क्यों नहीं' अर्थ में प्रश्न का भाव है और 'चाहे' में वितर्क का। 'क्यों नहीं' में निषेध का भी स्पष्ट भाव है। अतएव ये अर्थ सं० 'प्रश्न', 'निषेध' और 'वितर्क' से विकसित लगते हैं। इसका प्रयोग ग्राम्य भाषा में ही मुख्यतः होता है। यथा, "वहाँ अवश्य जाऊँगा, किन (चाहे) मारपीट ही हो जाय।"

विपरीत, ने० 'किन' का अर्थ होता है—क्यों ? ने० हि० को० पृ० 36। स्पष्ट है कि 'क्यों' में प्रश्नवाचकता का भाव है, अतएव इसका विकास सं० 'प्रश्न' वाले

भाव के कारण हुआ है। यथा, "सोमदत्तको अवस्था देखेर सुम्निमाले असाध्य दुःख मान्दै भनी---मलाई किन खबर गरेनौ, सोमदत्त ?" (सोमदत्त की हालत देखकर सुम्निमा अत्यधिक दुःख मानती हुई बोली---मुझे क्यों खबर नहीं की, सोमदत्त ?) सु०। बी० पी० को० पृ० 118।
---(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

किनारा (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

फा० 'किनारा' का अर्थ होता है---तट, कूल, पार, छोर, पृथकता, अंत, आखिर। उ० हि० डि० पृ० 476।

हि० 'किनारा' का अर्थ है---लम्बाई के बल का कोर, नदी या जलाशय का तट, प्रान्त, भाग, बगल। इनमें प्रथम दो अर्थ फा० की तरह ही हैं, 'प्रान्त' अर्थ सम्भवतः फा० 'छोर' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि दोनों में स्थल के किसी भाग का भाव है। 'भाग' में अलग होने का भाव है, अतएव यह फा० 'पृथकता' अर्थ से आया होगा। चूँकि 'तट' नदी की बगल में होता है, अतएव फा० 'तट' अर्थ से 'बगल' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "जरा किनारा लग जाओ।"

विपरीत, ने० 'किनारा' का एक अर्थ है---निर्णय। इसके अलावा 'तीर' और 'बगल' अर्थ भी प्रचलित हैं। एन-एन-ई-पी-252। 'निर्णय' अर्थ एकदम नया विकसित हुआ जान पड़ता है। इस अर्थ का विकास फा० 'अन्त' अर्थ से हुआ होगा, क्योंकि निर्णय हो जाने के बाद मामले का अन्त हो जाता है। यथा, "पंचहरूले तिम्रो मुद्दाको किनारा लगाउने छन्।" (पंचों ने तुम्हारे विवाद (मुकदमा) का निर्णय कर दिया है।)
---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

कोरी (तद्०। सं० कोटिः>हि० I, ने० I)

सं० 'कोटिः' का अर्थ होता है---धनुष का अग्रभाग, नोंक, करोड़, आधिक्य, श्रेणी, राज्य, विवादग्रस्त प्रश्न का पूर्व पक्ष। सं० को० सु० पृ० 99।

सं० 'कोटिः' से विकसित हि० 'कोरी' का अर्थ होता है---करोड़ या अनेक। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० के ही हैं। हि० ने 'आधिक्य' अर्थ को 'अनेक' अर्थ के रूप में ग्रहण किया है। यथा, "आकाश में कोरी तारे उग आए।"

विपरीत, ने० 'कोरी' का अर्थ होता है---एक बीस, या कोड़ी, दस जिस्ते कागज का बंडल। एन-एन-ई-पी-293। ने० हि० को० पृ० 44। इनमें 'दस जिस्ते कागज का बंडल' और 'एक बीस' अर्थ संख्यावाची होने के कारण सं० 'करोड़' अर्थ से विकसित हुए होंगे। यथा, "तीन कोरी उमेर पुगेको धर्मप्रसाद ज्यूगतिला खाइलाग्दा बूढा हुनुहुन्छ।" (तीन बीस, अर्थात् साठ वर्ष की उम्र पर पहुँचे हुए धर्मप्रसाद जी बलिष्ठ बूढ़ा हैं।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 51।

खत (तद्०। सं० क्षत>हि० I, ने० I)

सं० 'क्षत' का अर्थ है---घाव, नाश। सं० को० सु० पृ० 102।

हि० में इसका अर्थ संस्कृतवत् ही है---घाव, जख्म। हि० में 'नाश' अर्थ का लोप हो गया है। यथा, "उसकी देह में अनेक खत हैं।"

विपरीत, ने० 'खत' का अर्थ हो गया है—फोड़े (घाव) आदि का निशान, कसूर (अदालती)। ने० हि० को० पृ० 47। सं० 'घाव' अर्थ से ने० में 'घाव का निशान' अर्थ विकसित हुआ है, यह स्पष्ट है। अदालत की निगाह में किया गया कसूर दण्डनीय होता है, अतएव वह घाव की तरह ही पीड़ादायक होता है। सम्भवत: इसी भाव के कारण सं० 'घाव' अर्थ से ने० का 'कसूर' अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "उसको निधारमा एउटा खत छ।" (उसके ललाट में एक घाव का निशान है।) "मेरो के खत थियो र यस किसिमको दण्ड भोग्नु पर्‌यो ?" (मेरा क्या कसूर था जो इस तरह का दण्ड भोगना पड़ा ?)

खार (तद्० । सं० क्षार>हि० I, ने० II)

सं० 'क्षार' का अर्थ होता है—अम्ल, क्षय करनेवाला, जलानेवाला या काटनेवाला पदार्थ, तीखा आदि। एस-ई-डी-पी-171।

हि० 'खार' का अर्थ होता है—सज्जी, लोना, धूल, राख, एक पौधा जिससे खार निकलता है। चूँकि 'सज्जी, लोना और राख', मैल, ईंट या कपड़ा को काटनेवाला होता है, अतएव सं० 'काटनेवाला पदार्थ' अर्थ से हि० के इन अर्थों का विकास हुआ जान पड़ता है। 'धूल' अर्थ सम्भवत: हि० 'सज्जी' या 'राख' अर्थ से रूप-साम्य के कारण बाद में विकसित हुआ होगा। इसी तरह 'वह पौधा जिससे खार निकलता है, अर्थ हि० 'खार' से संबद्ध होने के कारण विकसित हुआ लगता है। यथा, "वह खार से कपड़ा साफ करता है।"

विपरीत, ने० 'खार' का अर्थ होता है—मिर्च आदि जलाने की गन्ध। ने० हि० को० पृ० 51। सम्भवत: यह अर्थ सं० 'तीखा' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि इस तरह की गन्ध बहुत तीखी होती है। यथा, "भान्छाघरमा खारको कारणले म जान्न सक्तिन।" (रसोईघर में मिर्च आदि जलाने की गन्ध के कारण मैं नहीं जा सकता।)

—[हि० अर्थ-संकोच : सामान्य (पर) से विशेष (अपर)]

खास (वि० । अ०>हि० I, ने० I)

अ० 'ख़ास' का अर्थ होता है—केवल, चुना हुआ, प्रधान, निजी, प्यारा। उ० हि० डि० पृ० 198-99।

हि० 'खास' का प्रयोग—विशेष, मुख्य, प्रधान, ठीक, निज का, आत्मीय—अर्थों में होता है। ये सारे अर्थ लगभग अ० के ही हैं। हि० ने अ० 'चुना हुआ' अर्थ से 'विशेष' और 'ठीक' अर्थ विकसित कर लिया है, क्योंकि विशिष्ट व्यक्ति या पदार्थ अवश्य ही चुना हुआ होता है और जो चुना हुआ होता है, वह प्राय: ठीक होता है। 'निजी' और 'आत्मीय' अर्थ लगभग समान हैं। यथा, "इस जलसे में खास-खास लोग आए थे।"

विपरीत, ने० 'खास' का अर्थ है—वास्तविक, यथार्थ, व्यक्तिगत। एन-एन-ई-पी-339। इनमें 'व्यक्तिगत' अर्थ अ० 'निजी' के समान है। 'वास्तविक' या 'यथार्थ' अर्थ सम्भवत: अ० 'चुना हुआ' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि वास्तविक या यथार्थ पदार्थ ही प्राय: चुने जाते हैं। यथा, "हामीले खास तिर्नु छ र कबूल पनि गरिसकेका छौं......।" (मुझे व्यक्तिगत रूप से देना है और इसे स्वीकार भी कर चुका हूँ......।) ए० ०। हृ० च० प्र० पृ० 83। "कहिले केटाहरू खासगरी घरैका हली, सुसारेहरू भेला

गरेर, उ रातीगाउं घरमा कसैको खोरबाट खसी चोर्थ्यो…।" (कभी लड़कों को, यथार्थ रूप के घर से ही हलवाहों और सेवकों को जमा करके, वह रात में गाँव-घर में किसी के पशुघर से खस्सी चुराता था……।) बं० । ली० ब० क्षे० पृ० 51 ।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

खेवा (तद्० । सं० क्षेप: > हि० ा, ने० ा)

सं० 'क्षेप:' से हि० 'खेना' क्रिया का विकास हुआ है, बाद में इसी 'खेना' से हि० 'खेवा' विकसित हुआ है। ने० 'खेवा' भी सं० 'क्षेप:' से ही विकसित हुआ है। सं० 'क्षेप:' का अर्थ होता है—फेंकना, भेजना, निर्देशित करना, घूमना-फिरना, समय काटना। एस-ई-डी-पी-173।

हि० 'खेवा' का अर्थ है—नाव का किराया, नाव द्वारा नदी पार करने का काम, समय, बोझ से भरी नाव। इनमें 'नाव द्वारा नदी पार करने का काम' अर्थ सम्भवत: सं० 'भेजना' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि इसमें इस पार से उस पार भेजने का भाव है। 'नाव का किराया' और 'बोझ से भरी नाव' अर्थ नाव से सम्बद्ध होने के कारण इसी हि० अर्थ से विकसित हुआ जान पड़ते हैं। 'समय' और 'बार' अर्थ सं० 'समय काटना' अर्थ से विकसित हैं, क्योंकि दोनों में समय का भाव है। यथा, "खेवा के रूप में कुछ तो देना ही होगा—चाहे अन्न दो या पैसा दो।"

विपरीत, ने० 'खेवा' का अर्थ होता है—उद्योग, लगान-रहित, एक प्रकार की जमीन, उतराई। ने० हि० को० पृ० 54। इनमें 'उतराई' अर्थ हि० की तरह ही है और उसी तरह सं० 'भेजना' से विकसित भी। लगान-रहित जमीन प्राय: निम्नकोटि की होती है और निम्नकोटि की चीजों को ही लोग फेंक देते हैं, सम्भवत: इसी भाव के कारण सं० 'फेंकना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। ने० 'उद्योग' अर्थ सं० 'समय काटना' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि समय काटने के लिए कोई न कोई उद्योग करना पड़ता है। यह सम्भव है कि नाव का काम करना ही कुछ लोगों का उद्योग होने के कारण ने० 'उतराई' अर्थ से इस अर्थ का विकास बाद में हुआ हो। यथा, "यो खेवा नै मेरो जीविकाको साधन हो।" (यह लगान-रहित जमीन ही मेरी जीविका का साधन है।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

गट्टा (तद्० । सं० ग्रन्थ् > हि० ा: ने० ा)

सं० 'ग्रन्थ' से प्रा० 'गंठ' और इससे हि० 'गांठ' का विकास हुआ है। हि० 'गट्टा' बाद में इसी 'गांठ' से विकसित हुआ है। ने० 'गट्टा' भी इसी 'ग्रन्थ' से विकसित हुआ है। सं० 'ग्रंथ' का अर्थ होता है—गूँथना, बाँधना। सं० को० सु० पृ० 114।

हि० 'गट्टा' का अर्थ है—हथेली और पहुँचे के बीच का जोड़, पैर की नली और तलुए के बीच की गाँठ, गाँठ, बीज, एक प्रकार की मिठाई। इनमें प्रथम तीन अर्थ सं० 'बाँधना' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि इन सबमें बँधने का भाव है। बीज के अन्दर वृक्ष का पौधा छुपा रहता है, इसे आलंकारिक भाषा में यह भी कहा जा सकता है कि बीज वृक्ष या पौधे को अपने अन्दर बाँधे रहता है। सम्भव है, इसलिए सं० 'बाँधना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। 'मिठाई' अर्थ भी इसी 'बाँधना' अर्थ से आया होगा, क्योंकि इसमें भी अनेक चीजों को मिलाकर एकसाथ बाँध दिया जाता है। यथा, "उसने भरे बाजार में मेरा गट्टा पकड़ लिया।"

विपरीत, ने० 'गट्टा' का अर्थ है—खेलने का कंकड़, गोल वस्तु। ने० हि० को० पृ० 58। ने० श० पृ० 239। सम्भवत: गोल वस्तु या कंकड़ जिससे खेला जाता

है, वह फेंके जाने के बाद दूसरी वस्तु का स्पर्श करता है या उससे एक तरह से बँध जाता है। सम्भव है, इसी भाव के कारण सं० 'बाँधना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "नानीहरूले गट्टा खेल्नका लागि पाँच ओटा ढुंगाहरू ल्याए।" (बच्चियाँ कंकड़ का खेल खेलने के लिए पाँच पत्थर ले आईं)।

(हि० अर्थादेश : समाहरण)

गांठी (तद्० । सं० ग्रन्थिः >हि० I, ने० II)

सं० 'ग्रन्थिः' का अर्थ होता है— गाँठ, गिल्टी। सं० को० सु० पृ० 114।

हि० में 'गाँठी' का अर्थ है—गाँठ, गिरह। स्पष्ट है कि ये दोनों अर्थ सं० 'गाँठ' अर्थ के समान ही हैं, अतएव हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "रस्सी की गाँठी खुल ही नहीं रही है।"

विपरीत, ने० 'गाँठी' का अर्थ होता है—युक्ति, किल्ली, खूबी, पूँजी साथ कद। ने० हि० को० पृ० 61। चूँकि गाँठ को युक्ति से खोलना पड़ता है, सम्भवत इसलिए 'युक्ति' या 'खूबी' अर्थ आया है। किल्ली की आकृति गाँठ की तरह होती है शायद इसलिए 'किल्ली' अर्थ आया है। पूँजी को गाँठ में बाँधकर रखा जाता है, इस भाव के कारण 'पूँजी साथ' अर्थ आया लगता है। कद शरीर की गाँठों पर निर्भर करता है, इसलिए 'कद' अर्थ विकसित हुआ लगता है। यथा, "यसको समाधानको निमित्त त कुनै गांठी हेर्नु पर्नेछ।" (इसके समाधान के लिए तो कोई युक्ति खोजनी पड़ेगी।) "तिम्रो गांठी त्यति लामो छैन।" (तुम्हारी कद उतनी ऊँची नहीं है।)

चंगा (तद्० । सं० चंग >हि० I, ने० I)

सं० 'चंग' का अर्थ होता है— सुन्दर, लायक, स्वस्थ, मजबूत। पी-एस-ई-पी-पी-425।

हि० 'चङ्गा' का अर्थ है— स्वस्थ, अच्छा, भला। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० स्वस्थ और सुन्दर अर्थ के समान ही हैं। यथा, "कल से वह बिल्कुल चङ्गा हो गया है।" हि० 'भला-चङ्गा' का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता है।

विपरीत, ने० 'चङ्गा' का अर्थ है— पतंग। ने० हि० को० पृ० 73। चूँकि पतंग देखने में सुन्दर होती है, शायद इसलिए सं० 'सुन्दर' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "आफ्ना चङ्गा-लट्टाई लिएर कार्तिक-मंसिरताक बांधतिर जान्थे...।" (अपनी पतंग और लटई लेकर कार्तिक-अगहन महीने तक बाँध की ओर जाते थे...।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 11। "ल हेर, मैले चंगा उड़ाएको, हेर...।" (लो चलो, मैंने पतंग उड़ाई है, देखो...।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 1।

चतुर्थी (तत्स० । सं० >हि० II, ने० II)

सं० 'चतुर्थी' का अर्थ होता है— चौथ, चतुर्थी विभक्ति। सं० को० सु० पृ० 118।

हि० 'चतुर्थी' का अर्थ है—किसी पक्ष की चौथी तिथि, वह गङ्गा-पूजन आदि कर्म जो विवाह के चौथे दिन होता है। इनमें प्रथम अर्थ सं० 'चौथ' के समान ही है और दूसरा अर्थ भी इसी से विकसित है, क्योंकि इसमें भी चौथे दिन का भाव है। यथा, "चतुर्थी के बाद कन्या की विदाई हो गई।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ है—व्रत का उद्यापन । ने० हि० को० पृ० 74। कुछ व्रतों का उद्यापन चौथे दिन किया जाता है, सम्भव है, इसीलिए सं० 'चौथ' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। विवाह में वर-वधू तीन दिनों तक व्रत में रहते हैं और चौथे दिन इसका अन्त होता है। सम्भव है, इसी भाव के कारण यह अर्थादेश हुआ हो। यथा, "आज मलाई विवाहको प्रतिबन्ध छैन किनकि हिजो नै चतुर्थी भयो।" (आज मुझे विवाह का प्रतिबन्ध नहीं है, क्योंकि कल ही उद्यापन हो गया।) "बहिनीले तीजको व्रत सकिन, उनको आज चतुर्थी भयो।" (बहन ने तीज का व्रत समाप्त कर दिया, उसका आज उद्यापन हो गया।) —(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

चाँप (तद्० । सं० √चंप् < हि० I, ने० I)

सं० 'चंप्' धातु का अर्थ होता है—जाना। एस-ई-डी-पी-205।

हि० 'चाँप' का अर्थ है—चंप या दब जाने का भाव, रेलपेल, किसी बलवान की प्रेरणा, बन्दूक का वह पुरजा जिसके द्वारा कुंदे से नली जुड़ी रहती है। जाने के क्रम में किसी के चंप जाने का भय रहता है, सम्भव है, इसीलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। 'रेलपेल' में बहुत सारे लोगों के इधर-जाने का भाव है, सम्भव है, इसलिए ऐसा अर्थ आया हो। किसी बलवान की प्रेरणा अव्यक्त रूप से आदमी को किसी काम की ओर गतिशील करती है, सम्भवतः इसी गति या जाने के भाव के कारण ऐसा अर्थादेश हुआ हो। कुंदे और नली के बीच रहने वाला पुरजा बन्दूक की गोली को आगे जाने का मार्ग भी देता है, शायद इसलिए यह अर्थ आया होगा। इस अर्थ के पीछे यह भी कारण हो सकता है कि चूँकि यह पुरजा बन्दूक के दो भागों को दबाव डालकर जोड़ता है, सम्भव है, इसी भाव के कारण हि० 'दब जाने का भाव' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "ऐसी चाँप पड़ी कि उसे यह काम न चाहकर भी करना पड़ा।"

विपरीत, ने० 'चाँप' का अर्थ है—घुँघरू, एक तरह का फूल। एन-एन-ई-पी-523। ने० हि० को० पृ० 76। जाना पैर से सम्भव होता है और घुँघरू भी पैर में ही पहना जाता है। सम्भवतः इसी समानता के कारण सं० 'जाना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। 'चंपा फूल' अर्थ ने० 'घुँघरू' अर्थ से रूप-साम्य के कारण विकसित हुआ लगता है। यथा, "मैले के देखें भने-जून लागेको उज्यालोमा चाँपको फूलका पत्र-हरू झरेर आँगनभरि र घरको छानाभरि सेतै-सेतै-सेतै भएको रहेछ।" (मैंने क्या देखा कि चाँदनी के प्रकाश में चम्पा फूल के पत्ते ने गिरकर पूरा आँगन और घर की छत को सफेद-सफेद-सफेद कर दिया है।) आर० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 257। "यो घरबाट चाँपको मधुर स्वर आउँछ।" (इस घर से घुँघरू की मधुर आवाज आती है।)
—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

चिट्ठा (तद्० । हि० चिट > हि० I, ने० I)

हि० 'चिट' से हि० एवं ने० 'चिट्ठा' का विकास हुआ है। वैसे सं० 'चिट' जिसका अर्थ 'भेजना' (सं० को० सु० पृ० 121) होता है, से भी हि० 'चिट' का सम्बन्ध बैठाया जा सकता है। हि० 'चिट' का अर्थ होता है—पुरजा, छोटा पत्र, कागज कपड़े आदि के टुकड़े। पुरजे, पत्र, कागज-कपड़े आदि के टुकड़े प्रायः दूसरे को संदेश पहुँचाने के लिए भेजे जाते हैं। सम्भव है, इसलिए सं० 'चिट' अर्थ से हि० 'चिट'

का विकास हुआ हो। लेकिन, बाद में हि० और ने० 'चिट्ठा' ने जिन अर्थों को ग्रहण किया, उनका सम्बन्ध सं० 'चिट' के अर्थ से नहीं बैठता। अतएव, मैंने इसे हि० 'चिट' से विकसित माना है।

हि० 'चिट्ठा' का अर्थ होता है—हिसाब की बही, वह कागज जिस पर वर्ष भर का हिसाब जाँचकर नफा-नुकसान दिखाया जाता है, सूची, खर्च की फिहरिस्त आदि। इन सारे अर्थों का सम्बन्ध कागज से है, क्योंकि हिसाब-किताब या हानि-लाभ वगैरह कागज पर ही तैयार किया जाता है। सम्भवतः इसीलिए ये सारे अर्थ हि० 'पुरजा' या 'कागज का टुकड़ा' अर्थ से विकसित हुए होंगे। यथा, "उसका चिट्ठा देखने से मालूम हुआ कि उसका व्यापार घाटे में चल रहा है।"

विपरीत, ने० 'चिट्ठा' का अर्थ है—भाग्य-परीक्षा या लाटरी। ने० हि० को० पृ० 78। चूँकि भाग्य-परीक्षा एक कागज के पुरजे (टिकट) पर निर्भर करती है, सम्भवतः इसलिए हि० 'पुरजा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "यत्रो लामो लतफत पछि सन्तुष्ट भएर होला उसको अनुहार मुसुमुसु हाँसी रहेको थियो—कुनै युद्ध, खेल, जुवा अथवा चिट्ठामा सफल हुन सकेको व्यक्ति झैं।" (इतनी लम्बी बकवास के बाद सन्तुष्ट होकर उसका चेहरा मन्द-मन्द हँस रहा था—किसी युद्ध, खेल, जुआ या लाटरी में सफल हुए व्यक्ति के समान।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 166।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

छाँद (तद्०। सं० छंद्>हि० ा, ने० ा)

सं० 'छंद्' का अर्थ होता है—प्रसन्न करना, भगाना, ढाँकना, बन्धन, प्रसन्न होना। एम-ई-डी-पी-212।

हि० 'छाँद' का अर्थ है—चौपायों के पैर बाँधने की रस्सी, लाँई। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'बन्धन' अर्थ से विकसित हुआ है। यथा, "घोड़े की छाँद खोल दो।"

विपरीत, ने० 'छाँद' का अर्थ है—पैर पकड़कर रोना, पैर का बन्धन। ने० हि० को० पृ० 86। 'पैर पकड़कर रोना' अर्थ में पैर को हाथों से बाँध लेने का भाव है। सम्भवतः इसी भाव के कारण सं० 'बाँधना' अर्थ से नेपाली के इस अर्थ का विकास हुआ है। दूसरे अर्थ में, बन्धन का स्पष्ट भाव है। यथा, "...उनको खुट्टामा छांद हाल्न आई पुगी।" (...उसके पैर पकड़कर रोने के लिए आ पहुँची।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 112। "निराशा र दु:खले उ द्रवीभूत भएर आमाको गोडामा छांद हालेर बालक जस्तो रुन थाल्यो।" (निराशा और दुःख में द्रवीभूत होकर माँ का पैर पकड़ कर बच्चे की तरह रोने लगा।) मु० बा०। बां० पृ० 187। "लछमिनियाँले गायको खुट्टाको छांद एकै झट्काले फुकाल्यो।" (लछमिनिया ने गाय के पैर का बन्धन एक ही झटके में खोल दिया।) न० दा०। त्रि० प्र० को० पृ० 43।

—(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

छापा (तद्०। सं० √चप्>हि० ा, ने० ा)

सं० 'चप्' धातु से हि० 'छाप' और इससे हिन्दी 'छापा' का विकास हुआ है। ने० 'छापा' का विकास भी सं० 'चप्' धातु से ही हुआ है। सं० 'चप्' का अर्थ होता है—पीसना, सान्त्वना देना, गूँथना, सानना। एस-ई-डी-पी-203।

हि० 'छापा' का अर्थ है—ठप्पा, मुहर, मुद्रा, दुश्मन का अचानक हमला, रात में सोते बेखबर लोगों पर अचानक आक्रमण, पुलिस द्वारा किया गया हमला। इन सारे अर्थों पर सं० 'पीसना' अर्थ का प्रभाव मालूम पड़ता है, क्योंकि पीसने में टुकड़ा-टुकड़ा होने और दबाव डालने का भाव है। ठप्पा, मुहर, मुद्रा—सभी किसी धातु या रबर को काट-छाँटकर और दबाकर बनाये जाते हैं। हमला में लोगों को मारने-काटने का भाव है जो टुकड़ा-टुकड़ा करने के भाव का समानार्थी है। यथा, "आज डाकुओं के घरों पर छापा मारा गया।"

विपरीत, ने० 'छापा' का अर्थ होता है—अखबार, चित्र। ने० हि० को० पृ० 87। अखबार में समाचारादि भरे या गूँथे होते हैं और चित्र में अनेक तरह के रङ्ग या भावादि। सम्भव है, सं० 'गूँथना' अर्थ को इस संदर्भ में लेकर ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "अनि त गोर्खैभर हैन, छापामा पिटिएपछि नेपालैभर नेपालबहादुर दानी भनेर उसको नाम चल्नेछ।" (फिर तो गोरखाओं तक ही नहीं, अखबार में छपने के बाद नेपाल भर में नेपालबहादुर दानी कहकर उसका नाम चलेगा।) उ० हु० अ०। वि० धि० पृ० 207। —(हि० अर्थादेश : समाहरण)

जीउ (तद्० । सं० जीवः > हि० I, ने० II)

सं० 'जीवः' का अर्थ होता है—प्राण, प्राणी, जीविका। सं० को० सु० पृ० 127।

हि० 'जीउ' का अर्थ होता है—प्राणियों का चेतन तत्त्व, आत्मा, जीवात्मा, प्राण, जीवधारी। इनमें अन्तिम अर्थ सं० 'प्राणी' अर्थ के और शेष अर्थ सं० 'प्राण' अर्थ के समान हैं। यथा, "जब तक शरीर में जीउ है, तब तक तो इसकी रक्षा करनी ही होगी।"

विपरीत, ने० 'जीउ' का अर्थ है—शरीर। ने० हि० को० पृ० 96। ने० का यह अर्थ सं० 'प्राणी' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि सभी प्राणी सशरीरी हुआ करते हैं। यथा, "तिम्रो जीउमा त कतै शर लागेको छैन, अनि कसरी शिकार भयो ?" (तुम्हारे शरीर में तो कहीं वाण नहीं लगा है, फिर कैसे शिकार हुए ?) प्र०। ग० प्या० पृ० 13। "ज्यादा कामैकाम गरिरहेपछि जीउ कहां ठीक हुन्छ।" (ज्यादा काम ही काम करते रहने पर शरीर कहाँ ठीक होगा।) फे० क० भे० हो०। यु० था० पृ० 82। "रातभरिको अनिंदोले तर म त निदाएंछु रेलमा—जीउ दुखेको छ।" (रात भर के जागरण के कारण मैं तो रेल में सो गया—शरीर दुख गया है।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 42। "लोहाको जीव छ कि क्या हो ?" (लोहे का शरीर है कि क्या है ?) ब० ली० ब० क्ष० पृ० 24। "अर्काको जीउमा हात न हाल।" (दूसरे के शरीर में हाथ न लगाओ।) दु०। श० को० पृ० 16।

ज्या (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'ज्या' का अर्थ होता है—धनुष की डोरी, माता। सं० को० सु० पृ० 128।

हि० 'ज्या' का अर्थ—धनुष की डोरी, चाप के किन्हीं दो बिन्दुओं को मिलाने वाली सीधी रेखा (गणित में प्रयुक्त), पृथ्वी—होता है। जिस तरह धनुष की डोरी

धनुष के दो सिरों को सीधी रेखा में मिलाती है, उसी तरह यह रेखा भी, शायद इसी कार्य-साम्य के आधार पर यह दूसरा अर्थ आया है। माता की तरह ही पृथ्वी भी पालन-पोषण करती है, सम्भवतः इसलिए 'पृथ्वी' अर्थ सं० 'माता' अर्थ से विकसित हुआ है। यथा, "इस वृत्त को यह ज्या दो भागों में बाँटती है।" या "ज्या हमें खाने को अन्न और पीने को जल देती है।"

विपरीत, ने० 'ज्या' एक खोया या भूलबोधक शब्द है। ने० हि० को० पृ० 99। लगता है कि जैसे धनुष की डोरी को छोड़कर बाण निकल जाता है, उसी तरह भूल से मुँह से गलत बात भी अचानक निकल जाती है। सम्भवतः इसीलिए सं० 'धनुष की डोरी' अर्थ से नेपाली का यह अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "अनि कदाचित् पण्डितजी बज्यैको मुखबाट ज्या बिर्सेछु···भने वाक्य निस्क्यो।" (फिर कदाचित् पण्डिताइन बज्यै के मुँह से ज्या भूल गई···वाक्य निकला।) ने० स० को० गी०। र० वि० पृ० 139। "कहाँ त्यो कवै कामीले त बेलुका भात खाइसके पछि आएर, ज्या मामा भुसुक्कै बिर्सेछु भन्न आयो।" (कहाँ वह कवे लुहार तो दिन का भात खाकर आने के बाद 'ज्या मामा एकदम भूल गया' कह गया।) ने० हु० अ०। वि० घि० पृ० 85।

—(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

झर (तत्स०। सं० > हि० ।, ने० ।)

सं० 'झरः' का अर्थ होता है—झरना। सं० को० गु० पृ० 129।

हि० 'झर' का अर्थ होता है—पानी गिरने का स्थान, झरना। इनमें 'झरना' अर्थ सं० का ही है और इसी से 'पानी गिरने का स्थान' अर्थ आया है, क्योंकि झरना भी एक ऐसा स्थान है जहाँ पानी गिरता है। यथा, "वह प्यास में बेदम होकर झर की तलाश में निकला।"

विपरीत, ने० 'झर' का अर्थ होता है—पानी बरसने का दफा या बार। ने० हि० को० पृ० 101। जिस तरह झरना में ऊपर से पानी गिरता है, इसी तरह वर्षा में भी ऊपर से पानी गिरता है, सम्भवतः इसी सादृश्य के कारण पहले 'वर्षा' अर्थ आया होगा और तब बाद में इसी 'वर्षा' अर्थ से 'पानी बरसने का दफा या बार' अर्थ विकसित हुआ होगा। यथा, "आमाले भन्नुभो—'एक झर पानी, परेपछि' त लहरे तरकारीहरू हुन थालछ···।" (माँ बोली—एक बार पानी बरस जाने से तो लता में फलने वाली तरकारियाँ हो जायेंगी···।) ने० दा०। वि० प्र० को० पृ० 16।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

टक (तद्०। सं० √ टंक् > हि० ।, ने० ।)

सं० 'टंक्' धातु का अर्थ होता है—बाँधना। सं० को० गु० पृ० 130।

हि० 'टक' का अर्थ है—ऐसा ताकना जिसमें पलक देर तक न गिरे, स्थिर दृष्टि। ऐसे ताकने में ऐसा लगता है, जैसे दृष्टि वहाँ बँध गई है, सम्भवतः इसलिए सं० 'बाँधना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "वह प्रतिमा को एकटक निहारता रहा।"

विपरीत, ने० 'टक' का अर्थ होता है—सिक्के पर का चिह्न, छाया, दृष्टि, देखने की क्रिया। ने० हि० को० पृ० 107। इनमें 'दृष्टि' या 'देखने की क्रिया' अर्थ लगभग हि० के समान ही हैं। इनका विकास भी हि० की तरह ही हुआ प्रतीत होता है। सिक्के पर किसी चिह्न को अंकित करने का अर्थ है, उस चिह्न को उस सिक्के के साथ बाँधना। छाया भी सदा मूल वस्तु के साथ बँधी रहती है। सम्भवत: इसलिए सं० 'बाँधना' अर्थ से ये अर्थ विकसित हुए हैं। यथा, "जूनको टकले गर्दा झारपात सबैमा चाँदको जलप लाए जस्तो देखिन्छ।" (चाँदनी की छाया से घासपात सब चाँदी की पतली तह पहने जैसा दिखाई पड़ा।) मु० बा०। बां० पृ० 25। "बत्तीको टकमा टल्किएका चश्माभित्र आंखाको भाव पढ्न गाह्रो थियो।" (रोशनी की छाया में चमकते हुए चश्मे के अन्दर की आँखों का भाव पढ़ना कठिन था।) शि० फू०। पा० पृ० 25।

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

ढाँचा (तद्० । सं० स्थाता>हि० I, ने० I)

सं० 'स्थाता' का अर्थ होता है—चालक, पथ-प्रदर्शक, सत्ता, अचल पदार्थ। सं० को० सु० पृ० 585।

हि० 'ढाँचा' का अर्थ है—किसी चीज की बनावट का मौलिक आधार, पंजर, बनावट, प्रकार आदि। इनमें प्रथम तीन अर्थ सं० 'सत्ता' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि सत्ता में मौलिकता एवं विद्यमानता का भाव है और इनमें भी। आधार, पंजर या बनावट—सभी की स्थिति तभी सम्भव है, जबकि उसकी सत्ता हो। 'प्रकार' अर्थ सम्भवत: सं० 'अचल पदार्थ' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि सभी अचल पदार्थ भिन्न-भिन्न कोटि के होते हैं। यथा, "मूर्त्ति-निर्माण के लिए पहले उसका ढाँचा बनाना आवश्यक है।"

विपरीत, ने० 'ढाँचा' का अर्थ होता है—ढंग, नमूना, तड़क-भड़क। ने० हि० को० पृ० 125। जिस पदार्थ की सत्ता हो, उसी का कोई ढंग, नमूना या तड़क-भड़क हो सकती है। इसलिए ये अर्थ स० 'सत्ता' अर्थ से विकसित हुए होंगे। वैसे 'ढंग' अर्थ सं० 'पथ-प्रदर्शक' अर्थ से भी विकसित हो सकता है, क्योंकि प्रत्येक पथ-प्रदर्शक का चीजों को देखने या बताने का अपना-अपना ढंग होता है। यथा, "कान्छाराई फेरि साथीहरूपट्टि हेरेर खित्का छोडेर एक चोटि हांस्यो र ढांचा पारेर...गम्भीर भएर भन्यो...।"(कान्छाराई फिर साथियों की ओर देखकर ठहाका मारकर एक बार हँसा और ढंग (अभिनय) करके...गम्भीर होकर बोला...।) मु० बा०। बां० पृ० 13। "सेतीको त्यो मिजास र ढांचा मन परेन।" (सेती का वह दिमाग और तड़क-भड़क अच्छी नहीं लगी।) क० सं०। गो० पृ० 49। "मनिस भएर पनि जो देवीको ढांचा पार्छ...।" (मनुष्य होकर भी जो देवी की नकल (नमूना) उतारती है...।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 55।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

तान (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तान:' का अर्थ होता है—धागा, गाने की लय, फैलाव, ज्ञान का विषय। एस-ई-डी-पी-232-33।

हि० 'तान' का प्रयोग—'खींच' और 'फैलाव, आलाप, ज्ञान का विषय'—आदि अर्थों में होता है। इनमें 'खींच' और 'फैलाव' सं० 'फैलाव' अर्थ के, 'आलाप' सं० 'गाने

की लय' अर्थ के समान हैं और 'ज्ञान का विषय' अर्थ स्पष्टतः समान ही है। अतएव, हि० में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "क्या मधुर तान है!"

विपरीत, ने० 'तान' का अर्थ है—ताना, करघा, मन की लहर (धुन)। ने० हि० को० पृ० 133। 'ताना' और 'करघा' अर्थों पर सं० 'धागा' अर्थ का प्रभाव दीखता है, क्योंकि ताना भी धागों का ही होता है और करघा पर धागे ही बुने जाते हैं। मन की लहर (धुन) अर्थ पर 'गाने की लय' अर्थ का प्रभाव प्रतीत होता है, क्योंकि बिना मन की लहर (धुन) के गाने की उत्कृष्ट लय पैदा नहीं की जा सकती है। यथा, "...आजकल देशी तान आइरहेको छ, ज्यादै नयां किसमको, कपडा बिन्न बिघ्नै सजिलो, दिन भरिमा कैयन् गज बुन्न सकिन्छ।" (आजकल देशी करघा आ रहा है, ज्यादा नए प्रकार का, कपड़ा बुनने में बहुत सरल, दिन भरमें कई गज बुना जा सकता है।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 65।

दम (तत्स०। सं० दमः>हि० I, ने० II) (वि०। फा० दम>हि० I, ने० I)

हि० और ने० 'दम' दो स्रोतों से आया है—एक सं० 'दमः' से, दूसरा फा० 'दम' से। ने० और हि० में दोनों ही स्रोतों से आये 'दम' के अर्थ में अन्तर आ गया है।

सं० 'दमः' का अर्थ होता है—इन्द्रियों को वश में रखना, दंड, मस्तिष्क की दृढ़ता, कीचड़। एस-ई-डी-पी-245। फा० 'दम' का अर्थ होता है—साँस। उ० हि० डि० पृ० 251।

हि० 'दम' का अर्थ है—सजा, दबाव, कीचड़, बुद्ध, विष्णु, श्वास। इनमें 'सजा' और 'कीचड़' अर्थ सं० के समान और 'श्वास' अर्थ फा० के समान है। दंड पाए व्यक्ति पर एक मानसिक दबाव रहता है या दबाव स्वयं में एक प्रकार का दंड है—सम्भवतः इन्हीं में से किसी भाव के कारण सं० 'दंड' अर्थ से 'दबाव' अर्थ का विकास हुआ होगा। 'बुद्ध' और 'विष्णु' अर्थ संज्ञासूचक हैं जो सम्भवतः 'इन्द्रियों को वश में रखना' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि ये दोनों इन्द्रियों को वश में रखनेवाले माने जाते हैं। यथा, "उसे दम (कीचड़) में घसीटने की जरूरत नहीं है।"

विपरीत, ने० 'दम' का अर्थ है—शक्ति, प्राण, दमा, श्वास। इनमें 'शक्ति' अर्थ सम्भवतः सं० 'इन्द्रियों को वश में रखना' अर्थ से आया है, क्योंकि इन्द्रियों को वश में रखने के लिए बहुत बड़ी इच्छा-शक्ति की जरूरत होती है। अन्य अर्थ फा० 'साँस' अर्थ से विकसित हैं, क्योंकि जब तक 'साँस' है तभी तक प्राण का होना भी समझा जाता है। 'दमा' श्वास-सम्बन्धी बीमारी है। यथा, "उसको दम बढ़िरहेथ्यो।" (उसका दमा बढ़ रहा था।) लं० सा०। बां० पृ० 71। "दमको निमित्त श्वासरि, मलेरिया को निमित्त जूडीताप...।" (दमे के लिए श्वासरि, मलेरिया के लिए जूड़ीताप...।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 69। —(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

धक (तद्०। सं० 'धक्'>हि० I, ने० I)

सं० 'धक्' का अर्थ होता है—क्रोध का अभिव्यक्तिसूचक शब्द। एस-ई-डी-पी-267।

हि० 'धक' का अर्थ होता है—हृदय का जल्दी-जल्दी चलने का भाव, उमंग, उद्वेग। क्रोध के कारण हृदय-गति तीव्र हो जाती है, उमंग और उद्वेग आ जाता है, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "बाघ को देखते ही मेरा दिल धक-धक करने लगा।"

बिपरीत, ने० 'धक' का अर्थ है—लज्जा या भय-मिश्रित संकोच। ने० हि० को० पृ० 153। क्रोध की अभिव्यक्ति के बाद जब चित्त शान्त होता है तो भद्र आदमी को अपने पिछले व्यवहार के प्रति लज्जा या संकोच का अनुभव होता है। वैसे भी, क्रोध, लज्जा, भय—सभी हृदय के भाव हैं। सम्भवतः इसलिए सं० अर्थ का ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "कहिलेपनि धक फुकाएर सुत्न नपाएजस्तो...।" (कभी भी भय-मिश्रित संकोच का परित्याग करके न सो पाने जैसा...।) सु०। बी० पी० को० पृ० 69। "उसलाई बाटो हिड्ने मान्छेहरूको धक लाग्दथ्यो के भन्लान्।" (उसको रास्ते चलते हुए आदमी की लज्जा लगनी थी कि क्या कहेंगे।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 66। "त्रिपुराले केही धक मान्दै कानेनेरि सुटुक्क भनी...।" (त्रिपुरा ने कुछ संकोच करते हुए काने के पास जाकर चुपचाप कहा...।) सो० र० ज०। कें० नु० पो० पृ० 31।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

नचनी (तद्०। सं० नर्त्तनः > हि० नाचना > हि० नचनी I, ने० I)

सं० 'नर्त्तनः' का अर्थ होता है—नाचनेवाला और 'नर्त्तनं' का अर्थ होता है—नृत्य, नाच। एस-ई-डी-पी-281।

हि० 'नचनी' का अर्थ है—नाचनेवाली, इधर-उधर घूमनेवाली। स्पष्ट है कि सं० 'नाचनेवाला' अर्थ ही स्त्रीलिङ्ग होकर 'नाचनेवाली' हो गया है। चूँकि नाचनेवाली नाचने के क्रम में कभी इधर और कभी उधर जाती है, सम्भवतः इसलिए हि० का दूसरा अर्थ विकसित हुआ है। यथा, "क्या नचनी के समान कर रही हो, चुपचाप बैठो न।"

बिपरीत, ने० 'नचनी' का अर्थ है—रामदाने का लावा। सं० हि० को० पृ० 158। जब रामदाने को लावा बनाने के लिए गर्म कड़ाही में डाला जाता है तो वह फूट-फूटकर कभी इधर भागता है, कभी उधर, जैसे नाच कर रहा हो। सम्भवतः इसी भाव के कारण यह अर्थ आया है। यथा, "मलाई नचनीको लड्डू खान मन पराउंछ।" (मैं रामदाने के लावे का लड्डू पसन्द करता हूँ।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

नाका (तद्०। सं० नक्रः > हि० II, ने० II)

सं० 'नक्रः' का अर्थ होता है—मगर, घड़ियाल, दरवाजे की ऊपरी लकड़ी, नाक। एस-ई-डी-पी-277।

हि० 'नाका' का अर्थ है—रास्ते आदि का छोर, प्रवेश-द्वार, मुहाना, गली या रास्ते का आरम्भ, फाटक, सूई का छेद। रास्ते आदि का छोर, प्रवेश-द्वार, मुहाना, गली या रास्ते का आरम्भ और फाटक अर्थ सं० 'दरवाजे की ऊपरी लकड़ी' अर्थ से बिकसित लगते हैं। संस्कृत अर्थ से जो दरवाजा या प्रवेशद्वार का भाव है, हिन्दी ने मुख्यतः उसी भाव को ग्रहण किया और प्रवेश से सम्बन्धित अन्य अर्थों को विकसित कर

लिया। 'सूई का छेद' अर्थ सम्भवत: सं० 'नाक' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि नाक में भी छेद होता है। यथा, "आगे नाके पर जाकर नयी सड़क मिलेगी।"

विपरीत, ने० 'नाक' का अर्थ—सूई का छेद, मिलन या बिछुड़न स्थल, साधन, जंक्शन—होता है। एन-एन-ई-पी-925। 'सूई का छेद' अर्थ हि० की तरह ही है और इसका विकास भी सं० 'नाक' से सादृश्य के कारण हुआ लगता है। नाक अपने दो छिद्रों से हवा को विभाजित करती है और बाद में मिलती है, सम्भवत: इसलिए 'नाक' अर्थ से 'मिलन या बिछुड़न स्थल' और 'जंक्शन' अर्थ विकसित हुए होंगे। नाक साँस लेने का साधन है, इसलिए 'साधन' अर्थ भी इसी से विकसित हुआ लगता है। यथा, "यो वनमा चोर डाकूहरूको असंख्य नाकाहरू छन्।" (इस जंगल में चोर-डाकुओं के अनेक मिलन-स्थल हैं।) —(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

नादान (वि०। फा०>हि० I, ने० II)

फा० 'नादान' का अर्थ होता है—मूर्ख, जाहिल, अनभिज्ञ, शिशु, बच्चा। उ० हि० डि० पृ० 429।

हि० 'नादान' का प्रयोग नासमझ, अनजान या मूर्ख—के लिए होता है। ये सारे अर्थ फा० के समान ही हैं। यथा, "उस नादान को समझाना टेढ़ी खीर है।"

विपरीत, ने० 'नादान' का अर्थ होता है—नामर्द, साहस या हिम्मत से हीन। एन-एन-ई-पी-929। ऐसा लगता है कि ये अर्थ फा० 'बच्चा' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि बाल्यावस्था में मर्दानगी भी नहीं आती और बच्चे साहसहीन भी होते हैं। यथा, "कुनै पनि लायक काम नादानबाट हुन सक्तैन।" (कोई भी लायक काम साहसहीन या नामर्द के द्वारा नहीं हो सकता है।)

नानी (दे०। हि० I, ने० I)

'नानी' हि० एवं ने०—दोनों में देशज शब्द है, फिर भी दोनों के अर्थों में भिन्नता हो गई है। साम्य इतना है कि दोनों में व्यक्तिपरक सम्बन्ध को यह बोधित करता है।

हि० 'नानी' का अर्थ होता है—माँ की माँ। यथा, "वह हर छुट्टी में नानी से मिलने जाता है।"

विपरीत, ने० 'नानी' का अर्थ है—बालक या बच्चा-बच्ची, बच्चों को प्यार से बुलाने का सम्बोधन, आँख की पुतली। एन-एन-ई-पी-930। आँख की पुतली छोटी होती है और बच्चे भी छोटे होते हैं, सम्भवत: इसी भाव-साम्य के कारण ऐसा अर्थ आया है। स्पष्ट है कि हि० में नानी 'माँ की माँ' को कहते हैं, पर ने० में बच्चे को। इस तरह दोनों अर्थ उम्र की दो सीमाओं को व्यक्त करते हैं। यथा, "कति नानीहरू टुहुरा-टुहुरी भए-कति आमाबाबु सन्तानविहीन भए।" (कितने बच्चे टुअर हो गए, कितने माँ-बाप संतान-विहीन हो गए।) मु० बा०। बाँ० पृ० 209। "यमुनाले छोड्दा नानी दौडेर बबुनीकहाँ भागेर टाँसिपुग्यो।" (यमुना के छोड़ते ही बच्चा दौड़कर बबुनी के घर छाती से लगने के लिए भागा।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 76। "नानी नपाउने बाँझी।" (बच्चा न पाने वाली बाँझ।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 100।

नियति (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'नियतिः' का प्रयोग---भाग्य, नियम, आत्म-नियन्त्रण, धार्मिक कर्त्तव्य और अवरोध---के अर्थ में होता है । एस-ई-डी-पी-290 ।

हि० 'नियति' का अर्थ होता है---नियत होने का भाव, स्थिरता, भाग्य, अदृष्ट, संयोग, पूर्वकृत कर्म का निश्चित परिणाम । इनमें 'नियत होने का भाव' और 'स्थिरता' अर्थ सं० 'आत्म-नियन्त्रण' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि आत्म-नियंत्रण से वृत्तियाँ स्थिर हो जाती हैं और नियत स्थान पर ही टिक जाती हैं । अन्य अर्थ सं० 'भाग्य' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि इनका अर्थ भाग्य के समान ही है । यथा, "जब नियति ही प्रतिकूल हो तो प्रयास करने से क्या होगा ?" या "नियतिवश (संयोगवश) वह भी उसी गाड़ी में था जिसकी दुर्घटना हुई ।"

विपरीत, ने० 'नियति' का अर्थ है---प्रारब्ध, आत्म-संयम, नियमन । एन-एन-ई-पी-150 । ये सारे अर्थ सं० के ही हैं । इनमें 'प्रारब्ध' 'भाग्य' का, 'नियमन' 'नियम' का समानार्थी है । अतएव ने० अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "जीवन मा सफलताको निमित्त नियतिको आवश्यकता छ ।" (जीवन में सफलता के लिए आत्मसंयम की आवश्यकता है ।)

---(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध---'नियत होने का भाव' और 'स्थिरता' अर्थों में)

निश्शंक (तत्स० । सं०>हि० I, ने० II)

सं० 'निश्शंक' का अर्थ होता है---संदेहरहित, शंकारहित । सं० को० सु० पृ० 453 ।

हि० 'निश्शंक' का अर्थ---निडर, निर्भय, जिसमें शंका न हो---होता है । निडर वही होता है जिसके अन्दर किसी तरह की शंका नहीं होती है, सम्भवतः इसी भाव के कारण 'निडर' या 'निर्भय' अर्थ आया है । अन्तिम अर्थ सं० के समान ही है । यथा, "उसके समान निश्शंक आदमी कोई भी कठिन काम को कर सकता है ।"

विपरीत, ने० 'निश्शंक' का अर्थ एकमात्र---शंकारहित---होता है । एन-एन-ई-पी-963 । अतएव, ने० अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "यो कुरामा म निश्शंक छु ।" (इस बात में मैं शंकारहित हूँ ।)

---(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध---'निडर' अर्थ में)

निष्कर्म (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'निष्कर्म' का अर्थ होता है---कर्मरहित, बेकार । एस-ई-डी-पी-299 ।

हि० 'निष्कर्म' का अर्थ है---जो काम-विहीन हो, अकर्मा । हिन्दी के ये अर्थ सं० के ही समान हैं, अतएव हिन्दी में किसी प्रकार का अर्थ-परिवर्तन घटित नहीं हुआ है । यथा, "आज कोई भी निष्कर्म व्यक्ति सुखी नहीं है ।"

विपरीत, ने० में 'निष्कर्म' का प्रयोग 'मन लगाकर काम नहीं करना' अर्थ में होता है । एन-एन-ई-पी-963 । ने० के इस अर्थ में भी काम नहीं करने का भाव है,

लेकिन उसके साथ आन्तरिक भाव का योग हो गया है। 'मन लगाकर काम नहीं करना' काम नहीं करने के बराबर है। यथा, "यस्तो निष्कर्म भएर काम गरेपछि सफल हुँदैन।" (इस तरह बिना मन लगाए काम करने पर सफल नहीं होगा।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

पहरा (तद्० । सं० प्रहरः>हि० I, ने० I)

सं० 'प्रहरः' का अर्थ होता है—दिन का आठवां हिस्सा, घड़ी, लगभग तीन घंटे का समय। एस-ई-डी-पी-373।

हि० 'पहरा' का अर्थ है—रक्षार्थ-नियुक्ति, निगहबानी, रखवाली, तैनाती, चौकीदार का गश्त या फेरा, नजरबन्दी, समय। इन सारे अर्थों में निगरानी करने का भाव है। निगरानी सदा समय-सापेक्ष होती है, क्योंकि इसकी जरूरत विशेष समय में (कहीं रात में, कहीं संकट के समय में) ही पड़ती है। सम्भव है, इसी भाव के कारण सं० 'तीन घंटे का समय' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ हो। अन्तिम अर्थ 'समय' स्पष्टतः इससे विकसित है। यथा, "अपनी चीज का पहरा स्वयं करें।"

विपरीत, ने० 'पहरा' का अर्थ है—पत्थर, देखरेख। एन-एन-ई-पी-1020। इनमें 'देखरेख' अर्थ हि० की तरह ही है और इसका विकास भी हि० की तरह ही हुआ लगता है। 'पत्थर' अर्थ सम्भवतः सं० 'लगभग तीन घंटे का समय' अर्थ से इस भाव के कारण आया है कि किसी-किसी के लिए (विशेषकर दुःख के समय में) समय पत्थर-सा अडिग मालूम पड़ता है, काटे नहीं कटता। यथा, "अभिमान का पहरा...।" (अभिमान का पत्थर...।) आ० र० छ०। इ०ब०रा० पृ० 41। "रुनै घसिन्दै आदागुनिको ठूलो पहरा-को डीलनेर पुग्यो...।" (रोते घिसटते हुए सड़क के नीचे के बड़े पत्थर के पास पहुँचा।) मु० बा०। बां० पृ० 30। "त्यसैबेला मन्ज्यांगको पल्लो घुम्तीबाट एउटा लोग्नेमान्छेका चर्की स्वरले पहरा रंकाउने गरी गीत चिच्च्याएर ल्यायो।" (उसी वक्त मन्ज्यांग के सामने के मोड़ से एक पुरुष की कर्कश आवाज ने पत्थर हिला देनेवाले गीत की चिल्लाहट लाई।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 22। —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

पारा (वि०। फा०>हि० II, ने० II)

फा० 'पारा' का अर्थ होता है—खंड, अंग, टुकड़ा। उ० हि० डि० पृ० 94।

फा० 'पारा' से आये हि० 'पारा' का अर्थ होता है—टुकड़ा, वह छोटी दीवार जो केवल पत्थरों के टुकड़े एक-दूसरे पर रखकर बनाई गई हो। स्पष्ट है कि इनमें प्रथम अर्थ फा० का है और इसी से दूसरा अर्थ विकसित हुआ है, क्योंकि ऐसी दीवार पत्थर के टुकड़ों से बनी होती है। यथा, "ऐसा धमाका हुआ कि दीवार पारे में विभाजित हो गई।"

विपरीत, ने० 'पारा' का अर्थ होता है—कायदा, तरीका। एन-एन-ई-पी-1036। मनुष्य के व्यक्तित्व का एक अंश उसके चलने-फिरने, हँसने-बोलने के तरीके में निहित होता है, सम्भव है इसी भाव के कारण सं० 'टुकड़ा' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। जैसे, काम लेने या करने का तरीका सफलता का एक महत्त्वपूर्ण अंग होता है। सम्भव है, इसी भाव के कारण सं० 'अंग' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ हो। यथा, "उता तारा त आफ्नो स्वाभाविक पारामा हांसी नै रहेकी थिई।" (वहाँ तारा तो अपने

स्वाभाविक तरीके से हँस रही थी।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 33। "...त्यही पाराले 56 साल पनि व्यतीत भयो।" (...इसी तरीके से 56 साल भी बीत गया।) बां०। ली० ब० क्ष० पृ० ख। "...कोही अल्छी नमानी उठेर देखाइरहेका शेक डान्सका आफ्ना पाराका मुद्राहरू...।" (...कोई बुरा न मानकर उठकर दिखा रहे शेक डान्स के अपने तरीके की मुद्राएँ...।) शि० फू०। पा० पृ० 76।

—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

पुलपुल (दे०। अनु०>हि० I, ने० I)

'पुलपुल' एक अनुकरणबोधक शब्द है। जो चीज बहुत मुलायम होती है और भीतर से ढीली होती है, उसे दबाने से 'पुल' जैसी अत्यन्त क्षीण आवाज निकलती है। इसी से 'पुलपुल' शब्द बना है।

हि० 'पुलपुल' का अर्थ होता है—जो भीतर से इतना ढीला और मुलायम हो कि दबाने से धँसे। स्पष्ट है कि यह ऐसी ध्वनि पैदा करनेवाले पदार्थ का वाचक है। यथा, "कम हवा रहने पर बैलून पुलपुल करता है।"

विपरीत, ने० 'पुलपुल' का अर्थ होता है—बहुत प्यार करना, लाड़-प्यार। एन-एन-ई-पी-1057। लाड़-प्यार करने में जो कोमलता है, सम्भवतः इसी से नेपाली में इस तरह का अर्थ आया है। यथा, "आमा बुबाहरूले आफ्ना छोरा-छोरी हरूलाई पुलपुल पार्नु उचित हुंदैन।" (माँ-बाप को अपनी सन्तान को बहुत प्यार करना उचित नहीं है।)

पैठ (तद्०। सं० प्रविष्ट>हि० I, ने० I)

सं० 'प्रविष्ट' का अर्थ होता है—गया या घुसा हुआ, बहाल, नियुक्त, आरम्भ किया हुआ। एस-ई-डी-पी-369।

हि० 'पैठ' का अर्थ है—घुसने का भाव, प्रवेश, दखल, गति, पहुँच। इनमें 'घुसने का भाव' और 'प्रवेश' अर्थ सं० 'घुसा हुआ' अर्थ के समान हैं। 'दखल' में किसी के जबर-दस्ती घुस जाने का भाव है, अतएव इसका विकास भी सं० 'घुसा हुआ' अर्थ से हुआ लगता है। 'गति' अर्थ सं० 'गया हुआ' अर्थ से आया होगा। जो जहाँ तक अपने को पैठा पाता है, वहाँ तक उसकी पहुँच मानी जाती है, सम्भवतः इसलिए सं० 'पैठाना' अर्थ से 'पहुँच' अर्थ का विकास हुआ होगा। यथा, "उसकी वहाँ पैठ (पहुँच) नहीं है।"

विपरीत ने० 'पैठ' का अर्थ होता है—आधार, आड़, ठेलने का काम। एन-एन-ई-पी-1070। घुसाने के लिए ठेलने की जरूरत पड़ती है, सम्भवतः इसलिए सं० 'घुसा हुआ' अर्थ से 'ठेलने का काम' अर्थ का विकास हुआ है। जो वस्तु जहाँ घुसी रहती है, वही उसका आधार या आड़ का काम करता है। अतएव, 'आधार' और 'आड़' अर्थ सं० 'घुसाना' अर्थ से ही विकसित लगते हैं। यथा, "यस व्यवसायको पैठमा मैले सपनाको महल बनाएको थिएं।" (इस व्यवसाय के आधार पर मैंने सपने का महल बनाया था।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ)

प्रलंबन (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'प्रलम्बन' का अर्थ होता है—झूलना, आधार, निर्भर करना। एस-ई-डी-पी-367।

हि० 'प्रलंबन' का प्रयोग 'अवलम्बन' या 'सहारा' अर्थ में होता है। ये सं० 'आधार' 'से विकसित हुए हैं, क्योंकि जिसका सहारा होता है, उसी को आधार मानकर लोग चलते हैं। यथा, "तुमने जिसका प्रलंबन लिया है, वह तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकेगा।"

विपरीत, ने० 'प्रलंबन' का अर्थ है—लटकना, झूलना, निलंबित रहना। एस-ई-डी-पी-1093। 'लटकना' और 'झूलना' अर्थ सं० के समान ही हैं। 'निलंबित रहना' अर्थ नया है और इसी का अर्थादेश हुआ है। निलंबित व्यक्ति आशा-निराशा (नौकरी रहेगी या जायगी) के बीच झूलता रहता है। सम्भवतः इसलिए सं० 'झूलना' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "उसले आफ्नो कार्य अनुचित ढंगले गरेको हुंदा ऊ प्रलंबनमा रहेको छ।" (उसने अपना काम अनुचित ढंग से किया जिससे वह निलंबित होकर रह रहा है।) —(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

बाजू (वि०। फा० > हि० II, ने० II)

फा० 'बाजू' का अर्थ है—बाहु, भुजा, बाँह। उ० हि० डि० पृ० 61।

हि० 'बाजू' का अर्थ होता है—बाहु, भुजा, बाजूबन्द नाम का एक गहना, पक्षी का डैना। इनमें प्रथम दो अर्थ फा० के ही हैं और अन्य दो अर्थ 'बाहु' अर्थ से विकसित लगते हैं। चूँकि बाजूबन्द बाहु में पहना जाता है, सम्भवतः इसलिए ऐसा अर्थ आया है। पक्षी का डैना उसी तरह का होता है जिस तरह आदमी की बाँह। सम्भवतः इसी सादृश्य के कारण 'डैना' अर्थ आया है। यथा, "इस पक्षी का बाजू बड़ा मजबूत होता है।"

विपरीत, ने० में 'बाजू' का एक ही अर्थ है—बाँह में पहनने का एक आभूषण। एन-एन-ई-पी-1178। चूँकि यह आभूषण बाँह में पहना जाता है, अतएव सं० 'बाँह' अर्थ से यह अर्थ विकसित हुआ होगा। यथा, "कति चाँदी लागेको छ यो बाजूमा ?" (कितनी चाँदनी लगी है इस बाँह के आभूषण में ?) —(हि० अर्थ-विस्तार : सादृश्य)

बाम (तद्०। सं० वाम > हि० II, ने० I)

सं० 'वाम' का अर्थ होता है—बायाँ, बायीं ओर का, विपरीत, टेढ़ा, निर्दय, खल, सुन्दर। सं० को० सु० पृ० 362।

हि० 'बाम' का अर्थ है—बायाँ, प्रतिकूल, टेढ़ा, दुष्ट। ये सारे अर्थ सं० के ही हैं, अतएव हि० में कोई अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "जब विधि ही बाम हो तो कोई क्या कर सकता है।"

विपरीत, ने० 'बाम' का अर्थ होता है—साँप के आकार की मछली। एन-एन-ई-पी-1182। इस तरह की मछली सर्प की आकृति की होती है जो सामान्य मछली के विपरीत है। सम्भव है, इसलिए यह अर्थ सं० 'विपरीत' अर्थ से विकसित हुआ हो। यथा, "मलाई बाम माछो मन पर्दैन।" (मुझे बाम मछली अच्छी नहीं लगती है।)

बेहाल (वि०। फा० > हि० I, ने० II)

फा० 'बेहाल' का अर्थ होता है—बुरा हाल, बुरा समय। उ० हि० डि० पृ० 178।

हि० 'बेहाल' का अर्थ है—व्याकुल, बेचैन। व्याकुलता और बेचैनी की स्थिति बुरी होती है, सम्भवतः इसलिए ये अर्थ सं० 'बुरा हाल' अर्थ से आए हैं। यथा, "आजकल के लड़के सिनेमा के पीछे बेहाल रहते हैं।"

विपरीत, ने० 'बेहाल' का अर्थ होता है—अच्छी अवस्था में नहीं। एन-एन-ई-पी-1218। स्पष्ट है कि ने० का यह अर्थ सं० 'बुरा हाल' के समान है, अतएव ने० के इस अर्थ में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "बेहाल भइच्छ कि क्या हो।" (बुरी हालत हो रही है कि क्या है।) फे० क० भे० हो०। य० था० पृ० 19। ने० में 'बेहाल' शब्द से बने 'बेहालत' का प्रयोग भी इसी अर्थ में होता है। यथा, "बूढाले तरुणी बिहा गरेर कति बेहालत भएको देखाएको छ।" (बूढ़े ने युवती से विवाह करके कितनी बुरी दशा प्राप्त की, दिखाया गया है।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 66।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

भर (तद्०। सं० भार:>हि० I, ने० I)

सं० 'भार:' का अर्थ है—बोझ, झोंका, मिहनत, उत्तरदायित्व, बाहुल्य। सं० को० सु० पृ० 252।

सं० 'भार:' से विकसित हि० 'भर' का अर्थ है—बोझ, वजन, पुष्टि, मुटाई। इनमें 'बोझ' या 'वजन' सं० 'बोझ' का समानार्थी है। 'पुष्टि' और 'मुटाई' अर्थ सं० 'बाहुल्य' अर्थ से आए लगते है, क्योंकि इनमें भी अधिकता का भाव है। यथा, "उसके सिर पर जरूरत से ज्यादा भार (बोझ) है।"

विपरीत, ने० 'भर' का अर्थ है—भरोसा, आसरा, आधार। एन-एन-ई-पी-1243। ये सारे अर्थ लगभग समान हैं और ये सं० 'उत्तरदायित्व' अर्थ से आए लगते हैं, क्योंकि जो उत्तरदायित्व लेता है या समझता है, भरोसा उसी का किया जाता है। यथा, "भर हुन्छ सँबादाई।" (भरोसा होता है सबभाई।) मु० बा०। बां० पृ० 121। "कहीं जजपनि त्यस्तो भनाईको भरमा कानूनको विरुद्ध काम गर्न सक्थे।" (कहीं जज भी ऐसे कथन के आधार पर कानून के विरुद्ध काम कर सकता था।) दो० च०। वि० प्र० को० पृ० 94। "हामी थियौं तिनै कर्मचारीको भरमा।" (हम थे इन्हीं कर्मचारियों के भरोसे पर।) सो० र० ज०। के० नु० पी० पृ० 16।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

भरी (तद्०। सं० भर:>हि० I, ने० II)

सं० 'भर:' का अर्थ होता है—बोझा, राशि, बाहुल्य, चढ़ाई, एक तोले का परिमाण। सं० को० मु० पृ० 248।

हि० 'भरी' का अर्थ है—दश माशे या एक रुपये के बराबर एक तौल। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'एक तोले का परिमाण' अर्थ के समान ही है। यथा, "उसने पाँच भरी सोना खरीदा।"

विपरीत, ने० 'भरी' का अर्थ है—पूर्ण, भरा हुआ। ने० हि० को० पृ० 219। सं० 'बाहुल्य' अर्थ से ये अर्थ विकसित हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि पूर्ण या भरा हुआ वही होता है जिसमें पदार्थों का बाहुल्य होता है। यथा, "फेरि भरी बोतलहरू मगाइयो रित्याइयो।" (फिर भरी हुई बोतल मँगाई और खाली की।) शि० फू०। पा० पृ० 21। "त्यस्तो सुन्दर र परिष्कृत पहिरन हाम्रो गाउँमा त क्ये त्यस इलाकाभरीमा कसैको थिएन।" (वैसी सुन्दर और परिष्कृत पोशाक हमारे गाँव तो क्या पूरे इलाके में भी किसी

को नहीं थी।) न० दा०। वि० प्र० को० पृ० 11। "एक पल्टभरी हुँदै फेरि तरल भएर बग्दै…।" (एक बार पूरा होकर फिर तरल होकर बहते हुए…।) पि०फू०। पा०पृ० 78।

भाउ (तद्०। सं० भाव: > हि० I, ने० II)

सं० 'भाव:' का अर्थ होता है—सत्ता, मौजूदगी, हालत, रंग-ढंग, स्वभाव, प्रेम, उद्देश्य, संकल्प, मन, वस्तु, प्राणी, संसार, चमत्कार, राग, भावना। सं० को० सु० पृ० 253।

हि० 'भाउ' का प्रयोग—चित्तवृत्ति, विचार, भाव, प्रेम—अर्थों में होता है। ये सारे अर्थ सं० के समान ही हैं, अतएव हि० में किसी तरह का अर्थ-परिवर्तन नहीं हुआ है। यथा, "उसके मन का भाउ जानना कठिन है।"

विपरीत, सं० 'भाव:' से विकसित ने० 'भाउ' का अर्थ होता है—अंग-प्रत्यंग की चेष्टा, हाव-भाव, नकल, आदर। ने० हि० को० पृ० 220। इनमें प्रारंभ के दो अर्थ सं० 'रंग-ढंग' अर्थ के समान हैं, पर अन्तिम दो अर्थ नए हैं। 'नकल' अर्थ सम्भवत: सं० 'चमत्कार' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि नकल के द्वारा लोग चमत्कार पैदा करना चाहते हैं। 'आदर' अर्थ शायद सं० 'स्वभाव' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि अच्छे स्वभाव के कारण भी कोई आदर का पात्र बन जाता है। यथा, "आफ्नो भाउ बढेकोले खुशीमुख लगाएकी सिरिमायाले आगाडि बढेर प्रस्ताव राखी…।" (अपना आदर बढ़ने के कारण खुशीमुख से श्रीमाया ने आगे बढ़कर प्रस्ताव रखा…।) न०ह०आ०। वि०धि०पृ० 123।

मध्ययुग (तत्स०। सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'मध्ययुग' का अर्थ होता है—दो समयों (युगों) का बीच। सं० को० सु० पृ० 272, 304।

हि० 'मध्ययुग' का अर्थ होता है—प्राचीन युग और आधुनिक युग के बीच का समय, यूरोप के इतिहास में ई० छठी शताब्दी तक का समय। ये दोनों अर्थ सं० 'बीच का समय' अर्थ से ही विकसित हुए लगते हैं, अन्तर इतना भर आया है कि हि० ने सं० के सामान्य अर्थ को विशेष प्रसङ्ग में ग्रहण कर विशिष्ट कर दिया है। यथा, "मध्य युग में आज के बहुत सारे रीति-रिवाज प्रचलित नहीं थे।"

विपरीत, ने० में 'मध्ययुग' का प्रयोग 'आधी रात का समय या मध्य रात्रि' के लिए होता है। ऐसा लगता है कि ने० ने 'समय' अर्थ को रात्रि के साथ विशेष रूप से जोड़ दिया है और 'मध्य' अर्थ को यथावत् रखा है। यथा, "मैले आजरातिको मध्ययुगमा एउटा स्वास्नीमानिसको रोदन सुनें।" (मैंने आज मध्यरात्रि में एक औरत का रुदन सुना।) —(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

मनसूबा (वि०। अ० > हि० I, ने० II)

अ० 'मनसूबा' का अर्थ होता है—योजना, युक्ति, तरकीब, साजिश। उ० हि० डि० पृ० 606।

हि० में इसका प्रयोग—युक्ति, ढंग, इरादा, विचार—के लिए होता है। इनमें 'युक्ति' या 'ढंग' अर्थ अ० के समान ही है और 'इरादा' या 'विचार' अर्थ अ० 'योजना'

अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि इरादा के अनुसार ही योजना बनती है। यथा, "तुम्हारे मनसूबे (विचार) का कुछ पता नहीं चलता है।"

विपरीत, ने० 'मनसूबा' का अर्थ---इच्छा या कामना-- होता है। एन-एन-ई-पी-1306। यह अर्थ अ० 'योजना' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि इच्छा के अनुरूप ही योजना बनती है। यथा, "मानसिले नचाहिंदो मनसूबा बढाउनु हुदैन।" (मनुष्य को अनचाही इच्छा नहीं बढ़ानी चाहिए।) "शिवनारांले आपनो खेतमा·····तर्कारी खेती गर्ने मनसूबागरी······।" (शिवनारायण ने अपने खेत में·····तरकारी की खेती करने की इच्छा करके······।) ए० चि०। हृ० च० प्र० पृ० 70।

---(हि० अर्थ-विस्तार : भ्रान्त धारणा)

मलय (तत्स०। सं०--हि० II, ने० II)

सं० 'मलयः' का अर्थ है---दक्षिण भारत की एक पर्वत-श्रेणी, मालाबार प्रान्त, बगीचा, इन्द्र का नन्दनवन। सं० को० सु० पृ० 276।

हि० 'मलय' का अर्थ है---पश्चिमी घाट का वह भाग जो मैसूर राज्य के दक्षिण और ट्रावनकोर के पूर्व में है, मालाबार देश, मालाबार देश के रहनेवाले मनुष्य, सफेद चन्दन, नन्दनवन, छप्पय के एक भेद का नाम। इनमें आधाराधेय सम्बन्ध से सं० मालाबार-प्रान्त अर्थ से 'मालाबार के रहनेवाले मनुष्य' अर्थ आया होगा। इस इलाके में चन्दन के वृक्ष होते हैं, अतएव यह अर्थ भी उपर्युक्त सं० अर्थ से आया होगा। सम्भव है, छप्पय के इस भेद का सृजन यहाँ के लोगों ने ही किया हो, जिससे ऐसा अर्थ आया होगा। अन्य अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "मलय पर्वत की हवा बहुत शीतल होती है।"

विपरीत, ने० 'मलय' का अर्थ है---चन्दन या श्रीखण्ड। एन-एन-ई-पी-1318। हि० की तरह ने० 'मलय' अनेकार्थी नहीं है, यही भिन्नता है। 'चन्दन' अर्थ सं० 'मालाबार प्रान्त' अर्थ से इसलिए विकसित हुआ होगा कि इस स्थान में चन्दन मुख्य रूप से पैदा होता है। यथा, "निधारमा मलय को लेप लगाएर एउटा साधुबाबा आएको थियो।" (ललाट में चन्दन का लेप लगाकर एक साधुबाबा आये थे।)

---(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

मातहत (वि०। अ०>हि० II, ने० II)

अ० 'मातहत' का अर्थ होता है---अधीन, सहायक, नाइब। उ० हि० डि० पृ० 503।

हि० में इसका अर्थ है---किसी की अधीनता में काम करनेवाला। स्पष्ट है कि यह अर्थ अ० 'अधीन' अर्थ से आया है। यथा, "अपने सभी मातहतों का ख्याल रखना अधिकारी का कर्त्तव्य है।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ हो गया है---इलाका, क्षेत्र, अधिकार। एन-एन-ई-पी-1334। ये अर्थ भी अ० 'अधीन' अर्थ से ही विकसित हुए जान पड़ते हैं, क्योंकि किसी भी देश में कोई भी क्षेत्र या अधिकार किसी न किसी व्यक्ति, कर्मचारी या अफसर के अधीन रहता है। यथा, "भूमि-प्रशासक आफ्नो मातहतको भ्रमणगरी आउनु भयो।" (भूमि-प्रशासक अपने क्षेत्र का दौरा करके आ गये।)

---(हि० अर्थादेश : लक्षणा)

माल (तद्० । सं० माला > हि० II, ने० II) (वि० । अ० > हि० I, ने० I)

सं० और अ०—दोनों स्रोतों से हि० एवं ने० 'माल' आया है । सं० 'माला' का अर्थ होता है—हार, श्रेणी, पंक्ति, लड़ी, गुच्छा, लकीर । सं०को०सु० पृ० 286 । अ० 'माल' का अर्थ होता है—धन, अर्थ, रुपया, वस्तु, भूमि-कर, लगान, अच्छा भोजन । उ०हि०डि० पृ० 504 ।

सं० 'माला' से विकसित हि० 'माल' का अर्थ है—माला, हार, पंक्ति । ये अर्थ सं० की तरह हैं । अ० 'माल' से आए हि० 'माल' का अर्थ है—संपत्ति, सामग्री । स्पष्ट है कि ये अर्थ भी अ० की तरह हैं । अतएव हिन्दी के अर्थों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । यथा, "चूड़ावत जी मुण्डमाल पहनकर जोश में आ गए ।" या "उसके पास बहुत माल (सम्पत्ति) है ।"

विपरीत, ने० 'माल' का अर्थ होता है—गाय के गले में झूलनेवाली मांसपट्टी, चीज, वस्तु, तहसील कार्यालय । एन-एन-ई-पी-1342 । इनमें 'गाय के गले में झूलने वाली मांसपट्टी' अर्थ सं० 'माला' के 'हार' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि ऐसी मांस-पट्टी गाय के गले में उसी तरह झूलती है जैसे किसी के गले में हार झूलता है । 'चीज या वस्तु' अर्थ अ० 'वस्तु' अर्थ के समान है । अ० का 'भूमि-कर' अर्थ ही ने० में 'तहसील-कार्यालय' हो गया है, क्योंकि भूमि की मालगुजारी वसूलना ही इस कार्यालय का काम होता है । यथा, "मालमा गएर बाँकी बुझाउनु पर्छ ।" (तहसील कार्यालय में जाकर मालगुजारी देनी पड़ती है ।) "...शिवनारायणकी हराएकी बहिनी यिनीहरूको निम्ति मामुली मालभएर रहनेछ ।" (...शिवनारायण की खोई हुई बहन इन लोगों के लिए मामूली चीज होकर रहेगी ।) ए०शि० । हु०म०प्र० पृ० 309 । "हामी गोर्खा बहादुर-लाई पनि साजा नभएको माल चाहिन्छ ।" (हम गोर्खा बहादुर को साथ न देकर चीज चाहते हैं ।) शि०फू०गा० पृ० 58 । "राजेशले माल मुसारदै भने ।" (राजेश ने गाय की लटकनेवाली मांसपट्टी सहलाते हुए कहा ।)

ने० में सं० के अर्थ का अर्थादेश सादृश्य के आधार पर हुआ है, पर अ० के अर्थ-परिवर्तन में सम्बद्धता का भाव है ।

याबत् (तत्स० । सं० > हि० I, ने० II)

सं० 'यावत्' का अर्थ है— जितना, जहाँ तक । सं०को०सु० पृ० 303 ।

हि० 'यावत्' का अर्थ है—जब तक, जिस समय तक, कुल, सब । इनमें परिमाणवाचकता के कारण सं० 'जितना' अर्थ हि० में 'कुल' या 'सब' हो गया लगता है । 'जब तक' अर्थ का विकास सं० 'जहाँ तक' से हुआ जान पड़ता है, क्योंकि दोनों में 'तक' लगाकर सीमा बाँध दी गई है । सं० का स्थानवाला भाव हि० के इन अर्थों में समयवाची बन गया है । यथा, "यावत् जिन्दा हूँ, तब तक तो सबका ख्याल रखना ही है ।"

विपरीत, ने० 'यावत्' का एक ही अर्थ है—सब । एन-एन-ई-पी-1389 । ने० का यह अर्थ भी सं० 'जितना' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में परिमाण का बोध कराने का समान भाव है । हि० की तरह ने० ने अन्य अर्थों को

विकसित नहीं किया है। यथा, "उमलाई लाग्यो, कोठाभित्र ती यावत कुरा मानो रुंगमगाइरहेका छन्।" (उसे लगा, कोठरी के अन्दर सारी बातें मानो धूमिल हो रही हैं या गड्डमड्ड हो रही हैं।) मु० । बी० पी० को० पृ० 92।

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

रल्ल (दे० । हि० I, ने० I)

'रल्ल' हि० और ने०—दोनों में एक देशज शब्द माना गया है।

हि० 'रल्ल' का विकास हि० 'रेला' से माना गया है, जबकि 'रेला' स्वयं एक देशज शब्द है। 'रल्ल' का अर्थ होता है—'धक्कमधक्का', 'हल्ला'। यथा, "वहाँ आदमी का रल्ल एक-दूसरे की दुर्गति कर रहा है।"

विपरीत, ने० 'रल्ल' का अर्थ है—किंकर्तव्यविमूढ़, उधेड़बुन। एन-एन-ई-पी-1407। अनेक तरह के विचारों के कारण या विचारों की भीड़ के कारण शायद आदमी उधेड़बुन में पड़ जाता है, सम्भवतः इसी भाव से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "यस्तो परिस्थितिमा म त रल्ल परें।" (ऐसी परिस्थिति में मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया।)

रसिया (तद्० । सं० रसिकः >हि० I, ने० I)

सं० 'रसिकः' का अर्थ होता है—रसज्ञ, प्रेमी, मर्मज्ञ, विद्वान्, हाथी, सारस, घोड़ा। सं०को०मु० पृ० 311।

हि० 'रसिया' का अर्थ है—रसिक या रस लेनेवाला, एक प्रकार का गाना जो फाल्गुन में ब्रज-बुन्देलखण्ड में गाया जाता है। इनमें प्रथम अर्थ सं० 'रसज्ञ' के समान है और दूसरा अर्थ सं० 'प्रेम' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि ऐसा गाना मुख्यतः प्रेम-सम्बन्धी हुआ करता है। यथा, "वे संगीत के बड़े रसिया हैं।"

विपरीत, ने० 'रसिया' का अर्थ होता है—'एक तरह का लोकगीत।' एन-एन-ई-पी-1410। चूँकि ऐसे प्रसङ्गों में प्रेम-प्रसङ्ग रहता है, सम्भवतः इसलिए सं० 'प्रेम' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। हि० में इस तरह के गाने को जहाँ समय और स्थान से बाँध दिया है, वहाँ ने० ने इसे सामान्य लोकगीत का दर्जा दिया है—यह भिन्नता आ गई है। यथा, "रातिको निस्तब्धतामा रसियाको मधुर ध्वनि गुंजिरहेको थियो।" (रात्रि की निस्तब्धता में लोकगीत की मधुर ध्वनि गूँज रही थी।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

लखौरी (तद्० । सं० लाक्षा+औरी>हि० I, ने० I)

सं० 'लाक्षा' का अर्थ है—लाख, लाह, लाह बनाने वाला कीड़ा। एस-ई-डी-पी-479। इसी 'लाक्षा' से हि० और ने० 'लाख' का विकास हुआ है जिसमें 'औरी' प्रत्यय को जोड़कर 'लखौरी' शब्द बनाया गया है।

हि० 'लखौरी' का अर्थ होता है—एक प्रकार की भ्रमरी या भृङ्गी का घर, एक प्रकार की छोटी पतली ईंट। चूँकि 'लाह' भी एक तरह के कीड़े का घर है, सम्भवतः

इसलिए हि० का प्रथम अर्थ आया है। 'ईंट' का रंग 'लाह' की तरह होता है, अतएव 'ईंट' अर्थ आया लगता है। यथा, "उसने घर निर्माण के लिए लखौरी का ढेर लगा दिया है।"

विपरीत, ने० 'लखौरी' का अर्थ होता है—वेश्या, चरित्रहीन, छिनाल। एन-एन-ई-पी-1449। इस अर्थ का विकास सम्भवतः सं० 'लाह बनाने वाला कीड़ा' अर्थ से हुआ होगा, क्योंकि क्षुद्र आकार और कीड़ा होने के कारण जिस तरह लाह का कीड़ा उपेक्षणीय होता है, उसी तरह समाज की दृष्टि में वेश्या या चरित्रहीना भी। दूसरी सम्भावना यह प्रतीत होती है कि सम्भव है, इस अर्थ का विकास सं० 'लाह' से हुआ हो। पहले के जमाने में शृंगार-प्रसाधन के रूप में लाह की चूड़ियाँ वेश्याएँ ही मुख्य रूप से प्रयुक्त करती थीं, सम्भव है, इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ हो। यथा, "आफ्नो यति गहिरो माया पिरती चटक्कै चुँडालेर जाने लखौरी केटी को माया।" (अपना इतना गहरा प्रेम-प्रीत को एकाएक तोड़कर जानेवाली वेश्या को किस चीज का प्रेम।) न०स०को०गी०। रजनि० पृ० 10। —(ने० अर्थादेश : अपकर्षमूलक)

लहना (तद्० । सं० लभनं > हि० I, ने० I)

सं० 'लभनं' का अर्थ है—पाने की क्रिया, गर्भधारण। एस-ई-डी-पी-177।

हि० 'लहना' का अर्थ है—प्राप्त करना, उधार दिया हुआ रुपया पैसा, रुपया जो किसी कारण से मिलनेवाला हो। इसमें प्रथम अर्थ सं० के समान ही है और तीसरे अर्थ में भी रुपया प्राप्त करने का भाव है। रुपया उधार इसलिए दिया जाता है कि बाद में मूल के साथ-साथ लाभ के रूप में सूद भी प्राप्त होगा। इस तरह इन सभी अर्थों में प्राप्त करने का भाव है जिससे ये सं० 'पाने की क्रिया' अर्थ से विकसित लगते हैं। यथा, "लहना में मेरा बहुत रुपया पैसा फँस गया है।"

विपरीत, ने० 'लहना' का अर्थ है—कर्ज, लेन-देन, कारबार, सगाई। एन-एन-ई-पी-1470। कर्ज देने में या लेन-देन अथवा कारबार में कुछ प्राप्त करने की आकांक्षा होती है, संभवतः इसलिए ये अर्थ सं० 'पाने की क्रिया' अर्थ से विकसित हुए होंगे। 'सगाई' अर्थ भी इसी से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि इसमें भी वर अथवा वधू को प्राप्त करने का भाव निहित है। यथा, "सुबेदारनी बोलिन्—लहना गुँथ्याएपछि के बाँकी !" (सूबेदारनी बोली—सगाई हो जाने पर (अब) क्या बाकी !)

—(ने० अर्थ-विस्तार : विविधीकरण)

लेखा (तद्० । सं० लेखः > हि० I, ने० I)

सं० 'लेखः' का अर्थ होता है—लिखावट, लिपि, निबन्ध, रचना, दस्तावेज। सं०को०मु० पृ० 331।

हि० 'लेखा' का अर्थ होता है—गणना, हिसाब-किताब, कूत, आय-व्यय का विवरण, अनुमान, विचार। हिसाब-किताब, आय-व्यय का विवरण और गणना, सभी लिखकर किया जाता है या लिखकर रखा जाता है, संभवतः इसी भाव के कारण सं० 'लिखावट' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ है। 'कूत' या 'अनुमान' अर्थ संभवतः सं० 'रचना' अर्थ से आया है, क्योंकि किसी भी साहित्यिक विधा में अनुमान (कल्पना)

का कुछ-न-कुछ आशय अवश्य लिया जाता है। यथा, "[illegible] इसका कोई लेखा (गणना) नहीं है।"

विपरीत, ने० 'लेखा' का अर्थ होता है— लेखा [illegible] हिसाब [illegible] विचार में। ने०श० पृ० 923। इसमें [illegible] अर्थ सं० '[illegible]' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि इनमें [illegible] है। [illegible] अर्थ सं० 'दस्तावेज' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि [illegible] के निमित्त होता है। यथा, "[illegible]" ([illegible] बाद, उनके निमित्त [illegible] हो गया।) [illegible] "मेरो लेखा न [illegible]" ([illegible]) बं० । लौ०ब०श० पृ० 81।

— ([illegible])

संस्थान (तत्० । सं० [illegible] हि० II, ने० II)

सं० 'संस्थान' का अर्थ होता है— मृत्यु, [illegible] जगह, बनावट, मानना, चौराहा, चौक। सं०[illegible] पृ० [illegible]।

हि० 'संस्थान' का अर्थ है [illegible] जीवन, देश, बस्ती, [illegible] स्थान, राज्य, योग, मृत्यु। [illegible] रहना, बैठाना, अस्तित्व, देश, जीवन, बस्ती, [illegible] स्थान और [illegible] 'टिकने की जगह' अर्थ से [illegible] लगते हैं, क्योंकि [illegible] है। 'मृत्यु' अर्थ सं० के समान ही है। 'योग' अर्थ सं० 'चौराहा' अर्थ से आया होगा, क्योंकि चौराहे पर भी चार [illegible] का योग होता है। यथा, "औद्योगिक [illegible] के विकास के लिए [illegible] ध्यान देना चाहिए।"

विपरीत, ने० 'संस्थान' का अर्थ होता है [illegible] एन-एल-ई-पी-1636। सं० 'टिकने की जगह' अर्थ से '[illegible]' अर्थ का विकास हुआ लगता है। सं० 'चौराहा' अर्थ और ने० [illegible] अर्थ [illegible] है, क्योंकि दोनों में [illegible] है। यथा, "[illegible] कालमैं पारलौकिक संस्थानको निर्माण [illegible]" ([illegible] काल में ही पारलौकिक [illegible] निर्माण [illegible])

— ([illegible])

सट्टा (तद्० । सं० सट्ट [illegible] हि० I, ने० I)

सं० 'सट्ट' का अर्थ होता है— किसी पूर्ण पदार्थ का [illegible] होना। सं०कौ०मु० पृ० 517।

हि० 'सट्टा' का अर्थ है [illegible] व्यापार विशेष, लेखा। इसमें '[illegible]' अर्थ पर [illegible] का प्रभाव दीखता है, क्योंकि [illegible] में सभी [illegible] है। 'व्यापार विशेष' अर्थ संभवतः सं० 'किसी पूर्ण पदार्थ का [illegible] होना' अर्थ से आया है, क्योंकि इसमें पूँजी की [illegible] नहीं होती, [illegible] मतलब होता है। यथा, "[illegible] सट्टे में सब कुछ गँवा दिया।"

विपरीत, ने० 'सट्टा' का अर्थ होता है—बदलना, हेरफेर करना, बट्टा, विनिमय। एन-एन-ई-पी 1653। ये सारे अर्थ सं० 'पूर्ण पदार्थ का एक हिस्सा होना' अर्थ से आये लगते हैं, क्योंकि बदलना, बट्टा लेना या विनिमय करना पूरा व्यापार नहीं, उसका एक अंश है। यथा, "दुइवटी दुध दिने गाईको सट्टा अब पाँचवटी गाईहरू भए।" (दो दूध देने वाली गायों के बदले अब पाँच गायें हुईं।) मु० श्रा० । बां० पृ० 108। 'म सट्टा फेर्छु।" (मैं बदला लूँगा।) क० सं० । मा० पृ० 27। "दुब्लाउनुको सट्टा एम० के० एकदम मोटाएको देखिन्थ्यो।" (दुबलाने के बदले एम० के० एकदम मुटा गया दीखता था।) आ० र० छ० । ए० न० रा० पृ० 120।

—(हिं० अर्थादेश : लक्षणा)

सत (तद्० । सं० सत्त्वः>हिं० I, ने० II)

सं० 'सत्त्वः' का अर्थ होता है—अस्तित्व, नित्यमानता, जन्मजात स्वभाव, मांस का लोथड़ा, भ्रूण, जीवन, मन, प्रेत, मूलतत्त्व। सं०श०कौ०मू० पृ० 318।

सं० 'सत्त्वः' से विकसित हिं० 'सत' का अर्थ होता है—मूलतत्त्व, सारभाग, जीवनी-शक्ति, ताकत। इनमें 'मूलतत्त्व' और 'सारभाग'—दोनों अर्थ समान हैं और सं० 'मूलतत्त्व' से स्पष्टतः आए हैं। इसी प्रकार सं० 'जीवन' अर्थ से 'जीवनी-शक्ति' या 'ताकत' अर्थ का विकास हुआ होगा, क्योंकि 'जीवनी-शक्ति' या 'ताकत' के बिना जीवन का अस्तित्व ही नहीं रहेगा। यथा, "उसका चेहरा ऐसा निस्तेज था जैसे सारा सत (जीवनी-शक्ति) ही चुक गया हो।"

ने० 'सत' का अर्थ होता है—किसी वस्तु का सार या अर्क। एन-एन-ई-पी-1653। हिं० में 'अर्क' जैसा अर्थ नहीं होता जैसा कि ने० में होता है। इसके अलावा, ने० ने हिन्दी की तरह बहुत सारे अर्थों को विकसित नहीं किया है। ने० का यह अर्थ सं० 'मूलतत्त्व' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि जो सार या अर्क है, वही उसका मूलतत्त्व होता है। यथा, "तिम्रो यो भनाईमा सत छैन।" (तुम्हारे इस कथन में सार नहीं है।)

—(हिं० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

सर (वि० । फा०>हिं० I, ने० II)

फा० 'सर' का अर्थ होता है—सिर, कपाल, खोपड़ी, चोटी, उत्तम, शरीफ, विजित, प्रति, जिम्मे। उ०हिं०को० पृ० 318।

फा० से आये हिं० 'सर' का अर्थ होता है—सिर, दमन किया हुआ। फा० 'विजित' अर्थ से हिं० 'दमन किया हुआ' अर्थ का विकास हुआ लगता है, क्योंकि जो विजित होता है, उसे अनेक तरह का दमन सहना पड़ता है। 'सिर' अर्थ दोनों में समान हैं। यथा, "मार-मारकर उसे सर कर दिया गया।"

ने० 'सर' का अर्थ है—विजय, सफलता, लाभ। एन-एन-ई-पी-1688। ये सारे अर्थ सं० 'विजित' अर्थ से विकसित हुए प्रतीत होते हैं, क्योंकि इनमें जीतने या लाभान्वित होने का वैसा ही भाव है, जैसा कि किसी को विजित बनाने में। यथा, "पानीपतको युद्धमा अकबरले भारतको सर गरे।" (पानीपत के युद्ध में अकबर ने भारत पर विजय प्राप्त की।)

—(हिं० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

सरासर (वि० । फा०>हि० I, ने० I)

फा० 'सरासर' का अर्थ होता है—इस सिरे से उस सिरे तक, बिलकुल, अत्यन्त, नितान्त । उ०हि०वि० पृ० 319 ।

हि० 'सरासर' का अर्थ होता है—एक सिरे से दूसरे सिरे तक, बिलकुल, पूर्णतया, साक्षात्, प्रत्यक्ष । इनमें प्रथम और द्वितीय अर्थ फा० की तरह ही है । 'पूर्णतया' अर्थ सं० 'इस सिरे से उस सिरे तक' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि इस सिरे से उस सिरे तक में पूरी वस्तु का बोध हो जाता है । 'साक्षात्' या 'प्रत्यक्ष' अर्थ सं० 'इस सिरे से उस सिरे तक' अर्थ से इसलिए आया लगता है कि इसमें भी वस्तु के प्रत्यक्ष रहने का भाव है । यथा, "यह सरासर (बिलकुल) झूठ बोल रहा है ।" या "सूर्य के रहते हुए भी सरासर (प्रत्यक्ष) दिन होने में तुम्हें सन्देह है ?"

ने० 'सरासर' का अर्थ होता है—धमाधम, फटाफट । एन-एन-ई-पी-1691 । ने० के ये अर्थ फा० 'बिलकुल' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि किसी जगह को तेजी से आवाज करते हुए बिलकुल पार कर जाने में 'फटाफट' या 'धमाधम' की आवाज होती है । 'फटाफट' या 'धमाधम' में जो लगातार ध्वनित होने का या एकदम पिल पड़ने का भाव है, वही भाव 'बिलकुल' में भी है । दूसरी सम्भावना यह है कि ये अर्थ फा० 'इस सिरे से उस सिरे तक' अर्थ से विकसित हुए होंगे, क्योंकि इस सिरे से उस सिरे तक तेजी से निकल जाने में 'धमाधम' या 'फटाफट' ध्वनि पैदा होती है । यथा, "अनि डाक्टर गोविन्दप्रसाद सरासर हिंडे ।" (फिर डाक्टर गोविन्दप्रसाद फटाफट चल दिये ।) ए०वि० । ह्र०न०प्र० पृ० 23 । "कस्तो अनौठो, ऊ सरासर घरभित्र पसी ।" (कैसा अनूठा, वह धमाधम घर के भीतर घुसी ।) शि०पृ० । पा० पृ० 72 । "जनक सरासरै थानाभित्र पसे ।" (जनक (गरजते हुए) धमाधम थाना के भीतर घुसा ।) आ०र०छ० । इ०ब०रा० पृ० 88 ।

—(हि० और नेपाली : व्याकरण)

सवाई (तद्० । सं० सपाद>हि० I, ने० I)

सं० 'सपाद' का अर्थ होता है—पैरों वाला, पैर समेत, सवा । सं० को० मू० पृ० 523 । सं० के इसी 'सपाद' से 'सवा' बना है और इसमें 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से 'सवाई' शब्द बना है ।

हि० 'सवाई' का अर्थ होता है—ऋण का एक प्रकार जिसमें मूलधन का चतुर्थांश ब्याज से देना पड़ता है, जयपुर के महाराजाओं की एक उपाधि, एक और चौथाई । इसमें प्रथम और तृतीय अर्थ स्पष्टतः सं० 'सवा' अर्थ से विकसित हुए हैं, क्योंकि प्रथम अर्थ में भी मूलधन ब्याज को मिलाकर सवा हो जाता है । द्वितीय अर्थ एक उपाधि है जो सम्भवतः सं० 'सवा' अर्थ से इसलिए विकसित हुआ होगा कि वहाँ के महाराजाओं की ताकत दूसरे राजा की तुलना में सवागुना होगी । यथा, "चार ही महीने में मूलधन सवाई हो जाता है ।"

ने० 'सवाई' का अर्थ होता है—चौथाई, एक प्रकार का नेपाली छन्द जिसमें चार चरण होते हैं । ने० श० पृ० 1060 । एन-एन-ई-पी-1702 । इनमें सं० 'सवा' अर्थ से ने० का 'चौथाई' अर्थ विकसित हुआ लगता है, क्योंकि सवा में एक और चौथाई

का भाव है। ने० 'एक तरह का छन्द' अर्थ सं० '[illegible]' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि ऐसे छन्द में भी चार चरण (पैर) होते हैं। यथा, "नेपाली संगीतमा सवाईको पनि महत्वपूर्ण स्थान छ।" (नेपाली संगीत में सवाई छन्द का भी महत्वपूर्ण स्थान है।)

—(हि० अर्थ-विस्तार : [illegible])

सांग (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'सांग' का अर्थ होता है—अंगसहित, भरा-पूरा। सं० को० गु० पृ० 547।

हि० 'सांग' का अर्थ होता है—सम्पूर्ण, पूरा। ये अर्थ सं० 'भरा-पूरा' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि भरी-पूरी चीज ही सम्पूर्ण मानी जाती है। यथा, "जब वह सांग पानी में डूब गया, तब लोगों ने शोर मचाना शुरू किया।"

विपरीत, ने० सांग का अर्थ होता है—यज्ञ की समाप्ति का अन्तिम दिन, प्रतिष्ठा। एन-एन-ई-पी 1713। अन्त दिन के बाद यज्ञ समाप्त या पूरा हो जाता है, अतएव यह अर्थ सं० 'भरा-पूरा' अर्थ से विकसित हुआ लगता है। 'भरा-पूरा' में भी पूर्ण रूप से भरे होने का भाव है और ने० अर्थ में भी पूर्ण रूप से समाप्त होने का। 'प्रतिष्ठा' अर्थ भी इसी 'भरा-पूरा' अर्थ से विकसित हुआ होगा, क्योंकि जो सभी दृष्टि से भरा-पूरा होता है, उसी की प्रतिष्ठा भी होती है या प्रतिष्ठित व्यक्ति हर दृष्टि से भरा-पूरा होता है। यथा, "आज त पुराणको सांगमा दिन हुनाले सबैले जानु पर्छ।" (आज तो पुराण की समाप्ति का अन्तिम दिन होने से सबको जाना पड़ेगा।)

—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

सुस्त (वि० । फा० > हि० I, ने० I)

फा० 'सुस्त' का अर्थ होता है—आलसी, मंद, काहिल, दुर्बल, खिन्न, उदास, शिथिल, निढाल। उ० हि० हि० पृ० 328।

हि० 'सुस्त' का अर्थ होता है—दुर्बल, उदास, हतप्रभ, जिसकी प्रबलता घट गई हो, आलसी, धीमी चाल वाला। इनमें 'हतप्रभ' अर्थ फा० 'उदास' अर्थ से, 'जिसकी प्रबलता घट गई हो' अर्थ फा० 'दुर्बल' अर्थ से और 'धीमी चाल वाला' अर्थ फा० 'शिथिल' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि इन अर्थों का भाव लगभग समान है। शेष अर्थ स्पष्टतः फा० के सदृश हैं। यथा, "मुकदमे का फैसला सुनकर तुम सुस्त (हतप्रभ) क्यों पड़ गये?"

विपरीत, ने० 'सुस्त' का अर्थ होता है—ढीला, धीरे-धीरे काम करना, आलसी, धीरे-धीरे। एन-एन-ई-पी-1764। इनमें 'ढीला' अर्थ फा० 'निढाल' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि जब कोई निढाल होकर पड़ता है तो अंगों को ढीला छोड़ देता है। 'धीरे-धीरे काम करना' और 'धीरे-धीरे' अर्थ फा० 'शिथिल' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि शिथिलता में धीरे-धीरे का भाव है। वैसे, काहिल लोग किसी काम को धीरे-धीरे करते हैं, अतएव 'धीरे-धीरे काम करना' अर्थ को फा० 'काहिल' से भी विकसित माना जा सकता है। यथा, "कुकुरपनि उसको पछि-पछि सुस्त-सुस्त हिँडिरहेथ्यो।" (कुत्ता भी उसके पीछे-पीछे धीरे-धीरे चल रहा था।) ल० गा०। बा० पृ० 31।

—(हि० अर्थ-विस्तार : विभेदीकरण)

हूल (तद्० । सं० हूल् → हि० ।, ने० ।)

सं० 'हूल' का अर्थ होता है—जाना, ढाँकना, छिपाना । एस-ई-डी-पी 641 ।

हि० 'हूल' का अर्थ है—भाले, डंडे आदि की नोक की ओर से ठेलना या भोंकना, हूक, पीड़ा, कोलाहल, ललकार, हर्षध्वनि । भोंकने में नोक शरीर के भीतर जाती है, अतएव सं० 'जाना' अर्थ से हि० का प्रथम अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है । 'हूक' या 'पीड़ा' अर्थ हि० के 'भाले, डंडे आदि की नोक की ओर से ठेलना या भोंकना' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि इसमें उसे पीड़ा होती है जिसे भोंका जाता है । चूँकि कोलाहल, ललकार या हर्षध्वनि सभी तरह की आवाजों को ढँक लेती है, अतएव इन अर्थों का विकास सं० 'ढाँकना' अर्थ से हुआ लगता है । यथा, "मेरे अन्दर हूल उठ रही है ।"

विपरीत, ने० 'हूल' का अर्थ है—भीड़, फौज । ने० श० पृ० 1141 । ये अर्थ सं० 'ढाँकना' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि भीड़ या फौज व्यक्ति की व्यक्तिगत पहचान (आइडेन्टिटी) को ढँक लेती है । यथा, "प्रांगण भरि किरात भिल्लहरु को हूल तपोभूमिका वृक्षका छहारी भुनि एकत्रित थियो ।" (प्रांगण के अगल में किरात-भीलों की भीड़ तपोभूमि के वृक्ष की छाया के नीचे एकत्र थी ।) सु० । बी० पी० को० पृ० 13-14 । "हाम्रो तन्नेरी बुढापाका सरह घुमराली बोकेर हूल का हूल मुगलान तिर पसे ।" (हमारे युवक बूढ़े की तरह बाघ का छाता लिए झुंड का झुंड भारत की ओर गये ।)
—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

है (तद्० । सं० अस्ति → हि० ।, ने० ।)

सं० 'अस्ति' का अर्थ होता है—स्थिति, विद्यमानता । सं० को० गु० पृ० 41 ।

हि० 'है' हि० 'होना' क्रिया का वर्तमानकालिक एकवचन रूप में व्यवहृत होता है । 'है' में विद्यमानता का भाव है, अतएव ऐसा अर्थ विकसित हुआ है । यथा, "वह आज घर पर है ।"

विपरीत, ने० 'है' का प्रयोग स्वीकृति का अर्थ या संकेत करने का शब्द—के रूप में होता है । एस-एस-ई-पी-1800 । ने० के इस अर्थ में स्वीकृति का जो भाव है, वही स्वीकृतिसूचक भाव (एफर्मेटिव सेन्स) सं० 'विद्यमानता' में भी है, सम्भवतः इसलिए सं० 'विद्यमानता' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है । यथा, "तिमी छिटो आऊ है ।" (तुम जल्दी आओ, हाँ ।) ने० श० पृ० 1143 ।
—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

हो (तत्स० । सं० → हि० ।, ने० ।)

सं० 'हो' सम्बोधित करने या ललकारने या अचंभा प्रकट करने का शब्द माना जाता है । सं० को० गु० पृ० 622 ।

हि० 'हो' का प्रयोग 'पुकारने का शब्द या सम्बोधन' के रूप में किया जाता है । यह अर्थ सं० 'सम्बोधित करने का शब्द' अर्थ से स्पष्टतः विकसित है । यथा, "हो भाई, क्या कर रहे हो ?"

विपरीत, ने० 'हो' का प्रयोग 'हाँ' या 'स्वीकृतिबोधक शब्द' के रूप में होता

है। एन-एन-ई-डी-1861। सम्भवतः सम्बोधित करने पर उधर से [illegible] आवाज आने के कारण ने० का ऐसा अर्थ आया होगा। यथा, "……आफ्ना आश्रमको दर्शन गराउँ-भन्ने उनको इच्छा हुँदो हो……।" (……अपने आश्रम का दर्शन कराने की उनकी इच्छा हुई, हाँ।) मु० । बी० पी० को० पृ० 2। "एम० के० 'हो-हो' भनि रह्यो।" (एम० के० 'हाँ-हाँ' कहता रहा।) आ० र० [illegible] । [illegible] पृ० 190।

इ : अ—विकासात्मक : अर्थादेश

किसी वस्तु का नाम उससे विकसित रूपों के लिए प्रयुक्त हो सकता है।[1] इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि एक ही वस्तु से अन्य वस्तुओं का जन्म हो या एक भाव से अन्य भाव भी विकसित हों तो बाद के विकसित पदार्थ या भाव के लिए पहले से प्रचलित शब्द का व्यवहार किया जा सकता है। इस तरह विकसित हुई वस्तु या विकसित हुए भाव का नाम आधार के नाम पर ही पड़ सकता है।

एक ही मूल से दो भिन्न भाषाओं में विकसित होने वाले शब्द के अर्थ कभी-कभी आपस में भिन्न हो जाते हैं, पर दोनों ही भाषाओं के अर्थ जब अपने मूल के अर्थ के समान ही होते हैं, तब भी [illegible] अर्थादेश कहलाता है।

कल (तद्० । सं० कला > हि० I, ने० I)

सं० 'कला' का अर्थ होता है [illegible] का 16वाँ भाग, टुकड़ा, नौका, कपट, ऐश्वर्य, संख्या, [illegible] आदि, 64 कलाएँ, सामर्थ्य। सं० को० सु० पृ० 83।

सं० 'कला' से विकसित हि० 'कल' का अर्थ होता है—ओर, बल, पहलू, अंग, पुरजा, ढंग, यंत्र। इनमें 'ओर' अर्थ '[illegible] का 16वाँ भाग' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि दोनों एक खास भाग का भाव रखते हैं। 'बल' अर्थ सं० 'सामर्थ्य' अर्थ के समान है। 'पहलू अंग, पुरजा' अर्थ सं० 'टुकड़ा' अर्थ से आए लगते हैं, क्योंकि इनमें पूरे के एक हिस्से या टुकड़े का भाव है। 'ढंग' अर्थ पर सं० 'कपट' अर्थ का प्रभाव दीखता है, क्योंकि कपट भी व्यवहार का एक ढंग है। 'यंत्र' अर्थ सम्भवतः सं० 'नौका' अर्थ से विकसित हुआ है, क्योंकि नौका भी पार उतारने या [illegible] का एक यंत्र है। यथा, "उसने छल (कपट), बल और कौशल से अपना काम निकाल लिया।"

विपरीत, ने० 'कल' का अर्थ है [illegible] यंत्र (विशेषकर जल-निष्कासन यंत्र)। ने० हि० को० पृ० 31। ने० 'कलह' अर्थ सं० 'कपट' से विकसित लगता है, क्योंकि कपट कलह की जड़ है। 'यंत्र' अर्थ हि० की तरह ही आया लगता है, फिर भी ने० ने इसे विशेष रूप से 'जल-निष्कासन यंत्र' अर्थ करके हि० अर्थ से भिन्न कर दिया है। यथा, "बिचारी बाजेको कलमा जानुपर्‍यो।" (बिचारी बाजे को ट्यूबवेल में जाना पड़ा।) न० स० को० गी० । र० बि० पृ० 103। "चिया पनि नमागी कल खोलेर पानीमा पसे।" (चाय भी न माँगकर नल खोलकर पानी में घुस गया।) आ० र०

---

1. "…the material of which a t'ing is composed many become the special name of the article itself." M Breal- Semantics, p. 116.

छ० । इ० ब० रा० पृ० 148 । [illegible] कल मने आ रछो मैछ ।" ([illegible] मुझ
से कलह करने आई है ।) मो० र० अ० । नै० भू० पी० पृ० 28 ।

—(हि० अर्थादेश [illegible])

काजी (वि० । अ० > हि० II, ने० II)

अ० 'काजी' का अर्थ—न्यायकर्ता अथवा निर्णायक [illegible] है ।
अ० ता० उ० पृ० 221 ।

हि० में 'काजी' का अर्थ—न्यायकर्ता या मुसलमानों में धर्म और रीति के अनुसार न्याय की व्यवस्था करने वाला [illegible]—होता है । इस तरह हि० के ये अर्थ अ० 'न्यायकर्ता' अर्थ के समान ही है । यथा, "[illegible] झगड़े का निपटारा काजी ही करेंगे ।"

विपरीत, ने० 'काजी' का अर्थ 'सरकारी पद' होता है । [illegible] का एक मान-बोधक शब्द के रूप में भी 'काजी' का प्रयोग होता है । ने० हि० को० पृ० [illegible] । चूंकि 'न्यायकर्ता' का पद सरकारी होता था और माननीय भी, अतएव अ० 'न्यायकर्ता' अर्थ से इन अर्थों का विकास हुआ लगता है । यथा, "[illegible] छट्टीमा आएकी बमम कान्छा माऊनी भएर दुई हत्केला मा दुइटा थाल घुमाएर [illegible] काजी साहेबले फोटो पनि खिचेका थिए ।" (पल्लव की छट्टी में आए हुए, [illegible] हथेलियों में दो थालियाँ घुमाते हुए तेजी से [illegible] घूमते हुए [illegible] की तस्वीर भी काजी साहब (फोटोग्राफर) ने खींची थी ।) आ० [illegible] । इ० ब० रा० पृ० 96 ।

—(हि० अर्थादेश [illegible])

खोजी (तद्० । सं० √खुज् > हि० II, ने० II)

सं० 'खुज्' धातु से हि० 'खोज' और इससे हि० 'खोजना' का विकास हुआ है । ने० 'खोजी' का विकास भी इसी 'खुज्' धातु से हुआ है । सं० 'खुज्' का अर्थ होता है चुराना, खोजना । सं० को० मू० पृ० 106 ।

हि० में 'खोजी' का अर्थ होता है खोजने या ढूंढनेवाला । स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'खोजना' से विकसित हुआ है । यथा, "तुम्हारे जैसा खोजी कहीं भी ढूंढ लेगा ।"

विपरीत, ने० 'खोजी' का अर्थ है—खोज, अन्वेषण, अनुसंधान । [illegible] पी-357 । स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० 'खोजना' अर्थ से विकसित हुए है, क्योंकि इन सबमें खोजने का भाव है । यथा, "[illegible] ले प्रथम सिपाहीलाई [illegible] खोजीगर्ने निश्चय गर्‍यो ।" ([illegible] ने पहले सिपाहियों को [illegible] खोज करने का निश्चय किया ।) मु० बा० । बी० पृ० 171 । "[illegible] मनमा [illegible] दिनभर [illegible] खोजीका निहुमा [illegible] इसी भावना को मन में लेकर दिनभर बाछा की खोज के बहाने यहाँ और वहाँ खोजता रहा ।) न० स० को० सी० । [illegible] पृ० [illegible] । "[illegible] खोजी [illegible] आली महारी हिङ्‌ग्यो ।" ([illegible]

के खजाना के अनुसन्धान और आविष्कार में हम दोनों प्राणी खेल-खेत और आल-आल (चारों ओर) घूमते थे।) ने० दा० । वि० प्र० को० पृ० 9।

—(हि० अर्थादेश : समाहरण)

चोब (वि० । फा०>हि० II, ने० II)

फा० 'चोब' का अर्थ होता है—लकड़ी, काठ। उ० हि० दि० पृ० 150।

हि० 'चोब' का अर्थ होता है—शामियाना खड़ा करने का खूँटा, नगाड़ा या ताशा बजाने की लकड़ी, सोने या चाँदी से मढ़ा हुआ डंडा, छड़ी, सोटा। चूँकि ये सारे पदार्थ लकड़ी के बने होते हैं, अतएव इनका विकास फा० 'लकड़ी' अर्थ से हुआ प्रतीत होता है। यथा, "शामियाना तो आ गया, पर चोब कब आयगा ?"

विपरीत, ने० 'चोब' का अर्थ है—'लासा'। ने० हि० को० पृ० 83। चूँकि 'लासा' (गोंद) भी वृक्ष से ही प्राप्त होता है जिससे लकड़ी प्राप्त होती है, संभवतः इसी समान आधार के कारण फा० 'लकड़ी' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। यथा, "खाममा चोबदलेर टिकट टाँस।" (लिफाफे में लस्सा लगाकर टिकट साटो।)

—(हि० अर्थ-संकोच : सामान्य से विशेष)

जवा (तद्० । सं० यवः>हि० I, ने० I)

सं० 'यवः' का अर्थ होता है—जौ नामक अन्न, तौल का एक परिमाण। सं० को० सु० पृ० 301।

सं० 'यवः' से विकसित हि० 'जवा' का अर्थ होता है—लहसुन का दाना। चूँकि लहसुन के दाने की आकृति भी जौ के दाने की तरह होती है, संभवतः इसलिए ऐसा अर्थादेश हुआ है। यथा, "बिना जवा के मछली अच्छी नहीं बनती।"

विपरीत, ने० 'जवा'—जमीन या खेत की एक नाप-इकाई—को कहते हैं। ने० हि० को० पृ० 94। सं० 'तौल का एक परिमाण' अर्थ से ने० का यह अर्थ विकसित हुआ लगता है, क्योंकि दोनों में मापने का भाव है। यथा, "म उसकालागि एक जवा जमीन छोड्न सक्तिन।" (मैं उसके लिए एक जवा (परिमाण) जमीन नहीं छोड़ सकता हूँ।)

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

तारतम्य (तत्स० । सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'तारतम्यं' का अर्थ होता है—न्यूनाधिक्य, अन्तर, तुलनात्मक मूल्य या पारस्परिक महत्त्व। एस-ई-डी-पी-233। सं० को० सु० पृ० 134।

हि० 'तारतम्य' का प्रयोग—न्यूनाधिक्य, गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान, कमी-बेशी के हिसाब की तरतीब के अर्थ में होता है। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं० अर्थ के समान ही हैं। यथा, "यदि पहले से आज के समय की तुलना करते हैं तो कोई तारतम्य नहीं बैठता।"

विपरीत, ने० 'तारतम्य' का अर्थ होता है—संयोगवश होनेवाली सफलता, मौका, अवसर। ने० हि० को० पृ० 133। दूसरे समय की तुलना में जो समय गुण, परिमाण आदि की दृष्टि से अनुकूल पड़ता है, उसको मौका, अवसर या संयोग कहते हैं।

अतएव ये सारे अर्थ सं० 'गुण, परिमाण आदि का परस्पर मिलान' अर्थ से विकसित हुए जान पड़ते हैं। यथा, "राजाको तारतम्य मिलिसकेकोले दुश्मनहरू हारे।" (राजा को अवसर मिल गया, इसी से दुश्मनों की हार हुई।)

तैनात (वि० । अ० तएेयुन का बहु० तअय्युनात>हि० I, ने० II)

अ० 'तएेयुन' का अर्थ होता है—नियुक्ति, निश्चय, नियम। उ० हि० डि० पृ० 132।

हि० 'तैनात' का अर्थ होता है—किसी काम पर लगाया या नियत किया हुआ, नियुक्त, मुकर्रर। स्पष्ट है कि ये अर्थ अ० की तरह ही हैं। यथा, "सीमा-रक्षा के लिए सिपाही तैनात कर दिये गए।"

विपरीत, ने० में 'तैनात' का प्रयोग—ताल्लुक, मातहत—अर्थ में होता है। ने० हि०को०पृ० 137। ये अर्थ अ० 'नियुक्ति' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि नियुक्ति के बाद ही कार्यालय के काम से ताल्लुक होता है और किसी के नीचेवाले पद पर नियुक्त होने के बाद ही ऊपर वाले का मातहत बनता है। यथा, "सबै तैनात कर्मचारीहरूलाई यो सूचना दिनु पर्छ।" (सभी मातहत कर्मचारियों को यह सूचना देनी होगी।)

धमाधम (दे० । अनु० धम>हि० I, ने० I)

पैर पटकने या किसी भारी चीज के गिरने से 'धम' की आवाज होती है। इसी 'धम' ध्वनि के अनुकरण के आधार पर हि० या ने० 'धमाधम' शब्द को निर्मित किया गया है।

हि० 'धमाधम' का अर्थ होता है—लगातार कई बार धम-धम शब्द के साथ, शब्दों के साथ लगातार कई प्रहार, मारपीट, गिरने से उत्पन्न 'धम-धम' ध्वनि। प्रहार करने पर या मारपीट में इस तरह की आवाज पैदा हो जाती है, अतएव इन अर्थों का विकास भी इसी ध्वनि के अनुकरण पर हुआ लगता है। अन्य अर्थों में 'धम' ध्वनि का स्पष्ट संकेत है जिससे पता चलता है कि ये अर्थ भी इसी ध्वनि से ग्रहण किए गए हैं। यथा, "उसने धमाधम कई लाठी लगा दी।"

विपरीत, ने० 'धमाधम' का अर्थ है—जल्दबाजी, लगातार, धड़ाधड़। एन-एन-ई-पी-894। 'धम-धम' ध्वनि की आवृत्ति से ही 'धमाधम' शब्द का विकास हुआ है। धम-धम में इस तरह की आवाज का जल्दी-जल्दी या लगातार पैदा होने का भाव है जिससे ने० के ये अर्थ विकसित हुए लगते हैं। यथा, "पुरोहित बाजेहरूले धमाधम सारा घर गुंजिने गरीदान पुण्यको सुकर्म गर्न थाले।" (पुरोहित बाजे ने धड़ाधड़ सारे घर को गुंजाते हुए दान-पुण्य का सुकर्म कर दिया।) क० सं० । गो० पृ० 40। "बितेको दिनहरू मेरो पीठ्यूतिर धमाधम खस्दै, नानाकिसिमका, विभिन्न आकारका गुफाहरू रच्दै थप्प-थप्प बसेका छन्।" (बीते हुए दिन मेरी पीठ से लगातार गिरकर, अनेक किस्म और विभिन्न आकार की गुफाओं का निर्माण करके बैठ गये हैं।) न० दा० । वि० प्र० को० पृ० 1।

पेला (तद्० । सं० √पेल्>हि० I, ने० I)

सं० 'पेल्' धातु का अर्थ होता है—जाना, बढ़ना, हिलाना, काँपना। एस-ई-डी-पी-348।

हि० 'पेला' का अर्थ है—पेलने की क्रिया या भाव, तकरार, आक्रमण। हि० के ये अर्थ सं० 'जाना' या 'हिलाना' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं, क्योंकि इन सभी अर्थों में गति का भाव है। पेलने की क्रिया या भाव पर सं० 'जाना' अर्थ का प्रभाव दीखता है, क्योंकि इसमें प्रेषण का भाव है। यथा, "आज दोनों पक्षों में ऐसा पेला हुआ कि लोग दंग रह गये।"

विपरीत, ने० 'पेला' का अर्थ है—प्रभाव, दबाव, आग्रह। एन-एन-ई-पी-1068। इन सारे अर्थों पर सं० 'जाना' और 'हिलाना' अर्थ का प्रभाव जान पड़ता है। बिना दबाव के हिलाना संभव नहीं है। जाने के लिए भी कभी-कभी दबाव की जरूरत पड़ती है। बाद में इसी 'दबाव' अर्थ से 'प्रभाव' और 'आग्रह' अर्थ विकसित हुए होंगे। यथा, "यस्तो पेलागर्नेको काम मबाट हुँदैन।" (इतना दबाव डालनेवाला काम मुझसे नहीं होगा।)

(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

पैठारी (तद्० । सं० प्रविष्टि>हि०-ने० पैठ>हि० I, ने० I)

सं० 'प्रविष्टि' से हि० और ने० 'पैठ' शब्द विकसित हुआ है और इसी में 'आरी' प्रत्यय के जुड़ने से 'पैठारी' शब्द बना है। सं० 'प्रविष्टि' का अर्थ होता है—घुसाना, पैठाना, प्रारंभ करना, काम में संलग्न होना। एस-ई-डी-पी-369।

हि० 'पैठारी' का अर्थ है—पैठ, प्रवेश, गति, पहुँच। इनमें 'पैठ' और 'प्रवेश' अर्थ सं० की तरह ही हैं और 'गति' तथा 'पहुँच' अर्थ सं० 'घुसाना' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। घुसाने में गति का भाव है और जहाँ तक जो घुस पाता है, वहाँ तक उसकी पहुँच मानी जाती है। यथा, "वहाँ मेरी पैठारी (प्रवेश) नहीं है।"

विपरीत, ने० 'पैठारी' का अर्थ—आयात या विदेश से माल मँगाना—होता है। एन-एन-ई-पी-1070। चूँकि इन अर्थों में भी बाहर से माल को देश के अन्दर (लाने) घुसाने का भाव है, अतएव ये अर्थ सं० 'घुसाना' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। यथा, "धानको भाउ चढ़ेर पनि यता भारततिर धान बेच्नलाई पैठारी खुलेपछि मात्रै बेतन पाइन्छ।" (धान का भाव चढ़ने पर भी यहाँ भारत की ओर से धान बेचने के लिए आयात प्रारंभ होने पर ही वेतन मिलेगा।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 114।

—(हि० अर्थादेश : अर्थापकर्ष)

पौल (तद्० । सं० प्रतोली>हि० I, ने० II)

सं० 'प्रतोली' का अर्थ होता है—गली, मुख्य सड़क, शहर की मुख्य गली। एस-ई-डी-पी-360।

हि० 'पौल' का प्रयोग—बड़ा दरवाजा या फाटक—अर्थ में होता है। चूँकि फाटक लोग मुख्य सड़क की बगल में बनवाते हैं, अतएव सं० 'मुख्य सड़क' अर्थ से हि० का यह अर्थ विकसित हुआ जान पड़ता है। दूसरी समानता यह है कि जिस तरह फाटक घर या दरवाजे के अन्दर जाने का मार्ग होता है, उसी तरह मुख्य सड़क भी शहर या किसी स्थान तक जाने का साधन है। यथा, "जैसे ही वे पौल से अन्दर आए, सारे लोग जय-जयकार करने लगे।"

विपरीत, ने० 'पौल' का अर्थ है—प्रशस्त, ज्यादा, अत्यन्त अनुसार। एन-एन-ई-पी-1075। ऐसा लगता है कि मुख्य सड़क में जो प्रशस्तता का भाव है, उसी से ऐसा

अर्थ आया है। यथा, "बाजारमा यस्ता राम्रा कपडाहरू पौल छन्।" (बाजार में ऐसे अच्छे कपड़े प्रशस्त हैं।)
—(हि० अर्थादेश : सम्बद्ध)

बरु (तद्० । सं० वर>हि० I, ने० II)

सं० 'वर' का अर्थ है—बढ़िया, अच्छा, श्रेष्ठ, सुन्दरतम। सं० को० सु० पृ० 342।

हि० 'वरु' का अर्थ है—भले ही, चाहे, कुछ हर्ज नहीं, वर, उत्तम, वरदान। इनमें 'वर, उत्तम और वरदान'—सबमें अच्छाई का भाव है, अतएव ये अर्थ सं० 'अच्छा' अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। 'भले ही, चाहे, कुछ हर्ज नहीं'—ये सारे अर्थ यद्यपि तुलनात्मक हैं, फिर भी अच्छाई का भाव लिये हुए हैं, क्योंकि अन्तिम परिणाम अच्छा नहीं हो तो लोग खतरा मोल नहीं लेंगे। इसलिए, ये अर्थ भी सं० 'श्रेष्ठ' अर्थ से ही सम्बद्ध हैं। यथा, "बरु तुम आज रुक जाओ तो अच्छा है।"

विपरीत, ने० 'बरु' का अर्थ होता है—अथवा, वा और उससे अच्छा। एन-एन-ई-पी-9961। 'अथवा, वा और उससे अच्छा'—ये सभी तुलनात्मक अच्छाई का बोध कराने के लिए प्रयुक्त होते हैं, अतएव इनका विकास सं० 'अच्छा' या 'श्रेष्ठ' अर्थ से हुआ लगता है। यथा, "अभागिनी त बरु म पो……।" (उससे ज्यादा अभागिनी तो मैं……।) मा० घ०। बां० पृ० 19। "सांहिला, संक्रान्ति का दिन नै बरु तिमी दुईको टीकाटालो गरिदिन पाएको भए जाती हुने थियो।" (सांहिला, अथवा संक्रान्ति के दिन ही तुम दोनों का टीका कर देना अच्छा होता।) मु० बा०। बां० पृ० 16।
—(हि० अर्थ-विस्तार : स्थानान्तरण)

बाजि (तद्० । सं० वार:>हि० I, ने० I)

सं० 'वार:' का अर्थ होता है—ढक्कन, समूह, रुकावट, राशि, दिन, बारी, दफा, दरवाजा, महादेव, तीर, निश्चित काल। सं० को० सु० पृ० 364।

हि० 'बाजि' का अर्थ 'तीर' होता है जो स्पष्टत. सं० से गृहीत है। यथा, "उसके बाजि का निशाना बड़ा पक्का है।"

विपरीत, ने० 'बाजि' का अर्थ है—खेप, बार, दफा। एन-एन-ई-पी-1177। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'बारी' या 'दफा' अर्थ से आए हैं। यथा, "अनि छिटो-छिटो चारैतिर एकबाजि आँखा घुमाई घुमाई हेर्नुभयो……।" (फिर जल्दी-जल्दी चारों ओर एकबार आँख घुमा-घुमाकर देखा……।) ए० चि०। ह्र०च०प्र० पृ० 54। "……कति-बाजि सपनामा पनि देखे सकें।" (……कितनी बार सपने में भी देख लिया।) बं०। ली० ब० क्ष० पृ० 31।

बैरागी (तद्० । सं० वैरागी>हि० I, ने० I)

सं० 'वैरागी' का अर्थ होता है—विरक्त, सांसारिक सुखों के प्रति उदासीन, एक वैष्णव सम्प्रदाय। सं० को० सु० पृ० 435।

हि० 'बैरागी' का अर्थ है—वैष्णव मत के साधुओं का एक भेद। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'एक वैष्णव सम्प्रदाय' अर्थ के समान ही है। यथा, "आज ठाकुरबाड़ी में एक बैरागी आये हुए हैं।"

विपरीत, ने० 'बैरागी' का अर्थ है—विरक्त, उदासीन। एन-एन-ई-पी-1220। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'विरक्त' और 'सांसारिक सुखों के प्रति उदासीन' अर्थ से ग्रहण

किये गये हैं। यथा, "म सांसारिक सबै सुखको परित्याग गरेर वैरागी भएको छु।" (मैं सभी सांसारिक सुख का परित्याग करके विरक्त हो गया हूँ।)

भेक (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'भेकः' का अर्थ है—मेंढक, कायर, मेघ। सं० को० मु० पृ० 259।

हि० 'भेक' का अर्थ 'मेंढक' होता है। यह अर्थ स्पष्टतः सं० का ही है। यथा, "भेक की टरटराहट से नींद नहीं आती।"

विपरीत, ने० 'भेक' का अर्थ होता है—डरपोक मनुष्य। ने० श० पृ० 799। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'कायर' के समान ही है। यथा, "यस्तो भेक मानिसबाट यो काम सम्भव छैन।" (ऐसे डरपोक मनुष्य से यह काम सम्भव नहीं है।)

युग (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'युगं' का अर्थ होता है—जोड़ा, जुआठ, जुआ, पुश्त, पीढ़ी, समय का एक लम्बा परिमाण, बारह वर्ष का समय। सं० को० मु० पृ० 341।

हि० 'युग' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—जोड़ा, जुआ, जुआठा, पासे के एक खेल की गोटियाँ, बारह वर्ष का समय, समय, पुराणानुसार काल का एक दीर्घ परिमाण। सं० 'समय का एक लम्बा परिमाण' अर्थ से हि० 'समय' अर्थ आया है, क्योंकि दोनों में समय का भाव है। 'पासे के खेल की गोटियाँ' अर्थ सम्भवतः सं० 'जुआठा' अर्थ से आया है, क्योंकि इसमें भी गोटियाँ होती हैं। शेष अर्थ सं० के समान ही हैं। यथा, "उनके युग-चरण मानो कमल के दो फूल हैं।"

विपरीत, ने० में 'युग' का अर्थ हि० की तरह 'जोड़ा' या 'जुआ' नहीं होता। ने० में इसका अर्थ है—जमाना, वक्त, बारह वर्ष का समय। एन-एन-ई-पी-1389। ये सारे अर्थ सं० 'समय का एक लम्बा परिमाण' और 'बारह वर्ष का समय' अर्थ से स्पष्टतः विकसित हैं, क्योंकि इन सबमें समय का भाव है। हि० में ने० की तरह 'जमाना' और 'वक्त' अर्थ प्रचलित नहीं हैं। यथा, "...बोलेको नेपेको आवाजले युग युगदेखि रुमलमा आएको जातीय अभिमानलाई ब्युझाई दियो माइली भाउजीका हृदयभित्र।" (...बोली हुई नेपे की आवाज ने बहुत जमाने से रुका हुआ आया जातीय अभिमान को स्पष्ट कर दिया, माइली भाभी के हृदय के भीतर।) उ० हृ० अ०। वि० वि० पृ० 168।

शकुनि (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'शकुनिः' का अर्थ होता है—पक्षी, गीध, चील, कौआ, मुर्गा, महाभारत में वर्णित दुर्योधन का मामा। सं० को० मु० पृ० 454।

हि० 'शकुनि' का अर्थ है—कौरवों का मामा, पक्षी, एक दैत्य जो हिरण्याक्ष का पुत्र था। अन्तिम अर्थ संज्ञावाची है, अतएव सम्भव है कि इसका सम्बन्ध सं० अर्थ से न हो। अन्य अर्थ स्पष्ट रूप से सं० के समान ही हैं। यथा, "शव पर शकुनि (गीध) मड़राने लगे।" या "शकुनि की चालाकी से युधिष्ठिर जुए में हार गया।"

विपरीत, ने० 'शकुनि' का अर्थ 'चील' होता है। एन-एन-ई-पी-1582। इसके अलावा 'पक्षी, गीध तथा दुर्योधन का मामा' अर्थ भी प्रचलित हैं। ने० श० पृ० 992। ये सारे अर्थ सं० के समान ही हैं, पर हि० में 'चील' और 'गीध' अर्थ प्रचलित नहीं हैं।

यथा, "खुला थालमा राखेको मासु शकुनिको एकै झम्टाईमा सकियो।" (खुली थाली में रखा हुआ मांस चील के एक ही झपट्टे में खत्म हो गया।)

शेष (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'शेषः' का अर्थ होता है--बचा हुआ भाग, जूठन, अन्त, परिणाम, गौण विषय, परिशिष्ट, यादगार, दुर्घटना, मृत्यु, शेषनाग। सं० को० सु० पृ० 480।

हि० 'शेष' का अर्थ है--बची हुई वस्तु, घटाने से बची हुई संख्या, समाप्ति, अन्त, पुराणानुसार सहस्र फनों के सर्पराज जिनके फनों पर पृथ्वी टिकी हुई है, लक्षण, बलराम, दिग्गजों में से एक। इनमें अन्तिम तीन संज्ञावाची अर्थ का उल्लेख उपर्युक्त सं० अर्थ में नहीं है और उल्लेख होना आवश्यक भी नहीं है, क्योंकि ये नाम हैं। शेष अर्थ सं० अर्थ के समान ही हैं या उनसे स्पष्ट रूप से सम्बद्ध हैं। यथा, "उसके पास का सारा पैसा शेष (समाप्त) हो गया।"

हि० में पहले 'शेषनाग' का प्रयोग होता था, पर बाद में 'नाग' लुप्त हो गया और 'शेष' ही उस अर्थ का वाची हो गया है। यथा, "शेष के करवट बदलते ही पृथ्वी डोल जाती है।"

विपरीत, ने० 'शेष' का अर्थ है--मृत्यु, बाकी बचा हुआ, समाप्ति। एन-एन-ई-पी-1613। इनमें 'मृत्यु' अर्थ हि० की तुलना में नया है और सं० से स्पष्टतः गृहीत है। यथा, "विश्वामित्रको शेष पछि त्यो स्थलको यज्ञवेदी निराग्नि भयो र यज्ञधूमले आकाश शून्य।" (विश्वामित्र की मृत्यु के बाद उस जगह की यज्ञवेदी अग्निरहित हो गई और यज्ञ के धुएँ से आकाश शून्य।) सु०। बी० पी० को० पृ० 3।

---(हि० अर्थ-विस्तार : अवच्छेदात्मक अर्थलोप)

समागम (तत्स०। सं०>हि० II, ने० II)

सं० 'समागमः' का अर्थ होता है--मुलाकात, मिलान, साथ, सम्पर्क, नजदीक आना, समुदाय, रतिक्रिया, ज्योतिष में ग्रहों का योग। सं० को० सु० पृ० 528।

हि० 'समागम' का अर्थ सं० की तरह ही मिलना, भेंट, सम्भोग, आना--होता है। यथा, "शादी के बाद पति-पत्नी का कभी समागम भी नहीं हुआ कि तलाक हो गया।"

हि० में 'समागम' का प्रयोग मुख्यतः 'सम्भोग' अर्थ में होता है, पर ने० में यह अर्थ एकदम प्रचलित नहीं है।

विपरीत, ने० में इसका अर्थ होता है--भेंट, आगमन। एन-एन-ई-पी-1678। स्पष्ट है कि ये अर्थ सं० 'मुलाकात' और 'नजदीक आना' अर्थ के समान हैं। यथा, "मसंग कुनै प्रतिक्रिया लिन्न, सधैं की समागम, सधैं की तटस्थ।" (मेरे प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, सब दिन की तरह भेंट और सब दिन की तरह तटस्थ।) शि० फू०। पा० पृ० 29। "...फेरि समागम भई आफैंमा।" (फिर आगमन हुआ अपने में।) शि० फू०। पा० पृ० 46। "यस सहवास र समागमले अधिको हृदय हरियो भएर आउँछ...।" (इस साथ-साथ रहने और भेंट से पहले का हृदय हरा-भरा होकर आता है।) मा० घ०। बां० पृ० ख।

सम्यक् (तत्स० । सं० > हि० II, ने० II)

सं० 'सम्यक्' का अर्थ होता है—साथ, ठीक-ठीक, साफ-साफ, पूरी तरह, आदर-सहित। सं० को० सु० पृ० 539।

हि० 'सम्यक्' का अर्थ है—पूरा, सब, सब प्रकार से, भलीभाँति। ये सारे अर्थ सं० 'पूरी तरह' अर्थ के समान ही हैं। यथा, "अच्छा शिक्षक होने के लिए विषय का सम्यक् (पूरा) ज्ञान आवश्यक है।"

विपरीत, ने० 'सम्यक्' का अर्थ है—उचित, उपयुक्त, ठीक। एन-एन-ई-पी-1688। स्पष्ट है कि ये सारे अर्थ सं 'ठीक-ठीक' अर्थ से आए हैं। यथा, "सम्यक् परिमाण-को उचित प्रयोगले मात्र खानेकुराहरू राम्रा लाग्छन्।" (उचित मात्रा के उचित प्रयोग से ही भोजन अच्छा लगता है।)

साठी (तद्० । सं० षष्टिकः > हि० I, ने० I)

सं० 'षष्टिकः' का अर्थ होता है—साठी का धान, साठ की संख्या। सं० को० सु० पृ० 491।

हि० 'साठी' का अर्थ है—एक प्रकार का धान। स्पष्ट है कि यह सं० का ही अर्थ है। यथा, "साठी धान का चावल अच्छा होता है।"

विपरीत, ने० 'साठी' का अर्थ होता है—साठ। एन-एन-ई-पी-1715। ने० ने सं० के दूसरे अर्थ को ग्रहण किया है—यह स्पष्ट है। यथा, "साठी बीस हुन्छ।" (साठ और बीस होता है।) ने० हृ० अ०। नि० श्रि० पृ० 201। "यसही साल आलुमा साठी हजार स्वाहा भयो यसमको।" (इसी साल आलू में साठ हजार स्वाहा हो गया उसका।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 224।

सादा (वि० । फा० > हि० I, ने० I)

फा० 'सादा' का अर्थ होता है—निरंग, जिस पर कुछ अंकित न हो, श्वेत, निश्छल, खालिस, रिक्त, खाली। उ० हि० शि० पृ० 305।

हि० 'सादा' का अर्थ होता है—जिसकी बुनावट आदि बहुत संक्षिप्त हो, बिना मिलावट का, सीधा, मूर्ख, सरलहृदय। इनमें प्रथम दो अर्थ फा० 'खालिस' अर्थ के समान हैं, क्योंकि जिसकी बुनावट संक्षिप्त हो, उसमें अधिक सजावट नहीं रहने के कारण खालिस चीज होती है और मिलावट-विहीन चीज खालिस समझी जाती है। शेष अर्थ फा० 'निश्छल' अर्थ के समान हैं, क्योंकि मूर्ख, सीधा और सरलहृदय (वाला आदमी)—सभी निश्छल माने जाते हैं। यथा, "उसका रहन-सहन बड़ा सादा (बिना मिलावट का) है।"

विपरीत, ने० 'सादा' का एक अर्थ 'सफेद' भी होता है। स्पष्ट है कि यह अर्थ सं० 'श्वेत' अर्थ के समान है। यथा, "सादा पोशाक लाएको उएटा दुब्लो पुलिसले भूदेव-लाई भन्यो...।" (सफेद पोशाक पहनी हुई एक दुबली पुलिस ने भूदेव से कहा...।) आ० र० छ०। इ० ब० रा० पृ० 88। हि० में यह 'श्वेत' अर्थ प्रचलित नहीं है। हि० में जब भी 'सादा लिबास' या 'सादा कपड़ा' जैसा प्रयोग होता है, तब उसका अर्थ साधारण कपड़ा या आडम्बरहीन पहरावा का अर्थ बोधित करता है, सफेद लिबास या श्वेत कपड़ा का नहीं।

इ : अ—व्याकरणात्मक : अर्थादेश

व्याकरण के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन आ जाता है। स्टीफन उलमान मानते हैं कि व्याकरण-तत्त्व के कारण शब्द के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है।[1] डॉ० शिवनाथ की धारणा है कि उपसर्ग और प्रत्यय लगने से अर्थ-परिवर्तन होता है। लिंग-परिवर्तन से भी अर्थ-परिवर्तन होता है।[2]

समास और वाच्य के कारण भी शब्द अपने प्रारम्भिक अर्थ को बदल सकते हैं। इस तरह, व्याकरण अर्थादेश में बहुत महत्त्वपूर्ण काम करता है।

खुशी (वि०। फा०>हि० I, ने० I)

फा० 'खुशी' का अर्थ है—'प्रसन्नता'। उ० हि० डि० पृ० 213।

हि० में इसका अर्थ 'आनन्द' या 'प्रसन्नता' है जो सं० के समान ही है। यथा, "आपसे मिलकर खुशी हुई।"

विपरीत, ने० 'खुशी' का व्यवहार वहाँ होता है जहाँ हि० में 'खुश' का व्यवहार होता है। ने० में 'खुशी' का अर्थ है—प्रसन्न। एन-एन-ई-पी-350। हि० की तरह 'प्रसन्नता' अर्थ ने० में नहीं होता है। यथा, "मैले डाक्टरलाई खुशी भएर भने न।" (मैंने डाक्टर को प्रसन्न होकर कहा न।) ने० दा०। वि० प्र० को० पृ० 94। "म खुशी छु।" (मैं प्रसन्न हूँ।)

इस तरह, ने० में 'खुशी' हि० 'खुश' की तरह व्यवहृत है।

चट्ट (दे०। अनु० > हि० I, ने० II)

'चट-चट' ध्वनि से अनुकरणात्मक आधार पर हि० 'चाटना' क्रिया बनी है और उसी से 'चट्ट' शब्द बना है। ने० 'चट्ट' भी चट-चट ध्वनि से ही ग्रहण किया गया है, भले ही यह पहले ने० में स्वीकृत हुआ हो या बाद में।

'चट-चट' ध्वनि भोजन के क्रम में जिह्वा से या लकड़ी के जलने से उत्पन्न होती है।

हि० में इसका अर्थ है—चाट-पोंछकर खाया हुआ, समाप्त, नष्ट, गायब। भोजन करने या चाटने के क्रम में यह ध्वनि उत्पन्न होती है, इसलिए इससे पहले 'चाटना' अर्थ आया और फिर 'चाटना' से बाद में 'चाट-पोंछकर खाया हुआ' अर्थ। चूँकि चाट-पोंछकर खा लेने के बाद कुछ बचता नहीं है, इसलिए 'समाप्त, नष्ट या गायब' अर्थ इसी प्रथम अर्थ से विकसित हुए लगते हैं। यथा, "तुमने सब चट्ट कर दिया।"

विपरीत, ने० में इसका अर्थ है—तत्काल, चटपट, सफाई के साथ। ने० हि० को० पृ० 74। चूँकि चट-चट ध्वनि तुरत-फुरत होती है (लकड़ी जलने या भोजन करने, दोनों

1. "...grammatical elements...are equally exposed to alteration (in the basic relationship of name and sense.")

—Words and Their Use., p. 65.

2. अर्थतत्त्व की भूमिका, पृ० 173।

में), सम्भवतः इसलिए ये अर्थ आए लगते हैं। ने० ने चट-चट, जो अलग-अलग था, को एक करके 'चट्ट' बना लिया है जिससे ध्वनि के बीच का अन्तराल और कम हो गया और इससे तत्काल 'चटपट' जैसा अर्थ विकसित कर लिया। यथा, "खुकुरी नया चट्ट परेको चमचम चम्केको थियो।" (खुकुरी नई साफ की हुई चम-चम चमक रही थी।) क० स०। गो० पृ० 80। चट-चट करके भोजन साफ करने के भाव के कारण 'सफाई के साथ' अर्थ आया लगता है। "यो काम चट्ट गर दिनोस।" (यह काम चटपट कर दीजिए।)

जंगारी (वि०। फा० जंगार (विशे० जंगारी) : हि० I, ने० I)

फा० 'जंगार' का विशेषण 'जंगारी' होता है। 'जंगार' का अर्थ होता है—ताँबे का कसाव, तूतिया। उ० हि० डि० पृ० 299।

हि० 'जंगारी' का अर्थ है—नीले रंग का। चूँकि तूतिया सूख जाने पर लगभग नीले रंग का हो जाता है या ताँबे का कसाव भी नीले रंग का होता है, अतएव ऐसा अर्थ आया लगता है। स्पष्ट है कि ऐसा अर्थ विशेषण बनाकर गृहीत हुआ है। यथा, "उसको जंगारी वस्त्र बहुत शोभता है।"

विपरीत, ने० 'जंगारी' का अर्थ होता है—हरा रंग विशेष, ऐसे रंग का। ने० हि० को० पृ० 61। तूतिया जब कच्चा होता है तो हरे रंग का होता है, सम्भवतः इसलिए फा० 'तूतिया' अर्थ से इस अर्थ का विकास हुआ है। हि० की तरह ही ने० में भी ऐसा अर्थ-विकास व्याकरणात्मक कारण से हुआ है। यथा, "जंगारी साडीर सेतो चोलोले उसको रूप आकर्षक छ।" (हरे रंग की साड़ी और श्वेत ब्लाउज से उसका रूप आकर्षक है।)
—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

जात (तत्स०। सं०>हि० I, ने० I)

सं० 'जात' का अर्थ होता है—उत्पन्न, प्रशस्त, उत्पत्ति, प्रभावित। एस-ई-डी-पी-219।

हि० 'जात' का अर्थ होता है—जन्म, पुत्र, जीव, उत्पन्न, जाति। इनमें 'जन्म' और 'उत्पन्न' अर्थ सं० 'उत्पत्ति' और 'उत्पन्न' के समान ही हैं। 'पुत्र' और 'जीव' अर्थ सं० 'उत्पन्न' अर्थ से विकसित लगते हैं, क्योंकि ये भी उत्पन्न ही होते हैं। 'जाति' अर्थ सं० 'उत्पत्ति' अर्थ से आया लगता है, क्योंकि जिस कुल में किसी की उत्पत्ति होती है, उसी कुल की जाति उसकी भी जाति होती है। यथा, "पं० नेहरू इसलिए भी महान बन सके कि वे एक उच्चकुल जात थे।"

विपरीत, ने० 'जात' का अर्थ होता है—श्रेणी, वर्ग, किस्म, जाति। एन-एन-ई-पी-649। इनमें 'जाति' अर्थ तो हि० की तरह ही है। अन्य अर्थ सं० 'उत्पन्न' अर्थ से विकसित जान पड़ते हैं, क्योंकि जीवों के वर्ग, किस्म या श्रेणी का बँटवारा इस आधार पर किया जाता है कि वह कहाँ उत्पन्न हुआ है।

सं० 'जन्' धातु से व्याकरणिक परिवर्तनों के द्वारा 'जात' का विकास करके ऐसा अर्थ ग्रहण किया गया है।

दूसरी सम्भावना यह है कि ने० ने 'जाति' अर्थ को मुख्य रूप से स्वीकार किया है और इससे ही अन्य अर्थों का विकास किया है, क्योंकि जातियों में भी या जाति-प्रथा के कारण अनेक वर्ग, श्रेणी या किस्म बन जाते हैं। यथा, "तैपनि कवि जुरेलीको मनमा

मेरो सहयोगको एक जात थनि मोल रहनेछ।" (तो भी कवि जुरेली के मन में मेरे सहयोग का एक वर्ग भी मूल्यवान् था।) सो० र० ज०। के० नु० पो० पृ० 68। "उई त हो नि कान्छा, लोग्नेभान्छेको जात···।" (वही तो है न छोटा भाई, पुरुष की जाति···।) मु० बा०। बां० पृ० 20। "वास्तवमा समाजको आंखामा आज उ मान्छे नभएर जात थिई, केवल जात।" (वास्तव में समाज की आँख में आज वह आदमी न होकर वर्ग था, केवल वर्ग।) न० स० को० गी०। र० वि० पृ० 109।

—(हि० अर्थ-विस्तार : अलंकार)

नंबरी (वि०। अं० नम्बर>हि० ı, ने० ı)

अंग्रेजी 'नम्बर' का अर्थ होता है—इकाई, संख्या, समूह, योग, कविता, गणना, वचन (व्याकरण में)। बी० डी० ए० एच० पृ० 552। इसी 'नम्बर' में हि० और ने० 'ई' प्रत्यय लगाकर 'नम्बरी' शब्द बनाया गया है। व्याकरण के इस परिवर्तन के कारण दोनों अर्थों में भिन्नता आ गई है।

हि० 'नम्बरी' का अर्थ है—नम्बरवाला, प्रसिद्ध। 'नम्बरवाला' अर्थ स्पष्टतः 'नम्बर' (संख्या) अर्थ से सम्बद्ध है, इसमें 'वाला' इसी 'ई' प्रत्यय के कारण आ गया है। चूँकि प्रसिद्ध आदमी या वस्तु की अलग गणना होती है, सम्भवतः इसलिए अं० 'गणना' अर्थ से यह अर्थ आया है। वैसे हि० में 'नम्बरी' का प्रयोग (प्रसिद्ध अर्थ में) अच्छे भाव में न होकर बुरे संदर्भ में होता है। यथा, "वह नम्बरी बदमाश है।"

विपरीत, ने० में 'नम्बरी' का व्यवहार अच्छे और बुरे दोनों अर्थों में होता है—कुख्यात और सुख्यात दोनों में, साथ ही 'बढ़िया' (सोना) के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। ने० हि० को० पृ० 159। ने० में भी ऐसा अर्थादेश व्याकरणिक कारण से हुआ लगता है। अं० 'गणना' अर्थ ने 'इसमें अच्छे या बुरे में गणना, बढ़िया में गणना' जैसा अर्थ ग्रहण कर लिया है। यथा, "उसको रूप नम्बरी सुन झैं दिन प्रतिदिन चमकिन्थ्यो।" (उसका रूप बढ़िया सोने की तरह दिन-प्रतिदिन चमक रहा था।) न०स०को०गी०। र०वि० पृ० 115। "···मेरो नम्बरी साथीले भन्छ।" (मेरा कुख्यात साथी कहता है।) शि० फू०। पा० पृ० 59।

पत्रावली (तद्०। सं० पत्रावलिः>हि० ıı, ने० ıı)

सं० 'पत्रावलिः' का अर्थ होता है—सिन्दूर, पत्तों की पंक्ति। एस-ई-डी-पी-312।

हि० 'पत्रावली' का अर्थ है—चित्र या रेखाएँ जो सौन्दर्य-वृद्धि के लिए भाल-कपोल आदि पर बनाई जाती हैं। यह अर्थ सं० 'सिन्दूर' अर्थ से विकसित हुआ लगता है, क्योंकि सौन्दर्य-वृद्धि के लिए ही भाल पर सिन्दूर का टीका लिया जाता है। इस तरह, हि० के इस अर्थ-परिवर्तन के पीछे भाव-सादृश्य काम करता है।

विपरीत, ने० ने इस शब्द को 'पत्र' और 'अवलि' की सन्धि माना और इसी के आधार पर इसका अर्थ ग्रहण किया। इसका सन्धि-विच्छेद करने पर यह 'पत्र + अवली' हो जाता है। 'पत्र' का अर्थ पत्ता और चिट्ठी, दोनों है। अतएव, ने० में 'पत्रावली' का अर्थ होता है—पत्तों की पंक्ति, चिट्ठियों की क्रमबद्ध संख्या। एन-एन-ई-पी-992। इनमें प्रथम अर्थ सं० के समान ही है और दूसरा अर्थ स्पष्टतः व्याकरणिक

कारण से आया है। यथा, "कुन उत्सवकालागि तपाईंले पत्रावली सजाउनुभयो ?" (किस उत्सव के लिए आपने पत्तों की पंक्ति सजाई है ?)

—(हि० अर्थादेश : सादृश्यमूलक)

मानी (तद्० । सं० मानः > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'मानः' का अर्थ होता है—इज्जत, प्रतिष्ठा, घमंड, रोष, आत्म-सम्मान, रूठने का भाव। सं० को० सु० पृ० 283।

हि० 'मानी' शब्द का निर्माण सं० 'मान' में 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से हुआ है और इसी व्याकरणात्मक परिवर्तन के कारण ऐसा अर्थादेश भी हो गया लगता है। हि० 'मानी' का अर्थ होता है—घमंडी, अहंकारी, सम्मानित, वह नायक जो नायिका से अपमानित होकर रूठ गया हो। ये अर्थ सं० 'घमंड' और 'प्रतिष्ठा' से विकसित हुए हैं, पर जहाँ सं० में ये अमूर्त्त भाव थे, वे यहाँ व्यक्ति के सूचक बन गए। यथा, "धन हो जाने पर सामान्यतया लोग मानी हो जाते हैं।"

विपरीत, ने० में 'घमंडी' जैसा अर्थ प्रचलित नहीं है मात्र अहङ्कारबोधक अर्थ—'इज्जतदार' या 'प्रतिष्ठित' होता है। एन-एन-ई-पी-1338। ने० का यह अर्थ-परिवर्तन भी हि० की तरह व्याकरणिक कारण से हुआ लगता है, क्योंकि ने० ने भी इस शब्द का विकास सं० 'मान' में 'ई' प्रत्यय को जोड़कर किया है। यथा "नगरका मानी आमंत्रित मानिसहरू आउनुभो।" (नगर के प्रतिष्ठित आमन्त्रित व्यक्ति लोग आये।) "मानी मानिसको स्वभाव नम्र हुन्छ।" (प्रतिष्ठित आदमी का स्वभाव नम्र होता है।)

—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

रंगमहल (दे० । सं० रंग + महल > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'रंग' का अर्थ होता है—राँगा या शीशा, सुहागा, नाट्यशाला, लड़ाई का मैदान, नृत्य, खेल, वर्ण, अनुराग, आसक्ति, तौर-तरीका, मन की मौज। सं० को० सु० पृ० 306।

अ० 'महल' का अर्थ होता है—भवन, प्रासाद, हवेली, स्थान, जगह, अवसर। उ० हि० डि० पृ० 530। इस तरह, यह शब्द दो भिन्न भाषाओं के शब्दों के समास से बना है। इस व्याकरणिक कारण से दोनों भाषाओं के अर्थों में भिन्नता आ गई है।

हि० 'रंगमहल' का अर्थ होता है—भोग-विलास करने का स्थान। यह अर्थ सं० 'नाट्यशाला' अर्थ से विकसित लगता है, क्योंकि नाट्यशाला में नृत्य होते हैं जो एक तरह की विलासिता माना जाता है। लेकिन, ऐसा अर्थ ग्रहण करते समय हि० ने अ० 'महल' अर्थ को त्याग दिया है। दूसरी सम्भावना यह है कि इसका विकास सं० 'मन की मौज' अर्थ से हुआ हो, क्योंकि भोग-विलास भी एक तरह की मौज की निशानी है। जिस स्थान में ऐसा होता हो, उसे 'रंगमहल' कहने में अ० 'महल' अर्थ का भी भाव आ जाता है। यथा, "प्राचीन काल में राजा लोग अधिक समय 'रंगमहल' में ही बिताते थे।"

विपरीत, ने० 'रंगमहल' का अर्थ है—खेल, तमाशा का घर या कोठा, राज-दरबार। एन-एन-ई-पी-1397। सं० 'खेल' और अ० 'भवन' अर्थ के प्रभाव से ने०

का प्रथम अर्थ आया लगता है और दूसरा अर्थ मुख्यतया अ० 'प्रासाद' अर्थ से प्रभावित है। यथा, "रंगमहलको सजावट वेशथियो।" (तमाशे के घर या राज-दरबार की राजावट अच्छी थी।)
—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

सरूप (तत्स०। सं० > हि० ।।, ने० ।।)

सं० 'सरूप' का अर्थ होता है—समान शक्लवाला, सुन्दर। सं० को० सु० पृ० 541।

हि० 'सरूप' का प्रयोग इन अर्थों में होता है—रूपयुक्त आकारवाला, सदृश, समान, रूपवान्। हि० ने 'सरूप' को 'स' और 'रूप' में अलग-अलग करके 'स' का अर्थ 'युक्त' और 'रूप' का अर्थ 'रूप या आकार' लिया है और इसका अर्थ 'रूपयुक्त' या 'आकारवाला' कर लिया है। फिर 'स' का 'समान' और 'रूप' का 'चेहरा' अर्थ ग्रहण करके 'समान चेहरावाला' अर्थ का भाव के समान 'सदृश', 'समान' अर्थ विकसित किया है। स्पष्ट है कि ऐसा अर्थ-परिवर्तन व्याकरणिक कारण (समास) से हुआ है। यथा, "उसे मेहनत के सरूप (सदृश) ही फल मिला।"

विपरीत, ने० ने सं० का अर्थ—'समान रूप का'—ही ग्रहण किया है। वैसे, 'स' का 'साथ' और 'रूप' का 'आकार' अर्थ करके 'साकार' अर्थ भी विकसित किया है। ने० श० पृ० 1055। यथा, "मेरा दुवै भाइ छोरा सरूप छन्।" (मेरे दोनों पुत्र समान रूप के हैं।)

—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

साफी (वि०। अ० साफ > हि० ।, ने० ।)

अ० 'साफ' का अर्थ होता है—स्वच्छ, पवित्र, खालिस, कोरा, समतल, सरल, सादा। उ०हि०डि०पृ० 362। इसी 'साफ' में 'ई' प्रत्यय के जुड़ने से 'साफी' शब्द बना है जिससे अर्थ में परिवर्तन आ गया है।

हि० 'साफी' का अर्थ होता है—रूमाल, वह कपड़ा जो गाँजा पीने वाले चिलम के नीचे लपेटते हैं, भाँग छानने का कपड़ा, छनना। चूँकि ये सारे कपड़े किसी न किसी चीज को (नाक, धुआँ, जल आदि को) स्वच्छ करते हैं, अतएव इनका विकास अ० 'स्वच्छ' अर्थ से हुआ लगता है। लेकिन, अर्थ-भिन्नता का कारण सम्भवतः 'ई' प्रत्यय का जुड़ना ही है। यथा, "उसने जेब से एक साफी निकालकर बच्चे की नाक साफ कर दी।"

विपरीत, ने० 'साफी' का अर्थ है—मसौदा को शुद्ध करना, मसविदा की स्पष्ट लिखावट वाली प्रति। एन-एन-ई-पी-1917। चूँकि इन अर्थों में स्वच्छ करने या स्वच्छ लिखावट का भाव है, अतएव ये अर्थ अ० 'स्वच्छ' अर्थ से आये लगते हैं। इसमें भी अर्थादेश का कारण 'ई' प्रत्यय का जुड़ना ही है। यथा, "यो आवेदनपत्र साफी गराउनु पर्छ।" (इस आवेदन-पत्र को शुद्ध कराना पड़ेगा।)
—(हि० अर्थादेश : व्याकरणात्मक)

(क) अन्य वर्गों में आए हुए वे शब्द जिनमें हिन्दी भाषा में अर्थादेश हुआ है

(अ) अर्थ-विस्तार के अन्तर्गत आये शब्द :	(आ) अर्थ-संकोच के अन्तर्गत आये शब्द :
आली	उस्ताद
कच्चा	कड़ा
कपाल	कर्मी
कांट	खलक
कांटा	खाला
जिम्मा	गवाली
थाल	छौंडा
निकामी	ठेकी
निर्भर	तपनी
पत्र	थान
माध्यमिक	पंजा
	पाटा
	प्राकृत
	पोटी
	बरा
	भारी
	म्लेच्छ

(ख) सांख्यिक विवरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों की संख्या 508 के आधार पर हिन्दी एवं नेपाली भाषाओं में घटित होने वाले अर्थादेश की स्थिति इस प्रकार है—

भाषा	शब्द-संख्या	औसत प्रतिशत
हि०	144	28·3
ने०	290	57·1

(1) शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से :

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
तत्०	25	73	4 9	14·4
तद्०	100	162	19·7	31·9
देशी	3	14	0·6	2:7
विदेशी	16	41	3.1	8·1

0हिन्दी—हिन्दी में तत्सम शब्दों की तुलना में तद्भव में चार गुना और विदेशी में लगभग आधा अर्थादेश हुआ है।

0नेपाली—ने० में तत्सम की तुलना में तद्भव शब्दों में लगभग ढाई गुना और विदेशी शब्दों में लगभग आधा अर्थादेश हुआ है। हि० की अपेक्षा नेपाली के देशी शब्दों में काफी अर्थादेश हुआ है।

(2) शब्द-भेद की दृष्टि से :

	संज्ञा	%	क्रिया	%	विशेषण	%	सर्वनाम	%	क्रि०वि०	%	अव्यय	%
हि०	116	22·8	3	·6	21	4·1	2	·4	–	–	2	·4
ने०	228	44·9	5	1·0	37	7·3	–	–	9	2·0	11	2·1

0हिन्दी—हिन्दी में विशेषण की तुलना में संज्ञा में लगभग पाँच गुना अर्थादेश हुआ है। क्रिया, सर्वनाम और अव्यय में अर्थादेश की संख्या बहुत कम है।

0नेपाली—नेपाली में विशेषण की तुलना में संज्ञा में लगभग छः गुना अधिक अर्थादेश हुआ है। इनके अलावा अव्यय और क्रिया-विशेषण में भी हिन्दी की तुलना में बहुत अर्थादेश अधिक घटित हुआ है।

(3) प्रयोग की दृष्टि से :

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
साधारण शब्द	112	161	22·0	31·7
शिष्ट शब्द	32	129	6·3	25·4

0हिन्दी—हिन्दी में शिष्ट शब्दों की तुलना में साधारण शब्दों में लगभग चार गुना अधिक अर्थादेश हुआ है।

0नेपाली—नेपाली में शिष्ट शब्दों की तुलना में साधारण शब्दों में थोड़ा-सा ज्यादा अर्थादेश हुआ है।

(4) अर्थ-प्रकार की दृष्टि से :

	शब्द		औसत प्रतिशत	
	हि०	ने०	हि०	ने०
अर्थापकर्ष	15	29	2.9	5.7
अर्थोत्कर्ष	9	16	1.8	3.1
समाहरण	9	18	1.8	3.5
अमूर्तीकरण	5	20	1.0	4.0
उपलक्षण	5	14	1.0	2.8
लक्षणा	36	66	7.1	13.0
सादृश्यमूलक	17	26	3.3	5.1
सम्बद्ध	34	69	6.7	13.6
विकासात्मक	2	22	0.4	4.3
व्याकरणात्मक	12	10	2.3	2.0

0हि०—हिन्दी में सम्बद्ध और लक्षणा के कारण लगभग समान अर्थादेश हुआ है। इसी तरह अर्थापकर्ष और व्याकरणात्मक अर्थादेश भी समान हुआ है। सादृश्यमूलक अर्थादेश भी काफी परिमाण में हुआ है।

0०—नेपाली में लक्षणा की तुलना में सम्बद्ध लगभग बराबर है। विकासात्मक ने० अर्थादेश का एक प्रमुख कारण रहा है, जबकि हिन्दी में नगण्य। नेपाली में हिन्दी की तुलना में लगभग दूना अर्थोत्कर्ष हुआ है। ने० में हिन्दी की तुलना में अमूर्तीकरण चार गुना अधिक हुआ देखा गया है।

अध्याय 3

निष्कर्षात्मक विवेचन

अ : हिन्दी तथा नेपाली भाषाओं का शब्द गत पारस्परिक आदान-प्रदान

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों के आधार पर यह पाया गया है कि नेपाली भाषा ने बहुत सारे शब्दों को हिन्दी से ग्रहण किया है। इसे इस तरह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है—

1. चूंकि हिन्दी और नेपाली —दोनों एक ही माँ संस्कृत की सन्तान है, अतएव तत्सम शब्दों के बारे में कुछ कहना कठिन है कि किस तत्सम शब्द को किस भाषा ने दूसरे से ग्रहण किया।

फिर भी, तत्सम शब्दों के अर्थ के सहारे इस बात को बहुत-कुछ जाना जा सकता है कि किस भाषा में उनका प्रयोग पहले हुआ होगा, क्योंकि हर भाषा की अपनी पहचान होती है। इनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि नेपाली ने बहुत सारे हिन्दी के तत्सम शब्दों को ग्रहण किया है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हिन्दी नेपाली के पहले विकसित हो चुकी थी और बहुत सारे तत्सम शब्द हिन्दी में धड़ल्ले से प्रयुक्त हो रहे थे। नेपाली ने उनमें से बहुत सारे शब्दों को ग्रहण किया और उनमें थोड़ा-बहुत अर्थ-परिवर्तन भी कर लिया है।

2. नेपाली ने बहुत बड़ी संख्या में हिन्दी के तद्भव शब्दों को ग्रहण किया है। इसके प्रमुख कारण तीन माने जा सकते हैं—

(क) हिन्दी नेपाली की तुलना में बहुत पहले अपना रूप निश्चित कर एक समृद्ध भाषा बन चुकी थी। इसलिए, इसमें तद्भव शब्दों का रूप भी बहुत कुछ स्पष्ट हो गया था। लगता है, बाद में नेपाली ने ऐसे तद्भव शब्दों को हिन्दी से कुछ अर्थ-परिवर्तनों के साथ ग्रहण कर लिया।

(ख) दोनों भाषाओं के विवेच्य तद्भव शब्दों के अर्थों को देखने से यह बात साफ हो जाती है कि नेपाली ने ऐसे शब्दों को हिन्दी से ग्रहण किया है।

(ग) नेपाली-क्षेत्र और हिन्दी-क्षेत्र एक सुदीर्घ सांस्कृतिक सूत्र में बँधे रहे हैं; साथ ही नैकट्य और आपसी सम्पर्क ने भी आदान-प्रदान के लिए मार्ग बना दिया है। इसका विस्तृत विवेचन भूमिका के अन्तर्गत किया गया है।

3. नेपाली ने बहुत सारे देशी शब्दों को भी हिन्दी से ग्रहण किया है। देशी शब्द के निर्माण की स्थली एक ही रही होगी—हिन्दी-प्रदेश या नेपाली-प्रदेश। अर्थ इस बात को स्पष्ट कर देता है कि ऐसे बहुत सारे शब्द पहले हिन्दी में ही निर्मित हुए और बाद में नेपाली ने अर्थ को थोड़ा परिवर्तित करके स्वीकार कर लिया।

4. अधिकांश विदेशी शब्दों (अरबी, फारसी, अंग्रेजी, पोर्तुगीज, फ्रेंच) को नेपाली ने हिन्दी के माध्यम से ही ग्रहण किया है।[1]

इसकी पुष्टि निम्नलिखित तथ्यों से होती है—

(क) हिन्दी-क्षेत्र का इन भाषाओं के प्रयोक्ताओं के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। अतएव हिन्दी भाषा में इन शब्दों का आ जाना स्वाभाविक है। (इसका विशद विवेचन आगे किया गया है।)

(ख) नेपाली-क्षेत्र पर कभी मुसलमान, अंग्रेज, पोर्तुगीज या फ्रांसीसियों का आधिपत्य नहीं रहा। इसलिए, उनका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ने का प्रश्न नहीं है।

(ग) नेपाली-क्षेत्र के साथ इन विदेशी भाषा-भाषियों का कोई सांस्कृतिक सम्बन्ध भी रहा है।

(घ) नेपाली में अभी भी विदेशी शब्द प्रायः शिष्ट प्रयोग में चलते हैं। इससे यह बात साफ हो जाती है कि इसे उस भाषा में गये बहुत दिन नहीं हुए हैं और इसकी जड़ बहुत नीचे नहीं गई है।

इस तरह, नेपाली ने हिन्दी भाषा से पर्याप्त मात्रा में तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी शब्दों को ग्रहण किया है। इन सबका एक सामान्य कारण यह भी रहा है कि भूगोल ने नेपाल को भारत का मुखापेक्षी बना दिया है।

इसके अलावा, नेपाली-प्रदेश के अन्तर्गत बहुत बड़ी संख्या में अब भी मैथिली और भोजपुरी भाषी लोग पाये जाते हैं। व्यापार के सिलसिले में बहुत सारे भारतीय नेपाल की तराई में गये और अन्ततः वे वहीं बस गये। वे अपने साथ हिन्दी भाषा के बृहत् शब्द-भण्डार को भी लेते गये हैं जिसका प्रभाव नेपाली पर जाने-अनजाने पड़ता रहा है।

नेपाल से बहुत बड़ी संख्या में लोग विद्योपार्जन के लिए भारत आते रहे हैं। मुख्यतः बनारस और पटना इसका गढ़ रहा है जो हिन्दी-प्रदेश है। फलतः वे यहाँ के लम्बे निवास की अवधि में यहाँ की भाषा से बहुत अधिक प्रभावित होते रहे हैं। ऐसे लोग जब नेपाल लौटकर गये हैं तो उनकी भाषा हिन्दी के प्रभाव से बहुत-कुछ भिन्न हो गई है। बालकृष्ण पोखरेल ने इसे 'झर्रोवाद'[2] की संज्ञा दी है और इसका कुछ मजेदार उदाहरण पेश किया है। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि नेपाली पर हिन्दी का बड़ा ही स्पष्ट और गहरा प्रभाव पड़ता रहा है। विद्योपार्जन के अलावा, तीर्थाटन और देशाटन के सिलसिले में भी काफी मात्रा में नेपाली हिन्दी-प्रदेश में आते रहे हैं। संकट के समय बहुत-सारी नेपाली राजा-प्रजा के लिए भी यह रक्षास्थल रहा है। इसलिए, हिन्दी के तत्सम, तद्भव और देशी शब्दों का सीधे एवं विदेशी शब्दों का हिन्दी होकर नेपाली में प्रवेश पा जाना स्वाभाविक लगता है। विवेच्य शब्दों के अर्थों की परीक्षा करने के बाद यह बात और स्पष्ट हो जाती है। यही कारण है कि नेपाली भाषा-वैज्ञानिकों ने नेपाली पर हिन्दी के प्रभाव को स्पष्टतः स्वीकार किया है।[3]

1. बालकृष्ण पोखरेल—नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 76।
   चूड़ामणि उपाध्याय रेग्मी—नेपाली भाषाको उत्पत्ति, पृ० 97।
2. नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 22।
3. बालकृष्ण पोखरेल—नेपाली भाषा र साहित्य, पृ० 6।

विपरीत, नेपाली भाषा का कोई शब्दगत प्रभाव हिन्दी पर नहीं दिखाई पड़ता है। इसके निम्नांकित कारण हो सकते हैं—

1. हिन्दी की तुलना में नेपाली भाषा का विकास बहुत बाद में हुआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से, जब हिन्दी भाषा बहुत कुछ अपना रूप सुनिश्चित कर समृद्ध हो चुकी थी, तब नेपाली भाषा नवजात शिशु के रूप में थी।

2. हिन्दी-भाषी क्षेत्र अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण और ऐतिहासिक घटना-चक्रों लेकर कभी नेपालोन्मुख नहीं रहा। विपरीत, भूगोल ने नेपाल को भारत का सहारा लेने के लिए विवश कर दिया है।

3. हिन्दी-भाषी क्षेत्र अपने में बहुत विशाल है और इसके प्रयोक्ताओं की संख्या बहुत बड़ी है। केवल इसका उत्तरी सिरा नेपाली क्षेत्र का स्पर्श करता है। इतने बड़े क्षेत्र और भाषाभाषी को प्रभावित करना नेपाली के लिए स्वभावतः कठिन होता। संभव है कि उत्तरी हिन्दी या इसकी बोलियों पर इसका कुछ प्रभाव पड़ा हो, पर बाद में सामान्य स्वीकृति के अभाव में विलुप्त हो गया हो या अब भी मैथिली भोजपुरी आदि में प्रचलित हो।

4. इसका एक प्रमुख कारण राजनैतिक भी रहा है। नेपाल के किसी राजा ने हिन्दी-क्षेत्र पर शासन नहीं किया। हिन्दी-प्रदेश और नेपाली प्रदेश —दोनों राजनैतिक दृष्टि से सदा अलग-अलग रहे हैं। दोनों के बीच दो भिन्न देश की सीमारेखा विभाजक बनकर मौजूद रही है। इसलिए, संपर्क और आदान-प्रदान के लिए जो उन्मुक्तता चाहिए, वह इन्हें नहीं मिल पाई।

कारण और भी हो सकते हैं, पर प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों की परीक्षा करने के बाद यह बात साफ हो जाती है कि नेपाली का कोई शब्दगत प्रभाव हिन्दी पर नहीं है। शायद यही कारण है कि किसी भी नेपाली भाषाशास्त्री ने नेपाली का हिन्दी पर प्रभाव का संकेत नहीं किया है।

नेपाली में हिन्दी से गृहीत शब्दों की स्थिति

श्री बालकृष्ण पोखरेल ने (हिन्दी भाषा र साहित्य, पृ० 71) ऐसे हिन्दी शब्दों का वर्णन किया है जिनको नेपाली ने परिवर्त्तित अर्थ में ग्रहण किया है।[1]

---

1. हि०	बच्चा	ने०	बच्चो	हि०	दोपहर	ने०	दोपहरे
हि०	थोक	ने०	थोक	हि०	आया	ने०	आईमाई
हि०	बगल	ने०	बगल	हि०	दिवाली	ने०	देवाली
				हि०	बतास	ने०	बतास

श्री चूडामणि उपाध्याय रेग्मी (नेपाली भाषाको उत्पत्ति, पृ० 88) निम्नांकित हिन्दी शब्दों को नेपाली द्वारा ग्रहण कर लिए जाने का वर्णन करते हैं—

हि०	तीज	ने०	तीज
हि०	ठोकर	ने०	ठक्कर

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों के आधार पर नेपाली में हिन्दी से गृहीत शब्दों की स्थिति

(1) तत्सम

अ. **अर्थ-विस्तार**—जीवन्त, द्वन्द्व, प्रशस्त, महि, याम, राग, विघ्न, म्लान, श्रेय, विप्र, विस्तार, श्लोक, गत, बंधकी, मद्य, हंस, नाना, खण्ड, ताल, स्तर, उपाधि, गोल, जनी, निर्भर, पट, भोग, मा, यति, योजना, वारि, व्यथा, शास्त्र, मूल ।

आ. **अर्थ-संकोच**—लोक, काल, केलि, तत्व, ध्यान, प्राकृत, प्राण, म्लेच्छ, कालरात्रि, काली, बाला, संवरण, गति, धार, पत्र, योग, सिद्धि ।

इ. **अर्थादेश**—विदुर, मान, अवतार, दशा, नाल, अर्पण, गोला, तरंग, मोहिनी, ताप, लाभ, सागर, सानु, अपेक्षा, चतुर्थी, मलय, संस्थान, जात ।

(2) तद्भव शब्द

अ. अर्थ-विस्तार—कच्चा, छन्द, जीवन्त, निकासी, भारा, मोड़ना (ने० मोर्नु), चुक, थाल, निराला, पीना, बेर, थांटी, झरना (ने० झर्नु), पाहुना, बंधकी, संघार, हंस परसों, पाटी, बिहान, कोड़ना (ने० कोर्नु), कांटा, छोप, करुवा, आड़, खट्टा, खल, चाल, धावा, पक्का, पीर, पैयां, वाड़वाग्नि, भोग, खप्पर, थपना, धुरा, मात, साहू ।

आ. **अर्थ-संकोच**—मैन, जोखना, आंग, कन, कर्मी, गोड़ा, गोरु, छावा, छौंड़ा, थली, थात, धोती, पटुका, पट्टी, बारी, माना, मुखिया, साज, ताना, पल्ला, पाती, बतास, बत्ती, भारी, हांक ।

इ. **अर्थादेश**—ऐंठन, खोर, घाट, चरन, लागू, कोठी, चोट, बिगार, लटपट, थान, दामी, खात, जिय, देखा, ओर, देहरा, गुना, चटक, पौन, बहना, गोठ, डहन, तेलिया, थाह, थैली, देवल, पाल, फेरा, बथान, भीत, मारना (ने० मार्नु), लग, लाभ, सन्न, सुर, खाई, खूंटा, गलथना, चांद, झरी, दह, पेटी, बाली, लहर, अनि, अलेख, कहां, खत, चिट्ठा, छांद, जीउ, टक, दर्रा, धक, पैठ, फेर, भाउ, रसिया, लहना, लेखा, सत, है, कल, खोजी, पेला, पैठारी, बैरागी, मानी, रंगमहल ।

(3) देशी शब्द

अ. **अर्थ-विस्तार**— झलमल, चूं ।

आ. **अर्थ-संकोच**—टंटा, डगर, पटपट, के ।

इ. **अर्थादेश**—हाहा, घराना, उट्ठा, नानी, पुलपुल, रल्ल, धमाधम ।

(4) विदेशी शब्द

अ. **अर्थ-विस्तार**—दिक्क, रोगन, जवान, बस्ता, सफा, खजाना, कलम, बहाल, रकम, हिकमत, राजी, मोहर, कायल, गोता, जिम्मा, दरबार, पाजी, फराक, रुख, शैतान ।

आ. **अर्थ-संकोच**— उस्ताद, खलक, जहान, जामा, नजर, पंजा, बाबा, बुगची, रुक्का ।

इ. **अर्थादेश** — दरगाह, गम, गमी, असल, जिद्दी, पेश, इजार, बाजी, राई, जागीर, ताक, बगली, सवारी, अकबरी, खास, दम, नादान, बाजू, बेहाल, मनसूबा, मातहत, माल, गर, सरासर, सूरत, काजी, सादा, खुशी, जंगारी।

ख. **अंग्रेजी** –

अ. **अर्थ-विस्तार** — डबल।

ओ. **अर्थादेश** — नंबरी।

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी के बहुत सारे तत्सम, तद्भव और देशी शब्दों को नेपाली भाषा ने कुछ अर्थ-परिवर्तनों के साथ ग्रहणकर लिया है। इनके अलावा अरबी, फारसी और अंग्रेजी के भी बहुत सारे शब्द हिन्दी भाषा में होकर नेपाली में गए हैं। कुछ नेपाली भाषा-वैज्ञानिकों की धारणा है कि प्रशासन, न्यायालय और कार्यालय में अरबी-फारसी शब्दों को प्रविष्ट होने का अधिक अवसर मिला था जिससे ऐसे 'आगन्तुक' शब्द नेपाली में बहुत हैं। अंग्रेजी के शब्दों के बारे में भी उनकी धारणा है कि सुगौली-सन्धि के समय से ही ऐसे शब्द नेपाली में आने लगे थे। प्रस्तुत प्रबन्ध में अर्थसाम्य के कारण उन सारे अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों को समेटा नहीं जा सका है। यहाँ केवल उन्हीं विदेशी शब्दों की सूची दी गई है जो हिन्दी भाषा के प्रभाव के कारण नेपाली में गए हैं और विवेच्य शब्दों में से ऐसे विदेशी शब्दों को प्रस्तुत सूची से अलग रखा गया है जो नेपाली में अन्य स्रोतों से गए हैं। नेपाली में ऐसे शब्दों को 'आगन्तुक' कहा जाता है। इनकी स्थिति को इस प्रकार देखा जा सकता है—

(1) हिन्दी से गए नेपाली के तत्सम शब्दों में

अ. अर्थ-विस्तार 33 शब्दों में।

आ. अर्थ-संकोच 17 शब्दों में।

इ. **अर्थादेश** 18 शब्दों में।

(2) हिन्दी से गए नेपाली के तद्भव शब्दों में—

अ. अर्थ-विस्तार	39 शब्दों में।
आ. अर्थ-संकोच	26 शब्दों में।
इ. अर्थादेश	69 शब्दों में।

(3) हिन्दी से गए नेपाली के देशी शब्दों में—

अ. अर्थ-विस्तार	2 शब्दों में।
आ. अर्थ-संकोच	4 शब्दों में।
इ. अर्थादेश	7 शब्दों में।

(4) हिन्दी से गए नेपाली के विदेशी शब्दों में—

अरबी-फारसी—

अ. अर्थ-विस्तार	20 शब्दों में।
आ. अर्थ-संकोच	9 शब्दों में।
इ. अर्थादेश	29 शब्दों में।

अंग्रेजी---

अ. अर्थ-विस्तार	1 शब्द में।
आ. अर्थ-संकोच	---
इ. अर्थादेश	1 शब्द में।

नेपाली भाषा की दृष्टि से विचार करने पर ये सारे शब्द आगन्तुक ठहरते हैं, क्योंकि सभी अन्य भाषा से इस भाषा में आए हैं। लेकिन तद्भव शब्दों को नेपाली का तद्भव या अर्द्ध तत्सम (जैसा कि नेपाली भाषा-वैज्ञानिक मानते हैं) माना जा सकता है, क्योंकि नेपाली की माँ भी संस्कृत है और तद्भव शब्द उसी से विकसित हुए हैं। तत्सम शब्द तो एक ही मूल होने के कारण दोनों भाषाओं की संपत्ति हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों में हिन्दी से 139 तद्भव शब्द नेपाली में गए हैं और अर्थ-परिवर्तन के शिकार हो गए हैं। इनमें 39 शब्दों में अर्थ-विस्तार, 26 शब्दों में अर्थ-संकोच और 69 शब्दों में अर्थादेश घटित हुआ है।

उपर्युक्त तालिका में जिन देशी शब्दों की सूची दी गई है, वे पहले हिन्दी में ही निर्मित हुए हैं और बाद में नेपाली में गृहीत हो गए हैं। ऐसे शब्द कुल 13 हैं जिनमें 2 में अर्थ-विस्तार, 4 में अर्थ-संकोच और 7 में अर्थादेश घटित हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों में 58 ऐसे अरबी-फारसी के शब्द हैं जो हिन्दी के प्रभाव से नेपाली में गए हैं और अर्थ परिवर्तन के शिकार हो गए हैं। इनमें 20 शब्दों में अर्थ-विस्तार, 9 शब्दों में अर्थ-संकोच और 29 शब्दों में अर्थादेश हुआ है। अंग्रेजी के दो ऐसे शब्द भी प्रस्तुत प्रबन्ध में आये हैं जिनका नेपाली में जाने पर अर्थ-परिवर्तन हो गया है। इनमें एक का अर्थ-विस्तार हुआ है और एक का अर्थादेश।

इस तालिका से स्पष्ट है कि अन्य विदेशी भाषाओं की तुलना में नेपाली ने हिन्दी के ही अधिकाधिक शब्द अपनाए हैं। दूसरी भाषाओं के शब्द भी नेपाली में आए हैं, पर उनकी संख्या हिन्दी शब्दों की तुलना में बहुत कम है। अरबी-फारसी की तुलना में हिन्दी के लगभग चार गुना (तत्सम, तद्भव और देशी मिलाकर) शब्द नेपाली में गये हैं।

अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द नेपाली में प्रयुक्त हो रहे हैं, पर अर्थ साम्य के कारण प्रस्तुत प्रबन्ध में स्थान नहीं पा सके हैं। अर्थ-परिवर्तन की दृष्टि से हिन्दी और 'नेपाली शब्दों की तुलना करने पर मात्र दो ही अंग्रेजी शब्द नेपाली में पाए गए। इस तरह अंग्रेजी की तुलना में हिन्दी के सौ गुना से भी ज्यादा शब्दों का अर्थ-विकास नेपाली में हो गया है।

निष्कर्ष यह कि हिन्दी का नेपाली भाषा पर भारी प्रभाव दीखता है। नेपाली ने बहुत सारे शब्दों को हिन्दी से ग्रहण किया है। हिन्दी से गृहीत शब्दों में सबसे अधिक अर्थादेश हुआ है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों भाषायें विभिन्न अर्थ-दिशाओं की ओर प्रवृत्त हैं। ऐसे शब्दों में अर्थ-संकोच की तुलना में अर्थ-विस्तार अधिक हुआ है; यह बताता है कि नेपाली अर्थ-विकास के नए आयामों की ओर बढ़ रही है। नए अर्थ-क्षितिजों की खोज किसी भी भाषा के विकासोन्मुख होने का प्रमाण है। अतएव,

प्रस्तुत शब्द-सूची बताती है कि नेपाली हिन्दी से हटकर नई दिशा की ओर बढ़ रही है और इसमें गहराई के बजाय एक भिन्न ही परिवेश का समेटने की प्रवृत्ति है।

तद्भव के बाद सबसे अधिक अर्थ परिवर्तन तत्सम शब्दों में हुआ है। इनमें भी अर्थ-संकोच से अधिक अर्थ-विस्तार और सबसे अधिक अर्थादेश हुआ है। इस तरह, तत्सम शब्दों से भी भाषा की वही प्रवृत्ति स्पष्ट होती है जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है।

आ. पूर्ण सांख्यिक विवरण

प्रस्तुत प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों की संख्या 508 के आधार पर हिन्दी और नेपाली भाषाओं में अर्थ-विकास की स्थिति निम्नलिखित रूप में पायी जाती है—

(1) शब्द-व्युत्पत्ति की दृष्टि से—

शब्द	संख्या		औसत प्रतिशत	
	हिन्दी	नेपाली	हिन्दी	नेपाली
अर्थ-विस्तार : तत्स०	77	44	15.1	8.6
अर्थ-संकोच : तत्स०	12	33	2.3	6.5
अर्थादेश : तत्स०	25	73	4.9	14.4
	114	150	22.3	29.5
अर्थ-विस्तार : तद्०	79	46	15.5	9.1
अर्थ-संकोच : तद्०	25	33	4.9	6.5
अर्थादेश : तद्०	100	162	11.7	31.9
	204	241	40.1	49.7
अर्थ-विस्तार : देशी	2	3	0.4	0.6
अर्थ-संकोच : देशी	1	4	0.2	0.8
अर्थादेश : देशी	3	14	0.6	2.7
	6	21	1.2	3.1
अर्थ-विस्तार : वि०	31	23	6.2	4.5
अर्थ-संकोच : वि०	7	12	1.4	2.5
अर्थादेश : वि०	16	41	3.1	8.1
	54	76	10.7	15.1

0हि० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—तद्०, तत्स०, वि०, देशी।

0ने० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम—तद्०, तत्स०, वि०,देशी।

0—हिन्दी की तुलना में नेपाली के सभी तरह के शब्दों (तद्०, तत्स०, वि०, देशी) में अपेक्षाकृत अधिक अर्थ-विकास हुआ है। तत्सम और विदेशी शब्दों में लगभग डेढ़ गुना और देशी शब्दों में तीन गुना से भी अधिक अर्थ-विकास नेपाली में घटित हुआ है।

(2) शब्द-भेद की दृष्टि से—

हिन्दी	संज्ञा	प्रतिशत	क्रिया	प्रतिशत	विशेषण	प्रतिशत
अर्थ-विस्तार :	153	30.1	5	1.0	27	5.3
अर्थ-संकोच :	43	8.4	2	0.4	—	—
अर्थादेश :	116	22.8	3	0.6	21	4.1
	312	61.3	10	2.0	48	9.4
नेपाली						
अर्थ-विस्तार :	87	17.1	4	0.8	21	4.1
अर्थ-संकोच :	72	14.3	—	—	7	1.4
अर्थादेश :	228	44.9	5	1.0	37	7.3
	387	76.3		01.8	70	12.8

हिन्दी	सर्वनाम	प्रतिशत	क्रिया वि०	प्रतिशत	अव्यय	प्रतिशत
अर्थ-विस्तार :	—	—	—	—	4	0.8
अर्थ-संकोच :	—	—	—	—	—	—
अर्थादेश :	2	0.4	0	0.0	2	0.4
	2	0.4	0	0.0	6	1.2
नेपाली						
अर्थ-विस्तार :	—	—	1	0.2	3	0.6
अर्थ-संकोच :	1	0.2	—	—	2	0.4
अर्थादेश :	—	—	9	2.0	11	2.1
	1	0.2	10	2.2	16	3.1

0 हि० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम——संज्ञा, विशेषण, क्रिया, अव्यय, सर्वनाम।

0 ने० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम——संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया विशेषण, क्रिया, सर्वनाम।

0——नेपाली की तुलना में हिन्दी क्रियाएँ अर्थ-विकास की प्रक्रिया में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं जिससे हिन्दी भाषा की नमनीयता प्रमाणित होती है। संज्ञा और विशेषणों में नेपाली में अपेक्षाकृत सवा गुना अधिक अर्थ-विकास हुआ है। नेपाली अव्यय में हिन्दी की तुलना में अधिक (ढाई गुना) अर्थ-विकास हुआ है। नेपाली के क्रिया-विशेषणों में अर्थ विकास हुआ है, लेकिन हिन्दी क्रिया-विशेषणों में नहीं।

(3) प्रयोग की दृष्टि से——

	साधारण	शब्द	औसत	प्रतिशत	शिष्ट	शब्द	औसत	प्रतिशत
	हि०	ने०	हि०	ने०	हि०	ने०	हि०	ने०
अर्थ-विस्तार :	122	64	24.0	12.6	67	52	13.2	10.2
अर्थ-संकोच :	32	47	6.3	9.3	13	35	2.5	7.0
अर्थादेश :	112	161	22.0	31.7	32	129	6.3	25.4
	266	272	52.3	53.6	112	216	22.0	42.6

हि० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम : साधारण, शिष्ट।

ने० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम : साधारण, शिष्ट।

0—हिन्दी और नेपाली के साधारण शब्दों में अर्थ विकास लगभग समान रूप से ही घटित हुआ है, लेकिन शिष्ट शब्दों में यह अन्तर बहुत बड़ा है। हिन्दी की तुलना में नेपाली के शिष्ट शब्दों में लगभग दो गुना अधिक अर्थ विकास हुआ है। निष्कर्ष यह कि नेपाली शिष्ट शब्द साधारण शब्दों की तुलना में अधिक लचीले हैं और नये सन्दर्भों और परिस्थितियों के अनुकूल नये अर्थों को विकसित करने में सक्षम हैं।

(4) अर्थ-प्रकार की दृष्टि से—

	शब्द		औसत	प्रतिशत
	हि०	ने०	हि०	ने०
अर्थ विस्तार[1]	189	116	37.2	22.8
अर्थ-संकोच :	45	82	8.8	16.3
अर्थादेश :	144	290	28.3	57.1
	436	557	74.3	96.2

हि० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम : अर्थ विस्तार, अर्थादेश, अर्थ-संकोच।

ने० : अधिकता से न्यूनता का उत्तरोत्तर अनुक्रम : अर्थादेश, अर्थ विस्तार, अर्थ-संकोच।

0—हिन्दी में नेपाली की तुलना में अर्थ-विस्तार लगभग डेढ़ गुना अधिक हुआ है। अर्थ-संकोच और अर्थादेश हिन्दी की अपेक्षा नेपाली में लगभग दो गुना अधिक घटित हुआ है।

अन्तिम निष्कर्ष

प्रस्तुत निष्कर्ष प्रबन्ध के विवेच्य शब्दों (508) में घटित अर्थ-विकास के आधार पर आधारित है—

0—हिन्दी में अर्थ विकास का कुल औसत प्रतिशत यदि 74.3 है तो नेपाली में लगभग 96.2।

0—हिन्दी की तुलना में नेपाली के देशी और विदेशी शब्दों में अपेक्षाकृत अधिक अर्थ-परिवर्तन हुआ है।

1. व्युत्पत्ति की दृष्टि से

(व्युत्पत्ति की दृष्टि से हिन्दी एवं नेपाली में समान रूप से 30.4 प्रतिशत तत्सम शब्द, 50.6 प्रतिशत तद्० शब्द, 3.5 प्रतिशत देशी शब्द और 15.5 प्रतिशत वि० शब्द पाए गए हैं, परन्तु दोनों भाषाओं में अर्थ-विकास का प्रतिशत अलग-अलग है।)

0—हिन्दी के तत्सम शब्दों में बहुत मामूली अर्थ-संकोच घटित हुआ है। हिन्दी के ऐसे शब्दों में सर्वाधिक अर्थ-विस्तार घटित हुआ है।

0—नेपाली के तत्सम शब्दों में सबसे ज्यादा अर्थादेश हुआ है।

0—हिन्दी के तद्भव शब्दों में सबसे अधिक अर्थादेश और तब अर्थ-विस्तार तथा सबसे कम अर्थ-संकोच हुआ है। अर्थादेश और अर्थ-विस्तार में परिमाण की दृष्टि से बहुत बड़ा अन्तर नहीं है।

0—नेपाली के तद्भव शब्दों में सबसे ज्यादा अर्थादेश हुआ है। अर्थ-विस्तार एवं अर्थ-संकोच की तुलना में अर्थादेश का अन्तर परिमाण में बहुत अधिक है।

0—हिन्दी के देशी शब्दों में अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच और अर्थादेश—तीनों लगभग समान रूप से और बहुत कम घटित हुआ है।

0—नेपाली के देशी शब्दों में अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच की तुलना में अर्थादेश बहुत अधिक घटित हुआ है।

0—हिन्दी के विदेशी शब्दों में सर्वाधिक अर्थ-विस्तार हुआ है।

0—नेपाली के विदेशी शब्दों में सर्वाधिक अर्थादेश हुआ है।

2—शब्द-भेद की दृष्टि से

0—हिन्दी की संज्ञाओं में सबसे अधिक अर्थ-विस्तार हुआ है।

0—नेपाली की संज्ञाओं में सबसे अधिक अर्थादेश हुआ है।

0—हिन्दी की क्रियाओं में सबसे अधिक अर्थ-विस्तार हुआ है।

0—नेपाली की क्रियाओं में सबसे अधिक अर्थादेश हुआ है और इसमें अर्थ-संकोच नहीं हुआ है।

0—हिन्दी के विशेषणों में सबसे ज्यादा अर्थ-विस्तार घटित हुआ है और इसमें अर्थ-संकोच घटित नहीं हुआ है।

0—नेपाली के विशेषणों में सबसे अधिक अर्थादेश हुआ है। साथ ही, इसमें अर्थ-संकोच भी देखा जाता है।

0—हिन्दी के सर्वनामों में अर्थादेश घटित हुआ है।

0—नेपाली के सर्वनाम में अर्थ-संकोच हुआ है।

0—हिन्दी के क्रिया-विशेषणों में अर्थ-विकास नहीं हुआ है।

0—नेपाली के क्रिया-विशेषणों में मुख्यतः अर्थादेश हुआ है, साथ ही अर्थ-विस्तार भी पाया जाता है।

0—हिन्दी अव्यय में सबसे ज्यादा अर्थ-विस्तार हुआ है। इसमें अर्थ-संकोच घटित नहीं हुआ है।

0—नेपाली अव्यय में सबसे अधिक अर्थादेश घटित हुआ है। इसमें अर्थ-संकोच और अर्थ-विस्तार भी पाया गया है।

3—शब्द-प्रयोग की दृष्टि से

(साधारण शब्द हिन्दी में 52.3 प्रतिशत हैं और नेपाली में 53.6 प्रतिशत। शिष्ट शब्द हिन्दी में 22.0 प्रतिशत हैं और नेपाली में 42.6 प्रतिशत।)

0—हिन्दी में सर्वाधिक अर्थ-विस्तार हुआ है।

0—नेपाली में अर्थ-संकोच और अर्थ-विस्तार की तुलना में बहुत अधिक अर्थादेश घटित हुआ है।

इ : अन्तिम निष्कर्ष एवं उसका विवेचन

हिन्दी भाषा को अपना रूप निश्चित करने में अनेक तरह के झंझावातों और प्रभावों को झेलना पड़ा है (इस बात का वर्णन भूमिका के 'हिन्दी तथा नेपाली भाषाओं की सांस्कृतिक विशेषताएँ और उनका पारस्परिक सम्बन्ध' के अन्तर्गत देखिए) जिसके परिणामस्वरूप हिन्दी भाषा के स्वरूप-निर्धारण में निम्नलिखित तत्वों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा—

1—हिन्दी को विरासत के रूप में संस्कृत के ढेर सारे तत्सम शब्द मिले।

2—लम्बे समय तक यवनों के शासन के कारण अरबी-फारसी के बहुत सारे शब्द हिन्दी में प्रविष्ट हुए।

3—अंग्रेजों के लगभग दो सौ वर्षों के शासन के बीच राजकीय और पठन-पाठन की भाषा अंग्रेजी रही जिससे अंग्रेजी के बहुत सारे शब्द इसमें आ मिले।

4—पोर्तुगीज और फ्रांसीसियों ने भी भारत के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया था, जिस वजह से हिन्दी में पोर्तुगीज और फ्रेंच शब्द भी घुलमिल गए।

5—भारत के स्वातंत्र्य आन्दोलन के समय संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और अरबी-फारसीयुक्त 'हिन्दुस्तानी' की जो खींचतान शुरू हुई, इससे तत्सम और विदेशी (अरबी-फारसी) शब्दों को अधिकाधिक प्रविष्ट होने का अवसर मिला।

6—हिन्दी प्रदेश की सामान्य बोलचाल की भाषायें जिनमें सामान्य विकास-प्रक्रिया से तद्भव और देशी शब्द निःनिर्मित-निर्मित हो गए थे, साहित्यिक भाषा बन गई थीं। इसलिए हिन्दी में तद्भव और देशी शब्द लोक-प्रचलन के कारण अनायास काल-क्रमानुसार आत्मगात् होते गए।

इन्हीं कारणों से हिन्दी में तत्सम, तद्भव, देशी और विदेशी—सभी तरह के शब्द पाए जाते हैं। चूँकि भाषा की रीढ़ बोलचाल की भाषा होती है और इसमें तत्सम शब्दों के तद्भव बनने की सामान्य प्रक्रिया चलती रहती है, इसलिए हिन्दी में सर्वाधिक तद्भव शब्द पाए गए हैं। संस्कृत को हिन्दी तक आते-आते बीच में प्राकृत और अपभ्रंश जैसे भाषा-रूपों से गुजरना पड़ा। इस बीच समय का एक लम्बा अन्तराल है जिसमें संस्कृत के शब्द लोगों की जिह्वा पर घिसते रहे। हिन्दी तक आते-आते बहुत सारे तत्सम शब्द तद्भव में बदल चुके थे, फिर भी उनकी अपनी सत्ता मौजूद थी। यही कारण है कि हिन्दी में तद्भव के बाद तत्सम शब्द ही अधिक पाए गए हैं। आज की नई परिस्थिति में हिन्दी अपनी आवश्यकतानुसार फिर से नये-नये तत्सम शब्दों की खोज और उसके सहारे नए-नए शब्दों का निर्माण कर रही है। इस वजह से भी हिन्दी में तत्सम शब्दों की संख्या बढ़ी है।

हर भाषा आवश्यकतानुसार नए-नए शब्दों का सृजन करती है। अतएव हिन्दी में भी देशी शब्द पाए जाते हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध में आए देशी शब्द या तो अनुकरणबोधक हैं या उपसर्ग, प्रत्यय, सन्धि-समास के योग से बने शब्द।

विपरीत, नेपाली भाषा की स्थिति हिन्दी से भिन्न रही है। नेपाली की अपनी राजनीतिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परिस्थिति रही है जिसका आवश्यक प्रभाव भाषा पर पड़ा है। इसे संक्षेप में इस प्रकार देखा जा सकता है—

1—नेपाल के आदिवासी किरात थे जो संख्या में बहुत कम थे। पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ते हुए आर्य नेपाल में भी जा बसे, जो अपने साथ अपनी संस्कृति और भाषा भी लेते गये। संस्कृत और उसकी वजह से तत्सम शब्दों के होने का एक कारण यही है।

2—भारत पर जब यवनों का आक्रमण हुआ तो बहुत सारे राजा, पंडित और विद्वान् अपनी रक्षा के लिए नेपाल चले गए। बाद में, कई राजाओं ने वहाँ का राज्य ही हड़प लिया और शासन करने लगे। बहुत सारे लोग वहीं बस गए। इसलिए इनके साथ भारत की भाषा भी नेपाल गई।

3—नेपाल की भौगोलिक स्थिति ने उसे भारत के साथ घनिष्ठ रूप से जोड़ दिया है। उत्तर की ओर हिमालय जैसा विशाल पर्वत है जिसको पारकर चीन आदि से सम्बन्ध जोड़ना अधिक सरल नहीं था। इसलिए भारत के साथ नेपाल एक अद्भुत सांस्कृतिक बन्धन में जुड़ा रहा है। यहाँ के धर्म, संस्कृति और सभ्यता ने नेपाल को बहुत अधिक प्रभावित किया है। इसलिए संपर्क के कारण हिन्दी भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

4—नेपाल पर कभी मुसलमानों का शासन नहीं रहा। अतएव नेपाली में स्वतः अरबी-फारसी शब्दों के आ जाने का कोई स्पष्ट कारण नहीं है।

5—नेपाल पर, चाहकर भी अंग्रेज अपना शासन नहीं जमा सके, इसलिए नेपाली में अंग्रेजी के शब्दों को स्वतः जाने का कोई ठोस कारण नहीं है।

6—नेपाल को हिन्दी प्रदेश की तरह बाहरी आक्रमणकारियों या शासकों से नहीं जूझना पड़ा। नेपाल में सदा आन्तरिक संघर्ष ही रहा है। इसलिए जहाँ हिन्दी में अन्य भाषाएँ आ मिली हैं, नेपाली को बाह्य भाषाभाषी से अछूता रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

7—हिन्दी की तुलना में नेपाली का विकास बहुत बाद में हुआ है। जब हिन्दी एक समृद्ध भाषा बन चुकी थी, तब तक नेपाली राजनीति की भाषायी उदासीनता का शिकार थी।

प्रस्तुत विवेचन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है कि संस्कृत की पुत्री होने के कारण नेपाली में बहुत सारे तत्सम शब्द आ गए हैं। संस्कृत नेपाल की अपनी प्राचीन भाषा नहीं थी, वरन् ऐसी भाषा थी जिसे बाद में आर्य लोग ले गए थे। वहाँ के प्राचीन निवासी किरात इस भाषा से अनभिज्ञ थे। अपनी भूमि से विच्छिन्न होकर और नई आवश्यकता के अनुसार संस्कृत के शब्द नए-नए अर्थों को देने लगे। यही कारण है कि हिन्दी की तुलना में नेपाली के तत्सम शब्दों में अधिक अर्थ-विकास हुआ है।

हिन्दी के विकास और नेपाल के साथ हिन्दी-प्रदेश के घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण हिन्दी के बहुत सारे तद्भव शब्द नेपाली में प्रवेश पा गए हैं। नेपाली ने कुछ अर्थ-

परिवर्तनों के साथ ऐसे शब्दों को स्वीकार कर लिया है। इनके अलावा, नेपाली में बहुत सारे अपने तद्भव शब्द भी हैं जो नए अर्थ के वाचक बन गए हैं। जहाँ हिन्दी का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से हुआ है, वहाँ नेपाली का विकास खस अपभ्रंश से। इस-लिए भी अर्थ-भिन्नता आ जाना स्वाभाविक है। यही कारण है कि हिन्दी की तुलना में नेपाली के तद्भव शब्दों में सबसे ज्यादा अर्थ विकास हुआ है।

नेपाली में अरबी-फारसी के अधिकांश शब्द हिन्दी भाषा से होकर ही प्रविष्ट हुए हैं। नेपाल की दरबारी भाषा में अरबी-फारसी का प्रवेश हो गया था, क्योंकि भारत की तत्कालीन दरबारी भाषा भी या तो अरबी-फारसी थी या अरबी-फारसीयुक्त उर्दू। हिन्दी ने अरबी-फारसी शब्दों को पहले ग्रहण किया और नेपाली ने बाद में। यही स्थिति अंग्रेजी, पोर्तुगीज और फ्रेंच जैसे विदेशी शब्दों की भी है। चूंकि हिन्दी ने इन शब्दों को इनके प्रयोक्ताओं से सीधे ग्रहण किया था, इसलिए वह उनकी आत्मा से परिचित थी। पर नेपाली में यह भूम फिरकर गया जिससे उसके परम्परागत अर्थ को वे नहीं पकड़ पाए। परिणामतः, हिन्दी की तुलना में नेपाली के विदेशी शब्दों में बहुत अधिक अर्थ-विकास हुआ है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी के तत्सम शब्दों में जहाँ अधिकाधिक अर्थ विस्तार हुआ है, वहाँ नेपाली के तत्सम शब्दों में अधिकाधिक अर्थादेश। हिन्दी के तद्भव शब्दों में अर्थ विस्तार और अर्थादेश लगभग बराबर हुआ है, पर नेपाली के तद्भव शब्दों में अर्थ संकोच और अर्थ विस्तार की तुलना में अर्थादेश बहुत ज्यादा हुआ है। हिन्दी के विदेशी शब्दों में जहाँ सर्वाधिक अर्थ-विस्तार हुआ है, वहाँ नेपाली के ऐसे शब्दों में सबसे ज्यादा अर्थादेश। नेपाली देशी शब्द में भी अर्थादेश ही प्रमुख है।

इस तरह नेपाली में अर्थ की जो सामान्य प्रवृत्ति पाई जाती है, उससे भाषा एक अलग ही रास्ते पर जाती लगती है।

हिन्दी का विकास अत्यन्त स्वाभाविक रूप से हुआ है—बाह्य और आन्तरिक संघर्ष से जूझते हुए।

नेपाली को बाह्य संघर्ष नहीं झेलना पड़ा, इसलिए उसका विकास अपने ही क्षेत्र तक सीमित रहा और विकास की गति भी धीमी रही। आन्तरिक राजनैतिक संघर्ष ने भाषा के प्रति उदासीनता का रुख पैदा कर दिया जिस वजह से नेपाली का विकास बहुत बाद में हुआ। पर हिन्दी बाह्य और आन्तरिक राजनैतिक उलट-फेर के बावजूद अपने विकास-पथ पर अग्रसर होती रही।

हिन्दी की तरह नेपाली की कोई प्रतिद्वन्द्वी भाषा नहीं है। हिन्दी को कभी अंग्रेजी और कभी प्रादेशिक भाषाओं से होड़ लेनी पड़ती है जिस वजह से अपने अस्तित्व की रक्षा और समृद्धि के लिए इसे तेजी से विकसित होना पड़ा है। विपरीत, नेपाली नेपाल की एकमात्र साहित्यिक और राजकीय भाषा है। अपने देश की किसी भी अन्य भाषा से संघर्ष या प्रतिद्वन्द्विता नहीं होने के कारण नेपाली के विकास की गति अपेक्षतया मंथर है। नेपाली अपने क्षेत्र में ही इस तरह सिमटी रही है कि उसे अन्य भाषा के शब्दों के प्रचलित अर्थ का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं हो सका है। अस्तु, नेपाली ने अपनी आवश्य-कतानुसार शब्द को नए अर्थों के साथ जोड़कर अर्थादेश कर लिया है।

हिन्दी की तुलना में नेपाली के शब्दों में ज्यादा अर्थ-विकास हुआ है। हिन्दी के शब्दों में जहाँ 75.8 प्रतिशत अर्थ-विकास पाया गया है, वहाँ नेपाली के शब्दों में 96.2 प्रतिशत। इससे एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी ने मूल अर्थों को जिस तरह सुरक्षित रखा, नेपाली नहीं रख सकी। इसका प्रमुख कारण दोनों भाषा-क्षेत्रों की अपनी-अपनी स्थितियाँ रही हैं।

नेपाली भौगोलिक दृष्टि से अन्य भाषा-क्षेत्रों से लगभग कटी-छँटी रही है। राजनीतिक दृष्टि से अन्य भाषाभाषी का कभी उस क्षेत्र पर शासन नहीं रहा या उस पर कभी अन्य विदेशी भाषा थोपी नहीं गई। सांस्कृतिक दृष्टि से नेपाली क्षेत्र सदा से हिन्दूत्व का हिमायती और रक्षक रहा है। नई औद्योगिक क्रान्ति से यह क्षेत्र लगभग अछूता रहा है।

विपरीत, हिन्दी-भाषी क्षेत्र सपाट मैदान में फैला हुआ है और आवागमन की सुविधा के कारण अन्य भाषाभाषियों से इसका सम्पर्क होता रहा है। राजनीतिक दृष्टि से मुसलमान और अंग्रेजों के द्वारा लम्बे अरसे तक शासित क्षेत्र रहा है। उन लोगों ने अपनी भाषा और संस्कृति—दोनों को इस क्षेत्र पर लादने का प्रयास किया। फलतः हिन्दी क्षेत्र धर्म के मामले में कट्टर नहीं रह सका और धर्म-निरपेक्षता का भाव पालने लगा। नए उद्योग एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने नई चेतना और नया भावबोध दिया।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि नेपाली अपनी असंगतता में विकास-पथ पर आरूढ़ रही और नए-नए विचारों या भावबोधों के लिए उसके पास शब्द का भंडार नहीं रहा। संस्कृति और धर्म ने संस्कृत की जो धरोहर दिया, उसी के तत्सम शब्दो को नये अर्थों के साथ जोड़ दिया जिससे उसमें अर्थ-विकास हो गया। संस्कृत के तद्भव शब्द जो पड़ोस की हिन्दी भाषा या लोक-प्रचलन में उसे दिखाई पड़, तत्सम के समीप होने के कारण बहुत अपने जान पड़े, इसलिए नेपाली ने ऐसे तद्भव शब्दों को प्रचुर मात्रा में ग्रहण किया, लेकिन उन्हें भी नए अर्थों के साथ जोड़कर अर्थ-विकास कर दिया। देशी शब्द संख्या में कम मिले हैं, पर आवश्यकतानुसार ऐसे शब्द भी निर्मित किए गए और उन्हें नए परिप्रेक्ष्य में देखा गया। नेपाली ने विदेशी शब्दों को ग्रहण किया है, पर उसके अर्थ में परिवर्तन हो जाने का कारण मौलिक अर्थ के प्रति अभिज्ञता या अपनी आवश्यकता—दोनों ही हैं। इनके अलावा यह भी एक महत्त्वपूर्ण कारण है कि नेपाली ने सारे विदेशी शब्दों को अपने सांस्कृतिक परिवेश में देखा और उसी के अनुसार अर्थ-विकास कर लिया गया है।

विपरीत, हिन्दी ने विरासत के रूप में जिन तत्सम शब्दों को पाया, यथासंभव उनके अर्थों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। इसका कारण संभवतः यह है कि हिन्दी को जिस इस्लामी और अंग्रेजी संस्कृति से टक्कर लेनी पड़ी, उसके लिए यह आवश्यक हो गया कि अपनी मौलिकता की रक्षा के लिए सांस्कृतिक विरासत को कायम रखे। तद्भव शब्द अपने बदलते रूप के साथ-साथ नए संदर्भों के साथ जुटते जाते हैं जिस वजह से उनके अर्थों में परिवर्तन होता है। हिन्दी ने प्रयास किया है कि नए अर्थों को तद्भव शब्दों के साथ जोड़ दिया जाय जिससे ऐसे शब्दों में अर्थ-विस्तार हुआ है। लेकिन आवश्यकतानुसार नए अर्थों के बोध के लिए बाह्य भाषा का सहारा न लेकर अपनी भाषा के शब्दों का ही प्रयोग करने की प्रवृत्ति के कारण अर्थादेश भी हुआ है।

हिन्दी-क्षेत्र में कार्यालय और न्यायालय, राज-दरबार में लम्बे अरसे तक अरबी-फारसी या अंग्रेजी का बोलबाला रहा है। साथ ही, शिक्षा का माध्यम भी बहुत समय तक यही रहा है। आज की नई वैज्ञानिक उन्नति की आंधी पश्चिम से बढ़ती हुई भारत तक भी पहुँची है और इसका माध्यम रही है अंग्रेजी। इसी ऐतिहासिक परिवेश में हिन्दी को विदेशी शब्द भी ग्रहण करने पड़े हैं। लेकिन समय के रंद पर ऐसे विदेशी शब्द के अर्थ को भी हिन्दी ने छीलकर अपने अनुकूल कर लिया है।

इसे और स्पष्ट करने के लिए दोनों भाषा-प्रदेशों की प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अन्वेषण आवश्यक है। जैसा कि विषय-प्रवेश के अन्तर्गत बताया जा चुका है, आर्य लोग भारत पार कर नेपाल में जाकर बस गए थे और साथ में अपनी भाषा और संस्कृति भी लेते गए थे। इसके बाद यवनों के आक्रमण के समय अपने धर्म, संस्कृति और अस्तित्व को बनाए रखने के लिए बहुत सारे भारतीय नेपाल जाकर बस गए थे। यवनों ने हिन्दी प्रदेश को बखूबी लूटा, लम्बे अरसे तक शासन किया और इस पर यथासंभव अपनी भाषा और संस्कृति लादने का प्रयास किया। लेकिन नेपाल में जो परंपरागत पंडित और हिन्दू राजा जाकर बस गए थे, उन लोगों ने यथासंभव अपनी संस्कृति और धर्म को बाह्य प्रभाव से बचाए रखना चाहा। इसलिए नेपाल हिन्दुत्व के प्रति दिनानुदिन कट्टर होता गया और बदली परिस्थिति में हिन्दी-प्रदेश धर्म के प्रति उदार होता गया। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी-क्षेत्र जहाँ अनेक तरह की भाषा और संस्कृति का क्रीड़ा-स्थल रही, वहाँ नेपाल इन तत्त्वों से एकदम बिलग रह गया। हिन्दी क्षेत्र को सारे तत्त्वों को साथ लेकर चलना पड़ा, पर नेपाली-क्षेत्र अपनी एकान्त-साधना में लीन रहा। यही कारण है कि जहाँ हिन्दी ज्यादा से ज्यादा वस्तुनिष्ठ रही, वहाँ नेपाली आत्मनिष्ठ हो गई। हिन्दी विभिन्न भाषायी और सांस्कृतिक संघर्षों के बीच अपनी राह बनाती रही और नेपाली आत्मलीनता में डूबकर नया मार्ग खोजती रही।

सूक्ष्मता से देखने पर यह ज्ञात होता है कि नेपाल में एक कट्टरता का भाव पाया जाता है। इसका एक प्रमुख कारण धर्म है, पर इसके अलावा वहाँ की प्रकृति या भूगोल भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। नेपाल पहाड़ों, पत्थरों और जंगलों का देश है, जहाँ जीवन-यापन करना बहुत कठिन है। आवागमन के साधन का अभाव, जीविकोपार्जन की कठिनाई और घोर ठंडक से जूझने के कारण वहाँ के लोगों में एक तरह की कठोरता का समावेश हो गया है। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अन्तिम क्षण तक संघर्ष करते रहने की प्रवृत्ति पैदा हो गई थी। यवनों के आक्रमण से भागते-भागते नेपाल में आकर बसे लोगों के लिए हिमालय ने आने-जाने का मार्ग अवरुद्ध कर दिया था। इसलिए अब इसके सिवा कोई चारा नहीं रह गया था कि प्राण-पण से संघर्ष कर बाह्य तत्त्वों को अन्दर जाने से रोका जाय। इसमें नेपाल को काफी सफलता भी मिली। यवनों का उस पर कभी अधिकार नहीं हुआ और अंग्रेजों की लाख कोशिशों के बाद भी नेपाल कभी विजित नहीं हुआ।

विपरीत, हिन्दी कभी इतनी अनुदार नहीं रही, बल्कि सबके साथ मिल-जुलकर आगे की राह बनाती रही। अनेक तरह की भाषाओं और संस्कृतियों के बीच अपने अस्तित्व को खो बैठने का खतरा हरदम बना रहता है, पर हिन्दी ने बड़ी खूबी से सबको पचाकर अपने में मिला लिया, दूसरे में मिलकर लुप्त नहीं हुई। यह हिन्दी की जीवन्तता और शक्ति का प्रतीक है कि सबसे रस लेकर वह पुष्ट होती रही, आगे बढ़ती

रही। यह तभी संभव होता है जब उस भाषा की रीढ़ काफी मजबूत हो और एक सुदीर्घ संस्कृति के साथ अभिन्न रूप से वह जुड़ी हो। हिन्दी ने कभी अपनी मूल भाव-धारा को, संस्कृति और परम्परा को अपने से विलग नहीं होने दिया, इसलिए वह जीवित रह गई। नेपाली को कभी इस तरह का खतरा नहीं उठाना पड़ा।

जो भाषा अन्य भाषाओं की टकराहट में नहीं, वरन् अकेले में विकसित होती है, उसके सामने एक खतरा यह रहता है कि वह एक ही शब्द से अनेक अर्थों का बोध कराने लगती है। कालक्रम से अन्य अर्थों के साथ-साथ पूर्व अर्थ भी छूट जाते हैं और वह शब्द एक भिन्न ही अर्थ का बोध कराने लगता है। एक तरह के भाव या विचार की सम्बद्धता से अन्य अर्थ का बोध करा देना सम्बद्ध कहलाता है और इससे अर्थादेश हो जाता है। अर्थादेश होना बुरा नहीं है, बुरा यह है कि नए शब्दों के अभाव में पुराने शब्दों के साथ ही जो नये भाव जुड़ते जाते हैं इससे अर्थ-विकास की परम्परा रुकती नहीं है। नेपाली में इस तरह की प्रवृत्ति तब तक चलती रहेगी जब तक उसकी आत्म-तल्लीनता टूटेगी नहीं। इस तरह नेपाली में सदा अर्थ अस्थिर रहेगा और मुख्यतः अर्था-देश घटित होता रहेगा। उदाहरणस्वरूप, नेपाली के अनि, अन्त, अन्तर, अपेक्षा, अलेख, असाध्य, अस्ति, अस्तु, आंक, एकान्ती, ओली, कछार, कहां, किन, किनारा, कूत, कोरा, कोरी, खत, खार, खेवा, खोरिया, गट्टा, गांठी, चंगा, चतुर्थी, चांप, चाड़, चिट्ठा, छांद आदि शब्दों को देखा जा सकता है। 'छापा' का हिन्दी में ठप्पा, मुहर, मुद्रा आदि अर्थ होता है। नेपाल में जब अखबार का प्रचलन हुआ तो इसके लिए भी 'छापा' शब्द का व्यवहार होने लगा, क्योंकि अखबार के लिए पहले से कोई शब्द नहीं था। पहले छापा का व्यवहार 'चित्र' के अर्थ में होता था, क्योंकि नेपाल में मुहर भी चित्रात्मक होते थे। बाद में, समाचार-पत्र में चित्रादि को देखकर उसी से सम्बद्ध अर्थ ग्रहण कर लिया गया।

संस्कृत 'जीवः' का अर्थ होता है—प्राण, प्राणी या जीविका। हिन्दी में 'जीउ' का व्यवहार आत्मा, प्राण या जीवधारी के लिए होता है। नेपाली में जब शरीर के लिए शब्द की जरूरत पड़ी तो इसी 'जीउ' से सं० 'प्राणी' से सम्बद्ध अर्थ 'शरीर' ग्रहण कर अर्थादेश घटित हो गया। तत्सम 'झर' शब्द भी ऐसे अर्थादेश का एक अच्छा नमूना है। 'झर' का सं० अर्थ है—झरना। ने० में पानी बरसने का दफा या बार के लिए कोई शब्द नहीं था। वर्षा और झरना—दोनों में पानी गिरता है, इसलिए 'झर' का अर्थादेश कर यह अर्थ ग्रहण कर लिया गया है। सं० 'टंक्' धातु से विकसित 'टक' का अर्थ 'चिह्न' या 'छाया' कर लेना भी इसी प्रवृत्ति को बताता है। इन शब्दों के अलावा 'शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन' में सम्बद्ध (अर्थादेश) के अन्तर्गत ऐसे 92 शब्दों का वर्णन किया गया है जिनमें सम्बद्धता के कारण ने० में अर्थादेश हो गया है। भूगोल ने ने० अर्थ को किस तरह परिवर्तित किया है, इसका एक मजेदार उदाहरण 'अड्डा' शब्द है जिसका विकास सं० 'अट्टाल' से हुआ है। सं० 'अट्टाल' का अर्थ होता है—ऊँची जगह, छत पर की कोठरी, महल। नेपाल मुख्यतः, पहाड़ और जंगलों का देश है, अतएव वहाँ न तो ऊँची जगह की कमी है और न लकड़ी की। इसलिए, वहाँ प्रायः लकड़ी के दोमंजिले मकान बनाए जाते हैं। कार्यालय, न्यायालय आदि प्रायः ऊपरी परकोटे पर स्थित होते हैं, इसी वजह से वहाँ 'अड्डा' का अर्थ हो गया है—अदालत, कचहरी, दफ्तर। भौगोलिक स्थिति ने 'ऊँची जगह' अर्थ को 'अदालत' या 'दफ्तर' में परिणत कर दिया।

इसी तरह 'म्लेच्छ' का एक अर्थ नेपाली में 'विदेशी' हो गया है, क्योंकि नेपाल के लिए गो-मांस खानेवाला (मुसलमान या अंग्रेज) सदा विदेशी ही रहे। ऐसा अर्थ इसलिए आया कि वहाँ की भूमि म्लेच्छों के द्वारा कभी पराजित नहीं हो सकी।

कभी-कभी अभिप्रेत अर्थ का बोध कराने के लिए उपयुक्त शब्द के अभाव में या कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए लोग लक्षणा का सहारा लेते है। प्रारम्भ में लक्षणा, मात्र प्रभाव-सृजन या शब्द के अभाव को पूरा करने के लिए प्रयुक्त होती है, लेकिन धीरे-धीरे इसकी वजह से पुराना अर्थ छूट जाता है और एक नए ही अर्थ में उसका प्रयोग होने लगता है। नेपाली चूँकि अपनी एकान्तता में लीन रही, इसलिए उसे नए शब्द मिल नहीं पाए। नए-नए अर्थों का बोध कराने के लिए लक्षणा का सहारा लेना स्वाभाविक हो गया। इसलिए, लक्षणा के कारण हुए अर्थादेश नेपाली में बहुत अधिक परिमाण में पाए जाते हैं।

'असती' का प्रयोग सं० में कुलटा या सतीत्वहीन के लिए होता है, लेकिन कुलटा को सही मार्ग से भटका हुआ मानकर 'बेईमान' के लिए भी इसका लाक्षणिक प्रयोग होने लगा होगा। बाद में, अब यही अर्थ प्रचलित हो गया है। 'खल्ला' का सं० में अर्थ होता है—गड्ढा। नेपाल में पहले छिपकर किसी गड्ढे में जुआ खेला जाता रहा होगा जिससे जुआ खेलने की जगह के लिए ही इसका लाक्षणिक प्रयोग होने लगा। 'गोकुल' संस्कृत में 'एक गाँव विशेष' या 'गायों का झुण्ड' अर्थ में प्रचलित है, पर नेपाली में एक 'गहना विशेष' के लिए यह प्रचलित हो गया। इसी तरह गुहा, गोटा, गोठ, घोट, चाख, चाला, छांटा, छाल, छिया, जग, जागीर, ठमाहन, टाटो, टीपना, टेर, ठोस, डहन, डाब, डोर, ढाला, ताक, ताप, ताली, तलिया, तोरन, तारी, थाह, थैली, दर, दून, देवल, धर, धेर, धौ, नेवारी, पहार, पातल, पायक, पान, पालि, पुरी, पोल, फेरा, बगली, बथान, बार, बासा, बिजन, भीत, मता, मारना, मोही, याजक, रह, रिमझिम, रांजा, लग, लट्ठ, लाम, वस्ति, संगिनी आदि अनेक शब्दों को उदाहरण के रूप में पेश किया जा सकता है जिनका अर्थादेश लक्षणा के कारण हुआ है। ये सारे शब्द नेपाली की इसी प्रवृत्ति को बतलाते हैं कि किस तरह नेपाली भाषा ने अन्य भाषाओं से यथासंभव अप्रभावित रहकर अपने में ही अर्थ-विन्यास करने का प्रयास किया है।

इस तथ्य की पुष्टि दोनों भाषाओं की ध्वनियों की परीक्षा करने से भी होती है। नेपाली और हिन्दी—दोनों ने अधिकांश ध्वनियाँ परम्परागत आर्यभाषा की ध्वनियों से प्राप्त किया है, लेकिन दोनों में कुछ परिवर्त्तन हुआ है। हिन्दी ने अंग्रेजी की 'ऑ', अरबी की क़, ख़, ग़ और फ़ारसी की ज़ और फ़ ध्वनि का ग्रहण कर लिया है, पर नेपाली ने इन ध्वनियों को स्वीकार न करके बाह्य प्रभाव से बचे रहने की प्रवृत्ति प्रकट कर दी है। इनके अलावा नेपाली ने 'ळ' ध्वनि को 'ल्' के रूप में 'र्' का संयुक्त करने के समय '‑' (यथा, 'पर्यो' का 'प-यों') के रूप में लिखकर लिपि-भेद उत्पन्न कर दिया है। हिन्दी की तरह 'ड़' और 'ढ़' ध्वनि भी नेपाली में सामान्यतया प्रचलित नहीं हैं और इसके स्थान में 'ड' और 'ढ' (यथा, सडक, पीढी) प्रचलित हैं। हिन्दी में 'ष' के स्थान पर 'श' का उच्चारण होने लगा है, नेपाली में 'ष' और 'श'—दोनों के स्थान पर 'स' का व्यवहार होने लगा है। नेपाली में अनुनासिक 'ञ' और 'ण' का उच्चारण लुप्त हो गया है और इसके स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग चल पड़ा है। इस

रह, हिन्दी की ध्वनियाँ, शब्द-समूह की तरह बाह्य प्रभाव से प्रभावित हुई हैं, पर पाली की ध्वनियों ने बाहरी प्रभाव को एकदम नकार दिया है और परम्परागत ध्वनियों में परिवर्तन लाकर अपने अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। इससे नेपाली देश की आत्मलीनता एवं एकान्तता का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

पर्वतीय इलाके में रहने के कारण नेपाल के लोगों के व्यक्तित्व और प्रवृत्ति में एक तरह की रूक्षता व्याप्त हो गई है जिसका आवश्यक प्रभाव नेपाली के शब्दों पर पड़ा है। नेपाली में सम्भवतः इसी कारणवश संयुक्ताक्षरों की भरमार हो गई है।

जब कोई भाषा आत्मनिष्ठ हो जाती है तब वह अपनी मिट्टी की ओर मुड़ जाती है। क्षेत्रीय गुण उसमें प्रधान हो उठते हैं और भाषा उन्हीं के अनुरूप अपना रूप बदलती चलती है। नेपाली में सर्वाधिक अर्थादेश के घटित होने का यह एक महत्त्वपूर्ण कारण है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ऐतिहासिक कारणों से नेपाली-भाषियों में संघर्ष और हठ की प्रवृत्ति मुख्य रूप से आ गई है। संघर्ष की प्रवृत्ति ने शब्द के अर्थ को अपने अनुकूल बनाने की प्रेरणा दी और हठ की प्रवृत्ति ने भाषा के पारम्परिक रूप को यथावत् बनाये रखने के लिए प्रोत्साहित किया। यही कारण है कि संस्कृत से उत्पन्न होकर भी हिन्दी और नेपाली (रूप की दृष्टि से) भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर जाती नजर आती हैं। हिन्दी की तुलना में नेपाली में अश्लिष्ट योगात्मक प्रवृत्ति ज्यादा है और इसीलिए यह संस्कृत के ज्यादा निकट है। हिन्दी में सर्वनाम को छोड़कर अन्य शब्द-रूपों के साथ कारक चिह्नों का योग नहीं होता है (यथा, "राम ने सीता को)", पर नेपाली में सर्वनाम के साथ-साथ संज्ञा के साथ भी कारक चिह्नों का योग होता है (यथा, "रामचन्द्रले, सीतालाई, लंकामा)।" संज्ञा के अलावा अन्य स्थलों पर भी इस तरह की योगात्मक प्रवृत्ति स्पष्टतः दिखाई पड़ती है जो कि हिन्दी में दुर्लभ है (यथा, "हिन्दी—दुकान के साथ, ने०—दुकानका साथ, हि०—आ रही हैं, ने०—आइरहन्छन्)।" हिन्दी की तुलना में नेपाली में सामासिक शब्द भी ज्यादा पाए जाते हैं (यथा, "किरातबाला, [illegible])।" इस तरह ने० भाषा में जो योगात्मक प्रवृत्ति है, वह उसे संस्कृत के बहुत पास ला देती है। इसी से पूर्व में वर्णित यह निष्कर्ष भी पुष्ट होता है कि नेपाली परम्परा और संस्कृति से अनावश्यक रूप से हटकर चलने की प्रवृत्ति नहीं रखती। अर्थ में जो परिवर्तन आए हैं, उनका आना रुक नहीं सकता था, क्योंकि नए भावों की अभिव्यक्ति के लिए ऐसा करना आवश्यक था।

यहाँ एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि नेपाली परम्परा के मोह में पड़कर बहुत कुछ गतिहीन (rigid) भाषा बनकर रह गई, जबकि हन्दी अपेक्षतया गतिशील बनी रही। किसी भी भाषा की सामान्य गति श्लिष्ट से अश्लिष्ट और योगात्मक से अयोगात्मक की ओर जाने की होती है। निश्चय ही, इस दौड़ में नेपाली हिन्दी से पीछे रह गई है।

हिन्दी में दो ही तरह के लिंग होते हैं—पुल्लिंग और स्त्रीलिंग, पर नेपाली में संस्कृत की तरह तीन लिंग होते हैं। निर्जीव पदार्थों के लिए नपुंसकलिंग का व्यवहार किया जाना उसी परम्परा के प्रति मोह का प्रमाण है।

संस्कृत और प्राकृत में क्रियायें संयोगात्मक थी, पर हिन्दी में ये वियोगात्मक हैं (यथा, "हि० जाता हूँ, ने० जान्छु, हि० कह रहे हैं, ने० भन्छन्) ।" इससे यह ज्ञात होता है कि नेपाली-भाषियों ने जिस तरह वैदिक संस्कृति को बहुत अशों में सुरक्षित रखा, उसी तरह नेपाली-भाषा ने मूल भाषा (संस्कृत) की प्रवृत्तियों को भी। यहाँ इस बात का संकेत कर देना अनुपयुक्त नहीं होगा कि हिन्दी-क्षेत्र की तुलना में नेपाली-क्षेत्र में प्राचीन संस्कृति ज्यादा सुरक्षित है। विदेशी प्रभाव के कारण हिन्दी-क्षेत्र के निवासियों के धर्म, संस्कार और व्यवहार में काफी परिवर्तन आया है। हिन्दी-भाषी कोई हिन्दू हैं तो कोई जैन, कोई सिक्ख हैं तो कोई मुसलमान, पर नेपाल में प्रायः सभी हिन्दू हैं। हिन्दी-क्षेत्र में, ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज ने प्राचीन रूढ़िगत मान्यताओं में काफी अन्तर ला दिया। विवाह एवं पूजा-पाठ आदि की विधियों में भी इसका आवश्यक प्रभाव पड़ा है। लोक-व्यवहार को तो पाश्चात्य संस्कृति ने बुरी तरह प्रभावित किया है। अब पैर छूकर प्रणाम करने के बदले हाथ मिलाने या दूर से ही 'गुड मार्निंग' या 'टाटा' करने की परम्परा चल पड़ी है। इस्लामी संस्कृति के प्रभाव के कारण प्रणाम या नमस्कार का स्थान 'आदाब अर्ज' ने ले लिया है।

पर, नेपाल में कभी 'ब्रह्म समाज' या 'थियोसोफी' का प्रभाव नहीं पड़ा। वहाँ पूजा-पाठ एवं विवाह की परम्परागत विधियाँ ही प्रचलित हैं। लोक-व्यवहार में अब भी चरण-स्पर्श कर प्रणाम करने की विधि ही प्रचलित है। इस तरह देखा जाता है कि नेपाली-भाषियों में परम्परा के प्रति एक मोह-सा है और अपनी आत्मलीनता और भाव-निष्ठ प्रवृत्ति के कारण उससे विलग नहीं हो सके हैं। इसलिए, नेपाली में हिन्दी की अपेक्षा ज्यादा पारम्परिक तत्त्व पाए जाते हैं।

पहले ही निर्देश किया जा चुका है कि आत्मनिष्ठ और भावनिष्ठ प्रवृत्ति के कारण ने० में अर्थादेश की प्रवृत्ति प्रमुख हो उठी है। यहाँ इस तथ्य की ओर इशारा कर देना भी युक्तियुक्त होगा कि भौगोलिक कारणों से नेपाल को बहुत माने में भारत का मुखापेक्षी रहना पड़ा है। इस वजह से नेपालियों के मन में सदा अपने अस्तित्व के प्रति खतरे का आभास होता रहा है। इस खतरे की सम्भावना ने उनके मन में एक अजीब विद्रोहात्मक प्रवृत्ति पैदा कर दी है। वहाँ नेपाली के बाद अंग्रेजी, मैथिली, सब कुछ चल सकती है, पर हिन्दीभाषा और हिन्दीभाषी- —दोनों को देखकर वे चौंक जाते हैं। सीधे-सादे नेपालियों को बहुत दिनों तक भारतीय व्यापारियों के द्वारा ठगे जाने के कारण भी यह भाव पैदा हुआ हो सकता है। इस विद्रोहात्मक प्रवृत्ति ने बहुत हद तक अर्थ-दिशा को अर्थादेश की ओर मोड़ दिया है। अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच की तुलना में अर्थादेश का घटित होना निश्चय ही इन तथ्यों की ओर ध्यान आकर्षित करता है।

यही कारण है कि जबकि हिन्दी की संज्ञा, क्रिया, विशेषण और अव्यय में मुख्यतः अर्थ-विस्तार घटित हुआ है तो नेपाली की संज्ञा, क्रिया, विशेषण, क्रिया-विशेषण और अव्यय में मुख्यतः अर्थादेश घटित हुआ है। हिन्दी में अर्थ को प्रसारित करके ज्यादा से ज्यादा भावों को व्यक्त करने की एक चेष्टा पायी जाती है; पर नेपाली में अर्थ को बदल कर प्राचीन अर्थ में एकदम परिवर्तन लाने की प्रवृत्ति। इस दृष्टि से हिन्दी एक प्रसारात्मक भाषा है तथा नेपाली एक विच्छेदात्मक भाषा।

हिन्दी क्रियाओं में, नेपाली की तुलना में ज्यादा अर्थ-विकास हुआ है जिससे यह तथ्य सामने आता है कि नेपाली की तुलना में हिन्दी ज्यादा लचीली भाषा है। विपरीत,

नेपाली संज्ञाओं, विशेषणों, क्रिया-विशेषणों और अव्ययों में हिन्दी की तुलना में बहुत अधिक अर्थ-विकास हुआ है। इससे यह बात साफ हो जाती है कि नेपाली के अर्थ-विकास सामान्यतया भाषा को गति न प्रदान करके, उसके रूप में परिवर्तन लाने के लिए सक्रिय हैं। संज्ञायें किसी भाव या वस्तु का बोधक होती हैं और जब भी किसी भाषा में नए भाव या वस्तु के लिए नाम का अभाव होता है तो संज्ञाओं के अर्थ में परिवर्तन आता है। नेपाली को अपने विकास के क्रम में ऐसे बहुत सारे भावों और वस्तुओं के लिए संज्ञाओं की खोज करनी पड़ी है, शायद इसलिए नेपाली संज्ञाओं में सबसे ज्यादा अर्थादेश हुआ है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि नेपाली एक विकासशील भाषा है, जबकि हिन्दी की संज्ञाओं में अपेक्षाकृत कम परिवर्तन होने के कारण इसे विकसित भाषा माना जा सकता है।

हिन्दी और नेपाली के विवेच्य शब्दों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात भी सामने आती है कि हिन्दी में तत्सम शब्द ज्यादा परिमाण में शिष्ट प्रयोग में चलते हैं, पर नेपाली में तद्भव और विदेशी। इसे प्रस्तुत उदाहरण में स्पष्टतः देखा जा सकता है—

1. ऐसे शब्द जो हिन्दी में साधारण और नेपाली में शिष्ट प्रयोग में चलते हैं—

(क) तत्सम—दम, निश्शंक, फांट, यावत्, कंस, लहरी, गंज, डोर, ताली, कौन, तान—11 शब्द।

(ख) तद्भव—चउर, छरी, झार, बंडा, बगर, खार, खोरिया, गांठी, चाड़, जंती, आंगर, जीउ, ठट्टा, ढर्रा, धंधा, बानी, मोच, अड्डा, गुन, भरी, भाउ, सत, खली, पौल, बरु, भरपाई, खोंच, गट्ठा, घा, छांट, थरी, जिय, रोपनी, खपुवा, चख, ठहर, बुंदा, धुरी, थिति, पौन, चाख, छांटा, छिया, डोब, डोला, दून, देवल, पहार, पातल, पात, बासा, भीत, चरन, गुड्डी, गाभ— 55 शब्द।

(ग) विदेशी—बादाम, बेहाल, मनसूबा, सर, ताक, रद्द, रोजा, सांध, दरगाह, खानगी, असल, मगीदार—12 शब्द।

(घ) देशी—चट्ट, रिमझिम—2 शब्द।

2. ऐसे शब्द जो नेपाली में साधारण और हिन्दी में शिष्ट प्रयोग में चलते हैं—

(क) तत्सम—नल, असाध्य, अस्ति, कट, पाली, अजात, अलि, अजिर, असती, कर, अवतार—11 शब्द।

(ख) तद्भव—लहर, अख्यान, एकान्ती, बाम, छाप, बिट, राई, साहा, बिजन, सुर—10 शब्द।

(ग) विदेशी—दौरा, उल्फत—2 शब्द।

ये सारे उदाहरण अर्थादेश से लिए गए हैं। इसी तरह अर्थ-विस्तार और अर्थ-संकोच में भी प्रयोग-भिन्नता है। हिन्दी में साधारण और नेपाली में शिष्ट प्रयोग में चलने वाले 17 तत्सम, 74 तद्भव, 2 देशी और 21 विदेशी शब्द पाए गए हैं। इसके विपरीत, नेपाली में साधारण और हिन्दी में शिष्ट प्रयोग में चलने वाले 20 तत्सम, 14 तद्भव और 3 विदेशी शब्द पाए गए हैं। इससे यह बात साफ हो जाती है कि एक ही

शब्द जो हिन्दी में 'साधारण' है, वही नेपाली में बहुत बड़ी संख्या में 'शिष्ट'। नेपाली में ऐसे शब्दों की सबसे बड़ी संख्या तद्भव शब्दों की है जिससे पूर्व में ग्रहण किए गए इस निष्कर्ष की पुष्टि हो जाती है कि ये तद्भव शब्द स्वयं नेपाली में विकसित नहीं हुए हैं, वरन् हिन्दी से आयातित हैं। यदि भाषा-विकास की प्रक्रिया में ध्वनि-परिवर्तन के सहारे ये शब्द अपनी ही धरती पर तत्सम से तद्भव बने होते तो इनका भी साधारण प्रयोग होता, शिष्ट नहीं। तद्भव शब्दों की तरह विदेशी शब्द भी बहुत बड़ी संख्या में अभी शिष्ट प्रयोग में हैं जिससे यह बात साफ हो जाती है कि विदेशी शब्दों की तरह ही नेपाली ने बहुत सारे तद्भव शब्दों को हिन्दी से ग्रहण किया है।

हिन्दी में ऐसे तद्भव और विदेशी शब्दों की संख्या अत्यल्प है जिनका प्रयोग नेपाली में साधारण और हिन्दी में शिष्ट शब्द के रूप में होता हो। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी ने तद्भव और विदेशी शब्दों को बहुत मात्रा में पचा लिया है।

दोनों भाषाओं में समान रूप से शिष्ट प्रयोग में चलने वाले 103 तत्सम, 14 तद्भव, 1 देशी और 17 विदेशी शब्द पाए गए हैं। इससे यह तथ्य सामने आता है कि अभी दोनों भाषाओं में तत्सम शब्द पूर्ण रूप से पच नहीं पाए हैं। दोनों देशों की अधिकांश जनता अशिक्षित है और संस्कृत के सम्पर्क से बहुत दूर। फलस्वरूप, तत्सम शब्द जनता की रंगों में समा नहीं पाए हैं और बोलचाल के रूप में सहजता से प्रयुक्त नहीं हो रहे हैं। इसलिए, यह अभी तक शिष्ट प्रयोग में चल रहे हैं। इससे दोनों भाषाओं में यह खतरा नजर आता है कि यदि तत्सम शब्दों को बहुल प्रयोग के द्वारा साधारण प्रयोग में नहीं लाया गया तो समय पाकर ये विलुप्त हो सकते हैं और भाषा एक महान् सांस्कृतिक धरोहर से वियुक्त हो सकती है। चूँकि नेपाली की तुलना में हिन्दी में अधिक तत्सम शब्द शिष्ट प्रयोग में पाए गए हैं, इसलिए हिन्दी के लिए इसका खतरा अधिक है। साथ ही, ऐसे तत्सम शब्दों को साधारण प्रयोग में लाने का महत्तर दायित्व भी हिन्दी के लिए अधिक है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हिन्दी भाषा अधिकाधिक वस्तुनिष्ठ (Objective) होती गई, इसलिए यह एक भाव से मिलते जुलते दूसरे भाव को भी ग्रहण करती गई। हिन्दी के अन्दर कोई विरोधात्मक प्रवृत्ति न होकर समन्वयात्मक प्रवृत्ति ज्यादा रही है। इसलिए इसने अपने पारम्परिक अर्थ को यथासंभव सुरक्षित रखने की चेष्टा की और नए भावों को प्राचीन शब्दों के साथ ही जोड़ने का प्रयास किया। इससे इसके अर्थ में स्थानान्तरण की प्रवृत्ति प्रमुख हो गई और अर्थ-विस्तार सबसे ज्यादा घटित हुआ।

लगभग एक ही तरह के भाव के लिए जब बहुत सारे शब्द प्रचलित हो जाते हैं तब विभेदीकरण की प्रक्रिया चलने लगती है। हिन्दी में स्थानान्तरण जिस भाव-साम्य के कारण घटित हुआ था, उसी भाव-साम्य के कारण बाद में विभेदीकरण घटित होने लगा। इसलिए हिन्दी के अर्थ-विस्तार में विभेदीकरण भी प्रमुख भूमिका अदा करता है। विभेदीकरण के बाद सादृश्य और अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ ही हिन्दी अर्थ-विस्तार का प्रमुख कारण रहे हैं, क्योंकि इनमें भी भावों और रूपों के सादृश्य और अस्पष्टता का भाव रहता है। इन सारे तथ्यों के सर्वेक्षण के बाद हिन्दी की यह प्रवृत्ति स्पष्ट हो जाती है कि यह यथासंभव भाव-साम्य और रूप-साम्य को प्रश्रय देती हुई अर्थ का विस्तार करती रही है। इससे यह बात भी साफ हो जाती है कि हिन्दी ज्यादा लोचदार भाषा

है और किसी भी नए भाव के लिए अपने पारस्परिक अर्थ को सुरक्षित रखते हुए अपने शब्द-भण्डार का उपयोग कर सकती है।

नेपाली में यह प्रवृत्ति प्रमुख नहीं है, क्योंकि इसके शब्द अपने मौलिक अर्थ को छोड़कर नई दिशा को अपना लेते हैं। इससे यह भाषा लचकदार कम, विच्छेदात्मक ज्यादा सिद्ध होती है। फिर भी, हमें यह ध्यान रखना होगा कि हिन्दी में अर्थ-विस्तार के बाद अर्थादेश ही सर्वाधिक हुआ है और नेपाली में अर्थादेश के बाद अर्थ-विस्तार ही सबसे ज्यादा। इसलिए दोनों में प्रवृत्ति एक दूसरे से बहुत भिन्न नहीं है। हिन्दी में भी नए अर्थों के लिए अर्थादेश किया गया है और अर्थादेश के मुख्य कारण सम्बद्ध और लक्षणा ही रहा है। उसी तरह नेपाली में अर्थ-विस्तार के प्रमुख कारण स्थानान्तरण और अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ रहे हैं। इस तरह की समानता का कारण सम्भवतः समान उत्स और समान आवश्यकता का होना है। लेकिन नेपाली में अर्थ-विस्तार की तुलना में अर्थादेश ढाई गुना से भी ज्यादा का होना घटित हुआ है जिससे उसकी एक भिन्न प्रवृत्ति का स्पष्ट पता चलता है।

विवेच्य शब्दों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी में तत्सम शब्दों का नेपाली की तुलना में कम अर्थ-विकास हुआ है। यह स्थिति हिन्दी के लिए खतरनाक मालूम पड़ती है, क्योंकि इससे यह अपनी सांस्कृतिक धरोहर का पूरा उपयोग न करके दूसरी भाषा या शब्द के परिवर्तित रूप का मुखापेक्षी बन कर रह जा सकती है। बदलते सन्दर्भ में नए अर्थों का ग्रहण करने के लिए इस तत्सम शब्दों का उपयोग करना चाहिए। इससे हिन्दी और अधिक गतिशील भाषा बनेगी तथा अपनी संस्कृति से जुड़ी रह सकेगी। इसकी मौलिकता भी इससे अक्षुण्ण रह सकेगी तथा वह अपने गुणों को ज्यादा से ज्यादा प्रस्फुटित कर सकेगी। डॉ० राधाकृष्ण सहाय ने हिन्दी और बँगला शब्दों का अर्थ-वैज्ञानिक तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद पाया है कि हिन्दी के तत्सम शब्दों में अर्थ-संकोच की प्रवृत्ति है। उनका विचार है कि यदि अर्थ-संकोच की यह प्रवृत्ति कठोर से कठोरतर होती गई तो तत्सम शब्द कुछ ही दिनों में पारिभाषिक शब्दों के रूप में केवल कोशों तक सीमित रह जा सकते हैं या महत्त्वपूर्ण सूचक शब्द बनकर रह जा सकते हैं। इसीलिए, उनका सुझाव है कि हिन्दी को कठोर और निष्ठावान् नीति का त्याग कर अर्थ-संकोच के माध्यम से नए-नए अर्थ ग्रहण करने के लिए तत्पर रहना होगा।[1] इस तरह उनके और प्रस्तुत अध्ययन का निष्कर्ष लगभग एक ही आता है—तत्सम शब्दों के प्रति उदारता की नीति।

हिन्दी में जो अर्थ-विस्तार की प्रवृत्ति है, इससे व्यापक अर्थों को समेटने में सहायता मिलती है। लेकिन यहाँ हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि अर्थ-संकोच ही किसी भाषा की समृद्धि का सूचक होता है। इसलिए हिन्दी को अपने व्यापक परिवेश या फलक को समेटने की प्रवृत्ति से हटकर अर्थ-संकोच के द्वारा अर्थ को स्थिर करना होगा। अनेक अर्थों को एक ही शब्द के माध्यम से प्रकट करने से भाषा में उलझाव पैदा होता है। इसलिए इस जंगल को साफ करके एक निश्चितता देनी होगी जिससे भाषा अधिक सुगम, सरल और सुग्राह्य हो सके।

1. अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बँगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ० 476।

हिन्दी में नए पारिभाषिक शब्दों के निर्माण के क्रम में तत्सम शब्दों का उपयोग हो रहा है और यह एक अच्छी बात है। लेकिन ध्यान इस बात का रखना है कि व्यापक प्रचलन के द्वारा इसकी जड़ को गहरे तक पहुँचाया जाय। जैसा कि हमने पहले देखा है कि बहुत सारे तत्सम शब्द अभी भी मात्र शिष्ट प्रयोग में चलते हैं। यह स्थिति खतरनाक सिद्ध हो सकती है। संभव है, व्यापक प्रचलन या सामूहिक स्वीकृति के अभाव में ये मात्र कार्यालयी, पुस्तकीय और शिक्षित वर्ग के शब्द बनकर रह जायें और समय पाकर विलुप्त हो जायें। इसलिए ऐसे शब्दों को व्यापक प्रचलन के द्वारा साधारण शब्द बनाना है। यह प्रसन्नता की बात है कि बहुत सारे तत्सम शब्द या पारिभाषिक शब्द अब साधारण प्रयोग में आ गए हैं (यथा, "शनिवालय, आकाशवाणी, विद्यालय, महाविद्यालय, चलचित्र" आदि)।

हिन्दी के सामने दूसरी समस्या है—तत्सम शब्दों से नए अर्थों को ग्रहण करने की। हमारे बहुत सारे तत्सम शब्द मृत हो गए हैं या धीरे-धीरे मृत हो रहे हैं। आवश्यकता है ऐसे शब्दों को नए संदर्भों के साथ जोड़कर पुनर्जीवित करने की। जिस तरह हरिजन, सर्वोदय, भूदान, सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य आदि शब्दों को नए अर्थ और नई गरिमा मिली है, उसी तरह अन्य शब्दों को भी मिलनी चाहिए। इसके बिना, हिन्दी की निजता के विलुप्त होने का खतरा है।

नेपाली में जो अधिकाधिक अर्थादेश की प्रवृत्ति है, इससे भाषा के स्वरूप में भयानक परिवर्तन का खतरा दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि नेपाली अपने पारम्परिक अर्थ से बहुत दूर जा रही है और एक भिन्न ही अर्थ-दिशा अपना रही है। इसे भी अर्थ-विस्तार के द्वारा नए अर्थों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का विकास करना चाहिए और अन्ततः अर्थ-संकोच के द्वारा अर्थ को स्थिर करना चाहिए। विवेच्य शब्दों के अध्ययन से यह बात साफ हो जाती है कि नेपाली ने भी तत्सम शब्दों की तुलना में तद्भव शब्दों का अधिक उपयोग किया है। ऐसा लगता है कि अब यह विदेशी शब्दों को अधिकाधिक ग्रहण करने की ओर मुड़ गई है। यह स्थिति नेपाली के लिए एक खतरा सिद्ध हो सकती है। ऐसा करके नेपाली अपनी परम्परा और निजी विशेषता से दूर हट जायेगी। उसे अपने देशी और तत्सम शब्दों के सहारे इस कमी को पूरा करना चाहिए।

इधर नेपाली में भी तत्सम शब्दों के सहारे पारिभाषिक शब्दों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो गई है (यथा, "भूमि प्रशासक, भूमि प्रशासन, प्रमुख जिल्ला अधिकारी, शिक्षा पदाधिकारी आदि)।" लेकिन आवश्यकता है, इसे सामान्य लोगों तक पहुँचाने की जिससे वे शब्द सदा के लिए भाषा के अंग बन जायें।

यह तभी संभव होगा जब दोनों भाषायें अपनी-अपनी प्रवृत्ति को ठीक-ठीक पहचानें। तथ्यात्मक अध्ययन के बाद प्रवृत्ति को ठीक से समझकर उठाया गया कदम ही दोनों भाषाओं के भविष्य के मार्ग को सही-सही निर्देशित कर सकेगा।

—:o:—

परिशिष्ट

क—पारिभाषिक शब्दावली

हिन्दी	अंग्रेजी
अंश-अंशी	Part-Whole
अनुकरणात्मक	Onomotopoetic
अनुनासिकता	Nasalisation
अनुभवाश्रित वर्गीकरण	Empirical Classification
अनेकार्थी	Polysemy
अपि निहित	Eppent hesis
अभिश्रुति	Umault
अमूर्तीकरण	Abstraction
अयोगात्मक, वियोगात्मक	Analytical
अर्थ	Meaning
अर्थ-विस्तार	Expansion
अर्थ-विज्ञान	Semantics
अर्थ-संकोच	Contraction
अर्थादेश	Transference
अर्थापकर्ष	Pejoration
अर्थोत्कर्ष	Amelioration
अलंकार	Figure of Speech
अवच्छेदक	Modifiers
अवच्छेदात्मक अर्थलोप	Omission of modifying sense
अस्पष्ट अभिव्यक्तियाँ	Vague forms
आधार-आधेय	Receptable-contents
उधार लेने वाली भाषा	Borrowing languege
उपलक्षण	Syneedoctic
उपसर्ग	Prefix
ऋण शब्द, आगम शब्द	Loan Words
एकाक्षरी शब्द	Monosyllabic
कार्य-कारण	Cause-Effect
गठनात्मक	Structural
गुण अथवा स्थिति के लिए क्रिया	Action for Quality or State
चिह्न	Sign
तार्किक वर्गीकरण	Logical Classification
देश के लिए क्रिया	Action for Place
द्रव के लिए क्रिया	Action for Object
ध्वनि-तत्त्व	Phonetics
ध्वन्यात्मक	Phonetical
पदरचना-पद्धति	Syntax
पदरचनाशास्त्र, पदविज्ञान	Morphology

हिन्दी	अंग्रेजी
पर्यायवाची	Synonym
प्रत्यय	Suffix
प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व	Symbolic Representation
प्रसारात्मक	Extensional
भावनात्मक बल	Emotional Emphasis
भाषागत विशेषताएँ	Linguistic Peculiarities
भाषाशास्त्री	Linguist
भाषाविज्ञान	Philology
भाषावैज्ञानिक	Philologist
भाषाशास्त्र	Linguistics
भिन्नार्थक शब्द	Homonym
मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण	Psychological Classification
मानवीकरण	Personification
योगात्मक	Synthetical
रचनात्मक भाषा	Building Language
रूपक	Metaphor
लक्षणा	Metonymy
विकासात्मक	Evolutionary
विभक्ति	Inflection
विभेदीकरण	Differentiation
विशिष्टीकरण	Specialization
विशेष (अपर) से सामान्य (पर)	Species to Genus
विकसित	Developed
विकासशील	Developing
व्याकरणात्मक	Grammatical
व्यावहारिक वर्गीकरण	Functional Classification
शब्द-समूह	Vocabulary
शिष्ट शब्द	Learned Words
संकेत-संकेतित	The Sign & the Signified
सम्बद्ध	Allied
संसर्ग	Association
संस्कृति	Culture
समर्थ पदलोप	Ellipsis
समास	Compound
समाहरण	Concentration
सादृश्य	Analogy
साधारण शब्द	Common Words
सामान्य (पर) से विशेष (अपर)	Genus to Species
सूचक शब्द	Key Words
स्थानान्तरण	Transference
स्वर-संगति	Vowel Harmony

सहायक ग्रन्थों की सूची

हिन्दी, संस्कृत, उर्दू

1. अम्बा प्रसाद 'सुमन' : हिन्दी भाषा (अतीत और वर्तमान); हास्पिटल रोड, आगरा, 1965 ई० ।
2. एस० सी० सरकार और के० के० दत्ता : आधुनिक भारतवर्ष का इतिहास; इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, 1968 ।
3. उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट्० : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास; भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० 2026 ।
4. उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी० लिट्० : भाषाशास्त्र की रूपरेखा; भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, सं० 2020।
5. उदयनारायण तिवारी, एम० ए०, डी० लिट्० : भोजपुरी भाषा और साहित्य; बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना, 1954 ई० ।
6. उर्दू-हिन्दी डिक्शनरी : अलीगढ़, अन्जुमन-ए-तारक्की-ए-उर्दू (हिन्द), 1955 ई० ।
7. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य : अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन, हिन्दुस्तानी एकेडमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, 1951 ई० ।
8. कालिका प्रसाद, राजवल्लभ सहाय एवं मुकुन्दीलाल श्रीवास्तव : बृहद् हिन्दी कोश; ज्ञान मंडल लिमिटेड, बनारस—1, सं० 2013 वि० ।
9. कालिदास : रघुवंशम्, चौखम्भा प्रकाशन, दिल्ली ।
10. काव्य-प्रकाश : सम्पादक—रामभट्ट झलकीकर; गवर्नमेंट सेन्ट्रल बुक डिपो, बम्बई, 1901 ई० ।
11. काशी प्रसाद श्रीवास्तव : नेपाल की कहानी; आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1955 ई० ।
12. केशवराम पाल : हिन्दी में प्रयुक्त संस्कृत शब्दों में अर्थ-परिवर्तन; प्राची प्रकाशन, मेरठ, 1964 ई० ।
13. ग्रियर्सन : भारत का भाषा सर्वेक्षण (अनुवादक : उदयनारायण तिवारी), प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1959 ई० ।

14. दीनानाथ शरण : नेपाली साहित्य का इतिहास; बिहार हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, पटना–3, 1974 ई० ।

15. देवेन्द्रनाथ शर्मा : भाषाविज्ञान की भूमिका; राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली–7, 1966 ई० ।

16. द्वारिका प्रसाद सक्सेना : भाषाविज्ञान के सिद्धान्त और हिन्दी भाषा; मीनाक्षी प्रकाशन, 4 अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली, द्वितीय संस्करण ।

17. धीरेन्द्र वर्मा (संग्रहकर्त्ता) : ग्रामीण हिन्दी; साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, 1933 ई० ।

18. धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास; हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1962 ई० ।

19. निरुक्त भाषा टीका : सं० लक्ष्मण स्वरूप, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, 1928 ई० ।

20. पद्म नारायण : आधुनिक भाषाविज्ञान; ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना–4, 1961 ई० ।

21. बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषाविज्ञान; हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० 2010 वि० ।

22. बाबूराम सक्सेना : अर्थविज्ञान; पटना विश्वविद्यालय, 1948 ई० ।

23. भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान; किताब महल, इलाहाबाद, 1971 ई० ।

24. भोलानाथ तिवारी : शब्दों का अध्ययन; शब्दकार, 2203, गली डकौतान, तुर्कमान रोड, दिल्ली–6, 1969 ई० ।

25. भोलानाथ तिवारी : भाषाविज्ञान कोश; ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी, सं० 2020 वि० ।

26. मथुरादत्त पाण्डय : नेपाली और हिन्दी के भक्तिकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन; भारतीय ग्रन्थ निकेतन, दिल्ली- 6, 1970 ई० ।

27. महाभाष्य (देवीदत्त पर जुली संपादित)

28. महामहोपाध्याय गौरीशंकर हीरानन्द ओझा : उदयपुर राज्य का इतिहास, भाग—1, अजमेर ।

29. मुहम्मद मुस्तफा खाँ 'मद्दाह' : उर्दू-हिन्दी शब्दकोश; प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश, 1959 ई० ।

30. मौलवी अब्दुल अजीज : लोगात–सईदी; मतबमजीदी, कानपुर, 1929 ई० ।

31. मौलवी मुहम्मद रफी : जामए उल्लगात; रायसाहब रामदयाल, अग्रवाल, इलाहाबाद, 1951 ई० ।

32. राजशेखर : काव्य मीमांसा; (अनुवादक : पंडित केदारनाथ शर्मा सारस्वत), बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, 1954 ई० ।

33. राधाकान्त देव बहादुर : शब्द-कल्पद्रुम : (द्वितीय काण्ड); मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, वाराणसी, पटना, 1961 ई० ।

34. राधाकृष्ण सहाय : अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं बंगला शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन; हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1974 ई० ।

35. रामचन्द्र वर्मा : शब्दार्थ-दर्शन; रचना प्रकाशन, इलाहाबाद–1, 1968 ई० ।

36. रामचन्द्र वर्मा : शब्द और अर्थ; शब्दलोक प्रकाशन, 47 लाजपत नगर, बनारस–2, सं० 2022 वि० ।

37. रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2008 ।

38. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय : भारतीय आर्यभाषा; हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तरप्रदेश, 1963 ई० ।

39. वाक्यपदीय : ब्रजविलास एण्ड कम्पनी, बनारस, 1887 ई० ।

40. विराज : नेपाल; राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, 1971 ई० ।

41. शिवनाथ : अर्थतत्त्व की भूमिका; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2018 वि० ।

42. शंकर सहाय सक्सेना : नेपाल : अतीत और वर्तमान; नवयुग ग्रंथ कुटीर, बीकानेर, 1965 ई० ।

43. श्याम सुन्दर दास : भाषाविज्ञान; इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, सं० 1995 वि० ।

44. सन्तोष जैन : हिन्दी और बंगला भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन; शब्दकार, दिल्ली–6, 1974 ई० ।

45. सरनाम सिंह शर्मा 'अरुण' : हिन्दी भाषा : रूप विकास; चिन्मय प्रकाशन, जयपुर–3, 1968 ई० ।

46. सरयू प्रसाद अग्रवाल : भाषाविज्ञान और हिन्दी; भारतीय विद्या भवन, इलाहाबाद, 1957 ई० ।

47. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी; राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना, 1963 ई०।

48. संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर : सं० रामचन्द्र वर्म्मा; नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2028 वि०।

49. संस्कृत कोश सुधा : (संग्रहकार—पंडित श्याम सुन्दर शर्मा काव्यतीर्थ), सुबोध ग्रन्थमाला कार्यालय, रांची।

नेपाली

1. अलख मधुप : नेपाल : देश और निवासी (सं० श्रीकान्त व्यास), हिन्द पाकेट बुक्स प्रा० लि०, जी० टी० रोड, शाहदरा, दिल्ली—32।

2. इन्द्र बहादुर राय : आज रमिता छ; साझा प्रकाशन, काठमाडौं, नेपाल, दूसरा संस्करण।

3. केकेम नुक्च्यो पोखरेल : शोधाद र जबाफ; रत्न पुस्तक भंडार, भोटाहिटी, काठमाडौं।

4. कृष्ण प्रसाद उपाध्याय : महाभारत, दुर्गा प्रेस, काशी, 1906 ई०।

5. कृष्ण प्रसाद ढुंगाना : संक्षिप्त नेपाली हिन्दी कोश : सं० जगदम्बा प्रकाशन, श्रीदरबार, ललितपुर, सं० 2019 वि०।

6. गणेश प्याकुरेल : प्रतिशोध; रत्न पुस्तक भण्डार, भोटाहिटी, काठमाडौं (नेपाल), सं० 2029 साल।

7. गोविन्द बहादुर मल्ल 'गोठाले' : कथा-संग्रह; साझा प्रकाशन, काठमाडौं, नेपाल, सं० 2030 साल।

8. चूडामणि उपाध्याय रेग्मी : नेपाली भाषाको उत्पत्ति; जगदम्बा प्रकाशन, नेपाल, सं० 2025 साल।

9. चूडामणि बन्धु : भाषाविज्ञान; नेपाल राजकीय प्रज्ञा प्रतिष्ठान, कमलादी, काठमाडौं, सं० 2030 साल।

10. जनकलाल शर्मा और राजेश्वर देवकोटा : नेपाली निबंधावली; रत्न पुस्तक भंडार, काठमाडौं, सं० 2026 साल।

11. नरेन्द्र चापागाईं : भाषातत्त्व।

12. नेपाली शब्दकोश : सं० बालचन्द्र शर्मा; रायल नेपाल एकेडमी, काठमाडौं, सं० 2019 वि०।

13. पारसमणि प्रधान एवं नागेन्द्रमणि प्रधान : नेपाली-इंगलिश डिक्शनरी (सं०) भाग्यलक्ष्मी प्रकाशन, कालिम्पोंग, 1971 ई०।

14. पारसमणि प्रधान एवं नागमणि प्रधान : सजिलो नेपाली व्याकरण, म्याकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड, कलकत्ता, 1959 ई० ।

15. पारिजात : शिरीषको फूल; पुस्तक संसार, विराटनगर

16. बालकृष्ण पोखरेल : नेपाली भाषा र साहित्य; रत्न पुस्तक भंडार भोटाहिटी, काठमाडौं, नेपाल, सं० 2025 वि० ।

17. बालकृष्ण पोखरेल : नेपाली भाषाको कथा; जगदम्बा प्रकाशन, ललितपुर, सं० 2019 वि० ।

18. बांगदेल : लंगडाको साथी; रत्न पुस्तक भंडार, भोटा-हिटी, काठमाडौं, नेपाल।

19. बांगदेल : मुलुक बाहिर; रत्न पुस्तक भण्डार, भोटा-हिटी, काठमाडौं, नेपाल।

20. बी० पी० कोयराला : सुम्निमा; प्रतिनिधि साहित्य प्रकाशन, चाबहिल, काठमाण्डू, नेपाल।

21. भानुभक्तको रामायण : सं० सू० वि० ज्ञवाली, नेपाली साहित्य सम्मेलन, दार्जिलिंग, 1954 ई० ।

22. मुरलीधर भट्टराई : धर्म र संस्कृति; विश्वमैत्री संघ, काठमांडू।

23. यज्ञराज सत्याल : नेपाली साहित्य को भूमिका; रत्न पुस्तक भण्डार, काठमांडू, सं० 2026 साल।

24. युधिर थापा : फेरि कहिले भेंट होला; रत्न पुस्तक भंडार, काठमाडौं, नेपाल, सं० 2027 साल।

25. रमेश विकल : नयां सडकको गीत; साझा प्रकाशन, काठ-माडौं, नेपाल, सं० 2030 साल।

26. रामराज पन्त : नेपाली भाषाविज्ञान; काठमाडौं, 1959 ई० ।

27. लीलबहादुर क्षत्री : बसाई; साझा प्रकाशन, काठमाडौं।

28. लैनसिंह बांगदेल : माइतघर; रत्न पुस्तक भण्डार, भोटाहिटी, काठमाडौं, नेपाल, सं० 2029 साल।

29. विनोद प्रसाद धिताल : उज्यालो हुनु अघि; साझा प्रकाशन, ललित-पुर, नेपाल।

30. विश्वेश्वर प्रसाद कोयराला : दोषी चश्मा; प्रतिनिधि साहित्य प्रकाशन।

31. विश्वेश्वर प्रसाद कोयराला : नरेन्द्र दाइ; प्रतिनिधि साहित्य प्रकाशन, चाबहिल, काठमांडू (नेपाल), 1970 ई० ।

32. बृहत् नेपाली शब्दकोश : सं० हर्षनाथ शर्म्मा; नेपाली साहित्य भंडार, विराटनगर, नेपाल।

33. शंकर प्रसाद कोयराला : दुर्दमनीय; साझा प्रकाशन, काठमाडौं, नेपाल, पहला संकरण।

34. हृदय चन्द्र प्रधान : एक विद्वान; साझा प्रकाशन, काठमाडौं, नेपाल, सं० 2029 साल।

अंग्रेजी

1. Bishnupada Bhattacharya : A Study in Language and Meaning; Progressive Publishers, Calcutta, 1962.
2. Charles E. Osgood & George J. Suci : The Measurement of Meaning; Percy H. Tannenbaum, University of Illinois Press Urbana, 1957.
3. C. K. Ogden & I. A. Richards : The Meaning of Meaning; Routledge & Kegan Paul, Ltd., London, 1960.
4. D. R. Regmi : Medieval Nepal—Part I; Firma K. L. Mukhopadhyaya, Calcutta, 1965.
5. Daniel Wright : History of Nepal; University Press, Cambridge, 1877.
6. E. H. Sturtevant : Linguistic Change; Phoenix Books, The University of Chicago Press, Chicago & London, 1961-62.
7. F. G. Tucker : Introduction to Natural History of Language; Blackie & Son Ltd., London, 1908.
8. Hardeo Bahri : Hindi Semantics; Bharati Press Publishers, Darbhanga Road, Allahabad, 1959.
9. H. A. Oldfield : Sketches from Nepal; W.H. Allen & Co., London, 1880.
10. Harmann Paul : The Principles of the History of Language; (German English translators H. A. Strong, W. S. Longemen, B. L. Wheeler), London, 1887.
11. I. J. S. Toraporewala : Elements of the Science of Language; Calcutta University, Calcutta, 1957.
12. James Bradstreet Greenough & George Lyman Kitteredge : Words and their Ways in English Speech; The Macmillan Company; New York, 1961.

13. John Moris : A Winter in Nepal; Rupert Hart Davis, SOHD Square, London, 1963.

14. L. Bloomfield : Language; George Allen & Unwin Ltd., London, 1950.

15. Louis B. Salomon : Semantics and Common Sense; Holt, Rinehart & Winston Inc., New York, Chicago, San Francisco, Toronto, London, 1966.

16. L. D. Joshi : Khas Family Law; Govt. Press, Allahabad, 1929.

17. Louis H. Gray : Foundations of Language; The Macmillan Company, New York, 1950.

18. M. Breal : Semantics; Williams Heinemann, London, 1900 (Eng. trans.)

19. Mario Pie : The Story of Language; J. B. Lippincott Co., Philadelphia & New York, 1949.

20. M. M. Williams : A Sanskrit-English Dictionary; Oxford, at the Clarendon Press, 1965.

21. Professor Weekley : Romance of Words.

22. Raganar Rommetveit : Words, Meanings and Messages; Academic Press, New York & London, 1968.

23. Rishikesh Shaha : Heroes and Builders of Nepal; Oxford University Press, London, 1965.

24. R. L. Turner: A Comparative and Etymological Dictionary of the Nepali Language; Routledge & Kegan Paul Limited, London, 1965.

25. S. Ullmann : The Principles of Semantics; Jackson, Son & Co., Basil Blackwell, Oxford, 1959.

26. S. Ullmann : Words and Their Use; Frederick Muller Ltd., London, 1960.

27. S. Ullmann : Semantics, Basil Blackwell, Oxford, 1962.

28. Statement of Principles : Major Foreign Policy Speeches by His Majesty King Mahendra; Published by the Deptt. of Publicity, Ministry of Panchayat Affairs, H. M. G. Nepal, Nov., 1964.

29. T. Davidson : Chamber's Twentieth Century Dictionary (Compiled) W. and R. Chambers, Ltd., London, 1939.

30. V. S. Apte : The Student's Sanskrit English Dictionary (Compiled); Motilal Banarsidas, Varanasi, 1963.

31. V. S. Apte : The Practical Sanskrit English Dictionary (Compiled); Motilal Banarsidas, Delhi, Patna, Varanasi.

पत्र-पत्रिकायें

1. आलोचना (त्रैमासिक) वर्ष—17, अंक—2, जुलाई-सितम्बर—67, राजकमल प्रकाशन लि०, 8, फैज बाजार, दिल्ली—6।

2. आलोचना (त्रैमासिक)— पूर्णांक—[illegible], अप्रैल-जून—1968, राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, 8, फैज बाजार, दिल्ली—6।

3. किंजल्क (साहित्य-संकलन), प्रथम अंक: मनोहर प्रसाद [illegible], हिन्दी अध्ययन समिति, [illegible], 1971।

4. नेपाल संदेश (भारत-नेपाल मैत्री अंक), पटना, 1 जनवरी, 1967।

5. Journal of the Bhagalpur University, Vol. II., No. 1. HUMANITIES. Bhagalpur University, 1969.

अर्थविज्ञान की दृष्टि से हिन्दी एवं नेपाली शब्दों का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद साह, एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कालेज
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

किताब महल
इलाहाबाद, दिल्ली, पटना, नागपुर